Digitized by Madhuban Trust, Delhi.

शाङ्खायनब्राह्मणम्

(भूमिका-हिन्दीभाषानुवाद-परिशिष्टादिसमन्वितम्)

अनुवादकः संपादकश्च
डा० गङ्गासागररायः
सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी
१९८७

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शाङ्खायनब्राह्मणम्

(भूमिका-हिन्दीभाषानुवाद-परिशिष्टादिसमन्वितम्)

अनुवादकः संपादकश्च

डा० गङ्गासागररायः

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी

१६८७

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

THE ŚĀNKHĀYANA BRĀHMAṆA

(Containing the Original Sanskrit Text with Hindi Translation, Introduction and Appendices)

Edited and Translated by

Dr. Ganga Sagar Rai

All India Kashiraj Trust

Fort Ramnagar, Varanasi

RATNA PUBLICATIONS, VARANASI

1987

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

FOREWORD

It is, indeed, an interesting coincidence that the present edition of the *Śāṅkhāyana-Brāhmaṇa (ŚB)*, also known as *Kauṣītaki-Brāhmaṇa (KB)*, is being published in the year of the centenary of the publication of the first critical edition of that *Brāhmaṇa*. It was in 1887 that the first volume of Lindner's edition of the *KB*, containing the text (based on the collation of 11 manuscripts), an introduction (embodying, among other things, a concordance with the *Aitareya-Brāhmaṇa)*, and indices of *mantras* and proper names, was published at Jena in Germany. Nearly a quarter of a century later, there was published an Indian edition (Anandashram, Poona, 1911) whose text did not differ materially from Lindner's. Compared to the other *Brāhmaṇa* of the *Ṛgveda*, namely, the *Aitareya-Brāhmaṇa*, not much critical work has been done on the *ŚB*. Weber has given *(Indische Studien* 2) an analysis of the contents of that *Brāhmaṇa* drawing special attention to its relationship with the *Ṛgveda*. Keith *(JRAS*, 1915) has commented on the diverse questions arising out of Lindner's edition. An English translation of the *KB* (together with that of the *Ait. B)* by that scholar was issued five years later (HOS 25, 1920). A mention may be made here also of the critical observations on that translation by Caland (*AO* 10, 1932) and E. R. Sreekrishna Sarma *(Golden Jubilee Volume*, Vaidika Saṁśodhana Maṇḍala, Poona, 1982). A new edition of the *KB* was published in 1968 (Steiner, Wiesbaden) for which its editor, Sreekrishna Sarma, has used quite a large number of manuscripts mainly derived from Kerala. H. C. Patyal has offered *(JOIB* 20) some text-critical and exegetical remarks on that edition. Sreekrishna Sarma has also edited (Steiner, 1976) Udaya's commentary on the *KB*, which, incidentally, is claimed to be superior to that of Vināyaka Bhaṭṭa. Another edition of the *ŚB*, with Bengali translation, by Harinarayana Bhattacharya was published by the Calcutta Sanskrit College in 1970.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Among the critical writings relating to the *ŚB* one may note Mangaladeva Sastri's *Kauṣītakibrāhmaṇaparyālocanam (SS* 9, Varanasi, 1955), Sudarshan Kumar Sood's doctoral dissertation in Hindi on the cultural and historical study of the *KB* (Kurukshetra Univ.), and Klaus Mylius's paper *(Klio* 58, 1976) on the Vedic 'identifications' with special reference to the *KB.*

The present edition of the *ŚB* by Ganga Sagar Rai represents yet another laudable attempt to elucidate that *Brāhmaṇa*. It contains the critically constituted text of the *Brāhmaṇa* and its fairly lucid Hindi translation. The introduction deals with the Śāṅkhāyana Śākhā of the *Ṛgveda* and its literature, and an index of the *mantras* cited in the text is also appended. Altogether the editor has tried to make this edition as popularly useful as possible.

Ganga Sag ar Rai has, through his writings on the Veda, already established his credentials to undertake a work of this kind. I recall in this connection his papers on such subjects as the concept of a Vedic *śākhā*, the *śākhās* of the four Vedas as mentioned in the Purāṇas, the importance of the *Sāmaveda*, and the Vāmana-legend in the Veda and the Purāṇas. I earnestly hope that this present edition of the *ŚB* will prove to be a harbinger of several solid contributions in future.

R. N. Dandekar

Bhandarkar Oriental
Research Institute,
Poona-411 004.
January 14, 1987.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पुरोवाक्

वस्तुतः यह एक सुखद संयोग है कि शाङ्खायन ब्राह्मण, जिसे कौषीतकि ब्राह्मण भी कहते हैं, का यह संस्करण इस ब्राह्मण ग्रन्थ के प्रथम पाठसमीक्षात्मक संस्करण के प्रकाशन के शताब्दि वर्ष में प्रकाशित हो रहा है। कौषीतकि ब्राह्मण के लिण्डनर के पाठसमीक्षात्मक संस्करण जिसमें मूल पाठ (जो ११ हस्तलेखों के पाठसंवाद पर आधारित था) तथा भूमिका (जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण के साम्य का भी विवरण था) एवं मन्त्रों तथा व्यक्तियों के नामों की सूचियाँ थीं, का प्रथम भाग जर्मनी के येना नगर में १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके प्रायः पच्चीस वर्षों बाद एक भारतीय संस्करण (आनन्दाश्रम, पूना, १९११) प्रकाशित हुआ जिसका पाठ लिण्डनर के पाठ से अधिक भिन्न न था। ऋग्वेद के अन्य ब्राह्मण ऐतरेय की तुलना में शाङ्खायन ब्राह्मण के विषय में विशेष समीक्षात्मक कार्य नहीं हुआ है। बेवर ने (इण्डिशे स्टूडिएन, २) ऋग्वेद से विशेष रूप से इसका सम्बन्ध दर्शाते हुए इस ब्राह्मण का विवेचन किया। कीथ (जर्नल आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, १९१५) ने लिण्डनर के संस्करण से उद्भूत विविध प्रश्नों का विवेचन किया। इसके पांच वर्षों बाद उन्होंने ही कौषीतकि ब्राह्मण का (ऐतरेय ब्राह्मण सहित) अंग्रेजी भाषा में अनुवाद (हारवर्ड ओरियन्टल सिरीज, २५, १९२०) प्रकाशित किया। इस सन्दर्भ में उस अनुवाद के विषय में कॅलेण्ड (आक्टा ओरिएंटालिआ, १०, १९३२) तथा ई० आर० श्रीकृष्ण शर्मा (वैदिक संशोधन मण्डल पूना, स्वर्णजयन्ती अंक, १९८२) के समीक्षात्मक विवेचन उल्लेखनीय हैं। १९६८ ई० में कौषीतकि ब्राह्मण का एक नया पाठ-समीक्षात्मक संस्करण (स्टैनर, वीसबाडेन) से प्रकाशित हुआ जिसमें सम्पादक श्रीकृष्ण शर्मा ने बहुत से हस्तलेखों का प्रयोग किया जिनमें अधिकांशतः केरल से प्राप्त थे। एच० सी० पट्याल ने (जर्नल आफ ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, २०) इस संस्करण के पाठों के विषय में तथा आलोचनात्मक कुछ विचार व्यक्त किए। श्रीकृष्ण शर्मा ने कौषीतकि ब्राह्मण पर उदय की टीका का भी सम्पादन किया है (स्टैनर, १९७६) और इस टीका को विनायक भट्ट की टीका से श्रेष्ठ बताया है। शाङ्खायन ब्राह्मण का हरिनारायण भट्टाचार्य कृत बंगला अनुवाद सहित एक अन्य संस्करण कलकत्ता संस्कृत कालेज से १९७० ई० में प्रकाशित हुआ है।

शाङ्खायन ब्राह्मण के विषय में समीक्षात्मक कृतियों में मंगलदेव शास्त्री के कौषीतकि-ब्राह्मणपर्यालोचनम् (सारस्वती सुषमा, ९, १९५५), सुदर्शन कुमार सूद के हिन्दी में शोध-प्रबन्ध कौषीतकि ब्राह्मण का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन (कुरुक्षेत्र विश्व-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विद्यालय) और क्लाउस मिलियुस के निबन्ध (क्लियो, ५८,१९७६) कौषीतकि ब्राह्मण के विशेष संबन्ध में वैदिक "समीकरणों" का उल्लेख किया जा सकता है ।

डॉ० गंगासागर राय का शाङ्खायन ब्राह्मण का यह संस्करण उस ब्राह्मण के व्याख्यान का एक अन्य प्रशंसनीय प्रयास है। इसमें इस ब्राह्मण का समीक्षित पाठ तथा हिन्दी भाषा में प्राञ्जल अनुवाद है। भूमिका में शाङ्खायन शाखा और उसके साहित्य का परिचय है और परिशिष्ट में प्रतीक मन्त्रों की सूची है। संपादक ने इस संस्करण को लोकोपयोगी बनाने का हर संभव प्रयास किया है।

डॉ० गंगासागर राय ने वेद-विषयक अपनी कृतियों से इस प्रकार का कार्य करने की प्रतिष्ठा पहले से ही अर्जित की है। इस सन्दर्भ में मैं उनके वैदिक शाखा की संकल्पना, पुराणों में उल्लिखित चारों वेदों की शाखायें, सामवेद का महत्व एवं वेद तथा पुराणों में वामन-चरित नामक निबन्धों का उल्लेख कर सकता हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शाङ्खायन ब्राह्मण का यह संस्करण भविष्य में होने वाले अनेक व्यासङ्गपूर्ण रचनाओं के लिए अग्रदूत बनेगा।

रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर

मकर संक्रान्ति, २०४३ वि० १९०८ शक
भाण्डारकर-प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर,
पुणे—४।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

श्रीः

श्रीगुरुभ्यो नमः

प्रास्ताविकम्

अथेदानीं ऋक्छाखासम्बन्धिनं कौषीतकिब्राह्मणापरनामानं शाङ्खायनब्राह्मणं डा० गङ्गासागररायमहोदयप्रणीतेन हिन्दीभाषानुवादेन सहितं चिरन्तनभारतीयसंस्कृत्यवबोधकं ग्रन्थरत्नं श्रीरायमहोदयेनैव प्रकाशितमध्येतॄणां करकमलान्यलङ्करोतीति परमां मुदमवाप्नोमि। विश्वस्य जगतः शासको वेदश्शिक्षकश्च। शासको यथा शास्ति यथा च शिक्षयति तथाऽनुवर्तनं चिरन्तनभारतीयानां परम्परासमागता सरणिः। शासकस्याङ्गरक्षकाणि-शिक्षा-कल्पः निरुक्तं व्याकरणं ज्योतिषं छन्दश्चेति षट्। शिक्षकस्य शिक्षासाधनानि पुराणं न्यायः मीमांसा धर्मशास्त्रमिति चत्वारि। वेदाश्च चत्वारः। इमानि चतुर्दश विद्यायाः स्थानानि धर्मस्य च परिगणितानि पूर्वजैः अत्र धर्मपदेन चारित्रं विवक्षितम्, विद्यापदञ्च ज्ञानावबोधकम्। ज्ञानं चारित्रञ्च यत्र शुद्धं भवति तत्र किमु वक्तव्यम् देशस्य राष्ट्रस्य समाजस्य वा समुन्नतये। चतुर्दशसु विद्याधर्मस्थानेषु चत्वारो वेदाः प्राधान्यमावहन्तोऽपि सहायकसापेक्षा अवशिष्टानि दश धर्मविद्यास्थानानि परिगृह्यैव शासकत्वं शिक्षकत्वञ्चानुभवन्ति। सहायकानि धर्मविद्यास्थानान्यनादरेण पश्यन्त इमे ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्या वेदाः न शासका भवन्ति नापि शिक्षकाः, अपि तु स्वस्य यादृशं शासने शिक्षणे च सामर्थ्यं तादृशमेवान्यूनानतिरिक्तमावहन्तीमानि—इति गौरवबुध्या विलोकयन्तो वेदा एतेषां साहाय्यं परिगृह्णन्ति। सहायकान्यपीमानि यजमानानुवर्तनेन समवाप्तं सामर्थ्यं यजमानोपबृंहण एव विनियोक्तव्यमिति मत्या तदुपबृंहणकार्ये सततं यतन्ते। चरित्रं ज्ञानञ्च सर्वोपरि संस्थाप्य तदुन्नयनायान्योन्यसहायेनानन्यभावरूपामेकतामवाप्य चतुर्दशधर्मविद्यास्थानानि प्रवृत्तानीत्यत्रास्माकं भरतभूनिवासिनां पचेलिमस्य भागधेयस्यैव परिणामः कारणम्। अत एव चिरन्तना वेदतुल्ययोगक्षेमावहत्वं पुराणादीनां निश्चिन्वानाः वेदाध्ययनेन सह वेदवत् पुराणादीनप्यध्ययनेन वाचोविधेयान् विदधाना भारतस्य गौरवं समेधयाम्बभूवुः। अध्ययनं नाम न केवलं पठनम्। अधिपूर्वकेङ् धातोः गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणमर्थः। गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणविधया यथा वेदानामध्ययनम्, तथैव पुराणन्यायमीमांसादीनामपि आसीदध्ययनम्। तेन च वाक्छुद्धि मनश्शुद्धिञ्चावाप्य सत्यवाचः चारित्ररक्षकाश्च प्राज्ञोऽभूवन्। जगति जनिमातस्थुष एकैकस्यापि मानवस्य वाक्छुद्धिर्हृदयशुद्धिश्चावश्यिकी। अनयोरुभयोः प्राप्त्या सद्गुणा अन्ये स्वयमेवानुवर्तेरन्। अतएव प्राक्तनशिक्षाक्रमे जातकर्म-नामकरणान्नप्राशन-विद्यारम्भादिसंस्कारैर्बालान् यथाविधि संस्कृत्योपनीयाध्ययनायाचार्यकुलं सम्प्रेष्य प्रथमं साङ्गान् वेदानध्यापयन्ति स्म, स्वयं वाऽध्यापयन्ति स्म चिर-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न्तनाः । समन्ताद् भारतवर्षं प्रतिकुलमयं क्रमो नियत आसीत् । नानाशाखाभिर्भिन्ना वेदास्सर्व एव परिपाल्यन्ते स्म । अध्ययनाध्यापनादृते वेदानां पालनायान्यत्साधनं किमिव स्यात् ? तदत्र जागरूकाः प्राञ्चोऽभवन् ।

शासको वेदोऽस्मानादिशति—शीले वा कर्मणि वा विचिकित्सायां जातायां किं कर्तव्यमिति—'अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणास्सम्मर्शिनो युक्ता आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामास्स्युः, यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः (तै० उ० १।११।३-४), इति । विचिकित्साया अपनोदनाय न कमपि किमपि प्रष्टव्यम्, केवलं तेषां सङ्गेन तत्तदाचरणं विलोकनीयम्, तेनैव विच्छिन्नविचिकित्सः पुरुषस्स्यादिति वेदश्शास्ति । एतेन तदानीन्तनेषु लोकेषु कीदृशमाचरणम् कीदृशो व्यवहारः कीदृशी च सरणिरासीदित्यप्यूहितुं शक्यते । वेदस्तु न केवलं प्रभुसम्मितैश्शब्दैश्शास्ति अपि तु कान्तासम्मितैश्शब्दैरपि कुमार्गगामिनस्सत्पथे समानीय सतः पदार्थान् ग्राहयन् शिक्षकस्य तात्त्विकं स्वरूपमवबोधयति—

'सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥
समानो मन्त्रः समितिस्समानी समानं मनस्सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वस्समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानो व आकूतिस्समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वस्सुसहासति' ॥ इति ।

कियद्वात्सल्यं भगवत्या मातुः श्रुतेः—हे सुता मानवाः ! यूयं सङ्गच्छध्वम् सङ्गता भवत, एकं पन्थानमवलम्ब्य सङ्घटिता भवत । सङ्गताश्च संवदध्वम्-परस्परं भेदभावजनितं विरोधं कलहं परित्यज्यैकविधमेव वाक्यं ब्रूत, युष्माकं मनांस्येकरूपमेवार्थं निर्धारयन्तु । यथा हि पूर्वे देवा ऐकमत्यं प्राप्ता कर्मसु समवेता अभवन् यथाभागञ्च प्राप्तव्यं वस्तु अवाप्नुवन् तथैव यूयमपि वैमत्यं विहाय प्राप्तव्यं फलमनुभवत, मन्त्रणावसरे युष्माकं गुप्तभाषणमेकरूपमेवास्तु, कदाचिद्वैमत्ये सत्यपि वैमत्यं परित्यज्यैकरूपतामानयत, युष्माकं चिन्तनमपि समानमस्तु, विचार्य निर्णीतोऽर्थ एकविध एवास्तु । वेदपूरुषस्स्वयं वदति—अहञ्च युष्मान् ऐकविध्याय मन्त्रेण संस्करोमि युष्मद्द्रव्येणैव देवांस्तर्पयामि । युष्माकमध्यवसायः हृदयानि अन्तःकरणम् शोभनं साहित्यमवाप्य फलप्रदानि भवन्तु इति ।

प्राञ्चस्सुमतयो मन्त्रमिममनुसन्दधानास्सर्व एव परम्परागतं चारित्रं संरक्षितवन्तः । तदिदं मानवी स्मृतिरवबोधयति—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

इति । न हि मन्वादयः स्मृतिकारा वितथार्थवाचो भवितुमर्हन्ति ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यश्च वेदः, अविच्छिन्नगुरुशिष्यपारम्पर्येण समागतस्तस्येदानीं तादृशपारम्पर्यलोपेन महान् विच्छेदोऽनुभूयते। पुरा या विद्या मानवानामधिकारिणां कण्ठगताऽवर्तत सेदानीं ग्रन्थारूढैव विलोक्यते। तत्र ऋग्वेदस्य मन्त्रब्राह्मणात्मकस्य शाकल-बाष्कलभेदेन शाखाद्वयमवशिष्टम्। तत्र शाकलशाखाध्यायिनो देशे कतिचन लभ्यन्ते। तेऽपि विरला एव। तत्र संहिताभागस्सायणभाष्योपेतो मुद्रित उपलभ्यते। ब्राह्मणेष्वैतरेयब्राह्मणं मुद्रितमवाप्यते। किन्तु कौषीतकयपरपर्यायं शाङ्खायनब्राह्मणं मुद्रितमप्यनुपलब्धिदोषदूषितमासीत्। **तदस्य प्रकाशनं डा० गङ्गासागररायमहाभागेन स्वीयहिन्दीभाषानुवादसहितं कृतमिति स महाभागो धन्यवादैः प्रपूर्यते।** यथा हि शब्दार्थौ एकमपरं वियुज्य न तिष्ठतस्तथैव संहिताब्राह्मणभागावपि। एको भागोऽपरस्य पूरकः। विना संहिताभागेन ब्राह्मणभागः, ब्राह्मणभागेन च विना संहिताभागो न पूर्णतामधिगच्छति। मन्त्राणामर्थविबोधमात्रेण न परिसमाप्तिः, यावदेषां विनियोगो न ज्ञायेत। विधानमात्रेण च न ब्राह्मणभागस्य कृतकृत्यता, यावत्कर्तव्यपदार्थाः स्मृतिपथं नायान्ति। प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः खलु भवन्ति मन्त्राः, प्रयोगप्रदर्शकानि ब्राह्मणानि। बीजाङ्कुरयोरिव संहिताब्राह्मणभागयोः पौर्वापर्यं निर्धारयितुं न शक्यते। आपाततो ब्राह्मणभागस्याध्ययनेन प्रतिभायात् यदयं संहिताभागस्य व्याख्यारूप इति। वस्तुतो विचार्यमाणे तदर्थमेतादृशः कश्चन समयो भारतवर्षे एष्टव्य स्यात्, यस्मिंश्च समये चिरन्तना भारतीयाः जातकर्मादिभिस्संस्कारैर्विहीनाः पठनपाठनपद्धतिरहिताः, चिन्तनाशक्तिविहीनाः, धर्माधर्मज्ञानविधुराः पशव इवावसन्निति। तादृशसमयनिर्धारणं न केवलं कठिनम्, अपि त्वनुचितम्। यदैव परमेष्ठी जगत्ससर्ज तदा लयं गतमेव जगत् सृष्टवान् स्यात्। सृष्टिरिति प्रलय इति च शब्दौ मिथस्सापेक्षौ परस्परं प्रपूरकौ च। एवं दृष्टिं निपात्य चिन्तनीयम्। तथासति संहिता ब्राह्मणभागयोस्सहावस्थानं सर्वदैवासीदिति सिद्धं भवेत्। ऐतिहासिकी दृष्टिरन्या भवति, शास्त्रानुसारिणी चापरा। शास्तीति शास्त्रं भवति। पालनायैव शासनं भवति, न तु समालोचनाय। आचार्यस्य यजमानस्य राज्ञो वा सेनापतेर्वा शासनानि परिपाल्यन्ते, न तु विचिकित्स्यन्ते समालोच्यन्ते वा। विध्यधीनं सर्वं जगत्। ब्राह्मणं विधिरूपम्। तदधीन एव संहिताभागः। कर्तव्यत्वेन विधिः यान् निर्दिशति तत्र संहिताभागस्य व्यापारः। उपकार्यो विध्यर्थः, उपकारश्च मन्त्रार्थः। उपकार्योपकारकयोः उपकार्यो बलीयान् भवतीति शास्त्रविदः। उपकारकेण विनोपकार्यस्य स्वरूपलाभो दुष्करः। स्वरूपलाभायोपजीव्यो भवत्युपकारकः उपजीव्योपजीवकयोरुपजीव्यस्य बलीयस्त्वम्, इति च न्यायविदः। अस्यामवस्थायां किं प्रबलं किञ्च दुर्बलम्, किं वा पूर्वम् किञ्च वाऽपरम् इति निश्चयः कथं क्रियताम्? अतस्संहिताब्राह्मणभागयोः पौर्वापर्यनिर्णये कालक्षेपो मुधैव प्रतिभाति।

अस्मिन् शाङ्खायनब्राह्मणे आधानाग्निहोत्रप्रभृतिसत्रपर्यन्ता यागा अनुक्रान्ताः। विनाऽऽधानसंस्कृताग्निभिः कस्यापि श्रौतयागस्यानुष्ठानासम्भवात् अग्निहोत्रेण सहाधानं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रथमं विहितम् । अनन्तरं दर्शपूर्णमासाग्रयणमाकम्प्रस्थायीय-दाक्षायणयज्ञानां चतुर्थाध्याय-पर्यन्तं स्वरूपं निरूपितम् । पञ्चमषष्ठयोरध्याययोः पर्वचतुष्टयोपेतचातुर्मास्यानां निरूपणम् । सप्तमाध्यायतः सोमयाग(ज्योतिष्टोम)निरूपणम् । तत्र दीक्षणीयेष्टिप्रायणीयेष्टि अतिथ्येष्टि-प्रभृतयः नवमाध्यायपर्यन्तं निरूपिताः । दशमाध्यायेऽग्नीषोमीयपशुयागो निरूपितः । एकादशाध्यायतः प्रातरनुवाकमारभ्य सवनत्रयोपेतस्य ज्योतिष्टोमस्य निरूपणं त्रयोदशाध्याय-पर्यन्तम् । चतुर्दशे पञ्चदशे च यावन्ति शस्त्राणि तावन्ति निर्दिष्टानि । षोडशाध्यायतः ग्रहाणां प्रचारोऽष्टादशाध्यायपर्यन्तं निरूपितः । एकोनविंशाध्यायतः समाप्तिपर्यन्तं द्वादशा-हस्य सत्रयागानाञ्च निरूपणम् ।

एतेषु क्रतुषु दर्शपूर्णमासौ, इष्टीनां प्रकृतिः, अग्नीषोमीयः पशुः पशुयागानां प्रकृतिः, द्वादशाहः, सत्रेषु गवामयनस्य प्रकृतिः, गवामयनं सत्रान्तराणां प्रकृतिरिति सामान्यतः प्रकृतिविकृतिभावः । शाङ्खायनब्राह्मणस्य याथातथ्येन स्वरूपं शाङ्खायनश्रौतसूत्राध्ययने-नैवावगन्तुं शक्यते । ब्राह्मणे केवलं पदार्था निर्दिष्टाः । तेषां प्रयोगः श्रौतसूत्रादेवावगन्तव्यः । शाङ्खायन श्रौतसूत्रं मुद्रितमपि नेदानीमुपलभ्यते । अचिरात्तस्यापि प्रकाशनं भविष्यतीति तर्कयामि । ऋक्छाखीयानां ब्राह्मणमिदमुपयुक्तं स्यादिति सम्भावयामि । हिन्दी भाषयाऽस्य ब्राह्मणस्यानुवादाय डाक्टर गङ्गासागररायमहोदयेन साहसमाचरितम्, किन्तु श्रौतसूत्राव-लम्बेनानुवाद आवश्यकः । तदानीमेव परिष्कृतरूपेण विषयावगतिस्स्यात् । तत्रापि चिरन्तनैः प्रणीतं भाष्यं यद्युपलभ्येत, तेन साकं प्रकाशनेन वैदिकसमाजस्य महानुपकारस्स्यात् । एतादृशोत्तमप्रकाशनकार्ये दत्तचित्तं डॉ० श्रीगङ्गासागररायमहोदयं प्रोत्साहयामि—यदे-तादृशं कार्यमाचरन् वैदिकसाहित्यकलेवरं वर्द्धयत्विति ।

सं० २०४४ चैत्रशुद्धपूर्णिमा
१३-४-१९८७

पट्टाभिरामशास्त्री
(पद्मभूषण आचार्य)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ब्राह्मणसाहित्यस्य महिमा

ब्राह्मणग्रन्थेषु श्रौतयागानां नितान्तं मार्मिकं विशदं च वर्णनं विलोक्य केषां वेदतत्त्व-जिज्ञासूनां विदुषाममन्देनाऽऽनन्देन मानसं परिप्लावितं न भवति। भारतीयधर्मस्येतिहासे श्रौतविधानानां विचित्रो युग एव समभूत् यं पूर्णसौन्दर्येण सौष्ठवेन साकमुपस्थापयितुं वर्तमाने काले ब्राह्मणग्रन्थानामेव कोऽपि महनीयो महिमा साक्षात्क्रियते। श्रौतयागस्य विस्तरेण अनुष्ठानप्रक्रियां विशदयन्तीमानि ब्राह्मणानि।

निरुक्तम्—वैदिकशब्दानां निर्वचनप्रकारमपि साधयन्ति इमे ग्रन्थाः—संहिता-मन्त्रेष्वपि समुपलभ्यन्ते निर्वचनानि। दधिशब्दस्य उदकशब्दस्य च व्याख्या संहिता-मन्त्रेष्वेवोपलभ्यते तद् यथा—"तद् दध्नो दधित्वम्" (तैत्तिरीय सं० २।५।३।३) 'उदा-निषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते" (अथर्व सं० ३।१३।१) निर्वचनप्रकारो ब्राह्मणग्रन्थेषु बहुशः समुपलभ्यते। विशेषेण शतपथब्राह्मणं ताण्ड्यब्राह्मणं तु महत्त्वपूर्णानां निरुक्तीनां भाण्डागाररूपेण स्वमहिमानं प्रतिपादयतः। सामनाम्नां निर्वचनमत्यन्तमहत्त्वपूर्णं स्वरूपं धारयति विशेषतः ताण्ड्यब्राह्मणे। तद् यथा—अर्कपुष्पम्, अदारसृतञ्च साम्नो नामनी। तन्निर्वचनप्रकारसामवेदीयताण्ड्यब्राह्मणे इत्थं निर्दिश्यते—

अर्कपुष्पम्—देवाः अन्नं अर्कशब्देन, रसं च पुष्पशब्देन व्यवहरन्ति। अतएव अर्कपुष्पनाम्नः साम्नां नामकरणं सार्थकं सम्भाव्यते। अनेन साम्ना वयम् अन्नस्य रसं प्राप्नुयामेति तदर्थः।

अदारसृतम्—दारशब्दः दरशब्दात् सृतमिति सृधातोः निष्पन्नः। 'अनेन दारे (दरे श्वभ्रे—सायणः) नासृम्मेति तददारसृतोऽदारसृत्त्वम् (ताण्ड्यब्राह्मणे १५।३।७) अनेन साम्ना वयं गर्ते न पतेमेति हेतुना साम्नो निरुक्तिः प्रतिपादिता ब्राह्मणग्रन्थे।

आङ्गिरसः—प्राण एव आङ्गिरसशब्देनाभिधीयते यतः अयं समेषामङ्गानां रसः अर्थात् सारभूतः पदार्थो वर्तते (एतमु एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः छा०उ०१।२।१०)

यज्ञः—विचित्रैव निरुक्तिरस्य शब्दस्य समुपलभ्यते छान्दोग्योपनिषदि। सामान्यतः यज्धातोः नङ्प्रत्यययोगेन निष्पाद्यतेऽयं शब्दः। परन्तु छान्दोग्ये या गतौ धातोः सकाशात् सम्पन्नोऽयं शब्दः यतो यज्ञः गच्छन् इदं सर्वं पुनातीति हेतोः (यदेष यत् इदं सर्वं पुनाति—तत्रैव १।२।१२)

स्वपिति—क्रियापदे क्रियाया अनुसन्धानं विलोक्यताम्। स्वपितिरूपस्वप्धातोः लट्लकारे एकवचने सिध्यति परन्तु छान्दोग्योपनिषदि धातोरंशत्रयं स्वीकृत्य निर्वचनं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विहितमित्यहो धातोरपि मूलस्यान्वेषणा। स्वपिति = स्वम्, अपि, इतः (गत्यर्थकात् इण्धातोः क्त प्रत्ययः) अर्थात् यदा पुरुषः स्वं स्वकीयं स्वरूपम् इतः प्राप्तो भवति, तदा स स्वपितीति व्यवह्रियते (छा० उप० ६।८।१)।

वाजपेयः—'वज्' धातोः घञ् योगेन निष्पन्नो वाजः पङ्कम् इत्यर्थः 'आप्' प्रापणे व्याप्तौ चेति धातोः पेयशब्दः सम्पन्नः पङ्खेन यो यागः स्वर्गं लोकं प्राप्नोति स वाजपेय इति कथ्यते (ताण्ड्य ब्रा० १८।७।१) निरुक्तेः वैचित्र्यमिदं मन्तव्यम्।

एतासां निरुक्तीनामनुशीलनं ध्रुवं द्योतयते यत् साम्नो भिन्नानां लौकिकशब्दानामपि विषये ब्राह्मणग्रन्थेषु निर्दिष्टानि निर्वचनानि काममपि विचित्रतां विशिष्टतां च धारयन्ति। अत एव तत्परीक्षणं भाषाशास्त्रीयदृष्ट्याऽतीव श्लाघ्यकरं नूतनतथ्याविष्करणकारकमिति हेतोः ब्राह्मणग्रन्थानां शब्दार्थानुसन्धानविषये जागर्ति विस्मयकरः कोऽपि गरिमेति दिक्।

आख्यानम्—विधेरर्थवादस्य च औचित्यप्रतिपादनाय ब्राह्मणग्रन्थेषु नाना मनोहारिण्य आख्यायिकाश्चापि समुपलभ्यन्ते येन तद्युगीनविचित्रप्रथायाः सामाजिकव्यवस्थायाश्च स्थितिं निरीक्ष्य नितान्तं प्रमोदन्ते साहित्यरसिकाः। आख्यानस्य द्वैविध्यं वरीवर्तते—लघुरूपं दीर्घरूपं च। लघ्वाख्यानेषु प्रसिद्धानीमानि—देवान् परित्यज्य वाचो जले वनस्पतौ च प्रवेशः (ताण्ड्य ब्रा० ६।५।१०-१२); असुरेण स्वर्भानुना आदित्यस्याक्रमणं पश्चात् महर्षिणाऽत्रिणा तदन्धकारस्य विघटनम् (तत्रैव ६।६।८) अग्निमन्थनावसरेऽश्वस्य पुरः स्थापनकर्मणः प्राचीनेतिवृत्तम् (शतपथ ब्रा० १।६।४।१५)। दीर्घाख्यानेषु इमानि विद्योतन्तेतराम्—(१) पुरूरवसः उर्वश्याश्चाख्यानम् (शत० ११।५।१); (२) प्राचीनजलौघस्येतिहासः (शत० १।८।१); (३) शुनःशेपस्याख्यानम् (ऐत० ब्रा० ७।२)। सृष्टिविषयकानि बहूनि रमणीयानि आख्यानानि विद्यन्ते ब्राह्मणग्रन्थेषु। पुरुषात् चतुर्वर्णानां सृष्टिरिति तु पुरुषसूक्तमभिधत्ते, परन्तु अनेकत्र वैचित्र्याधानं ब्राह्मणेषु समर्प्यते। ताण्ड्यब्राह्मणे (६।१) निर्दिष्टं विद्यते यत् पद्भ्यां शूद्रस्योत्पत्तिरभूत् न तु कस्यापि देवस्य। अतएव वर्णत्रयस्य पादावनेजनमेव तद्धर्मो निर्दिष्टः न वा कस्यापि देवस्य पूजनम् —"तस्मात् शूद्र उत बहुपशुरयज्ञियो विदेवो हि। नहि तं काचन देवताऽनुसृज्यत। तस्मात् पादावनेज्यं नातिवर्तते। पत्तो हि सृष्टः"—(ताण्ड्यब्राह्मणम् ६।१।११)।

निष्कर्षः—(१) यागानुष्ठानप्रकाशकान्येव ब्राह्मणानि। कया रीत्या श्रौतयागानां सम्यगनुष्ठानं साधयितुं पार्यते, कया शैल्या यज्ञीयवेदीनामिष्टकैर्विरचनं सम्भाव्यते (अग्निचयनम्), का च व्यवस्था यागेषु, कश्च क्रमः अनुष्ठानविधिषु निर्धार्यते—इति सर्वाणि तथ्यानि ब्राह्मणमूलकान्येव। अत एव नानावेदशाखासम्बद्धानि श्रौतसूत्राणि गृह्यसूत्राणि च स्वाभीष्टां विस्तृतिं कालान्तरे वितेनुः। (२) ब्राह्मणग्रन्थेषु स्पष्टतो निर्दिष्टानि ईषत् संकेतितानि वा निर्वचनानि आधारीकृत्यैव निघण्टु-निरुक्ति-ग्रन्थेषु निरुक्तिप्रक्रियायाः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वैज्ञानिकं स्वरूपं निपुणमवधार्यते तज्ज्ञैः । अत एव ब्राह्मणमेव यास्कादिमहर्षिभिर्विरचितानां निरुक्तग्रन्थानां मौलिकमाधारं निश्चिनुते । (३) ब्राह्मणेषु मूलरूपेण विराजन्ते ता रमणीया आख्यायिकाः यासां प्रभूतो विकासोऽवान्तरकालीनपुराणेषु विशेषतो लोचनगोचरीक्रियते । महाकविकालिदासेन विरचिते 'विक्रमोर्वशीरूपके शतपथब्राह्मणे निर्दिष्टस्याख्यानस्यैव कापि कमनीया प्रसृतिः सहृदयैरवाप्यते । (४) केषांचिद् भारतीयदर्शनानाम्, विशेषतः कर्ममीमांसायाः ज्ञानमीमांसायाश्च मूलावधारणे प्राचीनसिद्धान्तानां विवेचने च ब्राह्मणान्येव जिज्ञासूनां महान्तमुपकारं विदधते इति निःसंशयं वक्तुं पारयन्ति विपश्चितः । (५) वैदिकधर्मस्य समाजस्य प्राक्तनस्वरूपविमर्शो ब्राह्मणग्रन्थ एव सुतरां जागर्ति । तत्पोषकाणि कानिचित् मार्मिकवाक्यान्यत्र संक्षेपेण निवेद्यन्ते—

(क) ये ब्राह्मणा शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः विद्वांसो हि देवाः ।
(शत० ब्रा० ३।७।३।१०)

(ख) यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एषां वीर्यतमः । (तदेव, ४।६।६।५)

(ग) तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यं करोति । मुखतो हि सृष्टः ।
(ताण्ड्यब्रा० ६।१।६)

(घ) तद् यत्र ब्राह्मणः क्षत्रं वशमेति, तद् राष्ट्रं समृद्धं तद् वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते । (ऐ० ब्रा० ८।९)

(ङ) शिरो वा एतद् यज्ञस्य यद् आतिथ्यम् । (तदेव १।२५)

(च) अथा अर्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नी । (तैत्ति० ब्रा० ३।३।३।५)

शाङ्खायनब्राह्मणस्य वैशिष्ट्यम्

विषयदृष्ट्या ब्राह्मणमिदम् ऐतरेयब्राह्मणमनुकरोति एकस्यैव संहिताभागस्य ऋग्वेदाख्यस्यअङ्गत्वधारणात् । अस्यब्राह्मणस्य ३० अध्यायाः स्वरूपतः ऐतरेयब्राह्मणस्यादौ विद्यमानान् त्रिंशत् अध्यायानुगच्छन्तीति नात्र चित्रम् । तथापि ऐतरेयब्राह्मणतो वैभिन्यं धारयमाणानि तथ्यान्यनेकानि विद्वज्जनानां स्वान्तमाकर्षयन्ति । तान्यत्र क्रमशो निर्दिश्यन्ते—

(क) उदीच्यव्यक्तीनां संस्कृतज्ञानमतीव प्रशंसनीयमाख्यातीदं ब्राह्मणम् । तस्मिन् काले संस्कृतभाषायाः सम्यगध्ययनार्थं प्राच्याः पुरुषा उदीच्यप्रान्तमगच्छन् । भाषायाः शिक्षणानन्तरं समागताः पुरुषाः अतीवादारेण सत्कारेण संयुक्ता मन्यन्ते स्म स्वप्रान्तीयैः विद्वज्जनैः—

उदञ्च एव यन्ति वाचं शिक्षितुम् । यो वै तत आगच्छति तं शुश्रूषन्ते—शाङ्खायनब्राह्मणम् ८।६ ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भाषाशास्त्रस्य दृष्टिमनुसृत्य तथ्यमिदं नितान्तं माहात्म्यं गौरवञ्च आधत्ते । व्याकरणशास्त्रप्रणेता महर्षिः पाणिनिः उदीच्य एवासीत् । 'शालातुरीयो' महर्षिः पाणिनिः पेशावरनगरस्य समीपे 'शालातुर'नाम्नि ग्रामे लब्धजन्मा भारतवर्षे उदीच्यभूखण्डस्य सर्वात्मना पूर्णां परिचितिमधारयत् । 'शालातुर' नामकः पाणिनेर्जन्मग्रामः साम्प्रतं 'लहूर' इत्यभिधानेन ख्यातो वर्तते । तत्र प्राप्ता बुद्धमूर्तिरधुना पेशावरसंग्रहालये विद्यते । काबुलः-सिन्धुनद्योः संगमस्थले स्थितोऽयं ग्रामः 'ओहिन्द'नगरात् वायव्यकोणे 'अटकस्थ', सेतोः १२ मीलेषु दूरं दक्षिणतीरेऽस्ति ।

उदीच्यत्वादेव पाणिनिः संस्कृतभाषायाः नितान्तं विशदं पूर्णं च व्याकरणं निर्मातुं प्राभवत् । संस्कृतभाषायाः उदीच्यैः प्राच्यैश्च पुरुषैः प्रयुज्यमानानां शब्दानां पार्थक्यं विविच्य स्वसूक्ष्मेक्षिकां साधु परिचिनोति महर्षिः पाणिनिः । येषु शब्देषु पार्थक्यमधारयन् उभयविधाः विद्वांसः, तान् पाणिनिः साधु विविनक्ति । एकमेवोदाहरणं पर्याप्तं भविष्यति—

(क) व्यतीहारे गम्ये अपमित्य याचते' इति प्रयुज्यते उदीच्यपुरुषैः (उदीचां माङो व्यतीहारे ३।४।१९ सूत्रानुसारेण)।

(ख) 'याचित्वाऽपमयते' इति प्रयुज्यते प्राच्यैः ('अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' ३।४।१८ इति सूत्रानुसारम्) ।

उदीच्यत्वादेव व्याकरणरचनायां पाटवं दधानस्य महर्षेः पाणिनेः भूयसी प्रशंसा समुपलभ्यते व्याकरणनये । तद् यथा—

शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः (महाभाष्ये २।३।६६)
आ कुमारं यशः पाणिनेः (तत्रैव १।४।९)
पाणिनिशब्दो लोके प्रकाशते (काशिका २।१।६)
महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य (तत्रैव ४।२।७४)

इति सर्वस्य व्याकरणशास्त्रीयज्ञानस्य प्रमाणीकरणे हेतूपन्यासे च कौषीतकीब्राह्मणेन कृतं तथ्योद्घाटनं सम्यग्रूपतामादधानं विद्योततेतराम् ।

(२) अस्मिन् ब्राह्मणे रुद्रस्य महिमा विशेषेण प्रस्तूयते । स सर्वेषु देवेषु श्रेष्ठत्वं ज्येष्ठत्वं चाधत्ते इति प्रतिपादयति । ब्राह्मणमेतत् । यथा—

रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् । (कौषी० २५।१३)

षष्ठेऽध्याये शिवस्य अष्टनामानि प्रतिपाद्यन्ते । तानि यथा—शिवः, भवः, पशुपतिः, उग्रः, महादेवः, रुद्रः, ईशानः, अशनिश्च । एतेषां नाम्नामुत्पत्तिरपि विचित्रतया बोध्यते । एतेषां देवानां विलक्षणं व्रतादिकमपि साधु निरूप्यतेऽस्मिन् अध्याये ।

(३) सप्तमेऽध्याये अग्निः निम्नकोटिको देवः, विष्णुश्च उच्चकोटिको देवो वर्ण्यते—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अग्निरवरार्घ्यः विष्णुः परार्घ्यः ।

तस्मिन् युगे एषा भावना सार्वत्रिकी बभूव धार्मिकसम्प्रदाये । अतएव अस्याः पुष्टि-रैतरेयब्राह्मणेन अक्रियत् । तस्मिन् युगे यज्ञो विष्णुरूपतामधारयत्—

"यज्ञो वै विष्णुः"—(ऐत० ब्रा०)

(४) यज्ञे हिंसितानां पशूनां विषये तथ्यमिदं समुदीर्यते यद् ऊर्ध्वलोकं गताः इमे यज्ञ-पशवः स्वहिंसकान् पुरुषान् खादन्ति स्म ।

अमुष्मिन् लोके पशवो मनुष्यान् अश्नन्ति । (११।१३) अनेन वाक्येन स्पष्टं प्रतीयते यत् लोकानां मध्ये पशुयागं मांसभक्षणं च प्रति कापि विरक्तिः संजाता । घृणायाः भावना प्रादुर्बभूव येन ते मांसभक्षणात् नियतं विरक्ता अभूवन् ।

(५) २३।२ अध्याये शक्वरी छन्दसां कापि ऐतिहासिकी निरुक्तिः समुपलभ्यते । एभिः छन्दोभिः इन्द्रः वृत्रं हन्तुमशक्नोत्। अतएव शक्वरीणां शक्वरीत्वमिति ।

इन्द्रो वृत्रमशकद् हन्तुमाभिः, तस्मात् शक्वर्यः ।

महानाम्नीसामनि शक्वरीणामृचां प्राधान्यं वर्तते तथा चैता मुख्यरूपेण इन्द्रं प्रति प्रयुक्ताः सन्ति । अतएव ऐतिहासिकमहत्त्वमण्डितेयं शक्वरीशब्दनिरुक्तिरिति कथयितुं साधु पार्यते ।

(६) तस्मिन् काले गोत्रस्य प्रचलने प्रभावे च कापि दृढताऽवलोक्यते तज्ज्ञैः। ब्राह्मणस्य वाक्यमिदं द्योतयते यद् ब्राह्मणः, क्षत्रियः वैश्यश्च स्वगोत्रैः साकं निवसेयुः नान्य-गोत्रीयैः साकम् । समानगोत्रे निवासाद् अन्नाद्यस्य प्राप्तिः साधु भवतीति हेतोः । वाक्यं चेदम्—

ब्राह्मणे समानगोत्रे वसेत्, यत् समाने गोत्रेऽन्नाद्यं तस्योपाप्त्यै—

(शांखायनब्रा० २५।१५)

सामान्यब्राह्मणस्य कौषीतकि-ब्राह्मणस्यापि स्पष्टमेव महिमानं विलोक्य दीर्घगामि महत्त्वं चावधार्य नूनमेषाम् अध्ययनाध्यापनयोः वेदतत्त्वजिज्ञासवो विद्वांसः प्रवर्तन्तामितिधियैव डा० गङ्गासागररायमहोदयेन प्रभूतं परिश्रमं स्वीकृत्य वैदिकग्रन्थस्यास्य शोभनं राष्ट्र-भाषानुवादमकार्षीत् इति हेतोः स्वप्राक्तनान्तेवासिने तस्मै आशीर्वादसन्ततिं वितीर्य तत्कल्याणमभिशंसानोऽयं जनः विस्ताराद् विरमति ।

ॐ महन्मे वोचो भर्गो मे वोचो यशो मे वोचः स्तोमं मे वोचो भुक्तिं मे वोचः सर्वं मे वोचस्तन्मावतु तन्माविशतु तेन भुक्षिषीय ॥

—(ताड्यब्राह्मणम् १।१।१)

वैशाख कृ० ११, सं० २०४४
२४–४–८७ वाराणस्याम्

बलदेव उपाध्यायः
(पद्मभूषण—आचार्यः)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

निवेदन

शाङ्खायन ब्राह्मण का, मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद, भूमिका तथा परिशिष्टादि से संवलित यह संस्करण वेद एवं भारती विद्या के व्यासङ्गकर्ताओं के सम्मुख उपस्थित करते हुये मैं प्रसन्नता और संतोष का अनुभव कर रहा हूँ। आज से २८ वर्ष पूर्व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा पालि विभागाध्यक्ष कीर्तिशेष डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' तथा 'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गति तात गच्छति' कह कर हठात् मुझे वेद पढ़ने का आदेश दिया था। साहित्य के प्रति अपनी नैसर्गिक रुचि होने पर भी उनकी गौरवमयी प्रेरणा और आदेश से मैं वेदाध्ययन में प्रवृत्त हुआ था। वही बीज 'भूमिकालगुणान् प्राप्य' आज इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अंकुरित हुआ। वैदिक वाङ्मय भारतीय साहित्य की आधारशिला है। इस मौलिक साहित्य का अत्यन्त अल्प भाग ही राष्ट्रभाषा में अनूदित हुआ है। इस राष्ट्रीय रिक्थ का प्रचार और अनुवाद राष्ट्रीय कर्त्तव्य एवं राष्ट्र की सेवा है। जब तक यह मौलिक वाङ्मय हिन्दी में उपलब्ध नहीं हो पाता तब तक कितना भी बाह्य साहित्य क्यों न सुगम हो राष्ट्रभाषा समृद्ध नहीं हो सकती।

वेद भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य के मेरुदण्ड हैं और इन्हीं के आधार पर भारतीय साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन और समाज की अस्मिता आधृत है। भारतीय मनीषा के लिये प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, लौकिक-पारलौकिक सभी कृत्यों के लिये वेद ही मार्ग-प्रदर्शक रहे हैं। इस विषय में सायण का यह कथन प्रमाणभूत है कि प्रत्यक्ष या अनुमान से जिस उपाय का ज्ञान न हो सके उसे वेद के ही द्वारा ज्ञात किया जाता है। इसीलिये वेद की वेदता है:

प्रत्येक्षाणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

मनु ने यह स्पष्ट निर्दिष्ट किया है कि सभी के नाम-कर्म और व्यवस्था वेद-शब्दों से ही स्रष्टा ने प्रारम्भ की—

सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ मनुस्मृति १।२१

चातुर्वर्ण्य त्रैलोक्य, चारों आश्रम, भूत, भव्य और भविष्य सभी की प्रसिद्धि वेद से ही स्वीकार की गई है:

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

याज्ञवल्क्य स्मृति में (१।४०) वेद ही द्विजातियों का परं मङ्गलकारी बताया गया है—**वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयस्करः परः** ॥

संहिता और ब्राह्मण दोनों का सम्मिलित अभिधान ही वेद से किया गया हैं—**संहिताब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**' आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मण के ही अन्त्य भाग है। वेदों में ऋग्वेद का अभ्यर्हिततत्व-पूजनीयता-पाश्चात्य और पौरस्त्य उभयविध स्वीकृत है। भाषा, भाव, तिथि सभी दृष्टियों से ऋग्वेद का क्रम प्राथम्य प्राप्त है। तैत्तिरीय संहिता का वचन है (६।५।१०।३) **'यत् ऋचा तद् दृढम्'**। संप्रति, ऋग्वेद से संबद्ध दो ब्राह्मण उपलब्ध हैं—ऐतरेय ब्राह्मण और शाङ्खायन ब्राह्मण। शाङ्खायन का ही अपर अभिधान कौषितकि ब्राह्मण हैं। ऋग्वेद से संबद्ध शाङ्खायन और कौषीतकि दो पृथक् शाखायें हैं। सामान्य नियमानुसार प्रत्येक शाखा की अपनी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और सूत्र होने चाहिये। लाट्यायन श्रौतसूत्र (१.१.६) में अग्निस्वामी ने स्पष्ट बताया है कि कौषीतकि के अनुयायी किसो गहन समस्या के समाधान की योग्यता नहीं रखते और लुशाकपि खार्गलि के शाप (पञ्चविंश ब्राह्मण १७.४.३ में निर्दिष्ट) का मोचन नहीं कर सके। निदान सूत्र (६.१२) में निर्दिष्ट वनञ्जय के मतानुसार कौषीतकि के अनुयायी अकुशल और व्याहत हैं। इस परिप्रेक्ष्य में कौषीतकि-साहित्य का प्रचार या लोप संभव है। शाङ्खायन या कौषीतकि ब्राह्मण के मुद्रित संस्करणों में कुछ खण्डों का न्यूनाधिक्य है। यह शाखाभेद जन्य या पाठान्तर जन्य हो सकता है। स्थिति यह है कि वर्तमान में एक ही ब्राह्मण ग्रन्थ दोनों नामों से अभिहित है।

शाङ्खायन ब्राह्मण एक पूर्ण और एकरूप ब्राह्मण है। ऐतरेय की तुलना में यह अधिक संश्लिष्ट और एककालिक रचना माना जाता है। इसके विपरीत ऐतरेय का रचनाकाल कई स्तरों में माना जाता है। इस ब्राह्मण में पैङ्ग्य और कौषीतकि के मतों को अनेकशः उद्धृत किया गया है और पैङ्ग्य की अपेक्षा कौषीतकि को प्रमाणरूप में स्वीकृत किया गया है। संभव है कि पैङ्ग्य और कौषीतकि परस्पर संबद्ध दो ब्राह्मण ग्रन्थ रहे हों जिनको शाङ्खायन उद्धृत किया हो और अपनी वरीयता कौषीतकि को दी हो। इस ब्राह्मण की एकरूपता, संक्षिप्ति और पूर्णता का ज्ञान तो इसी से लग जाता है कि यह विषय-विस्तार को कम करने के लिये पहले वर्णित विषयों को **'तस्योक्तं ब्राह्मणम्'** कह कर समाप्त कर देता है। इस ब्राह्मण के छठें अध्याय के १ से ९ खण्डों को डा० वेबर ने 'महान् रुद्र' का उल्लेख होने से परवर्ती काल का बताया था परन्तु स्थिति ऐसी नहीं है क्यों कि इस ब्राह्मण के काल में रुद्र का प्राधान्य सुतरां स्थापित हो चुका था।

ब्राह्मणों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है विधि—यज्ञ का विधान किस समय, किन साधनों से, किसके द्वारा और कैसे किया जाय। यज्ञ में आभासमान विरोधों का परिहार भी ब्राह्मणों का विषय है। शबरस्वामी ने ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य विषयों का वर्णन इस प्रकार किया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना ॥—शाबर भाष्य २।१।१३

वस्तुतः वेद का उपयोग क्रियापरक ही माना जाता है—**आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद् ।** ब्राह्मण ग्रन्थ ही विधि-प्रख्यापक हैं अतः इनका महत्त्व सुतरां सिद्ध है । विधि ही ब्राह्मणों का प्रतिपाद्य विषय है और अन्य विषय उसके पोषक हैं । ब्राह्मणों में विधि का सयुक्तिक प्रतिपादन हुआ है और उन्हें तर्क के सुपुष्ट आधार पर रखा गया है । इनमें यागोपयोगी विषयों की प्रशंसा और तद्विरुद्ध बातों की निन्दा है । यही प्रशंसा-निन्दा अर्थवाद कहा जाता है । परक्रिया और पुराकल्प आख्यान के अन्तर्गत समाविष्ट हैं । विशिष्ट शब्दों का व्याख्यान निरुक्ति या निर्वचन होता हैं । वस्तुतः वैदिक कर्म-काण्ड, यज्ञ-यागादि के परिचायक ग्रन्थ जो उन्हें तर्कसम्मत रूप से उपस्थित करते हैं ये ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं ।

शाङ्खायन ब्राह्मण के प्रस्तुत संस्करण मे मूल के साथ हिन्दी अनुवाद, भूमिका (जिसमें शाङ्खायन शाखा तथा उसके साहित्य का संक्षिप्त परिचय एवं इस ब्राह्मण का विषय एवं काल-विवेचन है); नाम, छन्द, विषयादि की अनुक्रमणी एवं प्रतीक मन्त्रों की अनुक्रमणी है । अनुवाद में भी प्रतीक मन्त्रों का अर्थ एवं आकर दे दिया गया है । नामादि की शब्दानुक्रमणी अपूर्ण होते हुए भी अध्ययन में सहायक होगी ऐसा विश्वास है । मूल पाठ आनन्दाश्रम का ही स्वीकृत किया गया है क्योंकि उसके प्रचार और सौलभ्य से वैदिक वाङ्मय के अध्येता उससे परिचित हैं । पदों और वाक्यों के पृथक् न होने से उसके पढ़ने और अनुगम करने में पर्याप्त असुविधा है जिसे अगले संस्करण में दूर करने की आकांक्षा है । आनन्दाश्रम की मुद्रण जन्य अशुद्धियों को हटाने का प्रयास किया गया है । पर कुछ नयी अशुद्धियों की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता । अनुवाद कार्य में मैंने डॉ० कीथ के प्रसिद्ध अनुवाद से सहायता ली है एतदर्थ उनकी उत्तमर्णता ख्यापित करता हूँ ।

वेद तथा भारतीय विद्या के विश्वविश्रुत विद्वान् डा० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने पुरोवाक् लिखकर इस संस्करण के गौरव का वर्धन किया है । विगत अर्धशताब्दी से अधिक काल तक उन्होंने वेद और प्राच्य विद्या के अध्ययन में अपने जीवन को समर्पित किया है तथा देश और विदेश में भारती विद्या के अध्येताओं का नेतृत्व और मार्गदर्शन किया है । भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन और विश्व प्राच्य विद्या सम्मेलन उनके मार्ग-दर्शन में कार्य कर रहे हैं । वस्तुतः सम्प्रति विश्व में वे प्राच्य विद्या के सर्वाधिक समादृत और मान्य विद्वान् हैं । उन्होंने अपने संक्षिप्त पुरोवाक् में शाङ्खायन ब्राह्मण के विषय में विगत एक शताब्दी में हुये कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर दिया है जो आगे के अध्येताओं के लिये इस विषय में प्रकाशस्तम्भ का कार्य करेगा । पद्मभूषण पण्डित पट्टाभिराम शास्त्री ने प्रास्ताविकम् लिखकर वेद और ब्राह्मणों के गहन तत्त्वों का विवेचन किया है । वेद और मीमांसा शास्त्र के वे इस समय अप्रतिम विद्वान् हैं । पद्मभूषण आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय हमारे गुरु हैं और इन विषयों का उन्होने हमें कक्षा में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विधिवत् अध्यापन किया है। यह हमारी न्यूनता है कि मैंने उनके प्रकृष्ट पाण्डित्य का ग्रहण अपनी अल्पमति के अनुसार ही किया है। उनका आशिर्वचन सदैव सुलभ रहा है।

ये तीनों संमर्शी विद्वान् ब्राह्मण आयु की नवमी अवस्था में हैं (उपाध्याय जी तो दशमी के द्वार पर हैं) तथा विद्या एवं सदाचार से सम्पन्न हैं। तैत्तरीय श्रुति (तै० उ० १।११।३-४) में वृत्तविचिकित्सा और कर्म विचिकित्सा में ऐसे ब्राह्मणों को उपास्य और आदर्श बताया गया है। इनकी आशीः को मैं जीवन की परम उपलब्धि मानता हूँ। भगवान् से प्रार्थना है कि वे शतायु होकर सारस्वत साधना में नयी पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहें। शतपथ ब्राह्मण (३।७।३।१०) में ऐसे ब्राह्मण ही देवता बताये गये हैं—

ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः। विद्वांसो हि देवाः।

रत्ना पब्लिकेशन्स के स्वामी श्री विनयशंकर पण्ड्या तथा उनके दोनों चिरंजीवि श्री विपिन शंकर पण्ड्या तथा श्री विपुल शंकर पण्ड्या इसके प्रकाशन में न केवल प्रेरणादायक ही रहे अपितु उन्होंने हठात् इसे कराया है। वे स्वतः शाङ्खायन शाखा के अनुयायी हैं और पूर्वजों के पुण्य से उनमें संस्कार जीवित हैं। श्री विनय शंकर जी के पिता स्व० पं० आनन्द शंकर पण्ड्या की सदैव यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनके प्रेस में शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रकाशन हों। उन्हीं की इच्छा इसके प्रकाशन में फलवती हुई है। हमारे विभागीय सहयोगी पं० कृपासिन्धु शर्मा ने न केवल प्रूफ देखने में ही सहायता की है अपितु परिशिष्टों के निर्माण में भी श्रम किया है। वस्तुतः हमारे प्रकाशन कार्यों में वे ही कर्णधार बनकर कार्य पूरा करते हैं। उनके इस निर्हेतुक सहयोग के लिये मैं आभारी हूँ।

आदरणीय प्रो० नन्दलाल सिंह तथा मेरे मित्र प्रो० देवेन्द्र कुमार राय तथा प्रो० सूर्यनारायण ठाकुर मेरे हिताहित के प्रति सचेष्ट रहते हैं तथा शान्ति और विश्रम के आस्पद हैं। वैज्ञानिक तीक्ष्ण मेधा तथा सूक्ष्येक्षिका से युक्त होने पर भी मानवीय और नैतिक मूल्यों में ये आस्थावान् हैं। उनके प्रति कृतज्ञता ख्यापित करना औपचारिकता ही होगी। ऐसे अवसरों पर मैं अपने मित्र श्री पारसनाथ राय का स्मरण करता हूँ।

अन्त में मैं अपने पूर्वजों और गुरुजनों के प्रति पुनः प्रणति निवेदन करता हूँ जिसके आशीर्वाद से यह कार्य यथामति पूर्ण हुआ। प्रमाद या अज्ञानवश जो त्रुटि हुई हो उसके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमो वाकं प्रशास्महे।

काशी
वैशाखी पूर्णिमा २०४४
१३-५-८७

गङ्गासागर राय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भूमिका

शाङ्खायन शाखा ऋग्वेद की प्रमुख उपलब्ध शाखाओं में से एक है। चरणव्यूह में ऋग्वेद की प्रधान पाँच शाखाओं में एक इसे परिगणित किया गया है। ऋग्वेद की शाखाओं के विवरण में अन्यत्र भी प्रायेण इस शाखा का उल्लेख प्राप्त होता है। पुराणों में इस शाखा का उल्लेख प्रायः नहीं है पर अग्निपुराण में इसका नाम से उल्लेख मिलता है :

भेदः शाङ्खायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः।
शतानि दश मन्त्राणां ब्राह्मणा द्विसहस्रकम्॥
—अग्निपुराण, २७१.२

चरणव्यूह में ऋग्वेद की शाखाओं के विवरण में शाङ्खायन सहित पाँच शाखाओं के उल्लेख हैं—

एतेषां शाखाः पञ्चविधाः भवन्ति।७।
आश्वलायनी, शाङ्खायनी, शाकला, बाष्कला, माण्डूकयनाश्चेति।८।
—चरण० १.८ (पृ० १३)

गृह्यसूत्रों (कौषीतकि गृह्य० २.५.३; आश्व० गृह्य० ३.४.४) में इस आचार्य का उल्लेख है। पाणिनि ने अश्वादिगण (४.१.११०) 'अश्व-अश्मक-शङ्ख-शूद्रक' मे 'शङ्ख' का उल्लेख किया है। मत्स्यपुराण में शाङ्खायन ऋषि का उल्लेख प्राप्त है—

शाङ्खायनश्च ऋषयस्तथा वै वेदशेरकाः (मत्स्य० २००.११)

श्रीमद्भागवतपुराण में शाङ्खायन ऋषि का उल्लेख है और वे भागवत धर्म आचार्य के रूप में निर्दिष्ट हैं :

प्रोक्तं किलैतद् भगवत्तमेन
निवृत्तिधर्माभिरताय तेन।
सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः
शाङ्खायनायाङ्ग धृतव्रताय॥
साङ्ख्यायनः पारमहंसमुख्यो
विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः।
जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय
पराशरायाथ बृहस्पतेश्च॥—भागवत ३.८.७,८

शाङ्खायन गृह्यसूत्र के टीकाकार आनर्तीय के अनुसार शाङ्खायन का अपर नाम सुयज्ञ भी था (शां० गृह्य० ४.१०;६.१०)। कुछ लोगों ने शाङ्खायन को कौषीतकि का पुत्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहा है (द्र० प्राचीन चरितकोष, हिन्दी संस्करण, पृ० ९५७-५८)। कुछ विद्वानों के अनुसार ऐतरेय ब्राह्मण के कर्ता महिदास ऐतरेय शाङ्खायन से पूर्ववर्ती आचार्य हैं किन्तु ऐतरेयब्राह्मण का कर्तृत्व महीदास ऐतरेय (पञ्चिका १-६) के साथ ही साथ शाङ्खायन तथा आश्वलायन (पञ्चिका ७-८) का भी है।

शाङ्खायनशाखा का प्रचारदेश—शाङ्खायन शाखा का प्रचलन उत्तर गुर्जर देश में प्राप्त होता है। सर्वप्रथम इस बात का उल्लेख वेबर ने किया था और तदनन्तर ब्यूहलर ने उसकी पुष्टि की (द्र० सेक्रेड बुक्स आफ दि इस्ट, भाग २, पृ० ३१)। महार्णव में उद्धृत एक पद्य में इसका विवरण प्राप्त होता है :

उत्तरे गुर्जरे देशे बह्वृचः परिकीर्तितः।
कौषीतकिब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता॥

इस प्रसङ्ग में यह भी उल्लेख करना आवश्यक होगा कि शाङ्खायन शाखा का विपुल वाङ्मय उपलब्ध होने पर भी बहुत स्थानों पर इस शाखा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। परन्तु बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी इसे ऋग्वेद की प्रधान दो शाखाओं में मानते हैं :

वस्तुतस्तु शाकलशाङ्खायनभेदाद् द्वे एव शाखे····अपरा षोडशशाखाः शाङ्खायन-भेदा एव तासां जटाद्यष्टविधपाठनियामकोऽप्यस्ति माण्डूकेयप्रणीतो ग्रन्थः।

—त्रयीपरिचयः

सामान्यतः यह माना जाता है कि प्रत्येक शाखा में अपना संपूर्ण साहित्य—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और सूत्र (श्रौत, धर्म और गृह्य) होने चाहिये। किन्तु संहिता और ब्राह्मण के अभाव में सूत्रों से समन्वित भी शाखायें उपलब्ध होती हैं। जहाँ तक शाङ्खायन शाखा का प्रश्न है इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और सूत्र उपलब्ध हैं। सम्प्रति इसकी संहिता उपलब्ध नहीं है परन्तु यह प्रमाणित होता है कि इसकी अपनी भी संहिता रही होगी। इसके विषय में कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं :

(१) शाङ्खायन श्रौतसूत्र (१०.१२.१५) में निर्देश है कि या तो सूत्रकार ने कुछ भ्रम किया हो या इसकी अपनी पृथक् संहिता रही हो।[1]

(२) शाङ्खायन श्रौतसूत्र (१६.३.२७) में निर्दिष्ट आप्री मंत्र ऋग्वेद में नहीं हैं पर वे उसके अंग प्रतीत होते हैं। (१०.६.१०) में निर्दिष्ट महानाम्नी मंत्र ऐतरेय आरण्यक में भी है और इस शाखा से संबद्ध हैं। टीकाकार कहते हैं कि ये आरण्यक में पढे जाते हैं अतः इनके प्रतीक नहीं दिये गये हैं।[2]

---

१. द्र० डा० लोकेशचन्द्र, शां० श्रौ० सू०, अनुवाद, भूमिका पृ० १७।

२. तत्रैव।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(३) कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र संख्या २५ में शाङ्खायनों की संहिता और ब्राह्मण का उल्लेख है।

(४) शांखायन श्रौतसूत्र में १२ मंत्र प्रतीकों से उद्धृत हैं पर वे वर्तमान संहिता में नहीं हैं। इससे शांखायन संहिता के पृथक् अस्तित्व की प्रतीति होती है।[1]

(५) शांखायन आरण्यक में अनेकों मंत्र पूर्ण रूप से उद्धृत हैं जिससे प्रतीत होता है कि ये शांखायन संहिता के नहीं हैं। यदि वे शांखायन संहिता के होते तो पूर्ण रूप से उन्हें उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि अपनी संहिता के मन्त्रों को प्रत्येक अनुयायी को पूर्ण रूप से स्मरण ही करना होता है।

(६) चरणव्यूह की टीकाकार महीदास ने 'शाङ्खायनानां तु बालखिल्यसहित-पदसंख्योच्यते—

पदानि बालखिल्यस्य रुद्रसंख्या शतानि च।
षट्पञ्चाशदधिकानि वर्गाः सप्तदशास्तथा ॥ (पृ० १५)

निर्देश द्वारा शांखायनसंहिता का स्पष्ट निर्देश किया है।

इनसे यह स्पष्ट है कि शाङ्खायन संहिता भी कभी प्रचार-प्रसार में अवश्य रही जो कालक्रम से लुप्त हो गयी। तो इस शाङ्खायन संहिता का रूप क्या था? क्या शाङ्खायनों और आश्वलायनों की संहिता में कोई वास्तविक भेद था। चरणव्यूह की महीदास कृत व्याख्या के अनुसार आश्वलायन संहिता ११ बालखिल्य सूक्तों को जोड़कर बनी थी। शांखायन संहिता में बालखिल्य सूक्त (५.५८) नहीं था और इसके प्रथम दो मन्त्र खिल के रूप में १०.८८.१८ के बाद जोड़े गये थे। यह खिल ऋग्वेद की काश्मीर हस्तलिपि में प्राप्त होते हैं। चरणव्यूह भाष्य से यह भी प्रतीत होता है कि शांखायन शाखा में कुछ खिल ऐसे थे जो संहिता में पठित नहीं थे।[2] ओल्डेन वर्ग का मत था कि शांखायन शाखा संभवतः बाष्कल शाखा की ही अनुगामिनी थी।[3]

सम्प्रति एक ही ब्राह्मण है जिसका शांखायन और कौषीतकि दोनों नाम है। बहुत संभव है कि मूलतः इन दोनों में कुछ अधिक पार्थक्य रहा हो पर कौषीतकि और शांखायनों के सामीप्य और ब्राह्मण भाग में साम्य के कारण दोनों एक ही में अन्तर्भुक्त हो गये हैं और आगे चलकर नाम भी एक ही हो गया है। लिण्डनर ने अपने कौषीतकि ब्राह्मण की भूमिका में बताया है कि शांखायन ब्राह्मण में २७६ भाग हैं और कौषीतकि में २६० भाग या खण्ड हैं।[3] वस्तुतः इन अंशों को शाखाभेद-जन्य माना जा सकता है या यह भी संभावना है कि दोनों का मूल एक होने से कुछ आचार्यों द्वारा यह अंश जोड़ा-

१. हिल्लेब्राण्ट, शां० श्रौ० सू० पृ० ६२८।
२. ऋग्वेद भाग ४ (वैदिक संशोधन-मण्डल संस्करण) भाग ४ पृ० ९०४ (पादटिप्पणी)।
३. ओल्डेनवर्ग हीमेन, भाग १ पृ० ५१७।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

छोड़ा गया है। श्रीकृष्ण शर्मा के संस्करण से यह भी प्रतीत होता है कि एक भाग का अंश दूसरे भाग में सामाविष्ट हो जाने से भी यह न्यूनाधिक्य हो सकता है।[1]

शाङ्खायन शाखा का साहित्य—जैसा कि निर्देश किया गया है शांखायन शाखा में संप्रति संहिता उपलब्ध नहीं है और शाकल संहिता ही इसकी संहिता के रूप में पठित है। परन्तु उपलब्ध प्रमाणों से इस शाखा की अपनी संहिता के भी संकेत मिलते हैं। इस शाखा के ब्राह्मण, उपनिषद् और गृह्य तथा श्रौत सूत्र उपलब्ध हैं जिनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :

(१) **शाङ्खायन गृह्यसूत्र** —यह छः अध्याय में विभक्त है पर टीकाकार पाँचवें और छठें अध्याय को परिशिष्ट के रूप में मानते हैं। शांखायन गृह्यसूत्र के प्रसिद्ध टीकाकार नारायण ने पाँचवें अध्याय के प्रारम्भ में लिखा है :

अथ परिशिष्टाख्यः पञ्चमोऽध्यायः प्रारम्यते।

और अध्याय की समाप्ति पर लिखते हैं :

पञ्चमोऽध्यायः परिशिष्टरूपः समाप्तः।

वासुदेव कृत शांखायन गृह्यसंग्रह में शांखायन गृह्यसूत्र के पाँचवें और छठें अध्याय के विषयों का सन्निवेश नही है और चौथे अध्याय के विवरण पर ही यह समाप्त हो जाता है। शांखायन गृह्यसूत्र से साम्य रखनेवाला कौषीतकि गृह्यसूत्र पाँचवें और छठवें अध्याय के विवरणों से विहीन है। इसके अतिरिक्त प्रथम अध्याय के २६ वें खण्ड को भी प्रक्षिप्त माना जाता है। क्योंकि टीकाकार नारायण ने यहाँ लिखा है :

अग्नय इत्यादिकं क्षेपकमपि खण्डं देवताज्ञानाय व्याख्यायते।

शांखायन गृह्यसूत्र के कर्ता सुयज्ञ बताये गये हैं।

ओल्डेनवर्ग ने शांखायन गृह्यसूत्र, आश्वलायन गृह्यसूत्र और साम्बव्य गृह्यसूत्र में निर्दिष्ट तर्पण में परिगणित आचार्यों में सुयज्ञ का नाम दर्शाया था। शांखायन गृह्यसूत्र (१.१.१०) पर नारायण द्वारा उद्धृत एक कारिका का भी उल्लेख किया। इस आधार पर यह गृह्यसूत्र शांखायन गृह्यसूत्र के नाम से प्रचलित हुआ। नारायण की शां० गृह्यसूत्र की टीका में उद्धृत वह कारिका इस प्रकार है :

अत्रारणिप्रदानं यदध्वर्युः कुरुते क्वचित्।
मतं तन्न सुयज्ञस्य मथितं सोऽत्र नेच्छति॥
(शा० गृ० सू० १.१.१० की टीका)

डा० टी० आर० चिन्तामणि ने ओल्डेनवर्ग के इसी मत की पुष्टि ओरियण्टल कान्फ्रेंस के नवें अधिवेशन की प्रोसिडिंग्स में किया है। शांखायन गृह्यसूत्र के प्रथित संस्करणों में (१) ओल्डेनवर्ग का संस्करण जर्मन अनुवाद एवं नारायणभाष्य तथा रामचन्द्रकृत पद्धति के उद्धरणों सहित सेक्रेड बुक्स आफ दि इस्ट में प्रकाशित हुआ। एक अन्य संस्करण रत्न

१. द्र० डा० श्रीकृष्णशर्मा का संस्करण।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गोपाल भट्ट ने १९०८ ई० में बनारस से प्रकाशित कराया तथा १९६० ई० में सीताराम सहगल ने नारायण कृत भाष्यांश सहित दिल्ली से प्रकाशित कराया। इसके अतिरिक्त शांखायन गृह्य पर आधारित वासुदेव कृत शांखायन गृह्यसंग्रह सोमनाथ उपाध्याय ने १९०८ में बनारस से प्रकाशित किया।

(२) **शाङ्खायनश्रौतसूत्र**—वैदिक (श्रौत) यज्ञादि की विधियों का परिचायक ग्रन्थ श्रौतसूत्र के नाम से अभिहित किया जाता है। शाङ्खायन श्रौतसूत्र ऋग्वेद का प्रधान श्रौतसूत्र है और इसके कर्ता सुयज्ञ बताये जाते हैं। यह अट्ठारह अध्यायों में विभक्त है तथा शाङ्खायन ब्राह्मण से अधिकांश उद्धरण लिये गये हैं। इसका १७ वाँ एवं १८ वाँ अध्याय कौषीतकि आरण्यक से मिलता-जुलता है। इस श्रौतसूत्र में शौनक, जातूकर्ण्य, पैङ्ग्य, आरुणि आदि आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है तथा एक सर्पसत्र का भी उल्लेख है (शां. श्रौ. सू. १३.२३.८)। हो सकता है कि यह जनमेजय के सर्पसत्र का उल्लेख हो। शाङ्खायन श्रौतसूत्र पर (१) वरदत्तसुत ब्रह्मदत्त आनर्तीय का भाष्य, (२) गोविन्द की कारिका (३) अग्निस्वामीकृत भाष्य तथा (४) कैलेण्ड एवं लोकेशचन्द्रकृत अंग्रेजी अनुवाद (नागपुर १९५३) उपलब्ध होता है। हिल्लेब्राण्ट ने बिब्लिओथिका इण्डिका में इसे चार भागों में प्रकाशित किया—१८८९-९१ आनर्तीय भाष्य; १८९३-९७ में टिप्पणी एवं १८९९ में गोविन्द की व्याख्या।

(३) **शाङ्खायन आरण्यक**—यह आरण्यक १५ अध्यायों में विभक्त है। इस आरण्यक के अध्याय ३ से ६ कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् के रूप में विख्यात है। प्रथम दो अध्यायों में महाव्रत का विवरण है। यह कृत्य वर्ष भर चलने वाले गवामयन सत्र के उपान्त्य दिन को संपन्न किया जाता है। इसमें अन्य बातों के अतिरिक्त प्रातः, मध्य अन्त्यसवन-सोम के तीन सवन होते हैं जिनमें सामगानकर्ता कुछ मंत्रों का गान करता है तथा होता कुछ मंत्रों का गान करता है। सामग के गान को स्तोत्र तथा होता के गान को शस्त्र कहते हैं। आरण्यक में महाव्रत के अन्य विधानों का विस्तृत विवरण नहीं है जो शां. श्रौ. सूत्र अध्याय १७-१८ में निर्दिष्ट है। परन्तु इसके महत्त्वपूर्ण अंश महदुक्थ और निष्केवल्य शस्त्र का यहाँ विस्तृत विवरण है। अध्याय ३-६ में उपनिषद् है और यह आत्मतत्त्व का विश्लेषण करता है। तीसरे अध्याय में आरुणि ऋषि चित्र गाङ्गायन राजा को मनुष्यलोक से ब्रह्मलोक में मनुष्य के उत्थान का वर्णन करते हैं। इसमें मृत्यु के बाद विविध लोकों का वर्णन है जिनमें जीव होता हुआ ज्ञान द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करता है। चौथे अध्याय में कौषीतकि प्राणतत्त्व को ब्रह्म के रूप में व्याख्यात करते हैं। पाँचवें अध्याय में प्रतर्दन राजा को इन्द्र ज्ञान का उपदेश करते हैं। छठें अध्याय में काशीनरेश अजातशत्रु को इन्द्र मनुष्य के लिये उपकारी ज्ञान का उपदेश करते हैं। यह उपदेश बृहदारण्य उपनिषद् के दूसरे अध्याय में भी वर्णित है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आरण्यक का ७वाँ एवं आठवां अध्याय संहितोपनिषद् के नाम से विख्यात है। इसमें अनेक विद्वानों के मतानुसार वैदिक प्रतीकों का व्याख्यान है। इसमें वाक्, प्राण, काल आदि के व्याख्यान के साथ ही साथ शरीरपुरुष, छन्दःपुरुष, वेदपुरुष और महापुरुष के प्रतीकों का व्याख्यान है। ९ वें अध्याय में प्राण की महत्ता का प्रतिपादन है और दसवें में अग्निहोत्र की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। ग्यारहवें अध्याय में मनुष्य के उद्भव, शरीर-विन्यास, मृत्यु के सूचक स्वप्नादि का विचार है तथा दीर्घजीवन की प्राप्ति और मृत्यु को दूर करने के कृत्य का विस्तार से वर्णन है। बारहवें अध्याय में शत्रु के विनाश तथा अपनी रक्षा के लिये वैल्व-यन्त्र का विधान है। ३५ मंत्रों के बाद इसके विधि-विधान का वर्णन है। १३ वें एवं चौदहवें अध्याय में उपनिषद् को सर्वोच्च प्रतिपाद्यों यथा ब्रह्मज्ञान, वेद का महत्त्व, आत्मयज्ञ इत्यादि का प्रतिपादन है। पन्द्रहवें अध्याय में इस आरण्यक के वंश का विवरण है कि किस आचार्य ने किससे प्राप्त किया।

इस आरण्यक के प्रथम दो अध्यायों को वाल्टर फ्रेडलैण्डर ने सन् १९००ई० में बर्लिन से प्रकाशित किया। कौषीतकि उपनिषद् के नाम से ख्यात ३-६ अध्यायों को कावेल ने अंग्रेजी अनुवाद और शंकरानन्द की व्याख्या सहित कलकत्तासे १८६१ ई० (बिब्लिओथका इण्डिका, सं. ३९) से प्रकाशित किया था। ए. बी. कीथ ने ७-१५ अध्यायों को अपने ऐतरेय आरण्यक के संस्करण और अनुवाद (आक्सफोर्ड १९०९) में परिशिष्ट रूप से प्रकाशित किया। श्रीधर पाठक ने पूना आनन्दाश्रम सीरिज से १९२२ में पूरे शाङ्खायन आरण्यक को प्रकाशित किया। विश्वेश्वरानन्द शोध-संस्थान होशियारपुर से पं. भीमदेव का पाठभेदादि सहित संस्करण १९८० में प्रकाशित हुआ जिसमें डा० के० वी० शर्मा ने विस्तृत एवं उपयोगी भूमिका लिखी।

शाङ्खायन या कौषीतकि ब्राह्मण—यह ब्राह्मण तीस अध्यायों में विभक्त है। **प्रथम अध्याय** ५ खण्डों में विभक्त है तथा अग्न्याधेय का वर्णन करता है। प्रथम खण्ड में अग्नि के तीन स्वरूपों की आहुतियाँ है। द्वितीय खण्ड में अग्नि के लिये प्रयाजों और अनुयाजों का विधान है। तृतीय खण्ड में अग्नि के पुनराधान का काल है। चतुर्थ खण्ड में प्रयाज, अनुयाज तथा आज्यभाग का विवरण है। पञ्चम खण्ड में विभक्ति तथा अदिति-होम है।

द्वितीय अध्याय ९ खण्डों में विभक्त है और अग्निहोत्र का वर्णन है। प्रथम खण्ड में पयोहोम की विधि है। द्वितीय खण्ड मे पयःप्राशनम् है। तृतीय में आहवनीय में होम की विधि है। चतुर्थ में अग्नि-उपस्थान तथा व्रत-विसर्जन है। पञ्चम में बाहर जाने वाले या बाहर रहने वाले द्वारा अग्नि-उपस्थान (सम्मान) का वर्णन है। षष्ठ खण्ड में अरणि पर अग्नि के समारोहण का विवरण है। सप्तम में वाक् का अन्य इन्द्रियों से सम्बन्ध दर्शाया गया है। अष्टम में अग्निहोत्र के विज्ञान का फल है। नवें खण्ड में अग्निहोत्र के काल का विवेचन है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तृतीय अध्याय भी नव खण्डों में विभक्त है और दर्शपौर्णमास का विवेचन है। प्रथम में पौर्णमास का काल है, द्वितीय में सामिधेनी मंत्र तथा आर्षेय है, तृतीय में देवता-आवाहन है; चतुर्थ में प्रयाज, पञ्चम में आज्य भाग, षष्ठ में यज्ञों की प्रधान आहुतियों का विवरण है। सप्तम में इळा का आह्वान है, अष्टम में अनुयाज, सूक्तवाक तथा शंयोर्वाक है, नवम पत्नीसंयाज है।

चतुर्थ अध्याय में विशिष्ट (विकृति) इष्टियों का वर्णन है। यह १४ खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में अनुनिर्वाप्या, द्वितीय में अभ्युदितेष्टि, तृतीय में अभ्युद् दृष्ट, चतुर्थ में दाक्षायण यज्ञ, पञ्चम में इळादध, षष्ठ में शौनक, सप्तम में सार्वसेनिय, अष्टम में वसिष्ठ, नवम में साकंप्रस्थाय्य, दशम में मुन्ययन, एकादश में तुरायण, द्वादश में श्यामाक-इष्टि, त्रयोदश-वेणुयव इष्टि तथा चतुर्दश में व्रीहि एवं यव की आग्रायणेष्टि है।

पञ्चम अध्याय १० खण्डों में विभक्त है। इसमें चातुर्मास्य यज्ञों का विवरण है। प्रथम खण्ड में वैश्वदेव का समय (काल) और उद्देश्य है। द्वितीय में वैश्वदेव के देवता हैं, तृतीय में वरुणप्रघास, चतुर्थ में वरुणप्रघास के देवता, पञ्चम में साकमेधस्, षष्ठ में पितृयज्ञ, सप्तम में साकमेधस् में वहिष्मन्तों का त्याग, अष्टम में सुनासीर्य पर्व, नवम में प्रायश्चित्त तथा प्रतिनिधि आहुतियों का यजन है। दशम में यजमान को उसकी अग्नियों के संस्थापन का विधान है।

षष्ठ अध्याय १५ खण्डों में विभक्त है एवं ब्रह्मा (ऋत्विक्) का वर्णन है। प्रथम से नवें खण्ड में ब्रह्मा के कृत्य है, दश से चौदह तक ब्रह्मा के अंगों का विवरण है और पन्द्रहवें में हविर्यज्ञों के विषय में सामान्य विवरण है।

सप्तम अध्याय १० खण्डों में विभक्त है और इसमें सोमयाग का प्रतिपादन किया गया है। प्रथम खण्ड में दीक्षा, द्वितीय में मंत्र, तृतीय में दीक्षित मनुष्य का स्थान, चतुर्थ में दार्म्यकेशी के अनुसार दीक्षा, पञ्चम में प्रयाज, षष्ठ में देवों द्वारा दिशाओं का ज्ञान, सप्तम में प्रयाज और अनुयाज का संबन्ध, अष्टम में प्रयाज के देवता, नवम में प्रयाज तथा अनुयाज का सम्बन्ध और पत्नीसंयाज तथा दशम में सोम का क्रम वर्णित है।

अष्टम अध्याय ९ खण्डों में विभक्त है तथा सोमयाग का विवरण पिछले अध्याय से चल रहा है। प्रथम खण्ड में अतिथि सोम का स्वागत है, द्वितीय में अतिथि के स्वागत की परिसमाप्ति है; तृतीय में प्रवर्ग्य में महावीर पात्र का महत्त्व है। चतुर्थ से षष्ठ तक मन्त्रों का प्रथम (पूर्व) भाग (पटल) है, सप्तम में द्वितीय पटल है। अष्टम में उपसद तथा नवम में उपसद के मंत्र हैं।

नवम अध्याय ६ खण्डों में विभक्त है तथा सोमयाग का ही विवरण है। प्रथम खण्ड में अग्निप्रणयन है तथा द्वितीय में अग्निप्रणयन के मन्त्र हैं। तृतीय तथा चतुर्थ खण्ड में हविर्धान का प्रणयन है तथा पञ्चम एवं षष्ठ खण्डों में हविर्धारकों के प्रणयन के मन्त्र हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दशम अध्याय भी ६ खण्डों में विभक्त है तथा पशुयाग का वर्णन करता है। प्रथम खण्ड में यूप-उच्छ्रयण, यूपमीमांसा एवं यूप-संस्कार है; द्वितीय खण्ड में यूप का लेपन, शेष-भक्ष विचार, विविध पशुओं के लिये यूप का उपयोग है, तृतीय खण्ड में यूप का प्रतीकात्मक महत्त्व है, चतुर्थ में आलम्भन मंत्र हैं, पञ्चम में स्तोकानुवचन, वपायाग, पशु-पुरोडाश है। षष्ठ में मनोतानुवचन एवं के अवदान हैं।

एकादश अध्याय में सोमयाग चल रहा है एवं प्रातरनुवाक का वर्णन है। यह अध्याय ८ खण्डों मे विभक्त है। सोमयाग ही इस अध्याय में है और विषय क्रमशः प्रातरनुवाक् पाठ, प्रयुक्त विविध छन्द, पशुप्राप्ति, प्रातरनुवाक् के देवता, प्रणवस्वरूप, छन्द तथा एकविंश स्तोम, पाठ किये जाने वाले छन्दों की संख्या, पाठ का स्थान तथा समय हैं।

द्वादश अध्याय में सोमयाग चल रहा है तथा आठ खण्डों में यह अध्याय विभक्त है। विषय क्रमशः ये हैं—आपोनप्त्रीय, कवषाख्यान, उपांशु एवं अन्तर्याम ग्रह, बहिष्पवमान स्तोत्र, पशु तथा सोम के देवता, ग्यारह पशुओं के आलम्भन में देवताओं का आह्वान तथा ग्यारह पशुओं का सवन।

त्रयोदश अध्याय में भी सोमयाग चल रहा है तथा ९ खण्डों में विभक्त है। विषय क्रमशः ये हैं— सदःप्रसर्पण, हविष्पङ्क्तियाग, पुरोडाश, सोमभेद विचार, द्विदेवत्यग्रह, आहुति में होता का भाग, इळा का आह्वान, अच्छावाक प्रचार एवं ऋतुयाज ।

चतुर्दश अध्याय भी सोमयाग का परिचायक है और पाँच खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में आज्यशस्त्र है तथा द्वितीय में सूक्त पाठ की विधि है। तृतीय में आहाव तथा चतुर्थ एवं पञ्चम में प्रउग शस्त्र है।

पन्द्रहवें अध्याय में भी सोमयाग चल रहा है और यह भी अध्याय पाँच खण्डों में विभक्त है जिनमें क्रमशः प्रारम्भिक कृत्य, मरुत्वतीय शस्त्र (२-३) निष्केल्य शस्त्र (४) एवं अग्निद्वारा विविध शस्त्रों में मृत्यु का वंचन है। **सोलहवां अध्याय** भी सोमयाग का विवरण है एवं ११ खण्डों में विभक्त है और विषय क्रमशः ये हैं—आदित्य ग्रह, सावित्र ग्रह, वैश्वदेवशस्त्र, शस्त्र का व्याख्यान, अग्नि, सोम एवं विष्णु का यजन; पात्नीव्रत ग्रह; अग्नि मारुत शस्त्र, अक्षर-पङ्क्ति, मतनिर्णय, सौत्रामणि एवं उक्थ्योक्थ।

सत्रहवें अध्याय में भी सोमयाग चल रहा है। यह ९ खण्डों में विभक्त है। विषय क्रमशः षोडशी, षोडशी शस्त्र के पाठ की विधि, महानाम्नियों का अप्रयोग, अतिरात्र प्रशंसा, साम और शस्त्र का संबन्ध (६,७) तथा पाठविधि (८,९)।

अट्ठारहवें अध्याय में भी सोमयाग ही है। यह अध्याय १४ खण्डों में विभक्त है। विषय हैं—अश्विनशस्त्र, शस्त्र का प्रारम्भ, शस्त्र का स्वरूप, शस्त्र की समाप्ति, हरियोजन शाकलायें, ज्योतिष्टोमसमाप्ति, अवभृथस्नान तथा उदवसानीयेष्टि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उन्नीसवाँ अध्याय भी सोमयाग का परिचायक है तथा १० खण्डों में विभक्त है। विषय हैं—दीक्षा की तैयारी, प्रजापति के पशु के यज्ञ में पुरोडाश के देवता, दीक्षा की तिथि, अग्निचयन में पाँच आहुतियों की दीक्षणीयेष्टि, प्रेरित करने वाले देवताओं को आहुति, त्वष्टा को आहुति, देविकाओं को हविष्य प्रदान, चतुर्विंश के शस्त्र, सभी स्तोमों का प्रयोग हो जाने पर कृत्य का स्वरूप। **बीसवाँ अध्याय** भी सोमयाग परक है और चार खण्डों में विभक्त है। यह अभिप्लवषळह का विवरण है। विषय संनिवेश इस प्रकार है—अभिप्लवषळह फलश्रुतिः, ज्योतिः प्रथममहः, गौः द्वितीयदिन, आयुस्तृतोयमहः।

इक्कीसवाँ अध्याय ६ खण्डों में विभक्त है तथा सोमयाग का विषय ही चल रहा है जिसमें पूर्वाध्याय (२०) का अभिप्लवषळह चालू है। विषय हैं—चौथा दिन गौ, पाचवाँ दिन आयु, छठाँ दिन ज्योति, सत्र में अभिप्लव तथा पृष्ठ्य षळह, अभिप्लव शब्द की उत्पत्ति।

बाइसवें अध्याय में सोमयाग के प्रसङ्ग में पृष्ठ्यषळह का विवरण है और यह अध्याय ९ खण्डों में विभक्त है। विषय हैं—पृष्ठ्यषडह का प्रथम दिन, पृष्ठ्यषळह का द्वितीय दिन, तृतोय दिन—आज्य प्रउगशस्त्र, तृतोय दिन—मरुत्वतीय तथा निष्केवल्य शस्त्र, तृतीय दिन–वैश्वदेव एवं अग्निमारुतशस्त्र, चतुर्थ दिन–सामान्य वैशिष्टच, चतुर्थ दिन–आज्य, प्रउग और मरुत्वतीय शस्त्र, चतुर्थ दिन–मरुत्वतोय शस्त्र एवं न्यूङ्ख तथा चतुर्थ दिन वैश्वदेव एवं अग्नि मारुत शस्त्र।

तेइसवें अध्याय में भी सोमयाग चल रहा है और यह अध्याय ८ खण्डों से युक्त है। विषय हैं—पृष्ठच षळह का पञ्चम दिन–आज्य, प्रउग और मरुत्वतीय, पञ्चमदिन–मरुत्वतीय एवं निष्केवल्य, पञ्चम दिन–वैश्वदेव एवं अग्निमारुत शस्त्र, षष्ठ दिन में परुच्छेप मंत्रों का प्रयोग (४,५), षष्ठ दिन आज्य, प्रउग एवं मरुत्वतीय शस्त्र, षष्ठ दिन—मरुत्वतीय एवं निष्केवल्यशस्त्र, षष्ठदिन निष्केवल्य एवं अग्निमारुत शस्त्र।

चौबीसवें अध्याय में भी सोमयाग चल रहा है अभिजित् का विवेचन है। विषय है—अभिजित्–आज्य तथा प्रउग शस्त्र, अभिजित् अवशिष्ट शस्त्र—स्वरसाम दिनों की उत्पत्ति (३,४) आज्य, प्रउग एवं मरुत्वतीयशस्त्र, प्रथम दिन के मरुत्वतीय एवं निष्केवल्य तथा द्वितीय दिन का प्रगाथ, द्वितोय दिन के मरुत्वतीय एवं निष्केवल्य और तृतीय दिन का प्रगाथ, तृतीय दिन के मरुत्वतीय और निष्केवल्य, वैश्वदेव एवं अग्निमारुत शस्त्र यह अध्याय ९ खण्डों में विभक्त है।

पच्चीसवें अध्याय में सोमयाग चल रहा है तथा विषुवान् एव विश्वजित् का विवरण है। यह अध्याय १५ खण्डों में विभक्त है तथा विषयों का विवरण इस प्रकार है—विषुवत्काल-आज्य तथा प्रउगशस्त्र, विषुवत् दिन—प्रउगशस्त्र, विषुवत् दिन—आज्य, प्रउग एवं मरुत्वतीय का पर्याय, विषुवत् दिन—बृहत् या महादिवाकीर्त्य के रूप में पृष्ठ (४,५), विषुवत् दिन—वृहत् के रूप में पृष्ठ या विना वृहत् या रथन्तर के, विषुवत् दिन–

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वैश्वदेव और अग्निमारुत शस्त्र, विषुवत् दिन—प्रातरनुवाक, विश्वजित्-प्रथम दो सवनों के शस्त्र, विश्वजित् शिल्प से संबद्ध—इसके दो रूप (१२,१३), विश्वजित्—अग्निष्टोम तथा अतिरात्र का रूप तथा विश्वजित्-होत्रकों के मन्त्र।

छब्बीसवाँ अध्याय १७ खण्डों से युक्त है। इसमें गवामयन एवं छन्दोमों का विवरण है। विषय-विन्यास इस प्रकार है—गवामयन में दिनों का क्रम, गो तथा आयु दिन, प्रायश्चित्त (३-६), छन्दोम, प्रथम छन्दोम—आज्य एवं प्रउग शस्त्र, प्रथम छन्दोम-मरुत्वतीय एवं निष्केवल्य शस्त्र, प्रथम छन्दोम-वैश्वदेव एवं अग्निमारुत शस्त्र, द्वितीय छन्दोम-आज्य एवं प्रउग शस्त्र, द्वितीय छन्दोम—मरुत्वतीय एवं निष्केवल्य शस्त्र, द्वितीय छन्दोम-वैश्वदेव एवं अग्निमारुतशस्त्र, तृतीय छन्दोम—आज्य शस्त्र, तृतीय छन्दोम—प्रउग शस्त्र, तृतीय छन्दोम—मरुत्वतीय एवं निष्केवल्य शस्त्र, तथा तृतीय छन्दोम—वैश्वदेव एवं अग्निमारुतशस्त्र।

सत्ताइसवाँ अध्याय ७ खण्डों से युक्त है तथा सोमयाग का ही विषय चल रहा है। विषयों का विन्यास इस प्रकार है—दशम दिन एवं अनुष्टुभ्, दशम दिन के शस्त्र, मन्त्रों की संख्या तथा अनुष्टुभ् का रूप सर्पराज्ञी के मन्त्र तथा प्रजापति को आहुति, प्रजापति के शरीर एवं दशरात्र में तीनों सवनों के छन्द।

अट्ठाइसवें अध्याय में दश खण्ड हैं तथा सोमयाग का विवरण चल रहा है। विषय इस प्रकार है—प्रैष, अनुप्रैष तथा निगद; ग्रहों के मैत्रावरुण के पुरोनुवाक्या मन्त्र; प्रातः-सवन में प्रस्थित याज्य; अच्छावाकीय; ऋतुप्रैष; होत्रकशस्त्र सामान्यमीमांसा, प्रातःसवन में होत्रकों के मन्त्र। यह अध्याय होत्रकशस्त्र (प्रातःसवन) का परिचायक है।

उन्तीसवें अध्याय में भी सोमयाग चल रहा है और इस अध्याय में ८ खण्ड हैं। विषय हैं—ग्रावस्तुत्कर्म, चमसोन्नयन तथा प्रस्थित याज्य; मध्यसवन में होत्रकों के कृत्य; प्रगाथ तथा त्रिष्टुभ् मंत्र; चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ दिन की तृचायें, ब्राह्मणाच्छंसी मन्त्र, अच्छावाक मन्त्र; छन्दोम के विशिष्ट दिन में होत्रको द्वारा प्रयुक्त मन्त्रों की संख्या। इस अध्याय में माध्यन्दिन सवन के होत्रकशस्त्र का विवरण है।

तीसवें अन्तिम अध्याय में सोमयाग का हो विवरण है और तृतीय सवन के होत्रक शस्त्रों का विवरण है। इस अध्याय में ११ खण्ड है तथा विषयों का विन्यास इस प्रकार हैं—तृतीय सवन के प्रारम्भिक कृत्य; उक्थ्य के उक्थ्य, तृतीय सवन के पुरोनुवाक्या तथा याज्या मन्त्र, नाभानेदिष्ट, नाराशंसी एवं वालखिल्य; मैत्रावरुण के तार्क्ष्य तथा दुरोहण, ब्राह्मणाच्छंसी, सुकीर्ति, वृषाकपि और कुन्तापसूक्त; ऐतशप्रलाप; कुन्तापसूक्त (आदित्यों तथा आङ्गिरसों के); कुन्तापसूक्त; दधिक्रामन्त्र, एवयामारुत तथा बालखिल्य, कुछ विशेष दिनों के याज्यापुरोनुवाक्या, छन्दोमों के कुछ वैशिष्ट्य तथा अतिरात्र, वाजपेय एवं आप्तोर्याम के कुछ वैशिष्ट्य।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शाङ्खायन ब्राह्मण का रचना-काल—आश्वलायन और शांखायन सूत्रों से प्राचीन काल का है क्योंकि इन सूत्रों में ब्राह्मण में वर्णित कृत्यों का अधिक साङ्गोपाङ्ग और संपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। कौषीतकि ब्राह्मण के संक्षिप्त होने से राजनीतिक सामाजिक अवस्थाओं का विस्तृत उल्लेख तो नहीं है पर दैवोदासि प्रतर्दन का उल्लेख है और तृत्सुओं, मरुतों तथा नैमिषीयों के साथ संबद्ध है। यह कुरु देश से संबद्ध होने का उल्लेख है। जनमेजय का समय वैदिक काल के अन्त से संबद्ध माना जाता है और ब्राह्मण की रचना की यह तात्कालिक स्थिति है। इस ब्राह्मण में पुनर्जन्म का उल्लेख नहीं प्राप्त होता केवल पुनर्मृत्यु (२५.१) उल्लेख प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह ब्राह्मण बुद्ध (६०० ई० पू०) से पहले का है। अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों की तुलना में भी यह ब्राह्मण प्राचीन प्रतीत होता है। गोपथ ब्राह्मण से ऐतरेय और शांखायन दोनों प्राचीन ब्राह्मण हैं। (द्र० ब्लूमफील्ड, अथर्ववेद एण्ड गोपथब्राह्मण, पृ० १०२ इत्यादि)। किन्तु कौषीतकि में पुनर्मृत्यु तथा ईशान एवं महान्देव रुद्र को बताने के कारण यह ग्रन्थ गोपथ की समानता को भी धारण करता है। डा० कीथ का तो मत है कि यह ब्राह्मण अथर्ववेद से परिचय नहीं रखता और इसमें उल्लिखित कुन्तापसूक्त अथर्ववेद से गृहीत न होकर ऋग्वेद के खिलभाग से है। उन्होंने यह भी माना है कि कौषीतकि ब्राह्मण (३.६) में उल्लिखित मन्त्र मैत्रायणी संहिता का है। क्योंकि कृष्ण यजुर्वेद का मन्त्रभाग उसके ब्राह्मण भाग से काफी प्राचीन है। यह तो निश्चित है कि कौषीतकि ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण के परवर्ती भाग से प्राचीन है और शैली तथा आख्यानों में शतपथ ब्राह्मण से साम्य रखने पर भी उससे पूर्ववर्ती है। शतपथ और कौषीतकि ब्राह्मण दोनों में श्वेतकेतु और आरुणि का उल्लेख है। यह भी उल्लेखनीय है कि शतपथ ब्राह्मण (१०.४.१.१९) में यज्ञ में सत्रहवें ऋत्विक् (सदस्य) का विरोध किया गया है। यह सत्रहवाँ सदस्य जो आप० श्रौ० सू० (१०.१.१०,११) (शां० श्रौत सू० ५.१.८) इत्यादि में उल्लिखित है कौषीतकियों का नियम है और इस ब्राह्मण के प्रायश्चित भाग (२६.५) में उल्लिखित है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र कौषीतकि ब्राह्मण से परिचित प्रतीत होता है। गार्बे आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के अपने संस्करण में (III.XXVII) कहते हैं कि आपस्तम्ब श्रौतसूत्र कम से कम एक बार तो अवश्य कौषीतकि ब्राह्मण का उल्लेख करता है (XII.१७.२)। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में बारह बार बह्वृच ब्राह्मण का उल्लेख है। छः बार ये उल्लेख कौषीतकि ब्राह्मण से साम्य नहीं रखते, दो बार साम्य रखने पर भी पाठ में भिन्न है (XII १७.२ और VI. १३.९ = कौ० ब्रा० II.३) और एक बार समान होने पर भी (११.२.९ = कौ० ब्रा० ८.३) पूर्णतः एक नहीं है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र शब्दों के रूप की दृष्टि से पाणिनि से पूर्व का है और गार्बे तथा व्यूह्लर ने ईसा पूर्व छठी शताब्दी इसवी रचना का समय माना। कीथ ने ईसापूर्व तीसरी और चौथी सदी से पूर्व इसकी रचना का समय माना है। ज्योतिष के आधार पर इस ब्राह्मण का रचनाकाल ८०० ई० पूर्व तक ले जाया जा सकता

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। शाङ्खायन ब्राह्मण (१९.३) में कहा गया है दक्षिणायन (मकरसंक्रान्ति) माघ की अमावस्या को हुआ—**स वै माघस्यामावास्यायामुपवसत्युदङ्ङावर्त्स्यन्। उपमे वसन्ति। प्रायणीयेनातिरात्रेण।** वेबर ने नक्षत्र माला के प्रारम्भिक गणना के काल को १८२० ई० पू० से ८६० ई० पू० तक माना (इनडिशे स्टुडियन १०; पृ० २३४)। ह्विटने का कथन है कि यह सीमा कोई प्रामाणिक नहीं है। अस्तु इन सब बातों पर विचार कर शाङ्खायन ब्राह्मण का रचनाकाल ८०० ई० पू० के बाद नहीं माना जा सकता।[1]

यह तो प्रायः सर्वमान्यसिद्धान्त हो गया है कि कौषीतकि ब्राह्मण का रचनाकाल ऐतरेय ब्राह्मण के बाद का है परन्तु यह भी साथ ही साथ मान्य है कि कौषीतकि ब्राह्मण पाणिनि से पूर्व का बना है। पाणिनि के सूत्र **'त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण्'** (५.१.६२) से स्पष्ट है कि पाणिनि ३० और ४० अध्यायों वाले ब्राह्मणों से परिचित हैं। कौषीतकि और ऐतरेय क्रमशः ३० और ४० अध्यायों के ब्राह्मण हैं।[2] यह बात इन ब्राह्मणों की भाषा से भी सिद्ध होती है जिनमें क्रियाओं के रूप निश्चितरूप से पाणिनि से प्राचीन प्रतीत होते हैं। लीबिच ने यह बात विस्तार से दर्शायी है।[3] इससे यह सिद्ध है यह ब्राह्मण ३०० ई० पू० से निश्चित रूप से प्राचीन है। इसके ऊपरी समय के विषय में यह कहा जा सकता है कि यास्क को इस ब्राह्मण का ज्ञान था जिन्होंने निरुक्त (१.९)में **पर्याय इव त्वद् आश्विनम्** का व्याख्यान किया है जो कौषीतकि ब्राह्मण (१७.४) में उपलब्ध है। अन्य उदाहरण कम स्पष्ट हैं यथा निरुक्त (१२.८) में वचन **सविता सूर्यां प्रायच्छत् सोमाय राज्ञे प्रजापतये वेति ब्राह्मणम्**। कौषीतकि ब्राह्मण (१८.१) का यह वचन साम्य रखता है—**सविता सूर्यां प्रायच्छत् सोमाय राज्ञे यदि वा प्रजापतेः**। पाठ में कुछ वैभिन्य से यह प्रतीत हो सकता है कि यह कौषीतकि का वचन हो या किसी अन्य ब्राह्मण का। पर संभावना यही है कि यह कौषीतकि का ही वचन है। इसी प्रकार निरुक्त (१२.१४) में उद्धरण है—**अन्धो भग इत्याहुरनुत्सृप्तो न दृश्यते प्राशित्रमस्याक्षिणी निर्जघानेति च ब्राह्मणम्** कौषीतकि ब्राह्मण में (६.१३) प्राशित्र के विषय में कहा गया है—**तद्भगाय परिजह्रु-स्तस्याक्षिणी निर्जघान तस्मादाहुरन्धो भग इति**। इसी प्रकार निरुक्त (६.३१) में **अदन्तकः पूषेति च ब्राह्मणम्** है जो कौषीतकि ब्राह्मण के **तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भभाग इति** का संकेतक है।

---

१. इस विषय में विस्तृत विवेचन तथा मत-मतान्तरों के लिए द्रष्टव्य, डा० कीथ के अनुवाद का भूमिका भाग पृ० ४२ इत्यादि।

२. द्र० ए० वेबर, इण्डियन लिटरेचर पृ० ४५, इसे हाग ओर आफ्रेख्ट ने स्वीकार किया है।

३. लीबिच, पाणिनि, पृ० १८-२३, ७२-८२।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस ब्राह्मण का रचनाकाल शाकल्य के पदपाठ से भी प्राचीन है। ऐतरेय ब्राह्मण में (३.१२) **उक्थं वाचीन्द्राय** में अक्षरों की संख्या ७ दी गई है जबकि ६ अक्षर लिखे गये हैं। उसी मंत्र में **उक्थं वाचीन्द्राय देवेभ्यः** में ११ अक्षर दिये हैं। कौषीतकि ब्राह्मण (१४.३) में 'उक्थमवाचि' में ५ अक्षर हैं, उक्थमवाचीन्द्राय में ८ अक्षर और अवाचीन्द्रायोक्थं देवेभ्यः में ९ अक्षर हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के वचन से यह स्पष्ट है कि ऐतरेय आरण्यक (१.३.४) मे ऋग्वेद में सन्धि के साथ दिये पद को वह सन्धिविहीन मानता है और शाकल्य से पूर्ववर्ती है। कौषीतकि ब्राह्मण वचन यह निर्देश करता है कि इस काल में दोनों प्रकार के नियम चल रहे थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 'देवेभ्यः' में कौषीतकि ३ अक्षर मानते हैं। पर ऐतरेय ४ अक्षर मानते हैं

शौनक, पाणिनि और यास्क से शाकल्य प्राचीन है क्योंकि ये लोग शाकल्य का उल्लेख करते हैं और शाकल्य का सयय ६०० ई० पू० माना गया है।[1] अतः इस ब्राह्मण का रचनाकाल ८वीं सदी ई०पू० में माना जा सकता है।

शाङ्खायनब्राह्मण के संस्करण—शाङ्खायन या कौषीतकि ब्राह्मण का प्रथम संस्करण बी० लिण्डनर द्वारा सन् १८८७ ई० में जर्मनी के येना नगर से प्रकाशित हुआ। लिण्डनर का यह संस्करण ११ हस्तलेखों पर आधारित था। इस संस्करण की भूमिका में अन्य बातों के अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण से साम्य-वैषम्य भी प्रदर्शित था और परिशिष्ट में मंत्रों तथा व्यक्तियों की सूची थी। यह इस संस्करण का प्रथम भाग था और द्वितीय भाग में अनुवाद देने की योजना थी। पर दुर्भाग्यवश द्वितीयभाग कभी मुद्रित नहीं हुआ। इसके पच्चीस वर्षों बाद १९११ ई० में पूना के आनन्दाश्रम संस्कृत सीरिज, ६५ में 'ऋग्वेदान्तर्गतं शांखायनब्राह्मणम्' के नाम से यह प्रकाशित हुआ। पूना का संस्करण भी लिण्डनर के संस्करण से मिलता-जुलता ही था। पूना के संस्करण की पुनरावृत्ति भी हाल में ही हुई है। कौषीतकि ब्राह्मण का एक नया संस्करण श्रीकृष्ण शर्मा ने १९६८ ई० में स्टेनर, वाइजवाडेन से प्रकाशित किया। इसके लिये उन्होंने लिण्डनर और पूना के संस्करणों के अतिरिक्त ८ पूर्ण हस्तलेखों और कुछ अपूर्ण हस्तलेखों का उपयोग किया। पुनः १९७६ ई० में श्रीकृष्णशर्मा ने इस ब्राह्मण पर उदय की टीका का प्रकाशन किया। इस संदर्भ में यह ध्यान देने की बात है इसके पूर्व डा० कीथ ने अपने अंग्रेजी अनुवाद में और तदनन्तर डा० मङ्गलदेवशास्त्री ने अपने कौषीतकिब्राह्मणपर्यालोचनम् में विनायक भट्ट की टीका का उपयोग किया था। डा० शर्मा ने विनायक की टीका से उदय की टीका को श्रेष्ठ बताया है। डा० लिण्डनर और श्रीकृष्ण शर्मा के संस्करणों में अध्यायानुसार खण्डों की संख्या इस प्रकार है।

---

१. ओल्डेन वर्ग प्रोलागमेना, पृ० ३८३-३८६, कीथ, ऐतरेय आरण्यक, पृ० २३९-४०।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अध्याय	लिण्डनर के संस्करण में खण्डों की संख्या	श्रीकृष्णशर्मा के संस्करण में खण्डों की संख्या			
१	५	५	२०	४	६
२	९	९	२१	६	७
३	९	१२	२२	९	६
४	१४	१०	२३	८	११
५	१०	१०	२४	९	८
६	१५	११	२५	१५	१४
७	१०	१२	२६	१७	१४
८	९	१२	२७	७	१२
९	६	६	२८	१०	८
१०	६	१०	२९	८	८
११	८	९	३०	११	९
१२	८	१०		२७६	२७२
१३	९	७			
१४	५	७			
१५	५	६			
१६	११	१०			
१७	९	७			
१८	१४	९			
१९	१०	७			

मुख्यतः लिण्डनर के संस्करण के खण्डों को पूर्व या पर में मिलाने के कारण ही श्रीकृष्ण शर्मा के संस्करण में अध्यायानुसार खण्डों की संख्या में न्यूनता या वृद्धि हुई है। लिण्डनर के संस्करण के केवल ५ खण्ड (१६.१० तथा २६.३-६) श्रीकृष्णशर्मा के संस्करण में नहीं है। श्रीकृष्णशर्मा के संस्करण की दूसरी उपयोगी विशेषता है कि उसमें वाक्यों को पृथक्-पृथक् करके उनकी संख्या दी गई है। लिण्डनर और पूना के संस्करण में प्रत्येक खण्ड एक ही वाक्य में संश्लिष्ट हैं जब कि शर्मा ने प्रत्येक वाक्य को अलग कर दिया है जिससे पढ़ने और समझने में सरलता हो गई है। इस संस्करण में वाक्यों की कुल संख्या ६९६२ है।

शाङ्खायन ब्राह्मण की टीकाएँ तथा अनुवाद—शाङ्खायन या कौषीतकिब्राह्मण की प्राचीन संस्कृत टीकाओं में माधवभट्ट के पुत्र विनायकभट्ट की टीका के उद्धरण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अलबर्ट बेबर ने अपने इण्डिशे स्टुदियन, भाग २ के निबन्ध में दिया था; दसवें अध्याय की टीका को आर० रोबेक ने १९०८ ई० में संपादित किया था (द्र० कैलेण्ड, VO, XXIII p. 68)। पुनः मङ्गलदेवशास्त्री ने कौषीतकिब्राह्मणपर्यालोचनम् में इसके उद्धरणों को यत्र-तत्र प्रकाशित किया था। इस ब्राह्मण का अंग्रेजी अनुवाद डॉ० ए० बी० कीथ ने हारवर्ड ओरियण्टल, सीरिज, २५ में १९२० ई० में ऐतरेय ब्राह्मण के अनुवाद सहित प्रकाशित किया जिसका पुनर्मुद्रण पुनः मोतीलाल बनारसीदास द्वारा किया गया है। कीथ ने इस अनुवाद की भूमिका परिशिष्टों और पादटिप्पणियों में इस ब्राह्मण का साङ्गोपाङ्ग और तुलनात्मक संपूर्ण विवरण देने का प्रयास किया है। बंगला अनुवाद सहित इसका एक संस्करण १९७० ई० में हरिनारायण भट्टाचार्य ने कलकत्ता संस्कृत कालेज से प्रकाशित किया है। विनायक भट्ट की प्रसिद्ध टीका से भिन्न एक टीका ई०आर० श्रीकृष्ण शर्मा ने स्टेनर वाईजबाडेन से १९७६ में प्रकाशित की। यह टीका उदय द्वारा की गई है। इस ब्राह्मण की विवेचना में सुदर्शन कुमार सूद ने कौषीतकिब्राह्मण का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, शोध-प्रबन्ध, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से प्रस्तुत किया तिया एच० सी० पट्टयाल ने बड़ौदा से प्रकाशित ओरियण्टल जर्नल में निबन्ध प्रकाशित कया। मिलिउसक्लाउस का १९७६ में प्रकाशित निबन्ध भी इस विषय पर अच्छा कार्य है।

—गङ्गासागर राय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विषयसंनिवेशः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

——

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

अथ ऋग्वेदे शाङ्खायनब्राह्मणम्

॥ हरि ॐ ॥

अस्मिन्वै लोक उभये देवमनुष्या आसुस्ते देवाः स्वर्गं लोकं यन्तोऽग्निमूचुस्त्वं नो अस्य लोकस्याध्यक्ष एधीति तानग्निरुवाचाथ यद्वोऽहं घोरसंस्पर्शतमोऽस्म्यनपचायितारो मनुष्याः कथं वस्तद्भविष्यति यन्मनुष्येष्विति ते देवा ऊचुस्तस्य वै ते वयं घोरास्तनूर्विनिधास्यामोऽथ यैव ते शिवा शग्म्या यज्ञिया तनूस्तयेह मनुष्येभ्यो भविष्यसीति तस्याप्सु पवमानामदधुर्वायौ पावकामादित्ये शुचिमथ यैवाऽस्य शिवा शग्म्या यज्ञिया तनूरासीत्तयेह मनुष्येभ्योऽतपदेता वा अग्नेस्तन्वस्तद्यदेता देवता यजत्यत्राग्निः साङ्गः सतनूः प्रीतो भवति ता वै तिस्रो भवन्ति त्रयो वा इमे लोका इमानेव तं लोका(?)नाप्नोति पौर्णमासं प्रथमायै तन्त्रं भवत्यामावास्यं द्वितीयायै तेन हास्य दर्शपूर्णमासावन्वारब्धौ भवत ईळितवत्यौ हव्यवाड्वत्यौ प्रथमायै संयाज्ये तत्संयाज्यारूपं ह्यग्नी द्वितीयायै द्वौ ह्यग्नी यजति सप्तदशसामिधेनीका तृतीया सप्तदशसामिधेनीका वा इष्टिपशुबन्धास्तदिष्टि-

---

इस लोक में देव और मनुष्य दोनों थे । स्वर्ग लोक जाते हुये उन देवगणों ने अग्नि से कहा—आप हम लोगों के (लिये) इस लोक के अध्यक्ष रहिये । उन (देवों) से अग्नि ने कहा कि आप लोगों में से मैं अत्यन्त घोर स्पर्श वाला हूँ (अतः) मनुष्य मुझसे दूर रहते हैं । इसलिये जो मनुष्यों के पास है वह आप लोगों का कैसे होगा ? उन देवों ने कहा—'उस (ऐसे) आपके घोररूप को हम (अलग)रख लेंगे और जो आप का मंगलकारी, शक्तिशाली (हितकारी) तथा यज्ञार्ह रूप है उसी से यहाँ (इस लोक में) मनुष्यों के बीच (आप) रहेंगे । उस (अग्नि) के पावनकारी (पवमान) (रूप) को जल में और प्रवहणशील(पावक)को वायु में और तेजस्वी (शुचि) को आदित्य में रखा । और जो इसके मंगलकारी (शिव) शक्तिशाली या हितकारी (शग्म्य) तथा यज्ञिय रूप थे उसी से मनुष्यों में वह तपा अथवा वस्तुतः अग्नि के ये ही शरीर (रूप) हैं । अतः इन देवताओं का यजन करने से अग्नि अङ्गों और रूपों (तनु) सहित प्रसन्न होते हैं । वे तीन हैं, ये तीन लोक हैं, वह इन तीन लोकों को प्राप्त करता है । पौर्णमास (यज्ञ) प्रथम के लिये तन्त्र (आदर्श) है अमावास्य (यज्ञ) द्वितीय के लिये तन्त्र है । इसके द्वारा वह दर्श और पौर्णमास को आरम्भ करता है । प्रथम की 'ईडित्तवती'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पशुबन्धानाप्नोति सद्वन्तावाज्यभागौ भवतोऽसानीति वाऽग्नीनाधत्ते स्यामिति कामयते स यदि ह वा अपि स्वैषा वीर इव सन्नग्नीनाधत्ते क्षिप्र एव सम्भवति क्षिप्रे भोग्यतामश्नुते यः सद्वन्तौ कुरुते विराजौ संयाज्ये श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै ता वै गायत्र्यो भवन्ति गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दाः स्वेनैव तच्छन्दसाऽग्नीनाधत्ते ता वा उपांशु भवन्ति रेतःसिक्तिर्वा अग्न्याधेयमुपांशु वै रेतः सिच्यतेऽभिरूपा भवन्ति यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्यै द्वादश दद्याद्द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्या अश्वं त्रयोदशं ददाति यस्त्रयोदशो मासस्तस्याप्त्यै ॥ १ ॥

देवासुरा वा एषु लोकेषु संयत्ता आसुस्तेभ्योऽग्निरपाक्रामत्स ऋतून्याविशत्ते देवा हत्वाऽसुरान्विजित्याग्निमन्वैछंस्तं यमश्च वरुणश्चान्वपश्यत्तां तमुपामन्त्रयन्त

(आह्वानकारी) तथा हव्यवाड्वती (आहुतिवाले) मन्त्र हैं और यह संयाज्यारूप हैं (स्विष्टकृत अग्नि की आहुति के लिये याज्या और पुरोनुवाक्या । ये मंत्र है ऋग्वेद ५।१४।३ और ४।८।५ जिनमें 'ईडते' तथा 'हव्याय वोढवे' एवं 'हव्यदातिभिः' पद हैं) । द्वितीय के लिये 'अग्नि' पद दो बार आया है क्योंकि दो अग्नियों का यजन करता है । तृतीय के लिये सत्रह सामिधेनी ऋचायें हैं; इष्टि और पशुबन्ध यजनों में सत्रह सामिधेनी ऋचायें हैं अतः उसे इष्टि तथा पशुबन्ध की प्राप्ति होती है । आज्य भाग की आहुति 'हो' (भवतोऽसानीति) इस पद से होती हैं; 'मुझे हो' इस कामना से वह अग्नि का आधान करता है । 'मैं होऊँ' यह कामना करता है । वह यदि अत्यन्त वीरता से अग्नि का आधान करता है, शीघ्रता से महत्ता प्राप्त करता है । जो उन्हें 'हों' (सत्) से युक्त करता करता है वह शीघ्र ही भोग्यता को प्राप्त करता है । दोनों संयाज्य (आह्वानकारी तथा आहुति परक) मंत्र विराज मंत्र है । समृद्धि और अन्न का भोजन विराज है अतः वे समृद्धि और अन्नाद्य की विराज रूप में प्राप्ति कराते हैं । ये गायत्री मन्त्र है । अग्नि का संबन्ध गायत्री से है और गायत्री उसका छन्द है । अतः वह उसी छन्द से अग्नि का आधान करता है । इनका उच्चारण मन्द (उपांशु) होता है । अग्नि की स्थापना रेत का सिंचन है । रेत सिंचन विना सुनाये (उपांशु) होता है । वे अभिरूप होते हैं; जो यज्ञ में अभिरूप है वह समृद्ध है । यज्ञ की ही समृद्धि के लिये द्वादश (गायें) देनी चाहिये । संवत्सर में द्वादश मास हैं । इससे संवत्सर की पूर्णता के लिये यह होता है । तेरहवें मास की पूर्णता के लिये वह तेरहवाँ अश्व देता है ।। १ ।।

१.२ देव और असुर इन लोकों में (अर्थात् लोकों के लिये) विरोध में थे । उनसे अग्नि पलायित होकर ऋतुओं में प्रविष्ट हो गया । देवगण ने असुरों को जीत कर और मार कर अग्नि का अनुगनन किया । यम और वरुण ने उस (अग्नि) को देखा (पहचाना) ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तमज्ञपयंस्तस्मै वरमददुः स हैतं वरं वव्रे प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलान्घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामिति तस्मादाहुराग्नेयाः प्रयाजानुयाजा आग्नेयमाज्यमिति ततो वै देवा अभवन्परासुरा भवत्यात्मना परास्य द्वेष्यो य एवं वेद ॥ २ ॥

तदाहुः कस्मिन्नृतौ पुनरादधीतेति वर्षास्विति हैक आहुर्वर्षासु वै सर्वे कामाः सर्वेषामेव कामानामाप्त्यै मध्यावर्षे पुनर्वसू नक्षत्रमुदीक्ष्य पुनरादधीत पुनर्मा वसु वित्तमुपनमत्वित्यथो पुनः कामस्योपाप्त्यै तद्वै न तस्मिन्काले पूर्वपक्षे पुनर्वसुभ्यां संपद्यते ये वैषाऽऽषाढ्या उपरिष्टादमावास्या भवति तस्यां पुनरादधीत सा पुनर्वसुभ्यां संपद्यत उपाप्तोऽमावास्यायां कामो भवत्युपाप्तो वर्षासूपाप्तः पुनर्वस्वोस्तस्मात्तस्यां पुनरादधीत पञ्चकपालः पुरोडाशो भवति पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्यै ॥ ३ ॥

विभक्तिभिः प्रयाजानुयाजान्यजत्यृतवो वै प्रयाजानुयाजा ऋतुभ्य एनं तत्समाहरत्यग्न आयाहि वीतयेऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निनाऽग्निः समिध्यतेऽग्निर्वृत्राणि

उन्हें देवों ने आमन्त्रित किया, उन्हें देवों ने आज्ञापित किया, उन्हें वर दिया। उन्होंने यह वर माँगा—मेरे लिये प्रयाज (आदिम आहुतियाँ) तथा अनुयाज (अन्तिम आहुतियाँ), जलों का घृत तथा औषधियों का पुरुष दें। इस लिये वह कहते हैं अग्नि का प्रयाज और अनुयाज है तथा अग्नि का आज्य है। इससे देवों की जय तथा असुरों की पराजय हुई। जो इस प्रकार जानता है उसकी समृद्धि होती है और उसके शत्रु पराभूत होते हैं।

१.३ वे कहते हैं—'किस ऋतु में (अग्नि का) पुनराधान करे'। कुछ लोग कहते हैं कि 'वर्षाओं में'। वर्षाओं में ही सभी कामनायें (अवस्थित हैं) निश्चय ही इससे सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है। वर्षा के मध्य में पुनर्वसु नक्षत्र को देखकर (अग्नि का वह) पुनराधान करे और कहे—मुझे वसु (धन) और वित्त (समृद्धि) पुनः प्राप्त हो। यह पुनःकाम (अभीष्ट) की प्राप्ति के लिये (साधक होता है)। इसकाल में पूर्वपक्ष में (दर्श) पुनर्वसुओं से संयुक्त नहीं होता। (पूर्णिमा के अनन्तर) आषाढ़ी के अनन्तर अमावास्या को पुनः स्थापित करे। यह पुनर्वसुओं से संयुक्त होती है। अमावस्या में कामना की प्राप्ति होती है। वर्षा में कामना की प्राप्ति होती है पुनर्वसुओं में कामना को प्राप्ति होती है। अतः उसी में पुनराधान करे। पुरोडाश (यज्ञीय चरु) पञ्च कपालों (पात्रों) में दी जाती है, पंक्ति (छन्द) पञ्चपदा होती है, यज्ञ पञ्चपदीय (पाङ्क्त) होता है (अतः यह) यज्ञ की प्राप्ति के लिये (होता है)।

१.४ वह विभक्ति (विभागपूर्वक) से प्रयाज (पूर्व आहुतियाँ) तथा अनुयाज (उत्तरआहुतियाँ) देता है। ऋतुएं ही प्रयाज-अनुयाज हैं। अतः वह ऋतुओं से ही इन्हें लेता है। 'अग्न आयाहि वीतये' (हे अग्नि तृप्ति के लिये आवो), 'अग्निं दूतं वृणीमहे (अग्नि को हम दूत चुनते हैं),

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जङ्घनदग्नेः स्तोमं मनामहेऽग्नायो मर्त्यो दुव इत्येतासामृचां प्रतीकानि विभक्तयस्ता वै षड् भवन्ति षड्वा ऋतव ऋतुभ्य एवैनं तत्पुनः समाहरतीति यथायथमुत्तमौ प्रयाजानुयाजौ तथा हास्य प्रयाजानुयाजेभ्योऽनितं भवति वार्त्रघ्नः पूर्व आज्यभागः पाप्मन एव वधायाथो हास्य पौर्णमासात्तन्त्रादनितं भवत्यग्निं स्तोमेन बोधये-त्यग्नये बुद्धिमते पूर्वं कुर्यादिति हैक आहुः स्वपितीव वा एतस्याग्निर्योऽग्निमुद्वा-सयते तदेवैनं तत्पुनः प्रबोधयतीति वार्त्रघ्नस्त्वेव स्थितोऽग्न आयूंषि पवस इत्यु-त्तरस्य पुरोनुवाक्या पवस इति तत्सौम्यं रूपं केवलाग्नेयो हि यज्ञक्रतुस्तद्यत्पव-मानस्य कीर्तयति तथा हास्य सौम्यादाज्यभागादनितं भवति पदपङ्क्तयो याज्या-पुरोनुवाक्याः पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्यै ॥ ४ ॥

व्यतिषक्ता भवन्ति व्यतिषक्ता इव वा इमे प्राणा आत्मानं भुञ्जन्तीति सा सर्वैव ससामिधेनीकोपांशु भवत्या पूर्वाभ्यामनुयाजाभ्यामाज्यतो विभक्तयोऽनुप्रोता भवन्त्यथो सर्वे वै कामा विभक्तिषु तस्मादुपांशु भवन्ति सर्वेषामेव कामानामाप्त्या

'अग्निनाऽग्निः समिध्यते' (अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होता है), 'अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्' (अग्नि शत्रुओं को नष्ट करें), 'अग्ने स्तोमं मनामहे' (अग्नि की स्तुति हम चिन्तन करें), अग्नायो मर्त्यो दुव (अग्नि की जो मनुष्य सेवा करता है।) ये ऋचाओं के प्रतीक ही विभक्तियाँ हैं। वे छः हैं। ऋतुएँ छः हैं। ऋतुओं से ही पुनः इसे समाहृत करता है। अन्तिम प्रयाज तथा अनुयाज अपरिवर्तित रहते हैं। इस प्रकार वह प्रयाज तथा अनुयाज से पृथक् नहीं होता। पूर्व आज्य (घृत) भाग वृत्रनाश से संबद्ध (वार्त्रघ्न) है। निश्चय ही यह पाप्मा (पापी) के वध के लिये (होता है)। वह पौर्णमास तन्त्र (यज्ञ) से पृथक् नहीं होता। कुछ लोग कहते हैं कि प्रथम (आज्य) बुद्धिमान् अग्नि को 'अग्निं स्तोमेन बोधय' (हे अग्नि स्तुति से आप जगें) यह कह कर दे। जो अग्नि को बाहर (उद्वासित) करता है उसके अग्नि सोते से रहते है अतः वह निश्चय ही उन्हें पुनः जाग्रत करता है। वार्त्रघ्न (वृत्रनाश से संबद्ध) ही स्थित (मान्य) है। अग्न आयूंषि पवस (हे अग्नि आप आयु को पवित्र करते हैं)यह द्वितीय(आज्यभाग)की पुरोनुवाक्या है। 'पवस' यह सौम्य (सोमसंबन्धी) रूप है। यज्ञ क्रतु पूर्णतः अग्नि का है अतः 'पवमान' के कथन से आज्य भाग सोम से पृथक् नहीं होता। आज्या और पुरोनुवाक्या (मंत्र) पदपंक्ति हैं। पंक्ति में पांच चरण होते हैं। यज्ञ पाङ्क्त (पञ्चधा) होता है। यज्ञ की प्राप्ति के लिये ये होते हैं।

१.५(मंत्र)व्यतिषक्त(परस्पर संसक्त)होते हैं क्योंकि व्यतिषक्त की भाँति ही ये प्राणवायु आत्मा का उपभोग करते हैं। सामिधेनी सहित सभी आहुतियाँ प्रथम दो अनुयाजों तक उपांशु (मन्दस्वर में) दी जाती हैं। आज्य शब्द के अनन्तर विभक्तियाँ अनुप्रोत हैं। सभी कामनायें विभक्तियों में हैं अतः सभी कामनाओं की प्राप्ति के लिये उपांशु (मन्दस्वर में)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उच्चैस्त्वेवोत्तमेनानुयाजेन यजत्युच्चैःसूक्तवाकशंयोर्वाकावाह तद्यथाऽविदमित्या-विर्नष्टं कुर्यादेवं तदाविष्कामान्करोत्यापमिति त्रयमु हैक उपांशु कुर्वन्ति विभक्ती-रुत्तरमाज्यभागं हविरित्येतावध्यागन्तु(?) भवतीति सा वा उपांशु निरुक्ता भवति द्वयं वा अग्ने रूपं निरुक्तं चानिरुक्तं च तदेवास्य तेनाऽऽप्नोति सर्वाग्नेयं हैके कुर्वन्ति न तथा कुर्यात्तस्यै पुनरुत्स्यूतो जरत्संव्यायः पुनः संस्कृतः कद्रथोऽन-ड्वान्हिरण्यं वा दक्षिणा पुनः कर्म ह्येतदादित्या द्वितीया प्रतिष्ठा वा अदितिः प्रतिष्ठित्या एव प्रतिष्ठित्या एव ॥ ५ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ हरिः ॐ ॥

धर्मो वा एष प्रवृज्यते यदग्निहोत्रं तदसौ वै धर्मो योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणाति स वै सायं च प्रातश्च जुहोत्यग्नये सायं सूर्याय प्रातः सौर्यं वा अहरा-ग्नेयी रात्रिर्मुखत एव तदहोरात्रे प्रीणाति पयसा जुहुयादेष ह वै सर्वासामोषधीनां

होती है। उत्तम (अन्तिम) अनुयाज में उच्च स्वर में यजन करता है। सूक्तवाक और शंयोर्वाक को वह उच्च स्वर में उच्चारण करता है। जैसे मनुष्य नष्ट को 'प्राप्त कर लिया' प्रकट करता है वैसे ही वह अपनी कामनाओं को 'मैंने प्राप्त कर लिया' ऐसा व्यक्त करे। तथापि कुछ लोग तीन (भागों) को उपांशु (मन्द स्वर) में करते हैं—विभक्ति, उत्तर (द्वितीय) आज्यभाग तथा हवि। 'इतना ही वहाँ बाह्य (आगन्तुक) है। आहुति उपांशु (मन्दस्वर) या निरुक्त (उच्चस्वर) में होती है। अग्नि के दो रूप होते हैं—एक वह जो स्पष्ट रूप से कहा हो (निरुक्त) और दूसरी वह जो अस्पष्ट उक्त (अनिरुक्त) हो। इससे वह उनके उस भाव को प्राप्त करता है। कुछ लोग सभी अग्नि से करते हैं पर उसे ऐसा नहीं करना चाहिये। यज्ञ की दक्षिणा है जीर्ण आवरण युक्त पुनः जोड़ा गया तथा पुनः संस्कृत खराब रथ, वृषभ, या स्वर्ण। क्योंकि यह पुनः किया गया कर्म है। द्वितीय (आहुति) अदिति के लिये होता है। अदिति प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठिति (प्रतिष्ठा) के लिये यह होता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में प्रथम अध्याय समाप्त।

द्वितीय अध्याय

२ १ अग्निहोत्र में धर्म (यज्ञस्थाली) तप्त की जाती है। जो तप्त करता है वही धर्म है। वह उसी का प्रीणन (प्रसादन) करता है। वह सायं तथा प्रातः हवन करता है; अग्नि के लिये सायंकाल तथा सूर्य के लिये प्रातःकाल। अथवा दिन सौर्य (सूर्य से संबद्ध) तथा रात्रि अग्नेयी (अग्नि-संबद्ध) है अतः वह मुख से (प्रारम्भ से) दिन और रात्रि को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रसो यत्पयः सर्वैरेव तद्रसैरग्नीन्प्रीणाति तदु वा आहुर्यदशनस्यैव जुहुयात्सर्वं वा इदमग्नेरन्नं स्वेन वै तदन्नेनाग्नीन्प्रीणातीति गार्हपत्येऽधिश्रित्याऽऽहवनीये जुहुयाच्छ्रपणो वै गार्हपत्य आहवनीयस्तस्माद् गार्हपत्येऽधिश्रित्याऽऽहवनीये जुहुयाद्व्यन्तानङ्गारान्करोतीमावेव तं लोकौ वितारयति तस्माद्धीमौ लोकौ सहसन्तो नानेवाथ यदधिश्रित्यावज्योतयति श्रपयत्येवैनं तदथ यदपः प्रत्यानयत्यापः कृत्स्नानि ह वै सर्वाणि हवींषि भवन्ति हविष एव कृत्स्नताया यथयत्पुनर्वज्योतयत्यप एव तच्छ्रपयति त्रिरुपसादमुदग्घोमीयमुद्वासयति त्रैविध्याय त्रिवृद्धि देवकर्मानुच्छिन्नं निवहरेत्तथा ह यजमानोऽप्रच्यायुको भवत्यथोपवेषेण दक्षिणतोऽङ्गारानुपस्पृशति नमो देवेभ्य इति न हि नमस्कारमतिदेवाः सुप्रत्यूह्ळानङ्गारान्प्रत्यूहेत्तथा हास्य नान्तमचारिणी च न नश्यति चतुरुन्नयेच्चतुष्टयं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वस्याऽऽप्त्यै पञ्चकृत्व उन्नयेत्पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्यै ॥ १ ॥

प्रसन्न करता है। वह दुग्ध से हवन करे क्योंकि दुग्ध सभी औषधियों (वनस्पतियों) का रस है। अतः वह भी रसों से अग्नि को तृप्त करता है। इस विषय में कहते हैं—(किसी भी) भोजन से अग्नि का हवन करे क्योंकि यह समस्त अन्न अग्नि का ही (भोजन) है अतः वह अग्नियों को अपने (उसके ही) अन्न से तृप्त करता है। उसे गार्हपत्य पर रख कर वह उसे आहवनीय में हवन करे। गार्हपत्य अग्नि पकाने के लिये है और आहवनीय हवन के लिये अतः गार्हपत्य में रखकर आहवनीय में हवन करे। वह अंगारों के अन्तों को पृथक् करता है; निश्चय ही वह इससे दोनों लोकों को पृथक् करता है अतः ये दोनों लोक यद्यपि साथ हैं उन्हें पृथक् की तरह करता है। तदनन्तर उस पर (दुग्ध) रख कर (अग्नि को) प्रज्वलित करता है और इस प्रकार उसका पाक करता है। तब वह जल लाता है जल कृत्स्न (पूर्ण हैं) और इस प्रकार सभी हविष् पूर्ण होती हैं। हविष्य की पूर्णता का वे कार्य करते हैं। वह पुनः प्रज्वलित करता और जलों को ही पकाता है। तीन बार वह पात्रों को त्रिविधता के लिये क्योंकि देवों की आहुति त्रिविध है तीन बार वह पात्रों को आहुति के लिये स्थापित करता है और उत्तर की ओर हटाता है। विना नीचे गिराये (या विना अच्छिन्न किये) यह उसका आहरण करे अतः यजमान का पतन नहीं होता तदनन्तर उपवेश (दण्डे) के द्वारा दक्षिण से अङ्गारों का स्पर्श करता है और कहता है 'नमो देवेभ्यः' क्यों कि देवता नमस्कार से ऊपर नहीं हैं। अंगारों का भली भाँति प्रत्यूहन (व्यवस्थापन) करे। इससे अन्त की (अत्यन्त बाह्य) भी (आहुति) नष्ट नहीं होती। चार बार वह उन्नमन करे। यह सभी (विश्व) चतुर्वृत (चतुष्टय) है अतः इन सबकी प्राप्ति के लिये (वह ऐसा करे)। पांच बार वह उन्नयन करे (क्यों कि) यज्ञ पञ्चधा है और इस यज्ञ की प्राप्ति के लिये (वह ऐसा करे)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उपसदोऽग्निहोत्रे वेदितव्या उन्नीयोत्तरेण गार्हपत्यमुपसादयति यदिमं लोक-माप्नोत्याहवनीये होष्यं द्वितीयं तदन्तरिक्षलोकमाप्नोति हुत्वा तृतीयं तदमुं लोक-माप्नोति पालाशीं समिधमभ्यादधाति सोमो वै पलाशः सा प्रथमा सोमाहुतिः प्रादेशमात्री भवति प्रादेशमात्रं हीम आत्मनोऽभिप्राणाद्द्वयङ्गुलं समिधोऽतिरित्या-नुदृभंनिवाभिजुहोति द्वयङ्गुले वा इदं मुखस्यान्नं धीयते धूमायन्त्यां ग्रामकामस्य जुहुयाज्ज्वलन्त्यां ब्रह्मवर्चसकामस्याङ्गारेषु पशुकामस्याभ्याधायेति त्वेव स्थित-मत्र ह्येवैते सर्वे कामा उपायन्त इत्युभे आहुती हुत्वा जपति या यज्ञस्य समृद्ध-स्याऽऽशीः सा मे समृध्यतामिति या वै यज्ञस्य समृद्धस्याऽऽशीः सा यजमानस्य भवत्युत्तरावतीराहुतीर्जुहुयादुत्तरोत्तरेण एव तत्स्वर्गाँल्लोकानाप्नोति स्रुचो बुध्ने-नाङ्गारानुपस्पृशति स्वर्ग एव तं लोके यजमानं दधाति द्विरुदीचीं स्रुचमुद्यच्छति रुद्रमेव तत्स्वायां दिशि प्रीत्वाऽवसृजति तस्माद्धूयमानस्योत्तरतो न तिष्ठेदेतस्या-वलस्य देवस्य परिप्रार्धेऽसानीति तामुत्तरतः सायमुपमार्ष्टि प्रतीचीमादित्यं तदस्तं नयति दक्षिणत ऊर्ध्वां प्रातरादित्यं तदुन्नयति यत्पूर्वमुपमार्ष्टि तत्कूर्चे निलिम्प-

---

२.२ अग्निहोत्र में उपसद (बैठने की) विधि जाननी चाहिये। उठाकर गार्हपत्य के उत्तर में स्थापित करता है। इससे वह इस लोक को प्राप्त करता है। आहवनीय में वह दूसरी बार आहुति के समय स्थापित करता है। इससे वह अन्तरिक्ष-लोक प्राप्त करता है। आहुति देकर वह तीसरी बार (स्थापित) करता है और इससे इस लोक को प्राप्त करता है। वह पलाश को समिधा को धारण करता है। पलाश सोम है, यह सोम की प्रथमा-हुति है। यह प्रादेश (वितस्ति) मात्र होती है क्योंकि ये प्राण शरीर में प्रादेश मात्र हैं। समिध (यज्ञीयकाष्ठ) दो अङ्गुल का हो जैसे गांठ दी गई हो और उस पर आहुति दे। यह मुख को दो अङ्गुल चौड़ाई में अन्न रखा गया है। धूमान्वित में ग्राम की आकांक्षा वाले के लिये आहुति दे, प्रज्वलित में ब्रह्मवर्चस् की कामना वाले के लिय आहुति दे और अङ्गारों में पशुओं की कामना वाले के लिये आहुति दे। किन्तु नियम यह है कि (समिध) रखकर (वे कहें–) 'ये सभी कामनायें प्राप्त हो गई। दोनों आहुतियों का होम करके वह जप करता है—समृद्ध यज्ञ की आशिषें मुझ यज्ञकर्ता की समृद्ध (सफल) हों।' वह एक के बाद दूसरी (उत्तरावती) आहुतियों को दे। (इससे वह) उत्तरोत्तर स्वर्गलोकों को प्राप्त करता है। स्रुवा के मूल (बुध्न) से अङ्गार का स्पर्श करता है। इससे वह निश्चय ही यजमान को स्वर्गलोक में स्थापित करता है। स्रुवा को दो बार उत्तर की ओर उठाता है। इस प्रकार रुद्र को अपनी दिशा में प्रसन्न कर उन्हें भेजता है। अतः हूयमान (आहुति) के उत्तर में न खड़ा हो अन्यथा वह इस भयंकर देव के क्षेत्र उत्तर में खड़ा होगा। सायंकाल वह इसे उत्तर दिशा में पश्चिम की ओर सिरा कर रगड़ता (प्रक्षालित) है इस प्रकार वह सूर्य को अस्त करता है। प्रातः इसके सिरा को ऊपर कर दक्षिण दिशा में (रगड़ता है) इस प्रकार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्योषधींस्तेन प्रीणाति यद्द्वितीयं तद्दक्षिणेन कूर्चमुत्तानं पाणिं निदधाति पितृंस्तेन प्रीणात्यथ यद्द्विः प्रदेशिन्या प्राश्नाति गर्भान्पूर्वेण प्रीणाति तस्मादनश्नन्तो गर्भाः प्राणन्ति वयांस्युत्तरेण तस्माद्वयांसि बहु किञ्च किञ्चिदिव भक्षयन्ति श्वेतमिव प्रस्नावयन्त्यथ यत्स्रुचा भक्षयति भूतं च तेन भव्यं च प्रीणात्यथ यत्स्रुचं निर्लेढि सर्पदेवजनांस्तेन प्रीणात्यथ यत्स्रुचं मार्जयते रक्षोदेवजनांस्तेन प्रीणात्यथ यत्प्रागुदीचीरप उत्सिञ्चति गन्धर्वाप्सरसस्तेन प्रीणात्यथ यत्प्रागुदीचीं स्रुचमुद्दिशति रुद्रमेव तत्स्वायां दिशि दधात्येवमग्निहोत्रेण सर्वाणि भूतानि प्रीणाति ॥ २ ॥

आहवनीय एव जुहुयादिति हैक आहुः सर्वेषु त्वेव जुहुयाद्धोमाय ह्येत आधीयन्ते चतस्रो गार्हपत्ये चतस्रोऽन्वाहार्यपचने द्वे आहवनीये ता दश संपद्यन्ते दशदशिनी विराट्छ्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै स य एवं विराट्सम्पन्नमग्निहोत्रं जुहोति सर्वान्कामानाप्नोति ॥ ३ ॥

वह सूर्य का उन्नमन करता है। जो वह प्रथम बार प्रक्षालित करता है उसे चटाई (कूर्च) पर पोंछता है इससे वह ओषधियों को प्रसन्न (तृप्त) करता है। जो दूसरी बार (रगड़ता) है तब हाथ को चटाई के दक्षिण उत्तान रखता है इससे पितरों को तृप्त (प्रसन्न) करता है और जो प्रदेशिनी (तर्जनी) से दो बार प्राशन करता है उसमें प्रथम से गर्भों को तृप्त करता है। इससे गर्भ यद्यपि खाते नहीं पर श्वास ग्रहण करते हैं। द्वितीय से पक्षियों को तृप्त करता है। इससे पक्षी बहुत सा जो कुछ (बाह्य-किंच किंच) पदार्थ खाते हैं और श्वेत की तरह निकालते हैं और जो स्रुवा से खाता है उससे भूत (जो हो गये हैं) और भव्य (जो होने वाला है) को तृप्त करता है। और जो स्रुवा को चाटता है उससे सब देवगणों को तृप्त करता और जो स्रुवा को स्वच्छ करता है उससे राक्षस देव गणों तृप्त करता है। जो पूर्व और उत्तर में जल छिड़कता है उससे गन्धर्वों और अप्सराओं को तृप्त करता है। जो पूर्व उत्तर में स्रुवा को दिखाता उससे रुद्र को अपनी दिशा में स्थापित करता है। इस प्रकार अग्निहोत्र से सभी प्राणियों को तृप्त करता है।

२.३ कुछ लोगों का कहना है कि आहवानीय में ही हवन करे। पर सभी (अग्नियों) में होम करना चाहिये क्योंकि इनका होम के लिये ही आधान होता है। चार गार्हपत्य में दी जाती है, चार अन्वाहार्यपचन में, दो आहवनीय में। ये दश होती हैं। विराज दश की शृंखलावाला है। विराज श्री हैं, विराज भोज्य अन्न है। श्री, विराज और अन्न की प्राप्ति के लिये ये हैं। जो विराज से युक्त अग्निहोत्र का हवन करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ यद्धुत्वाऽग्नीनुपतिष्ठते प्रीत्वैव तद्देवेष्वन्ततोऽर्थं वदते यद्वेव वत्सं स्पृशति तस्माद्वात्सप्रं तथा ह यजमानात्पशवोऽनुत्क्रामुका भवन्त्यथ यदप आचम्य व्रतं विसृजतेऽप्स्वेव तद्व्रतं दधाति ता अस्य व्रतं गोपायन्त्या पुनर्होमात् ॥ ४ ॥

अथ यत्प्रवत्स्यंश्च प्रोषिवांश्चाग्नीनुपतिष्ठतेऽभिवादो हैष देवतायै यदुत्काशं भवत्यथोऽग्निभ्य एवैतदात्मानं परिदधाति ये चैनमन्वञ्चो भवन्ति ॥ ५ ॥

अथ यदरण्योरग्नीन्समारोहयते देवरथो वा अरण्ये देवरथ एवैनं तत्समारोहयते स एतेन देवरथेन स्वस्ति स्वर्गं लोकं समश्नुते यद्वेव पुनः पुनर्निर्मन्थ्यते तेनोहैवास्य पुनराधेयमुपाप्तं भवति ॥ ६ ॥

यैवैके चाऽऽनन्दा अन्ने पाने मिथुने रात्र्या एव ते संतता अव्यवच्छिन्नाः क्रियन्ते तेषां रात्रिः कारोतरो य उ वैके चाऽऽनन्दा अन्नादेव ते सर्वे जायन्ते ते देवा अब्रुवन्कथन्विमान्वयमानन्दा तस्मादृशस्यैव प्रतिगृह्णीयामेति तेऽपामूर्ध्वं रसमुदौहंस्ता ओपधयश्च वनस्पतयश्च समभवन्नोषधीनां च वनस्पतीनां चोर्ध्वं

२.४ जो हवन करने के बाद अग्नियों की सेवा करता है (उपतिष्ठते) वह प्रसन्न होकर अन्त में देवों से (अपना) अर्थ (स्वार्थ) कहता है। जो वत्स का स्पर्श करता है इसके लिये 'वत्सप्री' (ऋ० १०.४५) सूक्त है! इससे पशु यजमान से नहीं हटते। जल का आचमन कर जो व्रत का उत्सर्ग करता है निश्चय ही जल में वह व्रत को रखता है। वे (जल) इसके व्रत को पुनः होम तक रक्षा करते हैं।

२.५ जो यात्रा करते समय या यात्रा में वह अग्नियों की उपासना करता है यह (अग्नि) देवता का अभिवादन है और यह बाहर जाना होता है। यह अग्नि को अपने को समर्पित करता है (या अग्नियों की प्रति श्रद्धा करता है) और उसके जो अनुवर्ती हैं उनके लिये भी समर्पित करता है।

२.६ जो दो अरणियों (यज्ञकाष्ठों) पर अग्नियों को आरूढ कराता है। अरणी देवताओं का रथ है और इसलिये वह देवरथ पर भी उन्हें आरूढ करता है। वह उस देवरथ से कुशलतापूर्वक स्वर्गलोक को प्राप्त करता है और जो पुनः पुनः (अग्नि का) मन्थन करता है उससे अग्नि का पुनः स्थापन होता है।

२.७ जितने भी आनन्द अन्न, पान, मिथुन में हैं वे सभी रात्रि के द्वारा ही संतत और अविच्छिन्न किये जाते हैं (अर्थात् रात्रि के द्वारा ही हैं)। रात्रि उनके लिये चलनी (तितउ) है। कुछ का कहना है कि सभी आनन्द अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। देवों ने कहा—इन आनन्दों को हमलोग वैसे से लें। उन्होंने जलों के रस को ऊपर फेंका। वे ओषधि और वनस्पति हो गये। ओषधियों और वनस्पतियों के रस को ऊपर फेंका

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रसमुदौहंस्ततफलमभवत्फलस्योर्ध्वं रसमुदौहंस्तदन्नमभवदन्नस्योर्ध्वं रसमुदौहंस्त-द्रेतोऽभवद्रेतस ऊर्ध्वं रसमुदौहं स पुरुषोऽभवत्सोऽयं पुरुषो यः प्राणिति वाऽपानिति वा न तत्प्राणेन नापानेनाऽऽहेति प्राणिषं वाऽपानिषं वेति वाचैव तदाह तत्प्राणापानौ वाचमपीतो वाङ्मयौ भवतोऽथ यच्चक्षुषा पश्यति न तच्चक्षुषाऽऽहेत्यद्राक्षमिति वाचैव तदाह तच्चक्षुर्वाचमप्येति वाङ्मयं भवत्यथ यच्छ्रोत्रेण शृणोति न तच्छ्रोत्रेणाऽऽहेत्यश्रौषमिति वाचैव तदाह तच्छ्रोत्रं वाचमप्येति वाङ्मयं भवत्यथ यन्मनसा संकल्पयते न(त)न्मनसाऽऽहेति समचीक्लृपमिति वाचैव तदाह तन्मनो वाचमप्येति वाङ्मयं भवत्यथ यदङ्गैः सुशीमं वा दुःशीमं वा स्पृशति न तदङ्गैराहेति सुशीमं वा दुःशीमं वाऽस्प्राक्षमिति वाचैव तदाह तत्सर्व आत्मा वाचमप्येति वाङ्मयो भवति तदेतदृचाऽभ्युदितं नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चनेति वाग्वा इन्द्रो न ह्यृते वाचः पवते धाम किञ्चन स वै सायं जुहोति ॥ ७ ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति तं ज्योतिः सन्तं ज्योतिरित्याह स सत्यं वदति तस्यायं वाङ्मय आत्मा सत्यमयो भवति सत्यमया उ देवा अथ स्वाहेति जुहोति

वह फल हो गया। फल के रस को ऊपर फेंका। वह अन्न हो गया। अन्न के रस को ऊपर फेंका। वह रेतस् हो गया। रेतस् (बीज) के रस को ऊपर फेंका वह पुरुष हो गया। यह पुरुष है जो साँस (प्राण) बाहर-भीतर लेता है। प्राण और अपान (बाहरी-भीतरी श्वास) यह नहीं कहता कि मैं प्राण और अपान (श्वास छोड़ना और लेना) कर रहा हूँ। यह वाणी ही कहती है। इस प्रकार प्राण और अपान वाणी में प्रवेश करते हैं और वाङ्मय हो जाते हैं। जो आँखों से देखता है वह आँख से नहीं कहता कि ऐसा देखा हूँ वाणी से ही उसे कहता है इस प्रकार आँख वाणी में प्रवेश करती है और वाङ्मय हो जाती है और जो कान से सुनता है वह कान से नहीं कहता कि ऐसा सुना हूँ वाणी से ही उसे कहता है अतः श्रोत्र वाणी में प्रवेश करता है और वाङ्मय हो जाता है और जो मन से संकल्प करता है उसे मन से नहीं कहता (कि ऐसा) मैंने सोचा यह वाणी से ही कहता है अतः मन वाणी में प्रवेश करता है और वाङ्मय होता है और जो अंगों से सुस्पर्श या दुःस्पर्श का स्पर्श करता है वह अङ्गों से नहीं कहता कि सुखद या दुःखद स्पर्श वाले आधार का स्पर्श किया। उसे वाणी से ही कहता है। अतः सम्पूर्ण आत्मा वाणी में ही प्रवेश करता है और वाङ्मय हो जाता है। और यह ऋचा में भी कहा गया है—इन्द्र के विना कोई भी धाम (रूप) शुद्ध नहीं है।[1] इन्द्र ही वाणी हैं। वाणी के विना कोई भी धाम (रूप) शुद्ध नहीं है। सायंकाल वह (यह कहते हुये) होम करता है।

२.८. 'अग्नि ज्योति है, ज्योति अग्नि है'। उस ज्योति को वह ज्योति कहता है। वह सत्य कहता है। उसकी वाङ्मय (वाणीरूप) आत्मा सत्यमय होता है। देव भी सत्यमय

१. ऋग्वेद ९.६९.६।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तस्यैतां देवाः सत्यहुतस्याऽऽहुतिं प्रतिगृह्णन्ति रात्र्या उ शीर्षं सत्यं वदति स यदि ह वा अपि तत ऊर्ध्वं मृषा वदति सत्यं हैवास्योदितं भवति रात्र्या उ हि शीर्षं सत्यं वदत्यथ प्रातर्जुहोति सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य इति तं ज्योतिः सन्तं ज्योतिरित्याह स सत्यं वदति तस्यायं वाङ्मय आत्मा सत्यमयो भवति सत्यमया उ देवा अथ स्वाहेति जुहोति तस्यैतां देवाः सत्यहुतस्याऽऽहुतिं प्रतिगृह्णन्त्यह्न उ शीर्षं सत्यं वदति स यदि ह वा अपि तत ऊर्ध्वं मृषा वदति सत्यं हैवास्योदितं भवत्यह्न उ हि शीर्षं सत्यं वदति स वा एषोऽग्निरुद्यत्यादित्य आत्मानं जुहोत्यथास्तं यं सायेऽग्नावात्मानं जुहोति रात्रिरेवाहं जुहोहोत्यरात्र्यां प्राण एवापाने जुहोत्यपानः प्राणे तानि वा एतानि षड्जुह्वत्यन्योन्य आत्मानं यो ह वा एतानि षड् जुह्वति वदाजुह्वत एवास्य हुतं भवति जुह्वत एवास्य द्विर्हुतं भवति य एवं वेद स यदि ह वा अपिसुरिशानेनेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति प्रति हैवास्यैते आहुती देवा गृह्णन्ति यस्यो ह वा अपि देवाः सकृदश्नन्ति तत एव सोऽमृतः सत्यमयो ह वा अमृतमयः संभवति य एवं वेद तद्यथा ह वै श्रद्धा देवस्य सत्यवादिनस्तपस्विनो हुतं भवत्येवं हैवास्य हुतं भवति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्मादेवंविदग्निहोत्रं जुहुयादिति ॥ ८ ॥

है। पुनः वह 'स्वाहा' कहकर हवन करता है। देवता उस सत्य आहुतिवाले की इस आहुति को ग्रहण करते हैं। रात्रि के शीर्ष (प्रारम्भ) में वह सत्य बोलता है। यदि वह उसके बाद मृषा (असत्य) भी बोलता है तो सत्य ही इसका उदित (कहना) होता है क्योंकि रात्रि के शीर्ष में वह सत्य बोलता है। (वह) प्रातः (यह कहते हुए) हवन करता है—सूर्य ज्योति है ज्योति सूर्य है। जो ज्योति है उसे वह ज्योति कहता है। वह सत्य कहता है। उसकी वाणीमय आत्मा सत्यमय हो जाती है। देवगण सत्यमय हैं। पुनः वह 'स्वाहा' कहकर हवन करता है। उस सत्य आहुति वाले की इस आहुति को देवता ग्रहण करते हैं। क्योंकि वह दिन के शीर्ष (प्रारम्भ) में सत्य कहता है अतः उसके बाद यदि वह मृषा भी कहता है तो उसका सत्य ही कहना होता है क्योंकि वह दिन के शीर्ष में सत्य कहता है। वह अग्नि ही इस उदित हो रहे सूर्य में अपने को हवन करता है। सूर्य अस्तकाल में अपने को अग्नि में हवन करता है। रात्रि भी अपने को दिन में हवन करती है और दिन अपने को रात्रि में। प्राण (अपने को) अपान में हवन करता है और अपान (अपने को प्राण में) ये छः अपने को एक-दूसरे में हवन करते हैं। जो इन्हें हवन करने वाले में जानता है तो न हवन करने पर भी उसका हवन किया होता है और हवन करने पर जानने वाले का दुगना हवन किया हुआ होता है। और जो इस प्रकार जानता हुआ विद्वान् अत्यल्प[1] से भी हवन करता है तो उसकी दी आहुतियों को देवता ग्रहण करते हैं

---

१. डा० कीथ ने 'सुरिशान' के स्थान पर 'सुलेशात्' मानकर अत्यल्प अर्थ किया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उदिते होतव्या३मनुदित इति मीमांसन्ते स य उदिते जुहोति प्रवसत एवैतन्महते देवायाऽऽतिथ्यं करोत्यथ योऽनुदिते जुहोति संनिहितायैवैतन्महते देवायाऽऽतिथ्यं करोति तस्मादनुदिते होतव्यं तद्धापि वृषशुष्मो वा तावतः पूर्वेषामेको जीर्णिः शयानो रात्र्यामेवोभे आहुती हूयमाने दृष्ट्वोवाच रात्र्यामेवोभे आहुती जुह्वतीति रात्र्यां हीति स होवाच वक्तास्मोन्वे वयममुं लोकं परेत्य पितृभ्योऽथो एनं नः श्रद्धातारो यद्वेवैतदुभयेद्युरग्निहोत्रमहूयतान्येद्युर्वा तदेतर्हि हूयते रात्र्यामेवेत्येतदेव कुमारी गन्धर्वगृहीतोवाच रात्र्यामेवोभे आहुती जुह्वतीति रात्र्यां हीति सा होवाच संधौ जुहुयात्समुद्रो ह वा एष सर्वंहरो यदहोरात्रे तस्य हैतेऽगाधे तीर्थे यत्संध्ये तद्यथाऽगाधाभ्यां तीर्थाभ्यां समुद्रमतीयात्तादृक्तद्यत्संधौ जुहोत्यथो देवसेना ह वा एषाऽध्वगा हनिष्यन्ति यदहोरात्रे तस्या हैते पक्षसी यत्संध्ये तद्यथा पक्षाभ्यां

और जिसको (आहुति को) देवता एक बार भी खा लेते हैं वह अमर (अमृत) हो जाता है। जो ऐसा जानता है वह सत्यमय और अमरतामय हो जाता है। जो इस प्रकार जानता हुआ अग्निहोत्र का हवन करता है उसकी आहुति उसी प्रकार की होती है जैसे देव में श्रद्धा रखने वाले सत्यवादी तपस्वी की आहुति होती है। अतः ऐसा जानने वाला अग्निहोत्र का हवन करे।

२.९ सूर्य के उदित होने पर हवन करे या विना उदित हुए हवन करे इस विषय में (लोग) विवाद (मीमांसा) करते हैं। जो सूर्य के उदित होने पर हवन करता है वह प्रवास (यात्रा) कर रहे महान् देव का आतिथ्य करता है और जो अनुदित (सूर्योदय से पूर्व) हवन करता है वह समीपवर्ती महान् देव का आतिथ्य करता है। अतः अनुदित सूर्य अवस्था में हवन करना चाहिए। प्राचीनों में से वृषशुष्म ने जो अत्यन्त जीर्ण हो गये थे तथा लेटे हुए थे रात्रि में दोनों आहुतियों को हवन किया जाता हुआ देखकर कहा था दोनों आहुतियों को रात्रि में ही (वे) हवन करते हैं। अतः रात्रि में (करना चाहिये)। रात्रि में वे करते हैं इसके लिये उन्होंने कहा कि उस लोक में जाने पर हम पितरों से कहेंगे और वे विश्वास करेंगे कि अग्निहोत्र जो दो दिनों होता था अब दो दिनों के स्थान पर एक दिन में और केवल रात्रि में होता है। गन्धर्व से गृहीत कुमारी ने भी यही कहा—रात्रि में ही दोनों आहुतियों का हवन करते हैं। उसने कहा कि रात्रि में ही करते हैं। सन्धिकाल में इसको करना चाहिये। दिन और रात्रि सभी को हरने वाले समुद्र (बाढ) है। संध्या ये इसकी अगाघ तीर्थ (उतरने के स्थान) हैं। जैसे (मनुष्य) अगाघ तीर्थ से समुद्र को पार किया करता है सन्धि में जो हवन करता है वह वैसा ही है। पुनः दिन और रात्रि देवताओं की सेना है जो मार्ग में मारने के लिये चलती है। दोनों संध्याएँ दो पक्ष हैं। जैसे पक्षों (पाँखों) से यात्रा जल्दी कर सकता है। जो सन्धि में हवन करता है वह वैसा ही है। पुनः दिन और रात मृत्यु के घेरनेवाले हाथ हैं। एक मनुष्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्षिप्रमध्वानमन्विथात्तादृक्तद्यत्संधौ जुहोत्यथो मृत्योर्ह वा एतो व्राजबाहू यदहोरात्रे तद्यथा व्राजबाहुभ्यां परिजिग्रहीष्यन्नन्तरेणातिमुच्येत तादृक्तद्यत्संधौ जुहोति तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिः सायमस्तमिते पुरा तमसस्तस्मिन्काले जुहुयात्स देवयानः केतुस्तमेवाऽऽरभ्य स्वस्ति स्वर्गं लोकं समश्नुते प्रातः पुरोदयादपहृते तमसि तस्मिन्काले जुहुयात्स देवयानः केतुस्तमेवाऽऽरभ्य स्वस्ति स्वर्गं लोकं समश्नुतेऽथ योऽतोऽन्यथाऽग्निहोत्रं जुहोति श्यामशबलौ हास्याग्निहोत्रं विषीदतोऽहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः स यो महारात्रे जुहोति श्यामो हास्याग्निहोत्रं विषीदत्यथ यो महाह्ने जुहाति शबलो हास्याग्निहोत्रं विषीदति तद्वै खलु यदैव कदाचन जुहुयाद्धुतसमृद्धिमेवोपासीतेति हुतसमृद्धिमेवोपासीतेति ॥ ९ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ हरिः ॐ ॥

यद्दर्शपूर्णमासयोरुपवसति न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति तस्मादुपवसत्युत मे देवा हविरश्नीयुरिति पूर्वां पौर्णमासीमुपवसेदितिपैङ्ग्यमुत्तरामिति

जो हाथों से घेर कर पकड़ने वाला है उससे (हाथों) के अन्तराल में बचा जा सकता है। ऐसा ही है जो सन्धिकाल में हवन करता है। कौषीतकि ने कहा है—सायंकाल सूर्यास्त के बाद अन्धकार होने से पहले के समय में हवन करना चाहिये। यह देवताओं के पास जाने का समय है; उससे आरम्भ कर मंगलपूर्वक स्वर्गलोक प्राप्त किया जाता है। प्रातः सूर्योदय से पहले अन्धकार हट जाने पर हवन करना चाहिये। देवताओं के पास जाने का यह काल है। इसको पकड़ कर वह सुरक्षित रूप से स्वर्गलोक चला जाता है। वह जो कि इससे अन्य काल में अग्निहोत्र हवन करता है (यम के दो कुत्ते) श्याम और शबल उसके अग्निहोत्र को फाड़ डालते हैं। दिन ही शबल (चितकबरा) है और रात्रि श्याम है। जो महारात्रि में हवन करता है श्याम उसके अग्निहोत्र को फाड़ता है और जो महादिन में हवन करता है शबल उसके अग्निहोत्र को फाड़ता है। अतः जब कभी भी वह हवन करे हुत की समृद्धि (सफलता) की वह उपासना (ध्यान) करे; हुत की समृद्धि की उपासना करे।

शाङ्खायन ब्राह्मण में द्वितीय अध्याय समाप्त।

तृतीय अध्याय

३.१ जो अमावस्या और पौर्णमासी को उपवास करता है (उसका कारण यह है) कि अव्रत के हवि को देवता नहीं खाते। अतः वह 'देवता मेरे हवि को खायें' (इस कामना से)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कौषीतकं यां पर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिरुत्तरां पौर्णमासीमुपवसेदनिर्ज्ञाय पुरस्तादमावास्यायां चन्द्रमसं यदुपवसति तेन पूर्वां प्रीणाति यद्यजते तेनोत्तरा-मुत्तरामुपवसेदुत्तरामु ह वै समुद्रो विजते सोममनुदैवतमेतद्वै देवसत्यं तच्चन्द्रमा-स्तस्मादुत्तरामुपवसेत् ॥ १ ॥

अथ यत्पुरस्तात्सामिधेनीनां जपति स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते हिंकृत्य सामिधे-नीरन्वाह वज्रो वै हिङ्कारो वज्रेणैव तद्यजमानस्य पाप्मानं हन्ति त्रिर्हिङ्करोति त्रिवृद्वै वज्रो वज्रमेव तदभिसम्पादयत्येतेन वै देवास्त्रिवृता वज्रेणेभ्यो लोकेभ्यो-ऽसुराननुदन्त तथो एवैतद्यजमान एतेनैवस्त्रि(?)वृता वज्रेणेभ्यो लोकेभ्यो द्विषतो भ्रातृव्यान्नुदत एकादश सामिधेनीरन्वाहैकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्त्रैष्टुभ इन्द्रस्तदुभाविविन्द्राग्नी आप्नोति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया पञ्चदश सम्पद्यन्ते पञ्चदश वै पूर्वपक्षापरपक्षयोरहानि तत्सामिधेनीभिः पूर्वपक्षापरपक्षावाप्नोत्यथो वज्रो वै सामिधेन्यः पञ्चदशो वै वज्रो वज्रेणैव तद्यजमानस्य पाप्मानं हन्ति यद्वेव त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमां यज्ञस्यैव तद्बर्हिरसौ नह्यति स्थेम्ने विस्रंसाय तासां वै त्रीणि षष्टिशतान्यक्षराणां भवन्ति, त्रीणि वै षष्टिशतानि सम्वत्सरस्याह्नां

व्रत करना है। पैङ्ग्य का मत है पूर्णिमा के प्रथम दिन (पूर्व व्यापिनी में) उपवास करे (किन्तु) कौषीतकि का मत है कि दूसरे दिन। नियम यह है कि (सूर्यास्त के समय) जब पूर्ण चन्द्र दिखाई पड़े उस दिन करे। (अतः) वह उत्तर (द्वितीय) पूर्णिमा को व्रत करे। जो अमावस्या को चन्द्र को पूर्व में विना देखे उपवास करता है इससे वह प्रथम (दर्श को) प्रसन्न करता है। इसमें वह यज्ञ करता है इससे दूसरे को (उत्तर-द्वितीय) को उपवास करे क्यों कि द्वितीयों को ही समुद्र अपने देवता चन्द्र के अनुसार प्रफुल्लित (ज्वारयुक्त) होता है। चद्रमा देवताओं के सत्य है। अतः वह दूसरे दिन उपवास करे।

३.२ और जो सामिधेनी (अग्न्याधान मंत्र) के पूर्व जप करता है वह स्वस्त्ययन (मंगल वाचन) करता है 'हिंकार करके सामिधेनी को दुहराता है। 'हिं' कार (ध्वनि) वज्र है। निश्चय ही वह वज्र से यजमान के पाप को नष्ट करता है। तीन 'हिंकार' तिहरे वज्र हैं। इससे वह वज्र का ही संपादन (उत्पादन) करता है। इस त्रिवृत् (तिहरे) वज्र से देवों ने असुरों को इन लोकों से दूर किया और निश्चय ही यजमान इस त्रिवृत् वज्र से द्वेष कर रहे भ्रातृव्यों (शत्रुओं) को इन लोकों से दूर करता है। वह ग्यारह सामिधेनी (मंत्रों) का पाठ करता है। त्रिष्टुभ में ग्यारह अक्षर हैं। इन्द्र त्रिष्टुभ से संबद्ध हैं। इस प्रकार वह इन्द्र और अग्नि दोनों को प्राप्त करता है। प्रथम को तीन वार और अन्तिम को तीन बार वह पढ़ता है। इस प्रकार वे पन्द्रह होती हैं। मास के प्रथम और द्वितीय पक्षों के दिन पन्द्रह हैं। इस प्रकार सामिधेनी मन्त्रों से वह मास के प्रथम और द्वितीय पक्षों को प्राप्त करता है। और सामिधेनी मंत्र वज्र हैं। वज्र पञ्चदश

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्सामिधेनीभिः सम्वत्सरस्याहान्याप्नोति ता वै गायत्र्यो भवन्ति गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दाः स्वेनैव तच्छन्दसाऽग्निं स्तौत्यभिरूपा भवन्ति यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्या उत्तमायै तृतीये वचने प्रणवेन निगदमुपसन्दधात्यग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारतेत्यग्निर्वै भरतः स वै देवेभ्यो हव्यं भरत्यथ तद्यज-मानस्याऽऽर्षेयमाह न ह वा अनार्षेयस्य देवा हविरश्नन्ति तस्मादस्याऽऽर्षेय-माहाऽथैतं पञ्चदशपदं निगदमुपसन्दधात्येष ह वै सामिधेनीनां निवित्तस्मात्पञ्च-दशपदो भवति पञ्चदश हि सामिधेन्यः स वा च्छन्दस्कृतो भवति द्वयं वा इदं सर्वं छन्दस्कृतं चाच्छन्दस्कृतं च तेन सर्वेणाग्निं स्तवानीति तस्य सप्त पदानि समस्यावस्येत्सप्त वै च्छन्दांसि सर्वेषामेव च्छन्दसामाप्त्या अथ चत्वार्यथ चत्वारि चतुष्टयं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वस्याऽऽप्त्यै ॥ २ ॥

अथ यद्यवग्राहं देवता आवाहयति नाना ह्याभ्यो हवींषि गृहीतानि भवन्त्यथ यदग्निमग्निमावाहयत्येषा ह वा अग्नेर्यज्ञिया तनूर्याऽस्य हव्यवाट्सा

(पर्वों वाला) है अतः वज्र से यजमान के पाप को दूर करता है। अथवा जो तीन वार प्रथम और तीन बार अंत में (जप) करता है उससे यज्ञ के ही दोनों छोरों को स्थिरता के लिये नद्ध करता है जिससे वे भ्रष्ट न हों। इन मंत्रों में तीन सौ साठ अक्षर हैं। वर्ष में तीन सौ साठ दिन हैं अतः सामिधेनी से वर्ष के दिनों को प्राप्त करता है। वे गायत्री मंत्र है। अग्नि गायत्री से संबद्ध है तथा गायत्री इनका छन्द है। इस प्रकार निश्चय ही वह अग्नि की उनके छन्द के द्वारा स्तुति करता है। वे अभिरूप (पूर्ण, अनुरूप) हैं। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध (पूर्ण) है। (वे) अग्नि की समृद्धि के लिये ही हैं। अंतिम मंत्र के तृतीय पाठ में वह (इस) निगद (कथन) को 'ओम्' से संयुक्त करता है— हे अग्नि ! आप महान् हैं, हे ब्राह्मण। हे भारत ! अग्नि भरत हैं। वे देवों के लिए हव्य ढोते (भरति) हैं। इसमें वह यजमान के आर्षेय (ऋषि परम्परा) को कहता है। ऋषि-मूल से रहित के हवि को देवता नहीं खाते। इससे इसके (यजमान के) ऋषि से उसकी परम्परा को कहता है। अनन्तर वह पन्द्रह तत्त्वों के कथन (निगद) को संयुक्त करता है। यह सामिधेनी (मंत्रों) का निविद है। इससे इसमें पन्द्रह तत्त्व हैं क्योंकि सामिधेनी मंत्र १५ हैं। यह छन्दस्कृत होता है। यह सभी दुहरा छन्दस्कृत और अच्छन्दस्कृत होता है (वह कहता है—) इन सभी से मैं अग्नि की स्तुति करूँ। सप्त पदों (तत्त्वों) को समन्वित करके रुके। छन्द सात हैं। इससे सभी छन्दों की प्राप्ति होती है। इसके बाद चार, चार (आते हैं) यह सभी चतुष्टय है। निश्चय ही इनसे सभी की प्राप्ति होती है।

३.३ जो देवताओं को पृथक् पृथक् आहूत करता है वह एतदर्थ कि इनको नाना (पृथक्) हविष् दिया जाता है। जो अग्नि को अग्नि के द्वारा आहूत करता है तो अग्नि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न्वा असौ यददोऽमुष्यादित्यस्योपरिष्टाद्व्यवभाति ज्योतिरिव तस्मात्पुरुषं पुरुषं प्रत्यादित्यस्तद्यदाहाऽग्निमग्न आवहेति तामावहेत्येव तादाहाऽथ यद्देवाँ आज्यपाँ आवाहयति प्रयाजानुयाजांस्तदावाहयत्यथ यदग्निं होत्रायाऽऽवाहयति स्विष्टकृतं तदावाह[य]त्यथ यत्स्वं महिमानमावाहयति वायुं तदावाहयति वायुर्वा अग्नेः स्वो महिमा तेन हि सम्पाद्य महिमानं गच्छति यद्वेव वाचाऽन्वाह वाचा जयति तेनोहैवास्य स्वो महिमेष्टो भवत्या च वह जातवेदः सुयजा च यजेत्याहाऽऽवह च जातवेदो देवाँ सुयजा च देवता यजेत्येवैनं तदाहाथ यत्पुरस्तात्सामिधेनीनां जपति वज्रो वै सामिधेन्यस्तमेवैतच्छमयति पुरस्तच्चोपरिष्टाच्चाथ यत्स्रुगादापनेन स्रुचा वा दापयति देवरथमेव तद्युनक्ति देवेभ्यो हविः प्रदास्यन्स एतेन देवरथेन स्वस्ति स्वर्गं लोकं समश्नुते ।। ३ ।।

प्रयाजान्यजन्यृतवो वै प्रयाजा ऋतूनेव तत्प्रीणाति ते वै पञ्च भवन्ति तैर्यत्किञ्च पञ्चविधमधिदैवतमध्यात्मं तत्सर्वमाप्नोति समिधो यजति वसन्तमेव वसन्ते वा इदं सर्वं समिध्यते तनूनपातं यजति ग्रीव ग्रीष्मो हि तन्वं

का वह रूप जो हविष् का वाहक है वह उसका यज्ञीय तनु (रूप) है। यह वही है जो सूर्य के ऊपर ज्योति की भाँति अवभासित होता है। इससे सूर्य प्रत्येक व्यक्ति को भासित होता है। तो जो यह कहता है कि हे अग्नि ! उसको लावो। तो वह कहता है कि उस (रूप) को ले आवो। और जो आज्य (घृत) पायी देवताओं का आवाहन करता है तो प्रयाज (पूर्व आहुतियों) और अनुयाज (पश्चादाहुतियों) को आहूत करता है। और जो अग्नि को होत्र के लिये आहूत करता है तो वह स्विष्टकृत् (आहुतियों) को आहूत करता है। और जो स्वमहिमा को आहूत करता है तो इस प्रकार वायु को आहूत करता है। वायु अग्नि की स्वमहिमा हैं क्योंकि उन्हीं के द्वारा वे महिमा प्राप्त कर चलते हैं। जो वाणी से कहा और वाणी से यजन किया इससे उसकी स्वमहिमा का यज्ञ हुआ (इष्टः)। 'आ च वह जातवेदः सुयजा च यज' (हे जातमात्र के ज्ञाता ! भलीभाँति यज्ञ करो) (इन शब्दों से) वह उनसे कहे—हे जात वेद ! देवताओं को लाओ और अच्छी प्रकार देवताओं का यजन करो'। और जो सामिधेनियों के पहले जपता है तो सामिधेनी वज्र हैं। वह पूर्व और पश्चात् उसे शमित करता है। जो स्रुवा को लेने के मन्त्र से दो स्रुवाओं को उठाता है तो देवरथ को ही जोड़ता है। देवताओं को हवि प्रदान करते हुये इस देवरथ से वह सुरक्षित रूप से स्वर्गलोक प्राप्त करता है।

३.४ वह प्रयाज (पूर्व आहुतियाँ) यजन करता है। ऋतु ही प्रयाज है। इस प्रकार वह ऋतुओं का प्रीणन (प्रसादन) करता है। वे पाँच हैं। अतः उनसे वह अपने में तथा देवताओं में जो कुछ पञ्चविध है उसे प्राप्त करता है। वह समिधाओं का यजन करता है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तपतीळो यजति वर्षा एव वर्षाभिर्हीळितमन्नाद्यमुत्तिष्ठति बर्हिर्यजति शरदमेव शरदि हि बर्हिष्ठा ओषधयो भवन्ति स्वाहाकृतिमन्तं यजन्ति हेमन्तमेव हेमन्ते वा इदं सर्वं स्वाहाकृतं तदाहुर्यत्पञ्चप्रयाजाः षळृत्तवः क्वैतं षष्ठमृतुं यजतीति यदेव चतुर्थे प्रयाजे समानयति तदेनमितरेष्वनुविभजत्यथ यदुत्तमे प्रयाजे देवताः समावपति प्रयाजभाज एवैनास्तत्करोति तद्यथाऽग्निः सर्वेषु हविःषु भागी भवत्येवं तदग्नेर्भागे देवता भागिनीः करोति नात्राग्निं होत्रादित्याह पशवो वै प्रयाजा रुद्रः स्विष्टकृन्नेद्रुद्रेण यजमानस्य पशून्नवृहाजानीति स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्त्विति हैक आहुर्न तथा कुर्यादर्धं ह वै यज्ञस्याऽऽज्यमर्धं हविः स यद्वाऽन्यतरद्ब्रूयादर्धं ह वै यज्ञस्य समिष्टं स्यादर्धमसमिष्टं तस्मात्स्वाहादेवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य हविषो व्यन्त्वित्येव ब्रूयात् ॥४॥

अथ यत्पौर्णमास्यां वार्त्रघ्नावाज्यभागौ भवतः पौर्णमासेन वा इन्द्रो

इससे वह वसन्त का (यजन करता है।) वसन्त में ही ये सभी समिद्ध (प्रज्वलित) होते हैं। वह तनूनपात का यजन करता है। इससे वह ग्रीष्म का यजन करता है क्योंकि ग्रीष्म ऋतु ही तनु (शरीर) को तपाता है। वह ईल (यज्ञीय अन्न) का यजन करता है। (इससे वह) वर्षाओं का यजन करता है। वर्षाओं से ही यज्ञीयान्न उत्पन्न होते हैं। बर्हि (कुश) का यजन करता है इससे वह शरद का यजन करता है। शरद में कुशस्थ ओषधियाँ होती हैं। अन्त में वह स्वाहाकृति का यजन करता है। इस प्रकार वह हेमन्त का यजन करता है। हेमन्त में ही यह समस्त स्वाहाकृत समृद्ध होता है। वे कहते हैं : 'प्रयाज पञ्च है और ऋतुयें छः हैं तो यह छठीं ऋतु का कहाँ यजन करता है।' तो जो चतुर्थ प्रयाज में (घृत) मिलाता है तो इसे दूसरों में विभक्त करता है और जो अन्तिम प्रयाज में देवताओं को मिलाता है तो उन्हें प्रयाजों में भागी बनाता है। जैसे अग्नि सभी प्रयाजों में भागी है अतः वह देवताओं को अग्नि के हिस्से में भागीदार बनाता है। वह यहाँ 'अग्नि होत्राद्' (मै० सं० ४.१०.३) नहीं कहता। प्रयाज पशु हैं। स्विष्टकृत् रुद्र है। मैं 'यज्ञीय पशुओं का संपर्क रुद्र से न करूँ।' कुछ कहते हैं 'आज्य (घृत) का आनन्द प्राप्त करते हुये हे अग्नि ! इस घृत का पान करें।' वह ऐसा न करे। यज्ञ का घृत एक अर्धांश है और दूसरा अर्धांश हवि है। यदि वह एक का ही इस प्रकार कहे तो यज्ञ का एक अर्धांश ही समिष्ट (हुत या सम्मिलित) हुआ और आधा असमिष्ट। अतः वह कहे— हे अग्नि ! आज्यपा देवगण आनन्दित होते हुये इस घृत और हवि से आनन्द प्राप्त करें। स्वाहा।

३.५. पौर्णमास (यज्ञ) में वार्त्रघ्न (वृत्रवध से संबद्ध) दो आज्य भाग होते हैं क्यों कि इन्द्र ने पौर्णमास (आहुतियों) से वृत्र को मारा।[1] अमावास्या की आहुति में वे

---

१. इसमें प्रयुक्त मन्त्र हैं ऋ. ८।४४।१२ और ६।१६।३४।

 CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वृत्रमहन्नदथ यदमावास्यायां वृधन्वन्तौ क्षयं वा अत्र चन्द्रो गच्छति तमेवैत-दाप्याययति तं वर्धयति तौ वै जुषाणयाज्यौ भवतः समानहविषो हि प्रयाजै-र्भवतोऽथो ब्रह्म वै जुषाणो ब्रह्मणैव तद्देवेभ्यो हविः प्रयच्छति तौ वै त्रिवृतौ भवतो ये यजामहो निगदो वषट्कारश्चक्षुर्वा आज्यभागौ त्रिवृद्वै चक्षुः शुक्लं कृष्णं लोहितमिति तौ न पशौ न सोमे करोति पशुना वै चक्षुष्मानध्वरो नेच्चतुरक्षं बीभत्समध्वरं करवाणीत्यथ यदावत्यो हूतवत्यः पुरोनुवाक्या भवन्ति प्रवत्यः प्रत्तवत्यो याज्या हूत्वैव तद्देवेभ्यो हविः प्रयच्छति ता वै गायत्री त्रिष्टुभो भवन्ति ब्रह्म वै गायत्री क्षत्त्रं त्रिष्टुब्ब्रह्मक्षत्त्राभ्यामेव तद्देवेभ्यो हविः प्रयच्छत्यथो एतावान्वै छन्दसो विकारः सर्वेणैव तच्छन्दसो विकारेण देवेभ्यो हविः प्रयच्छत्यृगन्ते वषट् करोति तथा हास्य सर्वा याज्या रूपवत्यो भवन्ति षळिति वषट्करोति षड्वा ऋतव ऋतूनेव तत्प्रीणाति बार्हन्तराथन्तरं वषट् कुर्यात्पुरस्ताद्दीर्घमुपरिष्टाद्ध्रस्वं यद्ध्रस्वं तद्रथंतरं यद्दीर्घं तद्बृहदथो इयं वै रथंतरमसौ बृहदनयोरेव तत्प्रतितिष्ठत्यथो एतावान्वै वाचो विकारः सर्वेणैव तद्वाचो विकारेण देवेभ्यो हविः प्रयच्छति भूर्भुव इति पुरस्ताद्ये यजामहस्य जपत्योजः सहस्सह ओजः

वृद्धि का उल्लेख करते हैं क्योंकि यहाँ चन्द्र क्षय हो जाता है और इससे वह उसे तृप्त और वृद्धिगत करता है। इसमें दोनों याज्य 'जुषाण' शब्द से युक्त होते हैं क्योंकि वे प्रयाज के समान हवि वाले होते हैं। 'जुषाण' ब्रह्म है अतः वह ब्रह्म के द्वारा ही देवों को हवि प्रदान करता है। ये दोनों आहुतियाँ त्रिवृत् (तिहरी) हैं 'ये यजामहे' निगद, वषट्कार, आज्य भाग चक्षु हैं। चक्षु त्रिवृत् है—श्वेत, कृष्ण, रक्त। इन आहुतियों को वह पशु और सोम यज्ञ में नहीं करता (क्योंकि वह सोचता है कि) यज्ञ पशु से ही चक्षुष्मान् (आँख वाला) होता है। उस यज्ञ को चार आखों वाला वीभत्स न करूँ। पुरोनुवाक्या (मंत्र) यत् युक्त (यदावत्यः) तथा 'हुत' युक्त (हुतवत्यः) होती हैं। याज्या मंत्रों में प्रवत्य (आगे हुत) तथा प्रत्तवत्य ('दी'गई') शब्द युक्त होती हैं। इस प्रकार हवन कर वह देवताओं को आहुति देता है। ये मंत्र गायत्री तथा त्रिष्टुभ् हैं। गायत्री ब्रह्म है, त्रिष्टुभ् क्षत्र है। अतः वह ब्रह्म तथा क्षत्र के द्वारा देवताओं को हवि प्रदान करता है। छन्द का इतना विकार है। अतः वह छन्द के सम्पूर्ण विस्तार (विकार) से देवताओं को हवि देता है। ऋचा के अन्त में वह 'वषट्' का उच्चारण करता है। इससे उसकी सभी 'याज्या' रूपवती हो जाती है। षट् के साथ वह वषट् करता है। छः ऋतुएँ हैं अतः इससे वह ऋतुओं को प्रसन्न करता है। वह वषट् को वृहत् और रथन्तर से संबद्ध उच्चारण करे जिसमें पुरतः दीर्घ तथा बाद में ह्रस्व हो। ह्रस्व रथन्तर है और दीर्घ वृहद् है। पुनः रथन्तर यह (पृथ्वी) है और वह (आकाश) वृहद् है और इन दोनों के बीच यह प्रतिष्ठित होता है। वाणी का इतना (वृहत्) विकार (विस्तार) है। अतः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वरित्युपरिष्टाद्वषट्कारस्य वज्रो वै वषट्कारस्तमेवैतच्छमयति पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाथो एते एव वषट्कारस्य प्रियतमे तनूयंदोजश्च सहश्च ताभ्यामेवैनं तच्छमयति ॥ ५ ॥

अथ यदग्निं प्रथमं देवतानां यजत्यग्निर्वै देवानां मुखं मुखत एव तद्देवान्प्रीणात्यथ यत्पौर्णमास्यामग्नीषोमौ यजत्यग्नीषोमौ वा अन्तर्वृत्र आस्तां ताविन्द्रो नाशक्नोदभिवज्रं प्रहर्तुं ताभ्यामेतं भागमकल्पयत्पौर्णमासं तौ वा उपांशु निरुक्तौ भवतोऽजामितायै यदुपांशु यजति तेन सोमं प्रीणाति यन्निरुक्तं तेनाग्निमथ यदमावास्यायामिन्द्राग्नी यजति प्रतिष्ठे वा इन्द्राग्नी प्रतिष्ठित्या एवाथ यत्सन्नयन्नमावास्यायामिन्द्रं यजत्येतज्ज्योतिर्वा अमावास्या न ह्यत्र चन्द्रो दृश्यतेऽथ यदसन्नयत्पुरोळाशान्तरेणोपांश्वायजत्यजामिताया अथ यत्संनयन्सांनाय्यस्यान्तरेणोपांश्वाज्यस्य यजति तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यदग्निं स्विष्टकृतमन्ततो यजत्येष ह वै देवेभ्यो हविः प्रयच्छति यो वा अन्नं विभजत्यन्ततः स भजतेऽथो रुद्रो वै स्विष्ट-

---

वह सभी वाणी-विस्तार से देवों को हवि प्रदान करता है। 'ये यजामहे' के पूर्व वह 'भूर्भुवः' का जप करता है। 'ओज (शक्ति) सह (बल) हैं, सह ओज है स्वः (प्रकाश)' इन शब्दों को वषट्कार के बाद जपे। 'वषट्कार शब्द वज्र है। निश्चय ही इससे वह इसको ऊपर-नीचे दोनों ओर से शमित करता है। जो 'ओज' और सह हैं ये वषट् के दो अत्यन्त प्रिय शरीर हैं। निश्चय ही इनके द्वारा वह उसे शमित करता है।

३.६. और जो अग्नि को देवताओं में प्रथम आहुति देता है (उसका कारण है कि) अग्नि देवताओं के मुख हैं (आद्य हैं) और वह मुख से ही देवताओं का प्रीणन करता है और जो पौर्णमासी में अग्नि और सोम का यजन करता है उसका (कारण है कि) अग्नि और सोम वृत्र के अन्दर थे उनके कारण इन्द्र वृत्र पर वज्र नहीं छोड़ सके। उनके लिये उन्होंने इस पौर्णमास भाग को रचा। वे दोनों मन्दस्वर (उपांशु) तथा उच्चस्वर (निरुक्त) से असाम्य (पृथक्त्व) के लिये यजित होते हैं। जो उपांशु यजन करता है उससे सोम को प्रसन्न करता है और जो उच्चस्वर से यजन करता है उससे अग्नि का प्रीणन करता है। जो दर्श को इन्द्र और अग्नि का यजन करता है वह इसलिये कि इन्द्र और अग्नि प्रतिष्ठा हैं अतः ये आहुतियाँ प्रतिष्ठा के लिये हैं और जो मिलाते हुये अमावस्या में इन्द्र के लिये यज्ञ करता है तो यह अमावस्या की ज्योति है क्यों यहाँ (इस समय) चन्द्रमा नहीं दिखाई पड़ते। और जो विना मिलाये हुये दो पुरोडाशों के बीच उपांशु (यज्ञ का) घृत हवन करता है वह एकता को हटाने के लिये (करता है)। और जो बिना मिलाये हुए उपांशु (यज्ञ के) घृत को दुग्ध आहुति के बीच देता है उसका ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। और जो स्विष्टकृत अग्नि का अन्त में यजन करता है वह इसलिये कि यह देवताओं को हवि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कृदन्तभाग्वा वा एष तस्मादेनमन्ततो यजति तस्य सच्छन्दसौ याज्यापुरोनुवाक्ये निगदो व्यवैति तेनाजामि भवति वषट्कृत्याप उपस्पृशति शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियते ॥ ६ ॥

अथ यत्प्रदेशिन्यामिळायाः पूर्वमञ्जनमधरौष्ठे निलिम्पत्युत्तरमुत्तरौष्ठेऽयं वै लोकोऽधरौष्ठोऽसौ लोक उत्तरौष्ठोऽथ यदाष्ठावन्तरेण तदिदमन्तरिक्षं तद्यत्प्राश्नातीमानेव तं लोकाननुसंतन्वन्प्रीणात्यथ यदिळामुपह्वयते सर्वेष्वेव तद्भूतेषूपहवमिच्छतेऽथो अन्नं वा इळाऽन्नमेव तदात्मन्धत्तेऽथो पशवो वा इळा पशूनामेवाऽऽप्त्यै तस्यां चतुरवानीति चतुष्टयं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वस्याऽऽप्त्या अथ यदिळामुपहूयावघ्राति पशवो वा इळा पशूनेव तदात्मन्धत्तेऽथ यदध्वर्युर्बर्हिषदं पुरोळाशं करोति पितॄनेव तत्प्रीणात्यथ यज्जपेनोत्तरेळां प्राश्नाति ब्रह्म वै जपो ब्रह्मणैवैनां तच्छमयत्यथ यत्पवित्रवति मार्जयन्ते शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियतेऽथ यदन्वाहार्यमाहरन्त्येतद्दक्षिणौ वै दर्शपूर्णमासौ तस्माद-

---

प्रदान करता है। जो अन्न का विभाग करता है वह अन्त में उसे प्राप्त करता (सेवन करता) है। पुनः रुद्र स्विष्टकृत् और अन्त में पानेवाले हैं और अन्त में उनका यजन करता है। उनके याज्या और पुरोनुवाक्या (आह्वानकारी और आहुति के) मन्त्र एक ही छन्द के हैं और निगद पृथक् है इससे पृथक् होता है। वषट्कार कहकर जल स्पर्श करता है। जल शान्ति और भेषज हैं। यह यज्ञ के अन्त में शान्ति और भेषज किया जाता है।

३.७. अधरोष्ठ पर इला (यज्ञीयान्न) का प्रथम अञ्जन प्रदेशिनी पर लेप करता है। अधरोष्ठ यह लोक है और उत्तरोष्ठ वह लोक है और ओष्ठों के बीच में जो है वह अन्तरिक्ष है इसलिये इनके बीच वह खाता है और इससे इन लोकों का सतत प्रीणन (प्रसादन) करता है। और जो इला का आह्वान करता है उससे वह सभी प्राणियों में यश की कामना करता है। अथवा इला अन्न है इससे वह अन्न को निश्चय ही अपने में रखता है। अथवा पशु ही इला हैं अतः यह पशुओं की प्राप्ति के लिये है। इस पर वह चार बार साँस लेता है। यह सब (विश्व) चतुष्टय है अतः यह इसी सर्व की प्राप्ति के लिये है। इला का आह्वान कर वह उसे सूँघता है। पशु ही इला है अत. वह पशुओं को ही अपने में रखता है। जो अध्वर्यु पुरोडाश (यज्ञीय चरु) को कुश पर रखता है इससे वह पितरों को तृप्त करता है और जो जप करते हुए उत्तर इला (यज्ञान्न) को खाता है (तो) ब्रह्म ही जप है और वह ब्रह्म से इसे शमित करता है। और पवित्रा (छालनी, शोधनी) पर अपने को मार्जित करते हैं (उसका हेतु है कि) जल शान्ति और भेषज है अतः यज्ञ के अन्त में शान्ति और भेषज किया जाता है और जो अन्वाहार्य का आहरण करते हैं तो इसलिये कि दर्श और पौर्णमास यज्ञ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न्वाहार्यमाहरन्त्यथ यत्समिधमनुमन्त्रयेत इध्मस्य वा एषैकाऽतिशिष्टा भवति तस्मादेनामनुस्तौति ॥ ७ ॥

अथ यत्त्रीननुयाजान्यजति त्रयो वा इमे लोका इमानेव तं लोकानाप्नोत्यथ यत्सर्वमुत्तममाह प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत्प्रतिष्ठित्या एवाथ यत्सूक्तवाकमाह प्रतिष्ठा वै सूक्तवाकः प्रतिष्ठित्या एवाथ यद्द्यावापृथिव्योः कीर्तयति प्रतिष्ठे वै द्यावा-पृथिवी प्रतिष्ठित्या एवाग्निरिदं हविरजुषतेति हैक आहुर्न तथा कुर्यादभ्यावर्तंते हास्य देवता पुनर्यज्ञ इति मन्वाना पुनर्मे हविः प्रदास्यतीति सा यजमानस्याऽऽशिषो निवर्तयति तस्माद्धविरजुषत हविरजुषतेत्येव ब्रूयादथो या एवैतत्पुरस्ताद्देवता यजति ताभिरेवैतदन्ततः प्रतितिष्ठत्यथ यत्सूक्तवाके यजमानस्य नाम गृह्णात्येष ह वै दैव आत्मा यजमानस्य यमृत्विजः संस्कुर्वन्ति तस्मादस्य नाम गृह्णात्यत्र हि जायत उच्चैर्गृह्णीयाद्यद्यथाऽऽचार्यः स्यात्तथा ह यजमानोऽप्रच्यावुको भवत्यथ पञ्चाऽऽशिषो वदतीळायां तिस्रस्ता अष्टावेताभिर्वै देवाः सर्वा अष्टीराश्नुवत तथो

की यह यज्ञीय दक्षिणा है। अतः अन्वाहार्य (सभी यज्ञीय अन्न) का आहरण करते हैं। जो समिधा का अनुमन्त्रण (आह्वान) करता है वह इस कारण कि इध्म (यज्ञीय इन्धन) का यही अवशिष्ट रहती है अतः इसका स्तवन करता है।

३.८. और जो तीन बार अनुयाजन करता है (तीन पश्चात् की आहुतियाँ देता है) (उसका हेतु है कि) ये लोक तीन हैं (अतः) वह तीन लोकों को प्राप्त करता है। और जो सभी उत्तम (अन्तिम) कहता है (तो) स्विष्टकृत् प्रतिष्ठा है अतः वह प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो सूक्तवाक् कहता है (तो) सूक्तवाक् प्रतिष्ठा है और वह प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है और जो वह द्यावा (आकाश) तथा पृथिवी का कथन करता है (तो उनका कारण यह है कि) द्यावा-पृथिवी प्रतिष्ठा है और इससे वह प्रतिष्ठा के लिये यह कहता है। कुछ लोग कहते हैं कि 'इस हवि को अग्नि ने उपभुक्त किया है' पर ऐसा वह न करे। क्योंकि उसका देवता यह सोचकर कि यह पुनर्यज्ञ हो रहा है और मुझे फिर हवि देगा लौट आता है और यजमान की आशिष को लौटा लेता है। अतः वह 'आहुति (का आनन्द) ले चुका है, आहुति ले चुका है' यही कहे। जिन देवताओं का वह प्रथम यजन करता है उन्हीं के द्वारा अन्त में प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। जो सूक्तवाक में यजमान का नाम लेता है उसका कारण यह है कि यजमान की दैवी-आत्मा का ऋत्विक्गण संस्कार करते हैं अतः उसका नाम लेता है क्योंकि यहाँ यह उत्पन्न होता है। उसका नाम जोर से ले भले ही वह आचार्य हो। इससे यजमान का पतन नहीं होता। वह पाँच आशिषों को कहता है। तीन (आशिषें) इला (यज्ञीयान्न) में है। इससे आठ हो जाती हैं। इनसे देवताओं ने सभी कामनाओं (अष्टियो, इष्टियों)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एवैतद्यजमान एताभिरेव सर्वा अष्टीरश्नुतेऽथ बर्हिषि प्राञ्चमञ्जलिं निधाय जपति नम उपेति न हि नमस्कारमतिदेवा अथ यच्छंयोर्वाकमाह प्रतिष्ठा वै शंयोर्वाकः प्रतिष्ठित्या एवाथो शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान्यज्ञाञ्छमयांचकार तस्माच्छंयोर्वाकमाहाथ यदप उपस्पृशति शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियते ॥ ८ ॥

अथ यद्गार्हपत्ये पत्नीसंयाजैश्चरन्ति गार्हपत्यभाजो वै पत्न्य आहवनीयभाग्यजमानस्तस्माद्गार्हपत्ये पत्नीसंयाजैश्चरन्ति ते वै चत्वारो भवन्त्या चतुरं वै द्वंद्वं मिथुनं प्रजननं प्रजात्यै ते वा उपांशु भवन्ति रेतःसिक्तिर्वै पत्नीसंयाजा उपांशु वै रेतः सिच्यतेऽभिरूपा भवन्ति यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्येव समृद्ध्या अथ सोमं त्वष्टारं देवानां पत्नीरग्निं गृहपतिमिति यजत्येता ह वै देवता मिथुनानामीशते ता अत्र प्रीणन्ति ता अत्र प्रीता मिथुनानि दधति सोमं प्रथमं यजति रेतस्तत्सिञ्चति त्वष्टारं द्वितीयं त्वष्टा वै रेतःसिक्तिं विकरोति ततः पत्न्यः पत्नीसंयाजा ह्येतेऽथ यदग्निं गृहपतिमन्ततो यजत्येतत्स्विष्टकृतो वै पत्न्यस्तस्मादेनमन्ततो यजत्यथ

को प्राप्त किया। इससे यजमान निश्चित रूप से सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। कुश पर अपनी अञ्जलि को पूर्वाभिमुख रखकर वह कहता है 'नम उपेति' क्योंकि देवता नमस्कार से ऊपर नहीं है। पुनः 'शंयोर्वाक' कहता है। 'शंयोर्वाक' प्रतिष्ठा है। इससे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। पुनः शंयु वार्हस्पत्य ने सभी यज्ञों का शमन (प्रसादन) किया। अतः वह 'शंयोर्वाक' कहता है। और जो जल का स्पर्श करता है (वह इसलिये कि) जल शान्ति (कारक) और भेषज हैं (अतः) यह यज्ञ के अन्त में शान्ति और भेषज किया जाता है।

३.९. और जो गार्हपत्य में पत्नियों का (देवताओं के साथ) यजन करते हैं उसका कारण है कि पत्नियाँ गार्हपत्य की भागिनी होती हैं और आहवनीय का भागी यजमान होता है अतः गार्हपत्य में पत्नियों का यजन होता है। इसकी संख्या चार है। द्वन्द्व, मिथुन, प्रजन चार तक हैं। (ये) प्रजनन के लिये (है)। ये उपांशु (मन्दस्वर) में किये जाते है। पत्नियों का यजन (पत्नीसंयाज) रेतस् का सिंचन है। रेतस् मन्दस्वर से ही सिक्त किया जाता है। वे अभिरूप (उचित, अनुरूप) होते हैं। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध है। ये यज्ञ की समृद्धि के लिये हैं। वह सोम, त्वष्टा, देवपत्नियाँ, अग्नि और गृहपति का यजन करता है। ये देवता मिथुन के स्वामी हैं। उन्हें वह यहाँ प्रसन्न करता है। ये प्रसन्न होकर यहाँ मिथुन को धारण करते (देते) हैं। सोम का वह प्रथम यजन करता है। इस प्रकार वह रेत का सिंचन करता है। त्वष्टा को दूसरे पर वह यजन करता है। त्वष्टा सिंचित रेत का विकिरण करते हैं। पुनः पत्नियों को क्योंकि ये पत्नियों के लिये (उनसे संबद्ध) यज्ञ है। और जो अग्नि तथा गृहपति का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यजत्यथ यदृचं जपति स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुतेऽथ यदिळामुपह्वयते यन्मार्जयते यच्छंयोर्वाकमाह तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यद्वेदे पत्नीं वाचयति वृषा वै वेदो योषा पत्नी मिथुनमेव तत्पत्नीषु दधाति तस्मात्पत्नी वेदतृणान्यन्तरोरू कुरुतेऽथ यद्वेदं स्तृणाति तेन हास्य दर्शपूर्णमासौ संततौ भवतोऽथो एतेनैवास्याग्निहोत्रं स्तीर्णं बर्हिर्भवत्यथ यद्वेदातिशेषमुपतिष्ठत आशिषमेव तद्वदतेऽथ यदाहवनीयमुपतिष्ठते प्रीत्वैव तद्देवेष्वन्ततोऽर्थं वदतेऽथ यदप उपस्पृशति शान्तिर्वै भेषजमापः शान्ति-रेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियते क्रियते ॥ ९ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ हरिः ॐ ॥

अनुनिर्वाप्यया वै देवा असुरानपाघ्नत तथो एवैतद्यजमानोऽनुनिर्वाप्ययैव द्विषतो भ्रातृव्यानपहते स वा इन्द्राय विमृध एकादशकपालं पुरोळाशं निर्वपतीन्द्रो

अन्त में यजन करता है तो पत्नियाँ उसी की हैं और वह यज्ञ सुसंपादित (स्विष्टकृत) करता है। अतः उसका अन्त में यजन करता है। जो ऋचा का जप करता है वह स्वस्त्ययन करता है। जो इला (यज्ञीयान्न) का आह्वान करता है, जो मार्जन करता है, और जो शंयोर्वाक का कथन करता है उसका ब्राह्मण (व्याख्या) कहा जा चुका है (द्र. ३.८; ३.९)। जो कुश पर पत्नी का कथन कराया जाता है (उसका कारण है कि) कुश वृष (वर्षणशील-पुरुष) है और पत्नी स्त्री है अतः वह पत्नी को मिथुन प्रदान करता है। इसलिये पत्नी उरुओं के बीच कुशतृणों को रखती है। और कुशतृणों को बिछाता है इससे उसके दर्श और पौर्णमास (यज्ञ) सन्तत होते हैं और इसी से उसके अग्निहोत्र के कुश भी विस्तृत (प्रसृत) होते हैं। जो कुश के शेषों का उपसेवन (सम्मान-वन्दन) करता है वह उसे प्रसन्न कर देवताओं से अपना अर्थ (उद्देश्य) कहता है। जो जल का स्पर्श करता है (तो) जल शान्ति और भेषज हैं और यज्ञ के अन्त में यह शान्ति और भेषज (औषधि) किया जाता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में तृतीय अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय

४.१. अनुनिर्वाप्या[1] (इष्टि) से देवताओं ने असुरों को मारा। अतः निश्चय ही अनुनिर्वाप्या से उसी प्रकार यजमान अपने द्वेषी शत्रुओं को मारता है वह शत्रुहन्ता इन्द्र को ग्यारह कपाल (पात्र) पुरोडाश देता है। इन्द्र ही शत्रुओं के नाशक हैं। वे इसके

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वै मृधां विहन्ता स एवास्य मृधो विहन्त्यथो आमावास्यमेवैतत्प्रत्याहरति यत्पौर्णमास्यामिन्द्रं यजत्यत्र संस्थितदर्शपूर्णमासौ यजमानो यद्यपरपक्षे भङ्गं नीयान्नास्य यज्ञविकर्षः स्यादथ यदमावास्यायामदितिं यजति यज्ञस्यैव स भारतायै सा संयाज्याऽतो विमृद्वती भवति ॥ १ ॥

अथातोऽभ्युदिताया एति ह वा एष यज्ञपथाद्यस्योपवसथे पुरस्ताच्चन्द्रो दृश्यते सोऽग्नये दात्रेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपत्यग्निर्वै दाता स एवास्मै यज्ञं ददातीन्द्राय प्रदात्रे सायं दोहितं दधीन्द्रो वै प्रदाता स एवास्मै यज्ञं प्रयच्छति विष्णवे शिपिविष्टाय प्रातर्दोहिते पयसि चरुं यज्ञो वै विष्णुः स एवास्मै यज्ञं ददाति तद्यदेता देवता यजति नेद्यज्ञपथा दयानीति तिसृधन्वं दक्षिणा तत्स्वस्त्ययनस्य रूपम् ॥ २ ॥

अथातोऽभ्युद्रष्टाया एति ह वा एष यज्ञपथाद्यस्योपवसथे पश्चाच्चन्द्रो दृश्यते सोऽग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपत्यग्निर्वै पथिकृत्स एवैनं पुनर्यज्ञपथमपि पाथयतीन्द्राय वृत्रघ्न एकादशकपालमिन्द्रो वै वृत्रहा स एवैनं पुनर्यज्ञपथमपि

(यजमान के) शत्रुओं को निश्चय ही नष्ट करते हैं। आमावास्य (के कृत्यों) को संयुक्त करता है। जो यजमान पौर्णमास यज्ञ में इन्द्र को यजन करता है इससे दर्श और पौर्णमास यज्ञ पूर्ण करता है। यदि मास के दूसरे पक्ष में भङ्ग (विपत्ति) आती है तो यज्ञ का विकर्ष नहीं होगा। और जो आमावास्या में अदिति का यजन करता है (तो) यह यज्ञ की ही भारता (पूर्ति)के लिये होता है। (आह्वानकारी और आहुतिकारी) (संयाज्या) मन्त्रों से शत्रुओं के दमन की योग्यता इसमें होती है।

४.२. अनन्तर अभ्युदिता (यज्ञ) आता है। वह यज्ञपथ से हट जाता है जिसके उपवास पर चन्द्रमा पूर्व में उदित दिखाई पड़ता है। वह दाता अग्नि को अष्टकपालों में पुरोडाश देता है। अग्नि दाता हैं निश्चय ही वह उसे यज्ञ देते हैं। वह प्रदाता इन्द्र को सायंकाल दुही गई दधि देता है। इन्द्र प्रदाता हैं वे इसे (यजमान को) यज्ञ देते हैं। वह शिपिविष्ट विष्णु को प्रातःकाल दुहे गये दुग्ध में चरु देता है। विष्णु यज्ञ हैं वे निश्चय ही उसे यज्ञ देते हैं। वह इन देवताओं का जो यज्ञ करता है (तो सोचता है कि) मैं यज्ञपथ से दूर न किया जाऊँ। यज्ञ की दक्षिणा एक धनुष और तीन बाण हैं। यह स्वस्त्ययन (मंगल-मंगलमय यात्रा) का रूप है।

४.३. अनन्तर अभ्युद्रष्टा आती है। जो चन्द्रदर्शन के पश्चात् उपवास करता है वह यज्ञपथ से (पृथक् हो जाता है)। वह पथनिर्माता अग्नि के लिये अष्टाकपाल पुरोडाश (चरु) देता है। अग्नि पथकर्ता हैं। वे उसे पुनः यज्ञपथ पर ला देते हैं। वृत्रघ्न इन्द्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाथयति वैश्वानरीयं द्वादशकपालमसौ वै वैश्वानरो योऽसौ तपत्येप एवैनं पुनर्यज्ञपथमपि पाथयति तद्यदेता देवता यजति नेद्यज्ञपथा दयानीति दण्डोपानहं दक्षिणा तदभयस्य रूपम् ॥ ३ ॥

अथातो दाक्षायणयज्ञस्य दाक्षायणयज्ञेनैष्यन्फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी तस्मात्तस्यामदीक्षितायनानि प्रयुज्यन्तेऽथो दक्षो ह वै पार्वतिरेतेन यज्ञेनेष्ट्वा सर्वान्कामानापतद्यद्दाक्षायणयज्ञेन यजते सर्वेपामेव कामानामाप्त्यै नाशने काममापयति सोमं राजानं चन्द्रमसं मक्षयामीति प्रनसा ध्यायन्नश्नीयात्तदसौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमास्तमेतमपरपक्षं देवा अभिषुण्वन्ति तद्यदपरपक्षं दाक्षायणयज्ञस्य व्रतानि चरति देवानामपि सोमपीथोऽसानीत्यथ यदुपवसथेऽग्नीषोमीयमेकादशकपालं पुरोळाशं निर्वपति य एवासौ सोमस्योपवसथेऽग्नीषोमीयस्तमेव तेनाऽऽप्नोत्यथ यत्प्रातरामावास्येन यजत ऐन्द्रं वै सुत्यमहस्तत्सुत्यमहराप्नोत्यथ यदमावास्यायामुपवसथ ऐन्द्राग्नं द्वादशकपालं पुरोळाशं निर्वपत्यैन्द्राग्नं वै सामतस्तृतीयसवनं तत्तृतीयसवनमाप्नो-

---

के लिये एकादश कपाल में (चरु) देता है। इन्द्र वृत्रहन्ता हैं। निश्चय ही वे उसे पुनः यज्ञ-पथ पर लाते हैं। वैश्वानर को वह द्वादश कपालों में पुरोडाश देता है। वे वैश्वानर तपते हैं। ये उसे पुनः यज्ञपथ पर लाते हैं। अतः वह इन देवताओं का यजन करता है (और कामना करता है कि मैं) यज्ञपथ से पृथक् न होऊँ। दण्ड तथा उपानह इसकी दक्षिणा हैं। यह अभय का रूप (प्रतीक) है।

४.४. अनन्तर दाक्षायण यज्ञ का (क्रम) है। दाक्षायण यज्ञ की कामना वाला फल्गुनी पौर्णमासी को प्रयुक्त (प्रारम्भ) करता है। जो फाल्गुनी पौर्णमासी है वह संवत्सर का मुख है अतः इसमें अदीक्षित के कार्य प्रारम्भ होते हैं। दक्ष पार्वति इस यज्ञ को करके सभी कामनाओं को प्राप्त किये। इससे वह दाक्षायण यज्ञ को करता है और निश्चय ही इससे सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। खाने में उसे आनन्द नहीं लेना चाहिये। राजा सोम चन्द्रमा को खा रहा हूँ (?)। यह मन से ध्यान करते हुये खाये। वे सोम राजा विचक्षण (विद्वान्) हैं। इसे देवगण दूसरे पक्ष में अभिषुत करते हैं। जो दूसरे पक्ष में दाक्षायण यज्ञ के व्रतों को करता है (वह यह सोचकर कि) मुझे देवों के सोमपान में अंश मिले। जो उपवास के दिनों में अग्नि और सोम को एकादश कपालों में चरु (पुरोडाश) निर्वपण करता है उससे सोमयज्ञ के उपवास दिन में जो अग्नि और सोम का (अंश) है उसे प्राप्त करता है। जो प्रातःकाल आमावास्य (आहुति) से यज्ञ करता है और सुत्य का दिन इन्द्र का है तो इस प्रकार वह सुत्य दिन प्राप्त करता है। और जो आमावास्या में उपवास के दिन द्वादश कपालों में इन्द्र और अग्नि को पुरोडाश

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्यथ यन्मैत्रावरुणी पयस्या मैत्रावरुणी वा अनूबन्ध्या तदनूबन्ध्यामाप्नोति स एष सोमो हविर्यज्ञाननुप्रविष्टस्तस्माददीक्षितो दीक्षितव्रतो भवति ॥ ४ ॥

अथातः इळादधस्येळादधेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणं स एष पशुकामस्यान्नाद्यकामस्य यज्ञस्तेन पशुकामोऽन्नाद्यकामो यजेत तत्र तथैव व्रतानि चरति दाक्षायणयज्ञस्य हि स मासः ॥ ५ ॥

अथातः सार्वसेनियज्ञस्य सार्वसेनियज्ञेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणं स एष प्रजातिकामस्य यज्ञस्तेन प्रजातिकामो यजेत तद्य-दध्वर्युर्हवींषि प्रजनयति तत्प्रजात्यै रूपम् ॥ ६ ॥

अथातः शौनकयज्ञस्य शौनकयज्ञेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणं स एष तुस्तूर्षमाणस्य यज्ञस्तेन तुस्तूर्षमाणो यजेत स य इच्छेद्द्विषन्तं भ्रातृव्यं स्तृण्वीयेत सोऽनेन यजेत स्तृणुते ह ॥ ७ ॥

देता है और जैसा कि इसके साम में निर्दिष्ट है तृतीय सवन (आहुति) इन्द्र और अग्नि की है तो इस प्रकार वह तृतीय सवन (आहुति) को प्राप्त करता है। यहाँ मित्र और वरुण के लिये जो पयस् है और मित्र तथा वरुण के लिये (गाय की) आहुति है इससे वह गाय (की आहुति) को प्राप्त करता है। इस प्रकार हविर्यज्ञों में प्रविष्ट होकर सोम वर्तमान हैं अतः अदीक्षित होकर भी वह दीक्षितों के व्रत को करता है।

४.५. अनन्तर इडादध (यज्ञ) है। इडादध को करने की कामना वाला इसी पौर्णमासी को करता है। उसका ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। यह यज्ञ पशु की कामना तथा भोज्यान्न की कामना वाले के लिये है। इससे पशुकाम और अन्नाद्य-काम यज्ञ करे। इसमें भी उसी प्रकार का व्रताचरण करे (क्यों कि) दाक्षायण यज्ञ का ही यह मास है।

४.६. अनन्तर सार्वसेनि यज्ञ का (विवरण है) सार्वसेनियज्ञ को करने की इच्छा वाला इसी पूर्णिमा को करता है। इसका व्याख्यान हो चुका है। यह प्रजा की कामना वाले का यज्ञ है। अतः प्रजाति काम इस यज्ञ को करे। (इस यज्ञ में) अध्वर्यु जो हविषों को उत्पन्न करता है वह प्रजाति का रूप है।

४.७. अब शौनकयज्ञ (का विवरण है) शौनकयज्ञ को करने की इच्छा वाला इसी पूर्णिमा को प्रयुक्त करता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। यह शत्रुओं को नीचा दिखाने वाले का यज्ञ है। अतः इसे शत्रु को नीचा दिखाने वाला करे। जो द्वेषकर रहे भ्रातृव्य (शत्रु) को नीचा दिखाना चाहे वह इस (यज्ञ) से यजन करे। वह निश्चय ही उसे नीचा दिखाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथातो वसिष्ठयज्ञस्य वसिष्ठयज्ञेनैष्यन्फाल्गुन्याममावास्यायां प्रयुङ्क्ते ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्त्रममावास्या क्षत्त्रमिवैष यज्ञः क्षत्त्रेण सत्रून्सहा३ इति वसिष्ठोऽकामयत हतपुत्रः प्रजायेय प्रजया पशुभिरभिसौदासान्भवेयमिति स एतं यज्ञक्रतुमपश्यद्वसिष्ठयज्ञं तमाहरत्तेनायजत तेनेष्ट्वा प्राजायत प्रजया पशुभिरभिसौदासानभवत्तथो एवैतद्यजमानो यद्वसिष्ठयज्ञेन यजते प्रजायते प्रजया पशुभिरभिद्विषतो भ्रातृव्यान्भवति ॥ ८ ॥

अथातः साकंप्रस्थाय्यस्य साकंप्रस्थाय्येनैष्यन्नेतस्यामेवामावास्यायां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणं स एष श्रैष्ठ्यकामस्य पौरुषकामस्य यज्ञस्तेन श्रैष्ठ्यकामः पौरुषकामो यजेत तद्यत्साकं संप्रतिष्ठन्ते साकं संप्रयजन्ते साकं भक्षयन्ते तस्मात्साकंप्रस्थाय्यः ॥ ९ ॥

अथातो मुन्ययनस्य मुन्ययनेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणं स एष सर्वकामस्य यज्ञस्तेन सर्वकामो यजेत ॥ १० ॥

अथातस्तुरायणस्य तुरायणयज्ञेनैष्यन्नेतस्यामेव पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते तस्या उक्तं ब्राह्मणं स एष स्वर्गकामस्य यज्ञस्तेन स्वर्गकामो यजेताथ यत्कृष्णाजिनं

४.८. अब वसिष्ठ यज्ञ है। वसिष्ठ यज्ञ करने की इच्छावाला फाल्गुनी अमावास्या को प्रयुक्त करे। (वह) कामना करे कि ब्रह्म (ज्ञान) पौर्णमासी है और क्षत्र (शक्ति) अमावास्या है। यह यज्ञ क्षत्र है। 'क्षत्र से मैं शत्रुओं को परास्त करूँ।' पुत्रों के मारे जाने पर वसिष्ठ ने कामना कि—'मै प्रजाओं और पशुओं से युक्त होऊँ और सौदासों को परास्त करूँ।' उन्होंने इस यज्ञक्रतु वसिष्ठ यज्ञ को देखा। उन्होंने इसका आहरण किया और इस यज्ञ को करके वे प्रजाओं और पशुओं से युक्त हुये और सौदासों का अभिभव किया। अतः जो यजमान इस वसिष्ठ यज्ञ से यजन करता है वह प्रजाओं और पशुओं से समृद्ध होता है तथा जो उससे द्वेष कर रहे शत्रुओं को परास्त करता है।

४.९. अनन्तर साकंप्रस्थाय्य यज्ञ है। जो इसको करना चाहता है वह उसी अमावास्या की रात्रि से प्रारम्भ करता है। इसकी व्याख्या की जा चुकी है। यह श्रेष्ठताकामी तथा पौरुष (वीरता) कामी का यज्ञ है। इसमें जो साथ-साथ आगे चलते हैं, साथ-साथ यज्ञ करते है और साथ-साथ (साकं) भक्षण करते हैं इससे इसका साकंप्रस्थाय्य नाम है।

४.१०. अनन्तर मुन्ययम है। जो मुन्ययन से प्रारम्भ करना चाहता है वह उसी पूर्णिमा (की रात्रि) से प्रारम्भ करता है। इसका व्याख्यान (ब्राह्मण) कहा जा चुका है। यह सभी प्रकार की कामनाओं वाले का (सर्वकामस्य) यज्ञ है। अतः सर्वकाम इसे करे।

४.११. अनन्तर तुरायण यज्ञ है। तुरायण यज्ञ को करने की इच्छा वाला इसी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रतिमुञ्चते ब्रह्म वै कृष्णाजिनं ब्रह्मणैव तद्यज्ञं समर्धयति तानि वै त्रीणि हवींषि भवन्ति त्रयो वा इमे लोका इमानेव तं लोकानाप्नोति ॥ ११ ॥

अथात आग्रयणस्याऽऽग्रयणेनान्नाद्यकामो यजेत वर्षास्वागते श्यामाकसस्ये श्यामाकानुद्धर्तवा आह सा या तस्मिन्कालेऽमावास्योपसंपद्येत तयेष्ट्वाऽथैतयेष्ट्या यजेत यदि पौर्णमास्येतयेष्ट्वाऽथ पौर्णमासेन यजेत यद्यु नक्षत्रमुपेप्सेत्पूर्वपक्षे नक्षत्रमुदीक्ष्य यस्मिन्नक्षत्रे कामयेत तस्मिन्यजेत तस्यै सप्तदश सामिधेन्यः सद्वन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणं सोम्यश्चरुः सोमो वै राजौषधीनां तदेनं स्वया विशा प्रीणात्यथ यन्मधुपर्कं ददात्येष ह्यारण्यानां रसः ॥ १२ ॥

अथ वसन्त आगते पक्वेषु वेणुयवेषु वेणुयवानुद्धर्तवा आह तस्या एतदेव पर्वैतत्तन्त्रमेषा देवतैषा दक्षिणैतद्ब्राह्मणं तां हैक आग्नेयीं वा वारुणीं वा प्राजापत्यां वा कुर्वन्त्येतत्तन्त्रमेवैतद्ब्राह्मणम् ॥ १३ ॥

पौर्णमासी (की रात्रि) को करता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। यह स्वर्गकाम का यज्ञ है अतः इसे स्वर्गकामी यजन करे। इसमें कृष्णाजिन को धारण करता है। कृष्णाजिन (कृष्ण मृगचर्म) ब्रह्म है। अतः वह निश्चय ही यज्ञ को ब्रह्म से संयुक्त करता है। इसमें तीन आहुतियाँ हैं। ये लोक तीन हैं। अतः निश्चय ही इस प्रकार वह इन लोकों को प्राप्त करता है।

४.१२. अनन्तर आग्रायण यज्ञ है। आग्रायण यज्ञ से अन्नाद्यकाम यजन करे। वर्षाओं में श्यामाक (साँवाँ) के आने (होने) पर वह श्यामाक को उद्धृत (उखाड़ने) के लिये कहता है। इस समय जो अमावस्या पड़े उस दिन वह यज्ञ करे और इस इष्टि से यजन करे। यदि वह पौर्णमास यज्ञ कर रहा है तो इस यज्ञ को करके पौर्णमास यज्ञ को करे। यदि वह (यज्ञ के लिये) किसी नक्षत्र की कामना कर रहा है तो वह मास को प्रथम पक्ष में नक्षत्र को देखकर अपने अभीष्ट नक्षत्र में यजन करे। इस यज्ञ में सत्रह सामिधेनी (प्रज्वलनकारी) मन्त्र है। आज्य भाग 'सद्' शब्द युक्त हैं। (स्विष्टकृत् आहुति के) आह्वानकारी और आहुतिपरक (संयाज्ये) मन्त्र विराज हैं। इसका कारण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। सोम का चरु है। सोम ओषधियों का राजा है। इस प्रकार उसे वह उसकी अपनी प्रजा से प्रसन्न करता है। इसमें वह मधुपर्क होता है क्योंकि यह (मधुपर्क) जङ्गली (पदार्थों) का रस है।

४.१३. वसन्तऋतु के आने पर बाँस के यव (बीज) पक्व हो जाते हैं तो वह बाँस के यवों को उखाड़ने का आदेश देता है। इस (यज्ञ) का यही समय है, वही तन्त्र (प्रकार), वही देवता, वही दक्षिणा और वही ब्राह्मण (व्याख्या) है। कुछ लोग इस यज्ञ को अग्नि या वरुण या प्रजापति के निमित्त करते हैं। पर तन्त्र और ब्राह्मण वही है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ व्रीहिसस्ये वा यवसस्येवाऽऽगत आग्रयणीयानुद्धर्तवा आह तस्या एतदेव पर्वैतत्तन्त्रमथ यदैन्द्राग्नो द्वादशकपाल इन्द्राग्नी वै देवानां मुखं मुखत एव तद्दे- वान्प्रीणात्यथ यद्वैश्वदेवश्चरुरेते वै सर्वे देवा यद्विश्वे देवाः सर्वेषामेव देवानां प्रीत्या अथ यद्द्यावापृथिवी य एककपालो द्यावापृथिवी वै सस्यस्य साधयित्र्यौ प्रतिष्ठा पृथिव्योद्मनासामनुवेद तद्यदेता देवता यजत्येताभिर्देवताभिः शान्तमन्नमत्स्या- मीत्यथ यत्प्रथमजं गां ददाति प्रथमकर्म ह्येतद्येतस्यैळायात्पौर्णमासं वाऽऽमावास्यं वा हविः कुर्वीत नवानामुभयस्याऽऽप्त्या अपि वा पौर्णमासे वाऽऽमावास्ये वा हवींष्यनुवर्तयेद्देवतानामपरिहाणायापि वा यवाग्वैव सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहु- यान्नवानामुभयस्याऽऽप्त्या अपि वा स्थालीपाकमेव गार्हपत्ये श्रपयित्वा नवाना- मेताभ्य आग्रयणदेवताभ्य आहवनीये जुहुयात्स्विष्टकृच्चतुर्थीभ्योऽमुष्यै स्वाहाऽमुष्यै स्वाहेति देवतानामपरिहाणायापि वाऽग्निहोत्रीमेव नवानादयित्वा तस्यै दुग्धेन सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयादुभयस्याऽऽप्त्या एत एतावन्तः पातास्तेषां येन कामयेत तेन यजेत त्रिहविस्तु स्थितास्त्रयो वा इमे लोका इमानेव तं लोकानाप्नोतीमानेव तं लोकानाप्नोति ॥ १४ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

४.१४. धान्यान्न या यव अन्न के तैयार होने पर वह आग्रयण के लिये उन्हें लाने के लिये कहता है। इस यज्ञ का यही समय तथा वही प्राकार है इसमें इन्द्र तथा अग्नि के लिये द्वादश कपालों में (चरु होती) है। इन्द्र तथा अग्नि देवताओं के मुख (आरम्भ) हैं अतः निश्चय ही वह आरम्भ में वह देवताओं का प्रीणन करता है। इसमें सभी देवों के लिये (वैश्वदेव) चरु होता है। ये विश्वे देवाः सर्वदेव हैं अतः इससे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। इसमें एक कपाल (पात्र) द्यावा-पृथिवी के लिये (चरु) होता है। द्यावा-पृथिवी शस्य के साधक (सम्पन्न कराने वाले) हैं तथा पृथिवी प्रतिष्ठा (आधार) है और जलसञ्चार से वह (आकाश) सहयोग करता है। इसमें वह इन देवताओं का यजन करता है (और कामना करता है कि) इन देवताओं के द्वारा मैं शान्त अन्न का भक्षण करूँ। इसमें वह प्रथम जन्म का बछड़ा देता है क्योंकि यह प्रथम कर्म है। यदि वह इस यज्ञ से श्रान्त हो तो नवीनों (अन्नों) से पौर्णमास या आमावस्य आहुति दे जिससे उसे दोनों की प्राप्ति हो जाय। अथवा पौर्णमास यज्ञ या अमावस्या यज्ञ इन देवताओं की उपस्थिति के लिये आहुति दे। अथवा दोनों की प्राप्ति के लिये नवीन (अन्न से) यवागू से वह सायं-प्रातः अग्निहोत्र में आहुति दे। अथवा गार्हपत्य में स्थालीपाक पकाकर नवीन (अन्नों) की आहुति इन आग्रयण देवताओं को आहवनीय में दे। इसमें स्विष्टकृत् चतुर्थी के लिये अमुक के लिये स्वाहा, अमुक के लिये स्वाहा कर आहुति दे। इससे देवताओं की अनुपस्थिति नहीं होती।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

॥ हरिः ॐ ॥

ॐअथातश्चतुर्मास्यानां चातुर्मास्यानि प्रयुञ्जानः फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां प्रयुङ्क्ते मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी मुखमुत्तरे फल्गू पुच्छं पूर्वे तद्यथा प्रवृत्तस्यान्तौ समेतौ स्यातामेवमेवैतौ संवत्सरस्यान्तौ समेतौ तद्यत्फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां वैश्वदेवेन यजते मुखत एव तत्संवत्सरं प्रीणात्यथो भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यामि तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्त ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते तानि वा अष्टौ हवींषि भवन्त्यष्टौ वै चतसृणां पौर्णमासीनां हवींषि भवन्ति चतसृणां वै पौर्णमासीनां वैश्वदेवं स मासोऽथ यदग्निर्मथ्यते प्रजातिर्वै वैश्वदेवं तस्मादेतं दैवं गर्भं प्रजनयत्यथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्वन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यन्नव प्रयाजा नवानुयाजा अष्टौ हवींषि वाजिनं नवमं तन्नक्षत्रियां विराजमाप्नोति ॥ १ ॥

अथवा अग्निहोत्र की गाय को नवीनान्न खिलाकर उसके दूध से सायं-प्रातः अग्निहोत्र का हवन करे। इससे दोनों की प्राप्ति होती है। इतने सब विकल्प हैं वह जिसकी कामना करे उससे यजन करे। किन्तु तीन हवियों का नियम तो निर्णीत है। ये लोक तीन हैं। निश्चय ही वह इन तीन लोकों को (इससे) प्राप्त करता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में चतुर्थ अध्याय समाप्त।

पाँचवाँ अध्याय

५.१. अनन्तर चातुर्मास्य यज्ञ हैं। चातुर्मास्य यज्ञों को करने वाला फाल्गुन पौर्णमासी की रात्रि को प्रयुक्त (प्रारम्भ) करता है। फाल्गुनी पौर्णमासी वर्ष का मुख है। उत्तर फल्गु मुख हैं और पूर्व (फल्गु) पुच्छ हैं। अतः जैसे प्रवृत्त (गोले) के अन्तभाग मिले होते हैं उसी प्रकार यह वर्ष के अन्तिम भाम मिलते हैं। फाल्गुनी में पूर्णिमा की रात को वह वैश्वदेव से यज्ञ करता है अतः वह निश्चय ही प्रारम्भ में वर्ष का प्रीणन करता है। ये चातुर्मास्य यज्ञ भैषज्य यज्ञ हैं अतः ऋतु की संधि में ये किये जाते हैं क्योंकि ऋतु की सन्धि में व्याधि उत्पन्न होती है। इसमें आठ हवि (आहुतियाँ) होती हैं। चार पूर्णिमाओं के आठ हवि होती हैं। वैश्वदेव चार पूर्णिमाओं का सङ्गम होता है। और जो अग्नि का मथन किया जाता है उसका हेतु है कि वैश्वदेव प्रजाति है अतः वह इस दैव गर्भ का प्रजनन करता है। इसमें सत्रह सामिधेनी, आज्यभाग 'सद्' युक्त तथा आज्यामन्त्र विराज मन्त्र है। इसका व्याख्यान किया जा चुका है। इसमें ९ प्रयाज (पूर्व आहुति), ९ अनुयाज (उत्तर आहुति), ८ हवि और वाजि (अश्व) के लिये नवाँ है। इस प्रकार वह नक्षत्रों की विराज (श्री) को प्राप्त करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ यदग्नीषोमौ प्रथमौ देवतानां यजति दार्शपौर्णमासिके वा एते देवते तस्मादेतौ प्रथमौ यजत्यथ यत्सवितारं यजति सविता वै प्रसवानामीशे सवितृ-प्रसूततााया अथ यत्सरस्वतीं यजति वाग्वै सरस्वती वाचमेव तत्प्रीणात्यथ यत्पूषणं यजत्यसौ वै पूषा योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणात्यथ यन्मरुतः स्वतवसो यजति घोरा वै मरुतः स्वतवसो भैषज्यमेव तत्कुरुतेऽथ यद्वैश्वदेवी पयस्यैते वै सर्वे देवा यद्विश्वे देवाः सर्वेषामेव देवानां प्रीत्या अथ य[द्]द्यावापृथिवी य एककपालः प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिवी प्रतिष्ठित्या एवाथ यत्प्रथमजं गां ददाति प्रथमकर्म ह्येतदथ यत्पुर-स्ताद्वापरिष्टाद्वा शंयोर्वाकस्यानावाहितान्वाजिनो यजति देवा अश्वा वै वाजिन-स्तानेव तत्प्रीणात्यत्र देवाः साश्वाः प्रीता भवन्त्यथो ऋतवो वै वाजिन ऋतूनेव तत्प्रीणात्यथ यत्परस्तात्पौर्णमासेन यजते तथा हास्य पूर्वपक्षे वैश्वदेवेनेष्टं भवति ॥ २ ॥

वैश्वदेवेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः सृष्टा अप्रसूता वरुणस्य यवां चक्षुस्ता वरुणो वरुणपाशैः प्रत्यमुञ्चत्ताः प्रजाः प्रजापतिं पितरमेत्योपाधावन्नुप तं

५.२. जो अग्नि और सोम का देवताओं में पहले यजन करता है इसका कारण है कि ये दर्श और पौर्णमास के देवता हैं अतः इन दोनों का प्रथम यजन करता है। और जो सविता का यजन करता है वह इसलिये कि सविता प्रसव (उत्पादन-प्रेरण) के स्वामी हैं अतः यह सविता द्वारा प्रेरण के उत्पत्ति (उत्पादन) के लिये है। और जो सरस्वती का यजन करता है तो वाग् ही सरस्वती है (तो इससे) वाणी का ही प्रीणन प्रसादन करता है। और जो पूषा का यजन करता है तो यह पूषा ही तप रहे हैं। इससे उन्हीं का प्रीणन करता है। और जो गतिमान मरुतों का यजन करता है (तो) गति-शील मरुत घोर हैं अतः इससे वह भैषज्य करता है। जो दुग्ध से वैश्वदेव किया जाता है (वह इस कारण कि) विश्वेदेव सभी देवता हैं (अतः) इससे सभी देवताओं की प्रीति होती है। एक कपाल में द्यावा-पृथिवी के लिये जो पुरोडाश होता है (तो) द्यावा-पृथिवी प्रतिष्ठा (आधार) है अतः यह प्रतिष्ठा के लिये होता है। जो प्रथम उत्पन्न वृष को देता है वह इस कारण कि यह प्रथम कर्म है। जो शंयोर्वाक के पहले वा बाद में अनाहित (अनाहूत ?) अश्वों का यजन करता है वह इसलिये कि देवताओं के अश्व ही वाजि हैं अतः उन्हीं को इससे प्रसन्न करता है। इससे अश्वों सहित देवता प्रसन्न होते हैं। ऋतु ही वाजि है अतः इससे ऋतुओं को प्रसन्न करता है। जो पौर्णमास यज्ञ से बाद में यजन करता है इससे इसका पूर्वपक्ष में वैश्वदेव से यज्ञ होता है।

५.३. प्रजापति ने वैश्वदेव (यज्ञ) से प्रजा की सृष्टि की। उस सृष्ट प्रजा ने जो प्रसूत नहीं थी, वरुण के यवों को भक्षण कर लिया। वरुण ने उन्हें वरुण-पाशों से बाँध लिया। वे प्रजाएँ पिता प्रजापति के पास दौड़कर पहुँची (और कहा—) उस यज्ञक्रतु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यज्ञक्रतुं जानीहि येनेष्ट्वा वरुणपाशेभ्यः सर्वस्माच्च पाप्मनः संप्रमुच्येमहीति तत एतं प्रजापतिर्यज्ञक्रतुमपश्यद्वरुणप्रघासं तमाहरत्तेनायजत तेनेष्ट्वा वरुणमप्रीणात्स प्रीतो वरुणो वरुणपाशेभ्यः सर्वस्माच्च पाप्मनः प्रजाः प्रामुञ्चत्प्र ह वा अस्य प्रजा वरुणपाशेभ्यः सर्वस्माच्च पाप्मनः संप्रमुच्यन्ते य एवं विद्वान्वरुणप्रघासैर्यजतेऽथ यदग्निं प्रणयन्ति यमेवामुं वैश्वदेवे मन्थन्ति तमेव तत्प्रणयन्त्यथ यदग्निर्मथ्यते तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्वन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यन्नव प्रयाजा नवानुयाजा नवैतानि हवींषि तन्नक्षत्रियां विराजमाप्नोति समानानि पञ्चसञ्चराणि हवींषि पौष्णान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ यदैन्द्राग्नो द्वादशकपालः प्रतिष्ठे वा इन्द्राग्नी प्रतिष्ठित्या एवाथो मध्यस्थो वा इन्द्रस्तस्मादेनं मध्यतो यजत्यथ यद्वारुणी पयस्येन्द्र उ वै वरुणःस उ वै पयोभाजनस्तस्माद्वारुणी पयस्याऽथ यन्मारुती पयस्पाऽप्सु वै मरुतः शितास्तस्मादेनान्पयसा यजत्यापो हि पयोऽथो इन्द्रस्य वै मरुत ऐन्द्रं पयस्तस्मान्मारुती पयस्याऽथ यत्काय एककपालः प्रजापतिर्वै कस्तमेव तत्प्रीणात्यथो सुखस्यैवैतन्नाम-

---

का ज्ञान करिये (विधान करिये) जिससे यजन कर वरुण-पाशों तथा सभी पापों से (हम) छूट जायँ। तो प्रजापति ने इस वरुणप्रघास नामक यज्ञक्रतु को देखा और उसका आहरण किया तथा उससे यज्ञ किया। उससे यज्ञ कर वरुण को प्रसन्न किया। उन प्रसन्न वरुण ने प्रजाओं को वरुण-पाशों तथा सभी पापों से मुक्त किया। जो इस प्रकार जानकर वरुणप्रघास (यज्ञों) से यजन करता है उसकी प्रजा वरुण-पाशों तथा सभी पापों से मुक्त हो जाती है। जो अग्नि का प्रणयन करते हैं वह उसी अग्नि का प्रणयन करते हैं जिसका वैश्वदेव में मथन करते हैं। और जो अग्नि का मथन होता है उसका ब्राह्मण (निर्वचन) कहा जा चुका है। और जो सत्रह सामिधेनी, 'सद्' युक्त आज्यभाग, याज्या (आह्वानकारी तथा आहुतिपरक) विराज मन्त्र है इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। इसमें जो नव प्रयाज (पूर्व आहुति), नव अनुयाज और नव आहुति हैं इससे नक्षत्रों की दीप्ति को प्राप्त करता है। साथ की पाँच हविषें जो पूषा को अन्त में हैं वही हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

५.४. इसमें द्वादश कपालों में (पुरोडाश) इन्द्र और अग्नि के लिये होता है। इन्द्र और अग्नि प्रतिष्ठा है अतः यह प्रतिष्ठा के लिये है। इन्द्र मध्य में हैं अतः इन्द्र के लिये वह मध्य में यजन करता है। और जो वरुण के लिये दुग्ध है वह इसलिये कि इन्द्र वरुण है और दुग्ध के भागीदार हैं अतः उनके लिये वरुण का पयस्य है। इसमें मरुतों के लिये पयस् है। मरुत जल में रहते हैं अतः वह दूध से उनका यजन करता है क्योंकि दूध जल है। और मरुत इन्द्र के हैं, दूध इन्द्र का है अतः मरुतों के लिये दूध का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धेयं कमिति सुखमेव तदात्मन्धत्तेऽथ यन्मिथुनौ गावौ ददाति तत्प्रजात्यै रूपमथ यद्वाजिनो यजति तेषामुक्तं ब्राह्मणमथ यदप्सु वरुणं यजति स्व एवैनं तदायतने प्रीणात्यथ यत्परस्तात्पौर्णमासेन यजते तथा हास्य पूर्वपक्षे वरुणप्रघासैरिष्टं भवति ॥ ४ ॥

ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत्साकमेधास्तद्यथा महाराजः पुरस्तात्सैनानीकानि प्रत्युह्यामयं पन्थानमन्वियादेवमेवैत्पुरस्ताद्देवता यजति तद्यथाऽदः सोमस्य महाव्रतमेवमेतदिष्टिमहाव्रतमथ यदग्निमनीकवन्तं प्रथमं देवतानां यजत्यग्निर्वै देवानां मुखं मुखत एव तद्देवान्प्रीणात्यथ यन्मध्यंदिने मरुतः सांतपनान्यजति मध्यंदिने वै संतपति तस्मान्मध्यंदिने मरुतः सांतपनान्यजत्यथो इन्द्रस्य वै मरुत ऐन्द्रो मध्यंदिनस्तस्मान्मध्यंदिने मरुतः सांतपनान्यजत्यथ यत्सायं गृहमेधीयेन चरन्ति पुष्टिकर्म वा एतद्यद्गृहमेधीयः सायंपोषस्तस्मात्पोषवन्तावाज्यभागौ यजति यजमानमेव तत्पोषयत्यथ यत्प्रातः पूर्णदर्वेण चरन्ति पूर्वेद्युः कर्मणैवैतत्प्रातः कर्मोपसंतनोत्यथ यन्मरुतः क्रीळिनो यजतीन्द्रस्य वै मरुतः क्रीळिनस्तस्मादे-

---

भोजन है। जो क के लिये एक कपाल में (पुरोडाश) है वह इसलिये कि प्रजापति ही क हैं इससे वह उन्हें ही प्रसन्न करता है। और क सुख का ही नाम है अतः वह 'क' अर्थात् सुख को ही अपने में रखता है। जो दो जोड़ी गायों (पशुओं) को देता है वह प्रजनन का रूप है। जो अश्वों का यजन करता है इसका व्याख्यान हो चुका है। और जो जलों में वरुण का यजन करता है तो उनको उनके ही घर में प्रसन्न करता है। और जो बाद में पौर्णमास यज्ञ से यजन करता है तो इस प्रकार उसका मास के प्रथम पक्ष में वरुण प्रघास से यजन होता है।

५.५. साकमेध यज्ञ क्रतु इन्द्र से संबद्ध है। जैसे कोई महाराज सेना के रक्षकों (सेनानीक) को आगे करके सुरक्षापूर्वक मार्ग चलता है उसी प्रकार वह देवताओं का यजन करता है। जैसे सोमयाग में महाव्रत है वैसे ही यह इष्टि का महाव्रत है। जो देवताओं में पूर्व अग्रगामी अग्नि का यजन करता है तो अग्नि देवताओं के मुख है और मुख से वह देवताओं को प्रसन्न करता है। और जो मध्यदिन में सांतपन (दाहक) मरुतों का यजन करता है वह इसलिये कि मध्य दिन में ही तपता है अतः मध्य दिन में सांतपन मरुतों का यजन करता है। और मरुत इन्द्र के (सहायक अनुगामी) हैं और मध्य दिन इन्द्र का है अतः मध्य दिन में तपनशील मरुतों का यजन करता है। और जो सायंकाल गृहमेध यज्ञ से प्रारम्भ करते हैं और गृहमेध यज्ञ पुष्टिकर्म है और पुष्टिकर्म सायंकाल है अतः वह दो आज्य भागों पुष्टि युक्त करके (ऋ० १.१.३ और १.९१. १२) यजन करता है। इससे वह यजमान की पुष्टि करता है। और जो प्रातः पूर्ण दर्वी (स्रुवा) से प्रारम्भ करता है वह प्रातःकाल के कर्म को पूर्व दिन के कर्म से

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नानिन्द्रेणोपसंहितान्यजत्यथ यदग्निं प्रणयन्ति यन्मथ्यते तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्वन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यन्नव प्रयाजा नवानुयाजा अष्टौ हवींषि स्विष्टकृन्नवमस्तन्नक्षत्रियां विराजमाप्नोति समानानि षट् संचराणि हवींष्यैन्द्राग्नानान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणमथ यन्महेन्द्रमन्ततो यजत्यन्तं वै श्रेष्ठी भजते तस्मादेनमन्ततो यजत्यथ यद्वैश्वकर्मण एककपालोऽसौ वै विश्वकर्मा योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणात्यथ यदृषभं ददात्यैन्द्रो हि यज्ञक्रतुः ॥ ५ ॥

अथ यदपराह्णे पितृयज्ञेन चरन्त्यपक्षयभाजो वै पितरस्तस्मादपराह्णे पितृयज्ञेन चरन्ति तदाहुर्यदपरपक्षभाजः पितरोऽथ कस्मादेनान्पूर्वपक्षे यजन्तीति देवा वा एते पितरस्तस्मादेनान्पूर्वपक्षे यजन्त्यथ यदेकां सामिधेनीमन्वाह सकृदिव वै पितरस्तस्मादेकां सामिधेनीमन्वाह सा वा अनुष्टुब्भवति वागनुष्टुप्पराञ्च उ वै पितरस्तानेवैतद्वाचाऽनुष्टुब्भागमयत्यथ यद्यजमानस्यार्षेयं नाहनेद्यजमानं प्रवृणजानीत्यथैतं निगदमन्वाह तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यत्सोमं पितृमन्तं पितृन्वा

संयुक्त करता है। जो क्रीडाशील मरुतों का यजन करता है (वह इसलिये कि) क्रीडाशील मरुत इन्द्र के ही हैं अतः इनके साथ इनका यजन करता है। जो इसमें नव पूर्व आहुतियाँ, नव उत्तर आहुतियाँ, आठ हविष् और नवाँ स्विष्टकृत् हैं इससे वह नक्षत्रों की श्री को प्राप्त करता है। छः समान (साथ की) हविर् इन्द्र और अग्नि के साथ समाप्त होती हैं इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। जो महेन्द्र को अन्त में यजन करता है वह इसलिये कि श्रेष्ठ (नेता) अन्त में होता है अतः इनका अन्त में यजन करता है। और विश्वकर्मा का एक कपाल (पुरोडाश) है। वह जो तप रहे हैं वे विश्वकर्मा हैं। इससे उन्हीं का प्रसादन करता है। वह जो वृषभ देता है वह इसलिये यह यज्ञक्रतु, इन्द्र का है।

५.६. और जो अपराह्ण में पितृयज्ञ करते हैं (वह इसलिये कि) पितरों का अंश अपक्षय है इसलिये अपराह्ण में पितृयज्ञ करते हैं। वे कहते हैं—कि यह देखते हुये कि पितरों का भाग द्वितीय है (मास के) पूर्वपक्ष में पितरों का यजन क्यों करते हैं।' (उत्तर है कि) पितर भी देवताओं के सम्बद्ध है (अर्थात् देवताओं में ही हैं) अतः उनका पूर्वपक्ष में यजन होता है। इसमें एक सामिधेनी (ज्वलनकारी) मंत्र (ऋ० १०-१६-२) का उच्चारण करते हैं। इसका कारण है कि पितृगण एकबार जेसे (सकृदिव) हैं अतः एक सामिधेनी कहते हैं वह अनुष्टुप् छन्द है। अनुष्टुप् वाणी है। पितर पराङ्मुख हैं। अतः वाणीरूप अनुष्टुप् से वह ले आता है। इसमें यजमान के आर्षेय (ऋषिपरम्परा) को नहीं कहता। (यह इसलिये कि वह सोचता है कि मुझे) यजमान को अग्नि में नहीं रखना चाहिये! वह निगद कहता है इसका व्याख्यान किया जा चुका है। जो पितृगणों सहित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सोमवतः पितॄन्बर्हिषदः पितॄनग्निष्वात्तानित्यावाहयति देवा वा एते पितरस्त-स्मादेनानावाहयत्यथ यदग्निं कव्यवाहनमावाहयत्येतत्स्विष्टकृतो वै पितरस्तस्मादे-नमावाहयति न हैके स्वं महिमानमावाहयन्ति यजमानस्यैष महिमेति वदन्त आवाहयेदिति त्वेव स्थितमग्नेर्ह्येवैष महिमा ॥ ६ ॥

अथ यत्प्रयाजानुयाजेभ्यो बर्हिष्मन्ता उत्सृजति प्रजा वै बर्हिर्नेत्प्रजां प्रवृणजा-नीति ते वै षड् भवन्ति षड्वा ऋतव ऋतवः पितरः पितॄनेव तत्प्रीणात्यथ यज्जीव-नवन्तावाज्यभागौ यजति यजमानमेव तज्जीवयत्यथ यत्तिस्रस्तिस्र एकैकस्य हविषो भवन्ति त्रीणि वै हवींषि भवन्ति तेषां समवद्यति तस्मात्तिस्रस्तिस्र एकै-कस्य हविषो भवन्त्यथो देवकर्मणैवैतत्पितृकर्म व्यावर्तयत्यथो परामु वै परावतं पितरो गता आह्वयत्येवैनां प्रथमया द्वितीयया गमयति प्रैव तृतीयया यच्छत्यथ यदग्निं कव्यवाहनमन्ततो यजत्येतत्स्विष्ट[कृ] तो वै पितरस्तस्मादेनमन्ततो यजत्यथ यदिळामुपहूयावघ्राय न प्राश्नन्ति पशवो वा इळा नेद्यजमानस्य

सोम को या सोमयुक्त पितरों को, बर्हिषद् पितरों को और अग्निष्वात्त पितरों का आवाहन करता है (वह इसलिये कि) ये पितर देव ही हैं अतः इनका आवाहन करता है। जो काव्यवाह अग्नि को आहूत करता है (वह इसलिये कि) ये पितर स्विष्टकृत् हैं अतः इसे (कव्यवाह अग्नि को) आहूत करता है। कुछ लोग अपनी महिमा (महत्ता) का आवाहन नहीं करते और कहते हैं कि यह यजमान की ही महिमा है। परन्तु नियम यह है कि आवाहन करे क्योंकि यह अग्नि की महिमा है।

५.७. जो प्रयाजों और अनुयाजों में से वह दो बर्हि (कुश) के लिये छोड़ता है (वह इसलिये कि वह मानता है कि) कुश प्रजा हैं। मैं इन प्रजाओं का त्याग न करूँ। वे छः हैं। ऋतुयें छः हैं। पितर ऋतु है। अतः इससे वह पितरों को ही प्रसन्न करता है। जो 'जीवन' शब्द से युक्त (ऋ. १.७९.९; १.९१.७) आज्य भाग का यजन करता है इससे वह यजमान को ही जिलाता है। जो प्रत्येक हविष् के लिये तीन-तीन (प्रत्येक प्रकार अर्थात् दो पुरोनुवाक्या और एक याज्यानुवाक्या) होती हैं वह इसलिये कि हविष् तीन होती हैं और वह उन सबसे काटता है अतः प्रत्येक हविष् के लिये तीन-तीन होती हैं। और इस प्रकार वह देवकर्म को पितृकर्म से अलग करता है। पितृगण बहुत दूरी पर गये हैं। प्रथम से वह उनका आह्वान करता है, द्वितीय से लाता है और तृतीय से प्रदान करता है। और को कव्यवाहन अग्नि को अन्त में यजन करता है यह इसलिये कि पितृगण स्विष्टकृत् हैं। अतः वह उनका (अग्नि का) अन्त में यजन करता है। जो इला (यज्ञीय चरु) का आह्वान कर और सूंघ कर नहीं खाते हैं वह इसलिये कि पशु ही इला है। हम यजमान के पशु को न पृथक् करें। जो अध्वर्यु पितृगणों को देता है उससे पितृगणों को ही प्रसन्न (तृप्त) करता है। जो पवित्र के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पशून्प्रवृणजामेत्यथ तदध्वर्युः पितृभ्यो ददाति पितॄनेव तत्प्रीणात्यथ यत्पवित्र-मतिमार्जयन्ते शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियतेऽथ यदृचं जपन्ति स्वस्त्ययनमेव तत्कुर्वतेऽथ यदुदञ्चः परेत्य गार्हपत्याहवनीया उपतिष्ठन्ते प्रीत्वैव तद्देवेष्वन्ततोऽर्थं वदन्तेऽथो दक्षिणासंस्थो वै पितृयज्ञस्तमेवैतदुदक्संस्थं कुर्वन्त्यथ यत्प्राञ्च उपनिष्क्रम्याऽऽदित्यमुपतिष्ठन्ते देवलोको वा आदित्यः पितृ-लोकः पितरो देवलोकमेव तत्पितृलोकादभ्युत्क्रामन्त्यथ यत्सूक्तवाके यजमानस्य नाम न गृह्णाति नेद्यजमानं प्रवृणजानीत्यथ यत्पत्नीसंयाजैर्न चरन्ति नेत्पत्न्यः प्रवृणजामेत्यथ यदुदञ्चः परेत्य त्र्यम्बकैश्चरन्ति रुद्रमेव तत्स्वायां दिशि प्रीणन्त्यथो दक्षिणासंस्थो वै पितृयज्ञस्तमेवैतदुदक्संस्थं कुर्वन्त्यथ यदन्तत इष्ट्येष्ट्या यजत एतत्संस्था वै साकमेधास्तस्मादन्तत इष्ट्येष्ट्या यजतेऽथ यत्परस्तात्पौर्णमासेन यजते तथा ह्यस्य पूर्वपक्षे साकमेधैरिष्टं भवति ॥ ७ ॥

त्रयोदशं वा एतं मासमाप्नोति यच्छुनासीर्येण यजत एतावान्वै संवत्सरो यदेष त्रयोदशो मासस्तदत्रैव सर्वः संवत्सर आप्तो भवत्यथ यदग्निर्मथ्यते यद्वैश्वदेवस्य

स्थान पर अपना मार्जन (शोधन) करते हैं (वह इसलिये कि) जब शान्ति कारक और औषध हैं इस प्रकार यज्ञान्त में औषध और शान्ति की जाती है। जो ऋचा का जाप करते हैं वह स्वस्त्ययन ही करते हैं। जो उत्तर दिशा में जाकर गार्हपत्य और आह-वनीय का सम्मान (उपतिष्ठते) करते हैं (वह) देवताओं को प्रसन्न कर अन्त में उनसे अपना उद्देश्य कहते हैं। और पितृयज्ञ दक्षिण दिशा में स्थित है अतः वे इसे उदक् (उत्तर) दिशा में स्थित करते हैं। जो पूर्व में जाकर आदित्य की उपासना करते हैं (तो) सूर्य देवताओं के ही लोक हैं और पितृगण पितृलोक हैं और इस प्रकार वे पितृलोक से देवलोक पर जाते हैं। जो सूक्तवाक में यजमान का नाम नहीं लेता वह यह सोचकर कि मैं आरूढ होते यजमान लो अग्नि में न छोड़ूं। और जो पत्नियों को देवताओं के साथ आहुति नहीं देते वह इसलिये कि हम पत्नियों को अग्नि में न छोड़ें। जो उत्तर में जाकर त्र्यम्बक को आहुति देते हैं इससे वे रुद्र को उनकी दिशा में प्रसन्न करते हैं। और पितृयज्ञ दक्षिण दिशा में स्थित है और इसे वे उत्तर में स्थित करते हैं। और जो अन्त में यज्ञ करके इष्टि से यजन करते हैं वह इसलिये साकमेध इसमें स्थित है (इसमें समाप्त होता है) अतः अन्त में यजन कर इष्टि से यजन करते हैं। और जो बाद में पौर्णमास से यजन करते हैं इस प्रकार मास के प्रथम पक्ष में वह साकमेध से यजन करता है।

५.८. वह इस तेरहवें मास को प्राप्त करता है जिसमें शुनासीर्य यज्ञ से यज्ञन करता है। इतना (विशाल) यह संवत्सर है जो यह तेरहवाँ मास है। जो यह तेरहवाँ मास है इसमें सभी के द्वारा संवत्सर प्राप्त होता है। यदि अग्नि का मथन होता है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तन्त्रं तत्तन्त्रं यद्यु न मथ्यते पौर्णमासमेव तन्त्रं भवति प्रतिष्ठा वै पौर्णमासं प्रतिष्ठित्या एवाथ यदग्निर्मथ्यते तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यत्सप्तदश सामिधेन्यः सद्वन्तावाज्यभागौ विराजौ संयाज्ये तस्योक्तं ब्राह्मणमथ यन्नव प्रयाजा नवानुयाजा अष्टौ हवींषि स्विष्टकृन्नवमं तन्नक्षत्रियां विराजमाप्नोति समानानि त्वेव पञ्च संचराणि हवींषि भवन्ति पौष्णान्तानि तेषामुक्तं ब्राह्मणमथ यच्छुनासीरौ यजति शान्तिर्वै भेषजं शुनासीरौ शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियतेऽथ यद्वायुं यजति प्राणो वै वायुः प्राणमेव तत्प्रीणात्यथ यत्सौर्य एककपालोऽसौ वै सूर्यो योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणात्यथ यच्छ्वेता दक्षिणैतमेव तत्प्रीणात्येतस्यैव तद्रूपं क्रियते ॥ ८ ॥

अथ यत्प्रायश्चित्तप्रतिनिधीन्कुर्वन्ति यदाहुतीर्जुह्वति स्वस्त्ययनमेव तत्कुर्वते यज्ञस्यैव शान्त्यै यजमानस्य च भिषज्यायै ॥ ९ ॥

अथ यत्स्वैरग्निभिर्यजमानं संस्थापयन्ति देवरथो वा अग्नयो देवरथ एवैनं तत्संस्थापयन्ति स एतेन देवरथेन स्वर्गं लोकमेति सुकृतां यत्र लोकः सुकृतां यत्र लोकः ॥ १० ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तो जो वैश्वदेव का तन्त्र (रूप, आदर्श) है वही तन्त्र होता है। यदि अग्नि का मथन नहीं होता तो पौर्णमास का तन्त्र होगा। पौर्णमास यज्ञ प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा के लिये ही यह है। जो अग्नि का मथन किया जाता है उसका ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। और जो सत्रह सामिधेनी, दो आज्यभाग 'सद्' युक्त, संयाज्या विराट् छन्द हैं उसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। इसमें नव पूर्व आहुतियाँ (प्रयाज), नव उत्तर आहुतियाँ (अनुयाज), आठ हविष् तथा नवाँ स्विष्टकृत् हैं इससे वह नक्षत्रों की श्री (विराज) को प्राप्त करता है। पाँच साथ की हवि जो पूषा से समाप्त होती है वही है। इनका ब्राह्मण (व्याख्यान-निर्वचन) कहा जा चुका है। जो शुनासीरों का यजन करता है तो शुनासीर शान्ति और भेषज है। अतः इस प्रकार यज्ञान्त में शान्ति और भेषज किया जाता है। और जो वायु का यजन करता है तो वायु प्राण है और इस प्रकार वह प्राण को प्रसन्न करता है। और जो सूर्य के लिये एक कपाल में (पुरोडाश) रहता है तो यह सूर्य जो तपता उसी को वह इससे प्रसन्न करता है। इसमें यज्ञीय दक्षिणा श्वेता (गौ) है इससे वह उसे प्रसन्न करता है। और इस प्रकार उसका रूप किया जाता है!

५.९. जो प्रायश्चित्त और प्रतिनिधि(स्थानापन्न)करते हैं, जो आहुतियों का हवन करते हैं इससे वे स्वस्त्ययन ही करते हैं। यह यज्ञकी शान्ति और यजमानकी औषधिके लिये है।

५.१०. जो अपनी अग्नियों से यजमान को संस्थापित करते हैं(वह इसलिये कि)अग्नियाँ देवताओं के हैं अतः इसे (यजमान को) देवरथ पर ही स्थापित करते हैं। वह इस देवरथ से स्वर्गलोक को जाता है जो पुण्यात्माओं का लोक है।

शाङ्खायनब्राह्मण में पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हरिॐ प्रजापतिः प्रजातिकामस्तपोऽतप्यत तस्मात्तप्तात्पञ्चाजायन्ताग्निर्वायु-रादित्यश्चन्द्रमा उषाः पञ्चमी तानब्रवीद्यूयमपि तप्यध्वमिति तेऽदीक्षन्त तान्दीक्षितांस्तेपानानुषाः प्राजापत्याप्सरोरूपं कृत्वा पुरस्तात्प्रत्युदैत्तस्यामेषां मनः समपतत्ते रेतोऽसिञ्चन्त ते प्रजापतिं पितरमेत्याब्रुवनेतो वा असिञ्चाम हा इदं नो मामुया भूदिति स प्रजापतिर्हिरण्मयं चमसमकरोदिषुमात्रमूर्ध्वमेवं तिर्यञ्चं तस्मिन्नेतत्समसिञ्चत्तत उदतिष्ठत्सहस्राक्षः सहस्रपात्सहस्रेण प्रतिहिताभिः ॥१॥

स प्रजापतिं पितरमभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीति नाम मे कुर्वित्यब्रवीन्न वा इदमविहितेन नाम्नाऽन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीद्भव एवेति यद्भव आपस्तेन ह वा एनं न भवो हिनस्ति नास्य प्रजां नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एवं पापीयान्भवति न स य एवं वेद तस्य व्रतमार्द्रमेव वासः परिदधीतेति ॥ २ ॥

तं द्वितीयमभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीति द्वितीयं मे नाम

छठवाँ अध्याय

६.१ प्रजा की कामना से प्रजापति ने तप किया। उनके तप्त होने पर उनसे पाँच उत्पन्न हुए—अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा और उषा। उनसे (उन्होंने) कहा—तुम लोग भी तप करो। उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। उनके दीक्षित होकर तप्त होने पर प्रजापति की सन्तान उषा अप्सरा का रूप धारण कर उनके सामने प्रकट हुई। उसमें इन लोग का मन लगा; उन्होंने रेतस् का सिञ्चन किया। उन्होंने अपने पिता प्रजापति के पास जाकर झका—हमने रेतस् का सिञ्चन किया है यह यहाँ न रहे। उन प्रजापति ने हिरण्मय चमस (चम्मच) बनाया जो बाण मात्र ऊँचा और मोटा था। उसमें इसका सिञ्चन किया। तब (वे) सहस्राक्ष, सहस्र पैर वाला तथा सहस्र (बाण) से युक्त होकर उठे।

६.२ वह अपने पिता प्रजापति को पाया। (पिता के पास गया) उन्होंने उनसे कहा आपने कैसे मुझे प्राप्त किया मेरे पास क्यों आये ? उन्होंने कहा— मुझे नाम दीजिये बिना नाम रखे मैं इस विहित अन्न को नहीं खा सकता। उन्होंने कहा— तुम भव हो। क्योंकि जल भव हैं अतः भव उन्हें उनकी सन्तानों को, उनके पशुओं को और जो अपने को उनका (भव का) बताता है उसको कष्ट नहीं देते हैं। जो उनसे द्वेष करता वह पापी होता है। और जो ऐसा जानता है वह (पापी) नहीं होता। इसका व्रत (नियम) है कि आर्द्र वस्त्र धारण करे।

६.३ दूसरी बार उनके पास पहुँचा। उन्होंने पूछा—क्यों मेरे पास आये हो ? उसने कहा—दूसरा नाम मुझे दीजिये। एक नाम से ही इस अन्न को मैं नहीं खा सकता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कुर्वित्यब्रवीन्न वा इदमेकेन नाम्नाऽन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीच्छर्व एवेति यच्छर्वोऽग्निस्तेन न ह वा एनं शर्वो हिनस्ति नास्य प्रजां नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एव पापीयान्भवति न स य एवं वेद तस्य व्रतं सर्वमेव नाश्नीयादिति ॥ ३ ॥

तं तृतीयमभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीति तृतीयं मे नाम कुर्वित्यब्रवीन्न वा इदं द्वाभ्यां नामभ्यामन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीत्पशुपतिरेवेति यत्पशुपतिर्वायुस्तेन न ह वा एनं पशुपतिर्हिनस्ति नास्य प्रजां नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एव पापीयान्भवति न स य एवं वेद तस्य व्रतं ब्राह्मणमेव न परिवदेदिति ॥ ४ ॥

तं चतुर्थमभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीति चतुर्थं मे नाम कुर्वित्यब्रवीन्न वा इदं त्रिभिर्नामभिरन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीदुग्र एव देव इति यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन न ह वा एनमुग्रो देवो हिनस्ति नास्य प्रजां नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एव पापीयान्भवति न स य एवं वेद तस्य व्रतं स्त्रिया एव विवरं नेक्षेतेति ॥ ५ ॥

तं पञ्चममभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीति पञ्चमं मे नाम कुर्वित्य-

---

उन्होंने कहा—तुम शर्व हो। क्योंकि अग्नि शर्व है अतः शर्व उसकी या उसकी सन्तानों की या उसके पशुओं की या जो कोई अपने को उनका मानता है क्षति नहीं करते। और जो इससे द्वेष करता है वह पापी होता है जो ऐसा जानता है वह नहीं। इसका नियम है सभी (शर्व) नहीं खाना चाहिये।

६.४ तीसरी बार वह उनके पास गया। उन्होंने पूछा—क्यों तीसरी बार मेरे पास आये। उसने कहा—मेरा तीसरा नाम दीजिये। इन दोनों नामों से मैं इस अन्न को नहीं खा सकता। उन्होंने कहा—तुम पशुपति हो। क्योंकि वायु पशुपति है अतः इसे, इसकी प्रजा को, इसकी पशुओं को या और जो कोई इसका अपने को बताता है पशुपति हिंसित नहीं करते। जो इससे द्वेष करता है वह पापी होता है। जो ऐसा जानता है वह नहीं। उसका व्रत है ब्राह्मण की निन्दा न करे।

६.५ उनके पास चौथी बार गया। उससे उन्होंने कहा—क्यों मेरे पास आये। उसने कहा—मेरा चौथा नाम करिये। तीन नामों से इस अन्न को मैं नहीं खा सकता। उन्होंने कहा—तुम 'उग्र' देव हो। क्योंकि उग्रदेव ओषधियाँ और वनस्पतियाँ हैं अतः इसको, इसकी प्रजाओं को, इसके पशुओं को या और जो कोई अपने को इसका बताता है उग्रदेव हिंसित नहीं करते। जो इससे द्वेष करता है वही पापी होता है, जो ऐसा जानता है, वह नहीं। इसका व्रत है कि स्त्री के विवर (छिद्र) को नहीं देखना चाहिये।

६.६ उनके पास पाँचवीं बार गया। उन्होंने पूछा—क्यों मेरे पास आये। उसने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ब्रवीन्न वा इदं चतुर्भिर्नामभिरन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीन्महानेव देव इति यन्महान्देव आदित्यस्तेन न ह वा एनं महान्देवो हिनस्ति नास्य प्रजां नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एव पापीयान्भवति न स य एवं वेद तस्य व्रतमुद्यन्तमेवैनं नेक्षेतास्तं यन्तं चेति ॥ ६ ॥

तं षष्ठमभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीति षष्ठं मे नाम कुर्वित्यब्रवीन्न वा इदं पञ्चभिर्नामभिरन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीद्रुद्र एवेति यद्रुद्रश्चन्द्रमास्तेन न ह वा एनं रुद्रो हिनस्ति नास्य प्रजां नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एव पापीयान्भवति न स य एवं वेद तस्य व्रतं विमूर्त्तमेव नाश्नीयान्मज्जानं चेति ।। ७ ।।

तं सप्तममभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीति सप्तमं मे नाम कुर्वित्यब्रवीन्न वा इदं षड्भिर्नामभिरन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीदीशान एवेति यदीशानोऽन्नं तेन न ह वा एनमीशानो हिनस्ति नास्य प्रजा नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एव पापीयान्भवनि न स य एवं वेद तस्य व्रतमन्नमेवेच्छमानं न प्रत्याचक्षीतेति ।। ८ ।।

कहा—मेरा पाँचवाँ नाम करिये । चार नामों से इस अन्न को मैं नहीं खा सकता । उन्होंने कहा—तुम महान् देव (महादेव) हो । क्योंकि महादेव आदित्य है इसलिये इसको, इसकी प्रजा को, इसके पशुओं को या और जो कोई अपने को इसका बताता है महादेव हिंसित नहीं करते । जो इससे द्वेष करता है वही पापी होता है; जो ऐसा जानता है वह नहीं । उसका व्रत है कि इसे (आदित्य को) उदित होते हुए और अस्त होते हुए नहीं देखना चाहिये ।

६.७ वह छठीं बार उन्हें पकड़ा (उनके पास गया) । उससे उन्होंने कहा—क्यों मेरे पास आये । उसने कहा—मेरा छठा नाम करिये । पाँच नामों से इस अन्न को मैं नहीं खा सकता । उन्होंने कहा—तुम रुद्र हो । क्योंकि रुद्र चन्द्रमा है अतः वह इसको, इसकी प्रजा को, इसके पशुओं को या जो कोई अपने को इसका बताता है रुद्र हिंसित नहीं करते । जो इससे द्वेष करता है वही पापी होता है, जो ऐसा जानता है वह नहीं । इसका व्रत है जो विमूर्त है या मज्जान (संकीर्ण ?) है उसे न खाये ।

६.८ उनके पास वह सातवीं बार गया । उन्होंने उससे कहा—क्यों मेरे पास आये हो । उसने कहा मेरा सातवाँ नाम करिये । इस अन्न को छः नामों से मैं नहीं खा सकता । उन्होंने कहा—तुम ईशान हो । क्योंकि ईशान अन्न हैं अतः उसे, उसकी प्रजा को, उसके पशु को या जो कोई उसका अपने को कहता है ईशान हिंसित नहीं करते । जो इससे द्वेष करता है वही पापी होता है, जो ऐसा जानता है वह नहीं । उसका व्रत है अन्न की ही कामना करने वाले का प्रत्याख्यान न करे ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तमष्टममभ्यायच्छत्तमब्रवीत्कथा माऽभ्यायच्छसीत्यष्टमं मे नाम कुर्वित्यब्रवीन्न वा इदं सप्तभिर्नामभिरन्नमत्स्यामीति स वै त्वमित्यब्रवीदशनिरेवेति यदशनिरिन्द्रस्तेन न ह वा एनमशनिर्हिनस्ति नास्य प्रजां नास्य पशून्नास्य ब्रुवाणं चनाथ य एनं द्वेष्टि स एव पापीयान्भवति न स य एवं वेद तस्य व्रतं सत्यमेव वदेद्धिरण्यं च बिभृयादिति स एषोऽष्टनामाऽष्टधाविहितो महान्देव आह वा अस्याष्टमात्पुरुषात्प्रजाऽन्नमत्ति वशीयान्वशीयान्हैवास्य प्रजायामाजायते य एवं वेद ॥ ९ ॥

प्रजापतिस्तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा प्राणादेवेमं लोकं प्रावृहदपानादन्तरिक्षलोकं व्यानादमुं लोकं स एतान्स्त्रीँल्लोकानभ्यतप्यत सोऽग्निमेवास्माल्लोकादसृजत वायुमन्तरिक्षलोकादादित्यं दिवः स एतानि त्रीणि ज्योतींष्यभ्यतप्यत सोऽग्नेरेवर्चोऽसृजत वायोर्यजूंष्यादित्यात्सामानि स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतप्यत स यज्ञमतनुत स ऋचैवाशंसद्यजुषा प्रातरत्साम्नोदगायदथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहदेतेषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यृचां प्रावृहद्भुव इति यजुषां स्वरिति साम्नां तेन दक्षिणतो ब्रह्माऽऽसीत्तस्य दक्षिणतो वर्षीयानुदीचनप्रवणो

६.९ उनके पास आठवीं बार वह गया। उन्होंने उससे पूछा—क्यों मेरे पास आये ? उसने कहा—मेरा आठवाँ नाम करिये। सात नामों से इस अन्न को मैं नहीं खा सकता। उन्होंने कहा—तुम अशनि हो। क्योंकि इन्द्र अशनि (वज्र) है अतः इसे, इसकी प्रजा को, इसके पशु को या जो कोई अपने को इसका कहता है अशनि हिंसित नहीं करता। जो इससे द्वेष करता है वही पापी होता है, जो ऐसा जानता है वह नहीं। इसका व्रत है सत्य ही बोले और स्वर्ण धारण करे। ये महादेव अष्ट नामों वाले तथा आठ प्रकार से विभक्त हैं। जो ऐसा जानता है उसकी प्रजा आठ पीढ़ियों तक अन्न खाती है और इसकी प्रजा में सदैव तेजस्वी उत्पन्न होते हैं।

६ १० प्रजापति ने तप तपा (किया)। उन्होंने तप करके प्राण (श्वासवायु) से इस लोक का विस्तार किया, अपान से अन्तरिक्ष को और व्यान से उस लोक को। उन्होंने इन तीनों लोकों के ऊपर तप किया। इस लोक से उन्होंने अग्नि को सृष्टि की, अन्तरिक्ष लोक से वायु को और द्युलोक से आदित्य की सृष्टि की। उन्होंने इन तीन ज्योतियों के ऊपर तप किया। उन्होंने अग्नि से ही ऋचाओं की सृष्टि की, वायु से यजुष् की और आदित्य से सामन् की सृष्टि की, उन्होंने इस त्रयी विद्या के ऊपर तप किया। उन्होंने यज्ञ का विस्तार किया। उन्होंने ऋक् से आशंसन (पाठ) किया, यजुष् से प्रारम्भ किया (कार्य किया), सामन् से गायन किया। इस त्रयी विद्या के तेज का रस उन्होंने इन वेदों के ही चिकित्सा (स्वास्थ्य-भिषज्या) के लिये तैयार किया। उन्होंने ऋचाओं का भूः, यजुषों का भुवः और सामों का 'स्वः'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यज्ञः संतस्थे तस्य ह वै दक्षिणतो वर्षीयानुदीचीनप्रवणो यज्ञः संतिष्ठते यस्यैवं विद्वान्ब्रह्मा भवति ॥ १० ॥

तदाहुर्यदृचा होता होता भवति यजुषाऽध्वर्युरध्वर्युः साम्नोद्गातोद्गाता केन ब्रह्मा ब्रह्मा भवतीति यमेवामुं त्रय्यैविद्यायै तेजोरसं प्रावृहत्तेन ब्रह्मा ब्रह्मा भवति तदाहुः किंविदं किंछन्दसं ब्रह्माणं वृणीतेत्यध्वर्युमित्येके स परिक्रमाणां क्षेत्रज्ञो भवतीति च्छन्दोगमित्येके तथा ह्यस्य त्रिभिर्वेदैर्हविर्यज्ञाः संस्क्रियन्त इति बह्वृचमिति त्वेव स्थितमेतत्परिचरणावितरौ वेदावत्र न भूयिष्ठा होत्रा आयत्ता भवन्तीत्यृग्भिर्ग्रहा गृह्यन्त ऋक्षु सामानि गीयन्ते तस्माद् बह्वृच एव स्यात्तदाहुः कियद्ब्रह्मा यज्ञस्य संस्करोति कियदन्य ऋत्विज इत्यर्धमिति ब्रूयाद् द्वे वै यज्ञस्य वर्तनी वाचाऽन्या संस्क्रियते मनसाऽन्या स या वाचा संस्क्रियते तामन्य ऋत्विजः संस्कुर्वन्त्यथ या मनसा तां ब्रह्मा तस्माद्यावदृचा यजुषा साम्ना कुर्युस्तूष्णीं तावद्-ब्रह्माऽऽसीतार्धं हि तद्यज्ञस्य संस्करोति ॥ ११ ॥

विकसित किया। इससे दक्षिण दिशा में ब्रह्मा थे। इससे यज्ञ दक्षिण में विस्तृत औरउत्तर की ओर प्रवण (ढालुआँ) स्थित हुआ। जिसका ब्रह्मा ऐसा विद्वान् होता है उसका यज्ञ दक्षिण में विस्तृत और उत्तर में ढालुआँ होता है। [टिप्पणी—डॉ० कीथ तेन के स्थान पर 'केन' पाठ मानते हैं]

६.११ वे कहते हैं कि ऋक् से 'होता होता' होता है, यजुष् से अध्वर्यु अध्वर्यु होता है, साम से उद्गाता उद्गाता होता है (तो) किससे ब्रह्मा ब्रह्मा होता है। (तो) जो इस त्रयी विद्या से तेजस् के रस को बृंहित (वर्धित) किया उससे ब्रह्मा ब्रह्मा होता है। वे कहते हैं कि क्या जानने वाले तथा किस छन्द वाले को ब्रह्मा बनावे। कुछ कहते हैं कि अध्वर्यु को, क्यों कि वह परिक्रमा के स्थानों (क्षेत्रों)को जानता है। कुछ कहते हैं कि छान्दोग को क्योकि उसके हविर्यज्ञ तीनों वेदों से संस्कृत होते हैं। तथापि नियम यह है बह्वृच (ऋग्वेदी) हो। क्योंकि अन्य दो वेद इसके परिचरण (सहायक) हैं। इस पर होता के कर्म बहुशः निर्भर हैं (यहाँ न 'भूयिष्ठा' में कीथ ने 'न' को निरर्थक स्वीकृत किया है।) ऋचा से ही ग्रहों (पात्र ?) का ग्रहण होता है, ऋचाओं पर ही साम का गायन होता है अतः बह्वृच ही (ब्रह्मा) हो। वे पूछते है 'यज्ञ का कितना अंश ब्रह्मा संस्कृत करता है और अन्य ऋत्विज कितना (करते हैं)। (वह) कहे—'आधा'। यज्ञ के दो मार्ग (वर्तनी) हैं। एक वाणी से किया जाता है दूसरा मन से संस्कृत किया जाता है। जो वाणी से किया जाता है उसे अन्य ऋत्विज संस्कृत करते हैं और जो मन से किया जाता है उसे ब्रह्मा करता है। अतः जब तक ऋक्, यजुष् और सामन् से वे करें तब तक ब्रह्मा चुप बैठे क्योंकि वह यज्ञ का आधा करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ यत्रैनं ब्रूयुर्ब्रह्मन्प्रणेष्यामो ब्रह्मन्प्र च तरिष्यामो ब्रह्मन्प्रस्थास्यामो ब्रह्मन्स्तोष्याम इत्योऽमित्येतावता प्रसूयादेतद्ध वा एकमक्षरं त्रयीं विद्यां प्रति प्रति तथा हास्य त्रय्या विद्यया प्रसूतं भवति ब्रह्मणि वै यज्ञः प्रतिष्ठितो यद्वै यज्ञस्य स्खलितं बोल्वणं वा भवति ब्रह्मण एव तत्प्राहुस्तस्य त्रय्या विद्यया भिषज्यत्यथ यद्धयृच्युल्बणं स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा गार्हपत्ये प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयाद्भूः स्वाहेति तदृचमृचि दधात्यृचर्चि प्रायश्चित्तिं करोत्यथ यदि यजुष्युल्बणं स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽन्वाहार्यपचने प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयाद्धविर्यज्ञ आग्नीध्रीये सौम्येऽध्वरे भुवः स्वाहेति तद्यजुर्यजुषि दधाति यजुषा यजुषि प्रायश्चित्तिं करोत्यथ यदि साम्न्युल्बणं स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽऽहवनीये प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयात्स्वः स्वाहेति तत्साम साम्नि दधाति साम्ना साम्नि प्रायश्चित्तिं करोत्यथ यद्यविज्ञातमुल्बणं स्याच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽऽहवनीय एव प्रायश्चित्ताहुतिं जुहुयाद्भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्येष ह वै यज्ञस्य व्यृद्धं समर्धयति य एताभिर्व्याहृतिभिः प्रायश्चित्तिं करोति न ह वा उपसृतो ब्रूयान्नाहमेतद्वेदेत्येता व्याहृतीर्विद्वान्सर्वं ह वा उ स वेद य एता व्याहृतीर्वेद तद्यथा ह वै दारुणः श्लेष्मसंश्लेषणं स्यात्परिचर्मण्यं वैवमेवैता व्याहृतयस्त्रय्यै विद्यायै संश्लेषण्यः ॥ १२ ॥

६.१२. जब उससे वे कहें—'हे ब्रह्मन्! हम आगे करें' हे ब्रह्मन्! हम प्रारम्भ करें।' हे ब्रह्मन्! हम आगे बढ़ें। 'हे ब्रह्मन्! हम स्तुति करें।' तो वह उनसे केवल 'ओम्' कहे। यह एक अक्षर त्रयी विद्या का प्रतिनिधि है। अतः उसके द्वारा त्रयी विद्या से प्रेरणा दी गयी। ब्रह्म में ही यज्ञ प्रतिष्ठित है। यज्ञ में जो कुछ स्खलित(च्युत)या अधिक (उल्वण अर्थात् दोषयुक्त) है उसे ब्रह्म से कहते हैं। वह उसकी त्रयी विद्या से चिकित्सा करता है (ठीक करता है)। यदि कुछ ऋचा में दोष युक्त हुआ है तो वह आज्य (घृत)को चार भागों में लेकर 'भूः स्वाहा' से गार्हपत्य में प्रायश्चित्त आहुति दे। इससे वह ऋचा में ऋचा को स्थापित करता है। ऋचा से ऋचा में प्रायश्चित्त करता है। और यदि यजुष् में दोष हुआ है तो आज्य को चार भागों में लेकर हविर्यज्ञ की स्थिति में 'भुवः स्वाहा' से अन्वाहार्य वचन में आहुति दे और सोम यज्ञ में आग्नीध्र अग्नि में आहुति दे। इससे वह यजुष् को यजुष् में स्थापित करता है और यजुष् से यजुष् में प्रायश्चित्त को करता है। यदि सामन् में दोष (उल्वणं) हुआ है तो चार आज्यभाग लेकर आह्वनीय में 'स्वः स्वाहा' से प्रायश्चित्त आहुति का हवन करे। इस प्रकार वह साम को साम में स्थापित करता है; साम में साम से प्रायश्चित्ति करता है और यदि (कोई) अज्ञात दोष हो तो चार भागों में आज्य लेकर 'भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इससे आहवनीय में ही प्रायश्चित्ताहुति का हवन करे। जो इन व्याहृतियों से प्रायश्चित्ति को करता है वह अपूर्ण यज्ञ को पूर्ण करता है। जब उसके पास जाया जाय तो जब वह इन व्याहृतियों को जानता है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ यद्ब्रह्मसदनात्तृणं निरस्यति शोधयत्येवैनं तदथोपविशतीदमहमर्वावसोः सदसि सीदामीत्यर्वावसुर्हं वै देवानां ब्रह्मा तमेवैतत्पूर्वे सादयत्यरिष्टं यज्ञं तनुतादित्यथोपविश्य जपति बृहस्पतिर्ब्रह्मेति बृहस्पतिर्हं वै देवानां ब्रह्मा तस्मिन्नेवैतदनुज्ञामिच्छते प्रणीतासु प्रणीयमानासु वाचं यच्छत्या हविष्कृत उद्वादनादेतद्वै यज्ञस्य द्वारं तदेतदशून्यं करोतीष्टे च स्विष्टकृत्याऽनुयाजानां प्रसवादेतद्ध वै यज्ञस्य द्वितीयं द्वारं तदेवैतदशून्यं करोत्यथ यत्र ह तद्देवा यज्ञमतन्वत तत्सवित्रे प्राशित्रं परिजह्रुस्तस्य पाणी प्रतिच्छेद तस्मै हिरण्मयौ प्रतिदधुस्तस्माद्धिरण्यपाणिरितिस्तुतस्तद्भगाय परिजह्रुस्तस्याक्षिणी निर्जघान तस्मादाहुरन्धो भग इति तत्पूष्णे परिजह्रुस्तस्य दन्तान्परोवाप तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भभाग इति ते देवा ऊचुः ॥ १३ ॥

इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठस्तस्मा एनत्परिहतेति तत्तस्मै परिजह्रुस्तस्य ब्रह्मणा शमयाञ्चकार तस्मादाहेन्द्रो ब्रह्मेति तत्प्रतीक्षते मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष

तो यह न कहे कि मैं नहीं जानता। जो इन व्याहृतियों को जानता है वह निश्चय ही सभी कुछ जानता है। जैसे काष्ठ का रस्सी या चर्मतन्तु का आवेष्टन हो उसी प्रकार ये व्याहृतियाँ त्रयी विद्या के लिये आवेष्टन हैं।

६.१३ जो ब्रह्मसदन से तृण को हटाता है तो इस प्रकार वह निश्चय ही इसे शुद्ध करता है। तदनन्तर वह अर्वावसु के स्थान पर 'मैं अर्वावसु के सदस (स्थान) पर बैठता हूँ' (कहकर) बैठता है। अर्वावसु देवों के ब्रह्मा हैं। इस प्रकार वह उसे (यह कहते हुये कि) 'निर्विघ्न यज्ञ चले' बैठाता है। बैठकर वह जप करता है—'बृहस्पति देवों के ब्रह्मा हैं। इस प्रकार वह उनसे अनुमति लेना चाहता है। 'प्रणीता' जलों के ले आते समय जब तक 'हविष्कृत' शब्द का जोर से उच्चारण नहीं होता वह वाणी का यमन करता है (मौन रहता है)। यह यज्ञ का द्वार है अतः यह उसे शून्य (रिक्त) नहीं करता। वह स्विष्टकृत यज्ञ के कर लेने पर अनुयाजों के आरम्भ तक (वह मौन रहता है)। यह यज्ञ का दूसरा द्वार है अतः वह इसे अशून्य करता है। जब देवों ने यज्ञ किया उन्होंने ब्रह्मा का मार्ग सविता के लिये रखा। इससे उनके दोनों हाथ कट गये। इसके स्थान पर उन्होंने उन्हें दो स्वर्णमय (हाथों) को दिया। इसीलिये वे हिरण्यपाणि (स्वर्णिम हाथ) रूप में स्तुत हुये। उन्होंने इसे भग के लिये रखा। इसने उनको दोनों आखों को नष्ट कर दिया। इसी से वे कहते है कि 'भग अन्धे हैं। उसे पूषन् के लिये रखा। इसने उनके दाँतों को उखाड़ दिया। इसी से वे कहते हैं कि पूषा दन्तहीन तथा करम्भभाक् (तरल पदार्थ भोजी) हैं। उन देवों ने कहा—

६.१४ इन्द्र देवताओं में सबसे अधिक ओजस्वी तथा बलवान् हैं; इनके लिये इसे रखो; उन्होंने उनके लिये इसे लाया (रखा); उन्होंने उसका ब्रह्म से शमन किया।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इति मित्रस्यैवैनं तच्चक्षुषा शमयत्यथैनत्प्रति गृह्णाति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामीत्येताभिरेवैनं तद्देवताभिः शमयति तद्व्युह्य तृणाति प्राग्दण्डं स्थण्डिले निदधाति पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थ इति पृथिवी वा अन्नानां शमयित्री शमयत्येवैनं तत्तत आदाय प्राश्नात्यग्नेष्ट्वाऽऽस्येन प्राश्नामीत्यग्निर्वा अन्नानां शमयिता शमयत्येवैनं तदथापोऽन्वाचामति शान्तिरसीति शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियतेऽथ प्राणान्संमृशन्ति तद्यदेवात्र प्राणानां क्रूरीकृतं यद्विलिष्टं तदेवैतदाप्याययति तद्भिषज्यतीन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामीति नाभिमन्ततोऽभिमृशन्तीन्द्रो ह्येवैनं तच्छमयां चकाराथ यत्सावित्रेण जपेन प्रसौति सविता वै प्रसविता कर्मण एव प्रसवाय ॥ ४ ॥

प्रजापतिर्ह यज्ञं ससृजे सोऽग्न्याधेयेनैव रेतोऽसृजत देवान्मनुष्यानसुरानित्यग्नि-

---

इसलिये (उन्होंने) कहा कि इन्द्र ब्रह्म है। वे उसे देखते हैं (यह कहते हुये कि) 'मित्र के नेत्रों से तुम्हें देखता हूँ'। निश्चय ही वे इस प्रकार उसे मित्र के नेत्रों से शमित करते हैं। वे इसे (यह कहते हुये) स्वीकार करते हैं कि 'सवितृदेव की प्रेरणा से, आश्विनों की बाहुओं से, पूषन् के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ।' निश्चय ही वे इन देवताओं से उसका शमन करते हैं। तदनन्तर तृणों को व्यूहन कर (पृथक्कर) पृथिवी के स्थण्डिल पर (ब्रह्मा के अंश वाले पात्र को) पूर्व की ओर दण्ड (स्रुवा) कर रखता है। (उसे रखते समय कहता है कि) अदिति के उपस्थ (गोद) में पृथिवी की नाभि पर मैं तुझे रखता हूँ। पृथिवी अन्नों की शमनकर्त्री (प्रसादन कर्त्री) हैं। इससे वह निश्चितरूप से उसे शमित (प्रसन्न) करता है। उससे लेकर वह (यह कहते हुये) खाता है कि 'अग्नि के मुख से मैं तुम्हें खाता हूँ'। अग्नि ही अन्नों के शमन (प्रसादन) कर्ता है। इस प्रकार वह उसे प्रसन्न करता है। तदनन्तर वह (यह कहते हुये) जल का आचमन करता है कि 'आप शान्ति हैं।' जल शान्ति तथा भेषज हैं। इस प्रकार निश्चय ही यज्ञान्त में शान्ति तथा भेषज उत्पन्न किये जाते हैं। वह प्राणवायु का स्पर्श करता है। इस प्रकार जो प्राणों में क्रूर कर्म में प्रयुक्त हुआ है या क्षतिग्रस्त है इस प्रकार निश्चय ही उसे वह तृप्त करता है और चिकित्सित करता है। अन्त में वह नाभि को (यह कहते हुये) स्पर्श करता है—'मैं तुझे इन्द्र के जठर में स्थापित करता हूँ।' इन्द्र उसका इस प्रकार शमन करते हैं और जो सवितृ के सम्बन्धी जप से प्रेरित करता है वह इसलिये कि सविता प्रसविता (प्रेरक) है और कर्म प्रेरण के लिये होता है।

६.१५ प्रजापति ने यज्ञ की सृष्टि की। उन्होंने अग्न्याधान से रेतस्, देवों, मनुष्यों और असुरों की सृष्टि की। दर्श और पौर्णमास (हवि) से इन्द्र की सृष्टि की। उनके

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होत्रेण दर्शपूर्णमासाभ्यामिन्द्रमसृजत तेभ्य एतदन्नपानं ससृज एतान्हविर्यज्ञान्सौम्यमध्वरमित्यथो यं यं काममैच्छंस्तं तमेतैरयनैरापुरन्नाद्यमाग्रयणेन तदाहुः कस्मादयनानीति गमनान्येव भवन्ति कामस्य कामस्य स्वर्गस्य च लोकस्य चातुर्मास्यैराप्नुवन्त्स्वर्गांल्लोकान्सर्वान्कामान्सर्वा इष्टीः सर्वममृतत्वं स एष प्रजापतिरेव संवत्सरश्चतुर्विंशो यच्चातुर्मास्यानि तस्य मुखमेव वैश्वदेवं दर्शपूर्णमासौ पर्वण्यहोरात्राण्यस्थिमज्जानि बाहुर्वरुणप्रघासाः प्राणोऽपानो व्यान इत्येतास्तिस्र इष्टय आत्मा महाहविर्या इमा अन्तर्देवतास्तदन्या इष्टीः प्रतिष्ठा शुनासीरीयं स एष प्रजापतिरेव सम्वत्सरश्चतुर्विंशो यच्चातुर्मास्यानि सर्वं वै प्रजापतिः सर्वं चातुर्मास्यानि तत्सर्वेण सर्वमाप्नोति य एवं वेदय एवं वेद ॥ १५ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हरिः ॐ ॥ वाग्दीक्षा वाचो हि दीक्षते प्राणो दीक्षितो वाचा वै दीक्षया देवाः प्राणेन दीक्षितेन सर्वान्कामानुभयतः परिगृह्यात्मन्नदधत तथो एवैतद्यजमानो वाचैव दीक्षया प्राणेन दीक्षितेन सर्वान्कामानुभयतः परिगृह्याऽऽत्मन्धत्त आग्ना-

---

लिये उन्होंने हविर्यज्ञ और सोम यज्ञ में अन्न-पान की सृष्टि की है। उन्होंने जिन-जिन कामनाओं की वाञ्छा की उन्हें इन अयनों से प्राप्त किया तथा अन्नाद्य को आग्रयण से प्राप्त किया। वे कहते हैं 'ये अयन क्यों हैं।' ये प्रत्येक कामना के प्रति तथा स्वर्गलोक को गमन हैं। चातुर्मास्य (यज्ञों) से उन्होंने स्वर्गलोकों, सभी कामनाओं, सभी प्राप्तियों और सभी अमृतत्व को प्राप्त किया। प्रजापति ही चातुर्मास्य (यज्ञ) हैं; चौबीस पर्वों वाला वर्ष। वैश्वदेव इसके मुख, दर्श-पौर्णमास पर्व (ग्रन्थि), दिन रात अस्थि-मज्जा वरुण प्रघास बाहु, प्राण, अपान और व्यान ये तीन इष्टियाँ, महाहवि आत्मा, जो ये अन्तर्देवता हैं वे अन्य इष्टियाँ और शुनासीरीय प्रतिष्ठा हैं। ये प्रजापति ही चातुर्मास्य चतुर्विंश संवत्सर हैं; प्रजापति ही सब कुछ हैं, चातुर्मास्य सभी कुछ हैं; अतः जो इसे जानता है वह सभी से सभी कुछ प्राप्त करता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में छठाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

७.१ वाणी दीक्षा है। क्योंकि (वह) वाणी से दीक्षित होता है। प्राण दीक्षित है। वाणी रूप दीक्षा से दीक्षित प्राण से देवों ने सभी कामनाओं को दोनों ओर लेकर (उनसे पूर्ण होकर) उन्हें अपने में रखा। इसी प्रकार यजमान भी निश्चय वाणी रूप दीक्षा से दीक्षित प्राण से सभी कामों को उभयतः लेकर अपने में रखता है। वह अग्नि तथा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वैष्णवमेकादशकपालं पुरोळाशं निर्वपत्यग्निर्वै देवानामवरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यस्तद्य-श्चैव देवानामवरार्ध्यो यश्च परार्ध्यस्ताभ्यामेवैतत्सर्वा देवताः परिगृह्य सलोकता-माप्नोति तस्मात्कामं पूर्वो दीक्षित्वा संसनुयात्पूर्वस्य ह्यस्य देवताः परिगृहीता भवन्ति शरीराभिः प्राणदीक्षाभिर्दीक्षते प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजास्तद्यत्प्र-याजानुयाजैश्चरन्ति तत्प्राणापाना दीक्षन्ते यद्धविषा तच्छरीरं सोऽयं शरीरेणैव दीक्षमाणेन सर्वान्कामानाप्नोति प्राणापानैर्दीक्षमाणैः सर्वासां देवतानां सलोकतां सायुज्यम् ॥ १ ॥

पञ्चदश सामिधेनीरन्वाह वज्रो वै सामिधेन्यः पञ्चदशो वै वज्रो वार्त्रघ्ना-वाज्यभागौ भवतो वज्रो वार्त्रघ्नावाज्यभागौ त्रिष्टुभौ हविषो याज्यापुरोनुवाक्ये वज्रस्त्रिष्टुबेतेन वै देवास्त्रिः समृद्धेन वज्रेणेभ्यो लोकेभ्योऽसुराननुदन्त तथो एवैतद्यजमान एतेनैव त्रिः समृद्धेन वज्रेणेभ्यो लोकेभ्यो द्विषतो भ्रातृव्यान्नुदते वज्रो वार्त्रघ्नावाज्यभागौ ता उक्तावथातो हविषो याज्यापुरोनुवाक्ये उप वां जिह्वाघृतमा-चरण्यदित्यावती तत्पुरोनुवाक्यारूपं प्रति वां जिह्वाघृतमुच्चरण्यदित्युद्वती तद्याज्या-रूपं त्रिष्टुभौ संयाज्ये बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधात्यागुर

विष्णु को एकादश कपाल पुरोडाश देता है। अग्नि देवों में नीचे के छोर पर हैं तथा विष्णु ऊपरी छोर पर हैं। अतः इन दोनों से, जो निचले तथा ऊपरी छोर पर होकर सभी देवताओं को समाविष्ट किये हैं वह सभी देवताओं को समाविष्ट कर उनकी सलोकता को प्राप्त करता है। अतः पूर्व दीक्षित होकर कामना को प्राप्त करता है क्योंकि उसने पूर्व ही देवताओं का ग्रहण (समाविष्ट) कर लिया है। वह अपने को शरीरयुक्त प्राण-दीक्षाओं से दीक्षित करता है। प्राण ही प्रयाज (पूर्व आहुति) हैं और अपान अनुयाज (उत्तर आहुति) हैं। तो जो प्रयाज और अनुयाजों से चलते हैं (वह) प्राणों और अपानों को दीक्षित करते हैं और जो हविष् से (चलते है) वह (शरीर को दीक्षित करते हैं।) वह दीक्षित शरीर से सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। दीक्षित प्राण और अपान से लोकों की सलोकता और सभी देवताओं का सायुज्य (मिलन) प्राप्त करता है।

७.२ वह पन्द्रह सामिधेनी मन्त्रों का कथन करता है। सामिधेनी मन्त्र वज्र है और वज्र पन्द्रह (पर्वों वाला) है। दोनों आज्य भाग वृत्रघ्न हैं। वृत्रघ्न आज्यभाग वज्र हैं। हविष् के याज्यापुरोनुवाक्या त्रिष्टुप् छन्द है। त्रिष्टुप् वज्र है। त्रिवृत् वज्र से देवों ने असुरों को इन लोकों से बाहर खदेड़ा। निश्चय ही इस प्रकार इस त्रिवृत् वज्र से यजमान द्वेषकर रहे अपने शत्रुओं को इन लोकों से खदेड़ता है। वृत्रघ्न आज्यभाग वज्र हैं। इनका वर्णन हुआ। अब हविष् के याज्यापुरोनुवाक्या में 'आप को जिह्वा घृत की ओर चले' शब्द है। यह पुरोनुवाक्या का प्रतीक है। याज्या में 'आपकी जिह्वा घृत की ओर बाहर निकले है।' इसमें 'उद्वती' शब्द है। यह याज्या

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उदृचमितीळायां च सूक्तवाके चाऽऽह यदा वा आग्नावैष्णवः पुरोळाशो निरुप्यते-ऽथैव दीक्षित इति ह स्माऽऽह तस्मादागुर उदृचमित्येव ब्रूयाद्यथैव दीक्षितस्य न सूक्तवाके यजमानस्य नाम गृह्णाति देवगर्भो वा एष यद्दीक्षितो न वा अजातस्य गर्भस्य नाम कुर्वन्ति तस्मादस्य नाम न गृह्णाति ॥ २ ॥

न वेदे पत्नीं वाचयति नैनं स्तृणात्यसंस्थित एव वा अत्र यज्ञो यत्सौम्यो-ऽध्वरो नेत्पुरा कालात्सौम्यमध्वरं संस्थापयानीति तदाहुः कस्माद्दीक्षितस्यान्ये नाम न गृह्णन्तीत्यग्निं वा आत्मानं दीक्षमाणोऽभिदीक्षते तद्यदस्यान्ये नाम न गृह्णन्ति नेदग्निमासीदामेति यदु सोऽन्यस्य नाम न गृह्णाति नेदेनमग्निर्भूतः प्रदहानीति यमेव द्विष्यात्तस्य दीक्षित सन्नाम ग्रसेतैव तदेवैनमग्निर्भूतः प्रदहत्यथ यमिच्छेद्विचक्षणवत्या वाचा तस्य नाम न गृह्णीयात्सो तत्र प्रायश्चित्तिश्चक्षुर्वै विचक्षणं चक्षुषा हि विपश्यत्येषा ह्त्वेव व्याहृतिर्दीक्षितवादः सत्यमेव स यः सत्यं वदति स दीक्षित इति ह स्माऽऽह तदाहुः कस्माद्दीक्षितस्याशनं नाश्नन्तीति हविरेष भवति यद्दीक्षते तद्यथा हविषोऽनवत्तस्याश्नीयादेवं तत्क्रामं प्र सूतेऽश्नीया-त्तद्यथा हविषोऽयातयामस्याश्नीयादेवम् तत्तदाहुः कस्माद्दीक्षितोऽग्निहोत्रं न जुहो-तीत्यसुरा वा आत्मन्न जुहुवुरुद्वातेऽनग्नौ ते पराभवन्ननग्नौ जुह्वतोऽथ देवा इममेव प्राणमग्निमन्तरा दधत तद्यत्सायं प्रातर्व्रतं प्रदीयतेऽग्निहोत्रं हैवास्यैतस्मिन्प्राणेऽग्नौ

का प्रतीक है। याज्यापुरोनुवाक्या मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द है। त्रिष्टुप् बल और वीर्य है। निश्चय ही इसप्रकार वह याज्या यजमान में बल और वीर्य को रखता है। इला (यज्ञान्न) तथा सूक्तवाक्य के अवसर पर वह गुर की ऋचा (सूत्र) कहता है। जब अग्नि और विष्णु का पुरोडाश दिया जाता है उस समय वह 'दीक्षित' कहता है। अतः केवल स्वीकृति परक सूत्र का अन्तिम ऋच कहे। दीक्षित की अवस्था की ही भाँति सूक्तवाक् में वह यजमान का नाम लेता नही होता। यह दीक्षित दैवगर्भ होता है। अनुत्पन्न गर्भ का नाम नहीं करते। इसलिये इसका नाम नहीं उच्चारण करता।

७.३. तृण की वेदी पर वह (यजमान की) पत्नी को नहीं भाषण करवाता। वह यह सोचकर नही बिछाता (स्तृणाति) कि यह सोमयाग है, यह याग यहाँ पूरा नहीं हो रहा है। मैं सोमयाग को उसके समय से पूर्व पूरा न करूँ। वे कहते हैं—दीक्षित का दूसरे लोग नाम क्यों नही लेते। जो अपने को दीक्षित कर रहा है वह अपने को अग्निरूप में दीक्षित कर रहा है। जो दूसरे उसका नाम नही लेते वह इसलिये कि (वे सोचते हैं कि) हम अग्नि में न बैठें। और जो वह दूसरे का नाम नहीं लेता (वह इसलिये कि वह सोचता है कि) 'मैं अग्नि होकर उसे दहन न करूँ।' यदि वह किसी मनुष्य से द्वेष करता है तो दीक्षित होकर किसी का नाम ग्रास बनावे (अर्थात् ले) और इस प्रकार अग्नि

---

१. अ० कीथ ने 'न' को नहीं माना है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सन्ततमव्यवच्छिन्नं हुतं भवत्येषाऽग्निहोत्रस्य संततिर्दीक्षासु प्रोपसत्सु चरन्ति का मीमांसा सुत्यायाम् ॥ ३ ॥

अथातः कैशिनी दीक्षा केशी ह दाल्भ्यो दीक्षितो निषसाद तं ह हिरण्मयः शकुन आपत्यो वाचा दीक्षितो वा असि दीक्षामहं वेद तां ते ब्रवाणि सकृदयजेत्तस्य क्षयाद्बिभेमि सकृदिष्टस्याहो त्वमक्षितिं वेत्थ तां त्वं मह्यमिति स ह तथेत्योवाच तौ ह संप्रोचाते स ह स आसोलोवावार्ष्णिवृद्ध इटन्वा काव्यः शिखण्डी वा याज्ञसेनो यो वा स आस स स आस सहोवाच शरीराणि वा एतयेष्टद्या दीक्षन्ते या वा इमा पुरुषे देवता यस्यै ता दीक्षन्ते स दीक्षित इति ह स्माऽऽह स यत्राध्वर्युरौद्ग्रभणानि जुहोति तदुप यजमानः पञ्चाहुतीर्जुहुयान्मनो मे मनसा दीक्षितां स्वाहेति प्रथमां

बना वह निश्चय ही उसे जला देता है। और जिसकी कामना करे उसका स्पष्ट वाणी से नाम न ले। वही यहाँ प्रायश्चित्त है। चक्षु ही स्पष्ट (विचक्षण) है। क्योंकि चक्षु (आँख) से ही स्पष्ट देखता है। यह व्याहृति दीक्षित की वाणी है और यह निश्चय ही सत्य है। वह कहता है कि 'जो सत्य बोलता है वह सत्य ही दीक्षित हैं। वे कहते हैं कि दीक्षित का भोजन क्यों नहीं करते हैं? जो वह अपने को दीक्षित करता है तो स्वय हवि बन जाता है। यह वैसे ही होगा जैसे कोई अविभाजित हवि खाये। प्रसव होने पर प्रसन्नता के अनुसार खाये। यह ताजा हवि खाने जैसा होगा। वह पूछते हैं—दीक्षित अग्निहोत्र क्यों हवन नहीं करता ?' असुरों ने इसे बिना अग्नि के अपने में हवन किया क्योंकि अग्नि हटा दिये गये थे। विना अग्नि में हवन करते हुये वे पराजित हुये। तब देवों ने अग्नि में प्राण को रखा। अग्नि में जो सायं प्रातःव्रत दिया जाता है वह इस प्राण अग्नि में सतत और अव्यवच्छिन्न अग्निहोत्र का हवन होता है। यह दीक्षा में अग्निहोत्र का सातत्य है। वे उपसदों (इस विधि) से करते हैं। सुत्यादिन के विषय में क्या मीमांसा की जाय ?

७.४ इसके अनन्त कैशिनी दीक्षा है। दाल्भ्य केशी अदीक्षित होकर बैठा था। उनके पास हिरण्मय पक्षी आकर बोला—आप अदीक्षित हैं। मैं दीक्षा को जानता हूँ। उसे मैं आप से कहूँगा। मैंने एक बार यजन किया है। मैं इसके विनाश से डरता हूँ। जिनका एक बार यजन हो गया है उसके अविनाश को आप जानते हैं। आप उसे मुझे बतावें उसने कहा—'ठीक है।' उन्होंने (उन दोनों ने) परस्पर कहा। यह वह था या उलवार्ष्णिवृद्ध था या इटन् काव्य था या याज्ञसेन शिखण्डी था या जो कोई था, वह था। उसने कहा—इस इष्टि (यज्ञ) से शरीर दीक्षित होते हैं। किन्तु जो इस पुरुष में देवता हैं वे जब दीक्षित होते हैं तब वह (पुरुष) दीक्षित होता है, ऐसा उसने कहा। जब अध्वर्यु औद्ग्रमण (उत्थानकारी ?) आहुतियों का हवन करता है तब यजमान पाँच आहुतियाँ दे। 'मेरे लिये मन मनसे दीक्षित हो स्वाहा' इससे प्रथम आहुति दे। 'मेरी वाणी वाणी से

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वाङ् मे वाचा दीक्षितां स्वाहेति द्वितीयां प्राणो मे प्राणेन दीक्षितां स्वाहेति तृतीयां मध्ये प्राणमाह मध्ये ह्ययं प्राणश्चक्षुर्मे चक्षुषा दीक्षितां स्वाहेति चतुर्थीं श्रोत्रं मे श्रोत्रेण दीक्षितां स्वाहेति पञ्चमीं तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिर्न होतव्या अतिरिक्ता आहुतयः स्युर्यद्भूयेरन्नध्वर्युमेव जुह्वतमन्वारभ्य प्रतीकैरनुमन्त्रयेत मनो मे मनसा दीक्षितामिति प्रथमां वाङ्मे वाचा दीक्षितामिति द्वितीयां प्राणो मे प्राणेन दीक्षितामिति तृतीयां मध्ये प्राणमाह मध्ये ह्ययं प्राणश्चक्षुर्मे चक्षुषा दीक्षितामिति चतुर्थीं श्रोतं मे श्रोत्रेण दीक्षितामिति पञ्चमों दीक्षयत्यु हि वै ता याः पुरुषे देवता नो अतिरिक्ता आहुतयो हूयन्त इत्यथ खलु श्रद्धैव सकृदिष्टस्याक्षितिः स यः श्रद्धानो यजते तस्येष्टं न क्षीयत आपोऽक्षितिर्या इमा एषु लोकेषु याश्चेमा अध्यात्मन्त्स यो मह्यक्षितिरिति विद्वान्यजते तस्येष्टं न क्षीयत एतामु हैव तत्केशी ह दाल्भ्यो हिरण्मयाय शकुनाय सकृदिष्टस्याक्षितिं प्रोवाचापराह्णे दीक्षतेऽपराह्णे ह वा एष सर्वाणि भूतानि संपृङ्क्तेऽपि ह वा एनं रजना अतियन्ति तस्माल्लोहितायन्निवास्तम्बेत्येतमेवाऽऽत्मानं दीक्षमाणोऽभिदीक्षते य एष तपति तस्मादपराह्णे दीक्षते सर्वेषामेव कामानामाप्त्यै ॥ ४ ॥

दीक्षित हो स्वाहा' इससे दूसरी; 'मेरा प्राण प्राण से दीक्षित हो स्वाहा' इससे तीसरी; आहुति दे । प्राण को वह मध्य में कहता है क्यों कि यह प्राण मध्य में है । 'मेरी चक्षु चक्षु से दीक्षित हो स्वाहा' इससे चौथी और मेरे दोनों कान दोनों कानों से दीक्षित हों स्वाहा' इससे पाँचवीं आहुति दे । किन्तु कौषीतकि का कहना है कि इन आहुतियों को न दे क्यों कि यदि इन आहुतियों को दिया जायेगा तो अतिरिक्त आहुतियाँ होंगी । वह केवल हवन कर रहे अध्वर्यु के साथ ही मंत्रों के प्रतीकों का उच्चारण करे । 'मेरा मन मन से दीक्षित हो, इससे पहला, 'वाणी मेरे लिये वाणी से दीक्षित हो' इससे दूसरी, 'मेरे लिये प्राण प्राण से दीक्षित हो' इससे तीसरी, 'मेरे लिए चक्षु चक्षु से दीक्षित हों' इससे चौथी और मेरे लिये श्रोत्र श्रोत्र से दीक्षित हों । इस प्रकार वह निश्चय ही जो पुरुष में देवता हैं उन्हें दीक्षित करता है और अतिरिक्त आहुतियाँ भी हवन नहीं की जातीं । जो एक बार इष्ट (हुत) हुआ उसकी अक्षय्यता श्रद्धा ही है अतः जो श्रद्धालु होकर यजन करता है उसका इष्ट क्षय नहीं होता । जल जो इस लोक में हैं और जो आत्मा में है (वे दोनों) अक्षय्य हैं । वह व्यक्ति जो यह जानते हुये कि मेरे में जो है वह अक्षय है यजन करता है उसका इष्ट (हुत-यज्ञ) क्षीण नहीं होता । जो एक बार इष्ट हुआ है उसकी इस अक्षयता को दाल्भ्य केशी ने हिरण्मय पक्षी से बताया । वह अपने को अपराह्ण में दीक्षित करता है । अपराह्ण में वह सभी प्राणियों को संपृक्त करता है । अपराह्ण में इसपर रजना (रक्तिम किरणें ?) पड़ती हैं । अतः अपने को लोहित करते हुये सा वह अस्त (विश्राम) को जाता है । जो अपने को दीक्षित करता है वह वे जो वहाँ तप रहें हैं अर्थात्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रायणीयेन वै देवाः प्राणमाप्नुवन्नुदयनीयेनोदानं तथो एवैतद्यजमानः प्रायणीयेनैव प्राणमाप्नोत्युदयनीयेनोदानं तौ वा एतौ प्राणोदानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये तस्माद्य एव प्रायणीयस्यर्त्विजस्त उदयनीयस्य स्युः समानौ हीमौ प्राणोदानौ ॥ ५ ॥

प्रायणीयेन ह वै देवाः स्वर्गं लोकमभिप्रायाय दिशो न प्रजज्ञुस्तानग्निरुवाच मह्यमेकामाज्याहुतिं जुहुताहमेकां दिशं प्रज्ञास्यामीति तस्मा अजुहवुः स प्राचीं दिशं प्राजानात्तस्मात्प्राञ्चमग्निं प्रणयन्ति प्राग्यज्ञस्तायते प्राञ्च उ एवास्मिन्नासीना जुह्वत्येषा हि तस्य दिक्प्रज्ञाताऽथाब्रवीत्सोमो मह्यमेकामाज्याहुतिं जुहुताहमेकां दिशं प्रज्ञास्यामीति तस्मा अजुहवुः स दक्षिणां दिशं प्राजानात्तस्मात्सोमं क्रीतं दक्षिणा परिवहन्ति दक्षिणा तिष्ठन्नभिष्टौति दक्षिणा तिष्ठन्परिदधाति दक्षिणा एवैनमासीना अभिषुण्वन्त्येषा हि तस्य दिक्प्रज्ञाताऽथाब्रवीत्सविता मह्यमेकामाज्याहुतिं जुहुताहमेकां दिशं प्रज्ञास्यामीति तस्मा अजुहवुः स प्रतीचीं

सूर्य के रूप में दीक्षित करता है। अतः अपराह्ण में वह समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिये दीक्षित करता है।

७.५ प्रायणीय (प्रारम्भिक) यज्ञ से देवों ने प्राण को प्राप्त किया तथा उदयनीय (अन्तिम) यज्ञ से उदान को। इसी प्रकार निश्चय ही यजमान प्रायणीय से प्राण तथा उदयनीय से उदान को प्राप्त करता है। प्रायणीय तथा उदयनीय यज्ञ प्राण तथा उदान हैं। अतएव जो प्रायणीय के ऋत्विज हैं वे ही उदयनीय के ऋत्विज होवें क्यों कि ये प्राण और उदान समान हैं।

७.६ प्रायणीय यज्ञ से देवता स्वर्गलोक पहुँच कर दिशाओं को न जान सके। अग्नि ने उनसे कहा—'आप लोग मुझे आज्य की एक आहुति का हवन करें मैं एक दिशा का ज्ञान करूँगा'। उनके लिये उन्होंने (एक आज्याहुति) हवन किया। उन्होंने प्राची दिशा को ज्ञात किया। इसीलिये वे अग्नि को प्राची दिशा में ले जाते हैं। यज्ञ पूर्व दिशा में विस्तृत होता है। यज्ञ में पूर्वाभिमुख होकर ही वे इसमें (अग्नि में) हवन करते हैं। क्यों कि यही दिशा उनके द्वारा ज्ञात की गई थी। अनन्तर सोम ने कहा—'मेरे लिये एक आज्याहुति का हवन करें, मैं एक दिशा का ज्ञान करूँगा'। उनके लिये (उन लोगों ने एक आज्याहुति का) हवन किया। उन्होंने दक्षिण दिशा का ज्ञान प्राप्त किया। इसीलिये क्रीत सोम को दक्षिण में घुमाते हैं। दक्षिण से खड़ा होकर स्तुति करता है। दक्षिण में ही खड़ा होकर यदि धारण करता है (समाप्त करता है)। दक्षिण में बैठकर इसके रस को निकालते (अभिषव करते) हैं। क्यों कि यह दिशा उनके द्वारा पहचानी गई थी। अनन्तर सविता ने कहा—'मेरे लिये एक आज्याहुति का होम करें मैं एक दिशा का ज्ञान प्राप्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दिशं प्राजानात्तदसौ वै सविता योऽसौ तपति तस्मादेनं प्रत्यञ्चमेवाहरहर्यन्तं पश्यन्ति न प्राञ्चमेषा हि तस्य दिक्प्रज्ञाताऽथाब्रवीत्पथ्या स्वस्तिर्मह्यमेकामाज्याहुतिं जुहुताहमेकां दिशं प्रज्ञास्यामीति तस्या अजुहवुः सोदीचीं दिशं प्राजानाद्वाग्वै पथ्या स्वस्तिस्तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यत उदञ्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुं यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्त इति ह स्माऽऽहैषा हि वाचो दिक्प्रज्ञाताऽथा ब्रवीददितिर्मह्यमेकामन्नस्याऽऽहुतिं जुहुताहमेकां दिशं प्रज्ञास्यामीति तस्या अजुहवुः सोर्ध्वां दिशं प्राजानादियं वा अदितिस्तस्मादस्यामूर्ध्वा ओषधय ऊर्ध्वा वनस्पतय ऊर्ध्वा मनुष्या उत्तिष्ठन्त्यूर्ध्वोऽग्निर्दीप्यते यदस्यां किं चोर्ध्वमेव तदायत्तमेषा हि तस्यै दिक्प्रज्ञाता ॥ ६ ॥

एवं वै देवाः प्रायणीयेन स्वर्गं लोकं प्रजानंस्तथो एवैतद्यजमानः प्रायणीयेनैव स्वर्गं लोकं प्रजानाति ते समे स्यातां प्रायणीयोदयनीये देवरथो वा एष यद्यज्ञस्तस्य हैते पक्षसी यत्प्रायणीयोदयनीये ते यः समे कुरुते यथोभयतः पक्षसा रथेन धावयन्नध्वानं यत्राऽऽकूतं न समश्नुवीतैवं स स्वस्ति स्वर्गं लोकं

करूँगा ।' उनके लिये उन्होंने हवन किया । उन्होंने प्रतीची दिशा का ज्ञान प्राप्त किया । ये ही वे सूर्य देव हैं जो ऊपर तप रहे हैं । इसीलिये (लोग) उन्हें दिनों-दिनों पश्चिम दिशा में (जाते) देखते हैं पूर्व दिशा में नहीं क्यों कि यही दिशा उनके द्वारा ज्ञात की गई थी । तदनन्तर पथ्यास्वस्ति ने कहा—'आप लोग मुझे एक आज्याहुति का हवन करें मैं एक दिशा का ज्ञान प्राप्त करूँगा (पहचानूँगा)' । उनके लिये उन लोगों ने हवन किया । उन्होंने उत्तर दिशा का ज्ञान प्राप्त किया (पहचाना) । पथ्यास्वस्ति वाणी है । अतः उत्तर दिशा में प्रज्ञाततर वाणी उच्चारित की जाती है और उत्तर दिशा में ही वाणी सीखने के लिये जाते हैं । और जो वहाँ से आता है उसकी वाणी लोग सुनते हैं इसलिये वह कहता है कि इस दिशा का ज्ञान वाणी ने किया था । अनन्तर अदिति ने कहा— 'मेरे लिये एक अन्नाहुति का होम करें । मैं एक दिशा का ज्ञान करूँगी ।' उसके लिये उन्होंने होम किया उसने ऊर्ध्व दिशा का ज्ञान प्राप्त किया । यह (पृथ्वी) अदिति है इस लिये इस (पृथ्वी) पर ओषधियाँ ऊर्ध्व (मुख) हैं, वनस्पति ऊपर को उठती है, मनुष्य ऊपर को उठते हैं । अग्नि ऊर्ध्व को प्रज्वलित की जाती है । इस पर जो कुछ हैं वह सब ऊर्ध्वमुख है क्यों कि यह दिशा उसके (अदिति) के द्वारा प्रज्ञात की गई थी ।

७.७ इस प्रकार देवताओं ने प्रायणीय (प्रारंभिक) यज्ञ से स्वर्गलोक का ज्ञान प्राप्त किया । निश्चय ही इसी प्रकार यजमान प्रायणीय से स्वर्गलोक को जानता है । प्रायणीय तथा उदयनीय यज्ञ समान होने चाहिये । यज्ञ देवताओं का रथ है और जो प्रायणीय तथा उदयनीय यज्ञ है वे इसके दो पक्ष हैं । जो इन दोनों को समान रूप से करता है वह दोनों पक्ष से युक्त रथ से जैसे यात्रा करके अभीष्ट मार्ग तय किया जाता है वैसे सुखपूर्वक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समश्नुतेऽथ यो विषमे कुरुते यथाऽन्यतरतः पक्षसा रथेन धावयन्नध्वानं यत्राऽऽकूतं न समश्नुवीतैवं स न स्वस्ति स्वर्गं लोकं समश्नुते तस्मात्समे एव स्यातां प्रायणीयोदयनीये शंय्वन्तं प्रायणीयं शंय्वन्तमुदयनीयम् ॥ ७ ॥

पथ्यां स्वस्तिं प्रथमां प्रायणीये यजत्यथाग्निमथ सोममथ सवितारमथादितिं स्वर्गं लोकं प्रायणीयेनाभिप्रैति तद्यत्पुरस्तात्पथ्यां स्वस्तिं यजति स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या अग्निं प्रथममुदयनीये यजत्यथ सोममथ सवितारमथ पथ्यां स्वस्तिमथादितिमिमं वै लोकमुदयनीयेन प्रत्येति तद्यत्परस्तात्पथ्यां स्वस्तिं यजति स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुतेऽस्य लोकस्य समष्ट्यै ता वै पञ्च देवता यजति ताभिर्यत्किञ्च पञ्चविधमधिदैवतमध्यात्मं तत्सर्वमाप्नोति तासां याज्यापुरोनुवाक्यास्ता वै स्वस्तिमत्यः पथिमत्यः पारितवत्यः प्रवत्यो नीतवत्यो भवन्ति मरुतो ह वै देवविशोऽन्तरिक्षभाजना ईश्वरा यजमानस्य स्वर्गलोकं यतो यज्ञवैशकं कर्तोस्तद्यत्स्वस्तिमत्यः पथिमत्यः पारितवत्यः प्रवत्यो नीतवत्यो भवन्ति नैनं मरुतो देवविशो हिंसन्ति स्वस्ति स्वर्ग लोकं समश्नुते ता वै

स्वर्गलोक को प्राप्त करता है और जो असमान करता है वह जैसे एक पक्ष वाले रथ से चलते हुये अभीष्ट मार्ग नहीं पार कर सकता वैसे ही वह सुखपूर्वक स्वर्गलोक नहीं प्राप्त कर सकता । इसलिये प्रायणीय तथा उदयनीय समान ही होने चाहिये । प्रायणीय भी शंयोर्वाक् से समाप्त हो तथा उदयनीय भी शंयोर्वाक् से समाप्त हो ।

७ ८ प्रायणीय में वह प्रथन पथ्या स्वस्ति का यजन करता है तदनन्तर अग्नि का, तदनन्तर सोम का, तदनन्तर सवितृ का और तदनन्तर अदिति का । वह प्रायणीय यज्ञ से स्वर्गलोक को चलता है । तो वह जो प्रथम पथ्या स्वस्ति का यजन करता है वह स्वर्ग-लोक की प्राप्ति के लिये स्वस्त्ययन (मंगलवाचन) करता है । उदयनीय यज्ञ में वह सर्वप्रथम अग्नि का यजन करता है, तदनन्तर सोम का, तदनन्तर सवितृ का, तदनन्तर पथ्या स्वस्ति का और तदनन्तर अदिति का । उदयनोय अग्नि से वह इस लोक को जाता है । और जो बाद में पथ्या स्वस्ति का यजन करता है वह इस लोक की प्राप्ति के लिये स्वस्त्ययन करता है । वह इन पाँच देवताओं का यजन करता है । इन देवताओं से वह देवताओं के विषय में (अधिदैवत) तथा आत्मविषय में (अध्यात्म) जो कुछ पञ्च-विध है उस सबको प्राप्त कर लेता है । इसके याज्या (आहुतिकारी) तथा पुरोनु-वाक्या (आह्वानकारी) मन्त्रों में—'स्वस्ति' 'पथि' 'पारित' 'प्र' 'नीत' शब्द हैं । अन्तरिक्ष के अधिकारी तथा देवताओं की प्रजा (अनुयायी) मरुद्गण स्वर्गलोक में जा रहे यजमान के स्वामी हैं । वे यज्ञ में सम्मिश्रण (या भ्रम) करने वाले हैं । अतः जो 'स्वस्ति' 'पथि' 'पारित' 'प्र' तथा 'नीत' से युक्त हैं उन्हें देवप्रजा मरुत् हिंसित नहीं करते और मंगल (सुख) पूर्वक स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है । उनको वह विपर्यस्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विपर्यस्यति याः प्रायणीयायां पुरोनुवाक्यास्ता उदयनीयायां याज्याः करोति या याज्यास्ताः पुरोनुवाक्याः ॥ ८ ॥

प्रेव वा एषोऽस्माल्लोकाच्च्यवते यः प्रायणीयेनाभिप्रैति तद्यद्विपर्यस्यति तदस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठायामप्रच्युत्यामथो प्राणा वै छन्दांसि प्राणानेव तदात्मन्व्यतिषजत्यववर्हाय तस्माद्धीमे प्राणा विश्वञ्चोऽवाञ्चोऽनुनिर्वाञ्चि त्वां चित्रश्रवस्तम यद्वाहिष्ठं तदग्नय इत्यनुष्टुभौ संयाज्ये ततिर्वै यज्ञस्य प्रायणीयं वागुदयनीयं वागनुष्टुब्वाचा यज्ञस्तायते नैते विपर्यस्यति प्रतिष्ठे वै संयाज्ये नेत्प्रतिष्ठे व्यतिषजानीति शंय्वन्तं भवत्यभिक्रान्त्यै तद्रूपं यद्यथोपप्रयाय स्वर्गस्य लोकस्य नेदीयस्तायां वसेदेवं तद्यद्द्वेव शंय्वन्तं भवति सर्वा ह वै देवताः प्रायणीये संगच्छन्ते स योऽत्र पत्नीः संयाजयेद्यथा संगतां भूमानं देवानां पत्नीरभ्यवनयेदेवं तद्यस्तं तत्र ब्रूयात्संगतां वा अयं भूमान देवानां पत्नीरभ्यवानैषीत्सभामस्य पत्न्यभ्यव इष्यसीति तथा ह स्यात्तस्मादु शंय्वन्तं भवति देवतानामसमराय ॥ ९ ॥

करता है। जो प्रायणीय में पुरोनुवाक्या हैं उन्हें उदयनीय में याज्या (आहुतिपरक) करता है और जो याज्या मन्त्र हैं उन्हें पुरोनुवाक्या बनाता है।

७.९ जो प्रायणीय यज्ञ से आगे बढ़ता है वह मानों इस लोकसे गिरता है और जो वह इन मंत्रों को विपर्यस्त कर देता है वह इस लोक में आधार (प्रतिष्ठा) पाता है। वह प्रतिष्ठा अपतनशील प्रतिष्ठा पर आधारित होती है। और छन्द प्राण हैं अतः वह अपने में प्राणों को संलग्न करता है जिससे वे पृथक् न हों। इससे चारों ओर चलने वाले प्राण बाहर नही होते।[1] (स्विष्टकृत आहुतिके) दोनों संयाज (आह्वानकारी तथा आहुतिकारी) मंत्र अनुष्टुप् छन्द में हैं वे मंत्र हैं—'त्वां चित्रश्रवस्तम' तथा 'यद्वाहिष्ठं तदग्नये'[2]। प्रायणीय (यज्ञ) यज्ञ का ही सातत्य (ततिः) है और उदयनीय वाक् है। अनुष्टुप् वाक् है। वाणी से ही यज्ञ सतत (विस्तृत) होता है। इन दोनों को वह (यह सोचकर) विपर्यस्त नहीं करता कि—संयाज्या मंत्र प्रतिष्ठा हैं। दो प्रतिष्ठाओं को मैं संलग्न करूँ। (यज्ञ) संयुवाक् से समाप्त होता है। यह अभिक्रान्ति(अभिगमन) का रूप है। यह वैसा ही है जैसे प्रयाण कर स्वर्ग लोक की समीपता में वसे। पुनः जो यज्ञ शंयोर्वाक् से समाप्त होता है तो सभी देवता प्रायणीय यज्ञ में साथ आते हैं अतः जो पत्नियों का यजन (देवों के) साथ करता है तो यह देवताओं की पत्नियों को संगत भूमि (एकत्रित होने के स्थान पर) लाना है। यह उसी प्रकार है जैसे कोई कहे—यह सभा में देवताओं की पत्नियों को संगत (साथ) कर लाया है। इसकी पत्नी सभा में आयेगी। यह उसी प्रकार है। इसलिये शंयोर्वाक् से समाप्त होता है जिससे देवताओं का एक साथ आगमन हो।

---

१. डा० कीथ ने 'विष्वञ्चोऽवान्तो न निर्वान्ति' पाठ को उपयुक्त माना है।

२. ऋ० १.४५.६; ५.२५.७।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

असुरा वा अस्यां दिशि देवान्त्समरुन्धन्नेयं प्राच्युदीची त एतस्यां दिशि सन्तः सोमं राज्यायाभ्यषिञ्चन्त ते सोमेन राज्ञेभ्यो लोकेभ्योऽसुराननुदन्त तथो एवैतद्यजमानः सोमेनेव राज्ञेभ्यो लोकेभ्यो द्विषतो भ्रातृव्यान्नुदते तं वै चतुर्भिः क्रीणाति गवा चन्द्रेण वस्त्रेण छागया चतुर वै द्वन्द्वं मिथुनं प्रजननं प्रजात्यै तदसौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः स इमं क्रीतमेव प्रविशति यद्यत्सोमं राजानं क्रीणात्यसौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमा अभिपुतोऽसदिति तस्मै क्रीतया नवाऽन्वाह नवेमे प्राणाः प्राणानेव तद्यजमाने दधाति सर्वायुत्वायास्मिल्लोकेऽमृतत्वायामुष्मिन्भद्रादभि श्रेयः प्रेहीति प्रवतीं प्रवर्त्यमानायान्वाह बृहस्पतिः पुर एता ते अस्त्ववति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मयशसस्यावरुद्ध्या इमां धियं शिक्षमाणस्य देव वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेति त्रिष्टुभौ वारुण्यावन्वाह क्षत्रं वै त्रिष्टुप्क्षत्रं वै वरुणः क्षत्रयशसस्यावरुध्यै सोम यास्ते मयोमुख इति चतस्रो गायत्रीः

७.१० इस दिशा में असुरों ने देवों को रोका। प्राची-उदीची (पूर्वोत्तर) दिशा में स्थित उन लोगों ने सोम को राज्य पर अभिषिद्ध किया। उन्होंने सोम राजा द्वारा इन लोकों से असुरों को बाहर किया। इसी प्रकार यजमान भी सोम राजा की सहायता से इन लोकों से द्वेषकर रहे अपने शत्रुओं को खदेड़ता है। उसे (सोम को) वह चार वस्तुओं से क्रय करता है— गाय से, चन्द्र से, वस्त्र से या बकरी से। मिथुन, द्वन्द्व, प्रजनन चार तक है। यह प्रजाति (प्रजनन) के लिये है। चन्द्रमा विचक्षम सोम राजा है। जब ये क्रीत किये जाते हैं तो इसमें प्रवेश करते हैं। जो सोम राजा का क्रय करता है वह (इस भावना से कि) वे चन्द्रमा जो विचक्षण सोम राजा हैं वे अभिषुत हों। जब वे अभिषुत होते हैं तो वह नौ मन्त्रों का पाठ करता है ये प्राण नौ हैं। इस लोक में सम्पूर्ण आयु के लिये तथा उस लोक में अमृतत्व के लिये वह यजमान में प्राणों को ही स्थापित करता है। आप चन्द्र (मंगल, शोभन) से श्रेय के लिये आइये। आ रहे उनके लिये यह 'प्रवती' मन्त्र को कहे (यह मन्त्र शांखायन श्रौतसूत्र ५।६।२ में पूरा उद्धृत है।) बृहस्पति आपके पुरोगामी हों। बृहस्पति ब्रह्म हैं। यह ब्रह्म के यश की प्राप्ति के लिये होता है। वह वरुण के लिये दो त्रिष्टुप् मन्त्रों का पाठ करता है[1]—'हे देव ! याचक (शिक्षमाण) की इस प्रार्थना को', 'वनों में(उन्होंने)अन्तरिक्ष को फैलाया है।' त्रिष्टुप् क्षत्र है वरुण क्षत्र हैं। यह क्षत्र (राजशक्ति) के यश की प्राप्ति के लिये है। वह सोम के लिये (सोमसम्बन्धी) चार गायत्री मंत्रों का पाठ करता है[2]---'हे सोम जो आपकी आश्चर्यकारी (या कल्याणकारी)' इत्यादि। गायत्री ब्रह्म है, सोम क्षत्र है। (अतः यह) ब्रह्म यश तथा क्षत्र यश प्राप्ति के लिये है। अन्तिम मन्त्र का आधा पाठ कर ही वह चुप हो जाता है। मन्त्र अमृतत्व है। इस प्रकार

१. ऋग्वेद ८।४२।३; ५।८५।२

२. ऋग्वेद १।९१।९–१२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सौमीरन्वाह ब्रह्म वै गायत्री क्षत्रं सोमो ब्रह्मयशसस्य च क्षत्रयशसस्य चावरुद्ध्या उत्तमाया अर्धर्चमुक्त्वोपरमत्यमृतं वा ऋगमृतं तत्प्रविशत्यथा ब्रह्म वा ऋगुभयत एव तद्ब्रह्मार्धर्चो वर्म कुरुते तद्यत्र ऋचाऽर्धर्चेन वा पादेन वोपरमेदेतब्राह्मणमेव तद्या ते धामानि हविषा यजन्तीति प्रवतीं प्रपाद्यमानायान्वाहागं देवऋतुभिर्वर्धतु क्षयमित्यागतवत्यर्तुमत्या परिदधाति संवत्सरो वै सोमो राजेति ह स्माऽऽह कौषीतकिः सोऽभ्यागच्छन्नृतुभिरेव सहाभ्येतीत्यभिरूपाऽन्वाह यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्यै ता वै नवान्वाह तासामुक्तं ब्राह्मणं त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया त्रयोदश संपद्यन्ते द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्या अथ यत्त्रयोदशीमन्वाहास्ति त्रयोदशो मास उपचरो विज्ञात इव तस्याऽऽप्त्यै तस्याऽऽप्त्यै ॥१०॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हरिः ॐ। आतिथ्येन ह वै देवा द्विपदश्च चतुष्पदश्च पशूनापुस्तथो एवैतद्यजमान आतिथ्येनैव द्विपदश्च चतुष्पदश्च पशूनाप्नोत्यासन्ने हविष्यातिथ्येऽग्निं मन्थन्ति

वह अमृतत्व में प्रवेश करता है और मन्त्र ब्रह्म(-शक्ति) है। इस प्रकार वह निश्चय ही दोनों ओर से ब्रह्म और आधी ऋचाओं का वर्णन करता है। अतः जहाँ आधी ऋचा या उसके चरण से (उच्चारण से) उपराम कर लेता है वहाँ वही ब्राह्मण (व्याख्या) है। वह इस ऋचा का[1] पाठ करता है—आपके निवासस्थानों (धाम) जिनका वे हविष से यजन करते हैं'। इस ऋचा में जब वे प्रारम्भ करते हैं, उनके लिये 'प्रवती' शब्द है। वह इस ऋचा[2] से समाप्त करता है—वे देव ऋतुओं सहित आये हैं, वे घर में बढ़े।' इसमें 'आगत' 'ऋतु' शब्द हैं। कौषीतकि का कहना है कि सोम राजा ऋतु है। वे ऋतुओं सहित आ रहे हैं। वह अभिरूप मन्त्रों का पाठ करता है। यज्ञ में जो अभिरूप है—वह समृद्ध है। अतः यह यज्ञ की समृद्धि (पूर्णता) के लिये है। वह नौ मन्त्रों को पढ़ता है। उनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। प्रथम और अन्तिम को वह तीन-तीन बार पढ़ता है। इस प्रकार तेरह हो जाती हैं। वर्ष में बारह मास है। यह संवत्सर की प्राप्ति के लिये है। जो वह तेरहवें का पाठ करता है वह इसलिये कि एक तेरहवां मास पूरक तथा पृथक् रूप से ज्ञात है। यह उसकी प्राप्ति के लिये है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में सातवां अध्याय समाप्त ॥७॥

आठवाँ अध्याय

८.१ हरिः ओम्। देवों ने (अग्नि के) आतिथ्य से द्विपद और चतुष्पद पशुओं को प्राप्त किया। इस प्रकार निश्चय ही यजमान भी द्विपद और चतुष्पद पशुओं को प्राप्त करता है।

---

१. ऋ० १।९१।१९

२. ऋ० ४।५३।७

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं प्राणोऽग्निः शीर्षस्तत्प्राणं दधाति द्वादशाग्निमन्थनीया [अ] न्वाह द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्या अभि त्वा देवसवितरिति सावित्रीं प्रथमामन्वाह सवितृप्रसूततायै सवितृप्रसूतस्य ह वै न काचन ऋष्टिर्भवत्यारिष्ट्यै मही द्यौः पृथिवी चन इति द्यावापृथिवीयामन्वाह प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिवी प्रतिष्ठित्या एव त्वामग्ने पुष्करादधीति मथितवन्तं तृचं मथ्यमानायान्वाहोत ब्रुवन्तु जन्तव इति जातवतीं जातायायं हस्तेन खादिनमिति हस्तवतीं हस्तेन धार्यमाणाय प्रदेवं देववीतय इति प्रवतीं प्रह्रियमाणायाऽऽजातं जातवेदसीत्यायतीमाहूयमानायाग्निनाऽग्निः समिध्यते त्वं ह्यग्ने अग्निनेति समिद्धवत्यौ समिद्धमानाय तं मर्जयन्त सुक्रतुमिति परिदधाति स्वेषु क्षयेषु वाजिनमित्यन्तवत्याऽन्तो वै क्षयोऽन्तः परिधानीयान्तेऽन्तं दधाति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया षोळश संपद्यन्ते षोळशकलं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वस्याऽऽप्त्यै ॥ १ ॥

जब आतिथ्य के लिये हविष् आसन्न की जाती है अग्नि का मथन करते हैं। जो आतिथ्य है वह यज्ञ का शिर है; अग्नि प्राण हैं। इस प्रकार वह शिर में प्राण का आधान करता है। अग्नि के मथने के बारह मन्त्रों का पाठ करता है। वर्ष में बारह मास हैं। यह संवत्सर की प्राप्ति के लिये है। वह सर्वप्रथम सविता के लिये मन्त्र पाठ करता है। (ऋ० १।२४।३) यह सविता से प्रेरण के लिये है—'हे देव सवितः ! आपके प्रति' इत्यादि। सविता से प्रेरित (या प्रसूत) की कोई ऋष्टि (क्षति) नहीं होती। यह अरिष्टि की प्राप्ति के लिये है। वह द्यावापृथिवी के लिये इस मन्त्र का पाठ करता है—'महान् द्यौः और पृथिवी हमारे लिये' (ऋ० १।२२।१३)। द्यौः और पृथिवी प्रतिष्ठा (आधार) हैं। निश्चय ही यह प्रतिष्ठा के लिये है। मथ्यमान के लिये 'त्वामग्ने पुष्करादधि' इस मथित युक्त तृच (ऋ० ६।१६।१३-१५) को कहे; उत्पन्न के लिये 'उत ब्रुवन्तु जन्तवः' इस 'जात' युक्त ऋचा (ऋ० १।७४।१३) को कहे; हाथ से धारण किये जा रहे के लिये 'आ यं हस्तेन खादिनम्' इस हाथयुक्त ऋचा(ऋ० ६।१६।४०) को कहे; आहरण किये जा रहे के लिये 'प्र देवं देववीतये' इस 'प्र'युक्त ऋचा(ऋ० ६।१६।४१) को कहे; आहूयमान के लिये 'आ जातं जातवेदसि' इस 'आ' युक्त ऋचा (ऋ० ६।१६।४२) को कहे, और समिद्धमान के लिये 'अग्निनाऽग्निः समिध्यते' (ऋ० १।१२।६) तथा 'त्वं ह्यग्ने अग्निना' (ऋ० ८।४३।१४) इन दो 'समिद्ध'युक्त ऋचाओं को कहे। वह अन्त में 'तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु। स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् (ऋ० ८।८४।८) इस मन्त्र को कहता है। इस मंत्र में 'स्वेषु क्षयेषु वाजिनम्' यह अन्त में है। अन्त क्षय (निवास) है। अन्तिम मंत्र (परिधानीय) निवास है। अन्त में वह अन्त को रखता है। वह प्रथम और अन्तिम को तीन-तीन बार कहता है। इससे सोलह होते हैं। यह सभी (विश्व) सोलह कलाओं का हैं। यह सभी इसी सब (विश्व) की प्राप्ति के लिये है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एतयान्वत्र च चातुर्मास्येषु चाथ यत्र पशुरालभ्यते तदेता पराचीमनूच्य यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा इति त्रिष्टुभा परिदधाति त्रैष्टुभाः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया सप्तदश संपद्यन्ते सप्तदशो वै प्रजापतिरेव तद्वा आर्धुकं कर्म यत्प्रजापतिसंमितं सप्तदश सामिधेनीरन्वाह सप्तदशो वै प्रजापतिरेतद्वा आर्धुकं कर्म यत्प्रजापतिसंमितं वार्त्रघ्नावाज्यभागौ भवतः पाप्मन एव वधायाथो हास्य पौर्णमासात्तन्त्रादनितं भवत्यतिथिमन्तौ हैके कुर्वन्ति वार्त्रघ्नौ त्वेव स्थितावृग्याज्यौ स्यातामिति हैक आहुरृग्याज्या वा एता देवता उपसत्सु भवन्तीति वदन्तो जुषाण याज्यौ त्वेव स्थितौ सोमं सन्तं विष्णुमिति यजति तद्यदेवेदं क्रीतो विशतीव तदु हैवास्य वैष्णवं रूपं यद्वेव सोमं सन्तं विष्णुमिति यजत्यत्रवेतेन नाम्ना यद्विष्णुरित्याद्योऽमुना यत्सोम इति तस्मात्सोम इति वदन्तो जुह्वत्येवं भक्षयन्ति त्रिष्टुभौ हविषो याज्यापुरोनुवाक्ये बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधाति होतारं चित्ररथमध्वरस्य यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न इति संयाज्ये अतिथिमत्यौ रथवत्यौ त्रिष्टुभावाग्नेय्यौ तद्यथा चतुः समृद्धमेवं तदुपनामुक उ एवैनं रथो भवति य

८.२ इस (मन्त्र) से इसमें तथा चातुर्मास्य यज्ञ में (वह समाप्त करता है)। जहाँ पशु का आलम्भन किया जाता है वहाँ इस पूर्व (पराची) का पाठ कर (जहाँ १.१६४.५० को पठित किया जाता है वह पराची होता है) 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' (यज्ञ से देवों ने यज्ञ का यजन किया) इस त्रिष्टुप् से समाप्त करता है। पशु त्रिष्टुप् से संबद्ध हैं। यह पशुओं की प्राप्ति के लिये है। वह प्रथम को तीन बार तथा तीन अन्तिम को तीन बार कहता है इससे सत्रह होती हैं। प्रजापति सप्तदश है; जो प्रजापति के अनुकूल कार्य है वह ऋद्धिकारी है। वह सत्रह सामिधेनी मंत्रों का पाठ करता है। जो प्रजापति संमित कार्य हैं वह लाभ (ऋद्धि) कारी है। इसमें आज्य भाग वृत्रवध से संबद्ध हैं। इससे पाप का वध (नाश) होता है। और वह पौर्णमास यज्ञ के तन्त्र (आदर्श) से पृथक् नहीं होता। कुछ लोग इसे 'अतिथि' शब्द से संयुक्त करते हैं पर सिद्धान्त है कि इसमें ये दोनों (आज्यभाग) 'वृत्रघ्न' ही हों। कुछ लोगों का कहना है कि चूंकि इन देवताओं के लिये उपसद में याज्या मन्त्र ऋचा में ही है अतः याज्यामन्त्र ऋग्वेद के ही हों। किन्तु नियम है कि याज्या मन्त्र 'जुषाण' (आनन्दित होना) शब्द से युक्त हो। सोम को विष्णु के रूप में यजन करता है। वह जब क्रीत होकर इसमें (विश्व में) प्रवेश करता है तो उसका यह वैष्णव रूप है और जो सोम को विष्णुरूप में यजन करता है तो जो यहाँ विष्णु नाम से है वह उस सोम नाम होता है। अतः वे सोम नाम से यजन करते हैं; और इसी प्रकार भक्षण करते हैं। हवि के याज्या और पुरोनुवाक्या मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द है। त्रिष्टुप् बल और वीर्य है। वह बल ओर वीर्य ही यजमान में स्थापित करता है। दोनों याज्यामन्त्र (आह्वानकारी तथा आहुतिपरक) अग्नि से सम्बद्ध त्रिष्टुप् हैं तथा 'अतिथि' युक्त एवं रथ युक्त हैं—होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्य केतुं रुशन्तम्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एते कुरुत इळान्तं भवत्यभिक्रान्त्यै तद्रूपं तद्यथोपप्रयाय स्वर्गस्य लोकस्य नेदीयस्तायां वसेदेवं तदुपांशु हविष एता इष्टयो भवन्ति दीक्षणीया प्रायणीयाऽऽतिथ्योपसदो रेतः सिक्तिर्वा एता इष्टय उपांशु वै रेतः सिच्यत उत्सृजन्तः कर्माणि यन्ति पत्नीसंयाजान्ता दीक्षणीया शंय्वन्ता प्रायणीयेळान्ताऽऽतिथ्या देवता उपसत्सु प्रतियजत्युत्सर्गं वै प्रजापतिरेतैः कर्मभिः स्वर्गं लोकमैतत्तथो एवैतद्यजमान उत्सर्गमेवैतैः कर्मभिः स्वर्गं लोकमेति ॥ २ ॥

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यन्महावीरस्तत्र प्रथमयज्ञे प्रवृञ्ज्यादुपनामुक उ एवैनमुत्तरो यज्ञो भवति यः प्रथमयज्ञेन प्रवृणक्ति कामं तु योऽनूचानः श्रोत्रियः स्यात्तस्य प्रवृञ्ज्यादात्मा वै स यज्ञस्याऽऽत्मनैव तद्यज्ञं समर्धयति तदसौ वै महावीरो योऽसौ वै महावीरो योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणाति तमेकशतेनाभिष्टुयाच्छतयोजने ह वा एष इतस्तपति स शतेनैव तं शतयोजनमध्वानं समश्नुतेऽथ हैकशततमी स यज-

---

इत्यादि (ऋ० १०।१।५ab) तथा 'यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन' (ऋ० ४।४।१०)—अर्थात् यज्ञ के होता तेजस्वी रथवाले यज्ञके केतु पिङ्गल वर्ण तथा हे अग्ने ! जो व्यक्ति धनयुक्त रथ से सुन्दर अश्वोंवाले तथा सुन्दर हिरण्यवाले आपके पास जाता हैं। यह उसी प्रकार है जैसे कोई चारों ओर से युक्त तथा पूर्ण हो। जो इन दो को करता है उसके पास रथ आता है। यज्ञ यज्ञीयान्न से समाप्त होता है यह आगमन का रूप है। यह वैसे ही है जैसे स्वर्गलोक को चलकर समीप में निवास करे। इष्टियाँ — दीक्षणीय प्रायणीय (प्रारम्भिक), आतिथ्य तथा उपसद—मन्दस्वर(उपाँशु) हविष् वाली होती है अर्थात् इन इष्टियों में मन्दस्वर में हविष् दिया जाता है। अथवा ये इष्टियाँ रेत का सिंचन हैं। रेत का सिंचन उपांशु होता है। ये प्रायणीय शंयुवाक पर समाप्त होता है; आतिथ्य इला (यज्ञान्न) पर समाप्त होता है; उपसद में देवताओं का यजन करता है। इन कर्मों को समाप्त कर प्रजापति स्वर्ग लोक गये। निश्चय ही इसी प्रकार इन यज्ञों का उत्सर्ग कर स्वर्गलोक को जाता है।

८.३ महावीर यज्ञ का शिर है। अतः प्रथम यज्ञ में इसे अग्नि पर न रखे। जो प्रथम यज्ञ में इसे अग्नि पर नहीं रखता उसपर दूसरा (उत्तर) यज्ञ प्रसन्न होता है। तथापि जो विद्वान् (अनूचान) ब्राह्मण है उसके लिये अग्नि पर रख सकता है। यह यज्ञ का आत्मा है। अतः इसप्रकार वह आत्मा से यज्ञ को बढ़ाता है (पूर्ण करता है) महावीर वह है जो वहाँ तप रहा है। इससे वह उसे प्रसन्न करता है। उन्हें वह एक सौ एक मन्त्रों से प्रसन्न करे। वह यहाँ से शत योजन पर तप रहा है। शत (सौ) से वह शतयोजन की यात्रा प्राप्त करता है। जो एक सौ एक हैं वह यजमान का लोक है। इस आत्मा का यजमान स्वामी हो जाता है। आदित्य में जो इस पुरुष को कहते हैं वे इन्द्र हैं, प्रजापति हैं, ब्रह्म हैं। इस प्रकार यहाँ यजमान सभी देवताओं की सलोकता (समानता)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मानलोकस्तमेतमात्मानं यजमानोऽभिसम्भवति यमेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः स प्रजापतिस्तद्ब्रह्म तदत्रैव यजमान सर्वासां देवतानां सलोकतां सायुज्य-माप्नोत्यनवानमभिष्टुयात्प्राणानां संतत्यै संतता इव हीमे प्राणा उच्चैर्निरुक्तमभिष्टु-यात्प्राणा वै स्तुभो निरुक्तो ह्येष वाग्देवत्यो ह्येष सावित्रीः प्रथमामभिष्टौति सवितृप्रसूततायै सवितृप्रसूतस्य ह वै न काचन रिष्टिर्भवत्यरिष्टयै ॥ ३ ॥

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तादित्यादो वै ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्यत्रासौ तपति तदेव तद्यजमानं दधात्यञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्राः संसीदस्व महां असीत्यक्तवती च संनवती चाभिरूपे अभिष्टौति भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ तपोष्वग्ने अन्तरां अमित्रान्यो नः सनुत्यो अभिदासदग्न इति तिस्रस्तपस्वतीरभिरूपा अभिष्टौति यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्यै कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीमिति रक्षोघ्नीरभिष्टौति रक्षसामपहत्या[अ]ग्निर्वै रक्षसामपहन्ता ता वै पञ्च भवन्ति

और सायुज्यता (ऐक्य) प्राप्त करता है। प्राणों की संतति (सातत्य) के लिये विना श्वास लिये स्तुति करे क्योंकि ये प्राण (श्वास) सतत की भाँति है। वह जोर से तथा स्पष्ट (श्राव्य) स्तुति करे। स्तुतिप्राण हैं क्योंकि यह प्रकट होता है और वाक् इसकी देवता है। सवितृ (सूर्य) से प्रेरणा के लिये वह सूर्य (सवितृ) मन्त्रों (सावित्री) का प्रथमतः स्तुति करता है। सवितृ से प्रेरित का कोई भी अनिष्ट नहीं होता। यह रिष्टि (अमंगल, क्षति) के निवारण के लिये है।

८.४ ब्रह्मज्ञान प्रथम पूर्व (दिशा) में उत्पन्न हुआ। ब्रह्म ज्ञान प्रथम पूर्व में वहाँ उदित हुआ जहाँ (सूर्य) तपता है। निश्चय ही वहाँ वह यजमान को स्थापित करता है। वह दो उक्तवती और 'संनवती' इन दो उपयुक्त मन्त्रों से स्तुति करता है—अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्राः' इत्यादि (ऋग्वेद ५.४३.७ जिसे प्रथम (विस्तार) कर रहे विप्र अञ्जन करते हैं।) तथा 'सं सीदस्व महाँ असि' इत्यादि (ऋग्वेद १.३६.९ आप बैठें, आप महान् हैं।) वह तीन 'तपस्वती' अनुरूप मन्त्रों से स्तुति करता है—भवा नो अग्ने सुमना उपेतो (ऋ० ३.१८.१ हे अग्नि ! आप हमारी पहुँच में सुप्रसन्न मन से स्थित हों); तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् (३.१८.२ हे अग्नि ! आप समीपस्थ शत्रुओं को भलीभाँति जलावें) तथा 'यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने' (ऋ० ६.५.४ हे अग्नि ! वे शत्रु जो छिपकर हम पर आक्रमण कर सकते हैं उन्हें आप जलावें)। जो यज्ञ में अभिरूप हैं वह समृद्ध है। यह यज्ञ की समृद्धि के लिये है। वह 'कृणुष्व पाजः प्रसृतिं न पृथ्वीम्' इत्यादि (ऋ० ४.४.१–५ अपने तेज को विस्तृत जाल की भाँति करिये) रक्षोघ्नी मन्त्रों का पाठ करता है। यह राक्षसों के विनाश के लिये है। अग्नि राक्षसों के विनाशक है। दिशाओं के रूप से वे पाँच हैं। उन्हें दिशाओं से वह नष्ट करता है। अध्वर्यु जिन प्रादेशों (विस्तारों) को मापता है वह इसके साथ करता है। वह इन्द्र के लिये कहे गये दो अभिरूप मन्त्रों का पाठ करता है—परि त्वा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दिशां रूपेण दिग्भ्य एवैतानितं निर्हन्त्यथो यानेवाध्वर्युः प्रादेशानभिमिमीते ताने-वैताभिरनुवदति परि त्वा गिर्वणो गिरोऽधिद्वयोरदधा उक्थ्यं वच इत्यैन्द्र्यावभि-रूपे अभिष्टौत्यैन्द्रमेव स्वाहाकारमेताभ्यामनुवदत्यथो यानेवाध्वर्युः शकलान्परि-चिनोति तान्पूर्वयाऽनुवदति यमुत्तममभिनिदधाति तमुत्तरया शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यदर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वेति पौष्णीं च रौद्रीं चाभिरूपे अभिष्टौति पौष्णं चैव रौद्रं च स्वाहाकारावेताभ्यामनुवदत्यथो यावेवाध्वर्युः सुवर्णरजतौ हिरण्यशकलौ करोति तावेवैताभ्यामनुवदति पतङ्गमक्तमसुरस्य माययेति प्राणो वै पतङ्गो वायुर्वै-प्राणो वायव्यमेव स्वाहाकारमेताभिरनुवदत्यपश्यं त्वा मनसाचेकितानमित्येतदस्या ऽऽयतने प्रजाकामस्याभिष्टुयादथो उभे असंपन्नकारी ॥ ४ ॥

स्रक्वेद्रप्सस्य धमतः समस्वरन्निति सर्वं पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पत इति द्वे वियत्पवित्रं धिषणा अतन्वत्येका ता द्वादश पावमान्यः सौम्यमेव स्वाहाकारमेता-भिरनुवदत्ययं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा इतीन्द्र उ वै वेन ऐन्द्रमेव स्वाहाकारमेता-भिरनुवदति तस्यैकामुत्सृजति नाके सुपर्णमुपयत्पतन्तमिति सोऽयमात्मनोऽती-

---

गिर्वणो गिरः (ऋ० १.१०.१२) तथा अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो (ऋ० १.८३.३) निश्चय ही इन दोनों मन्त्रों के द्वारा इन्द्र के लिये ही 'स्वाहा' कार करता है और जो अध्वर्यु टुकड़ों को चारों ओर संचित करता है वह पूर्व मन्त्र से करता है और जो अंतिम को रखता है वह अंतिम से। वह दो अभिरूप मन्त्रों से पूषा और रुद्र की स्तुति करता हैं—शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् (ऋ० ६।५८।१ उनमें एक शुक्र हैं और एक यजनीय है) तथा 'अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्व (ऋ० २।३३।१० आप उपयुक्त रूप से सायक और धनुष धारण करते हैं)। इनसे वह पूषा तथा रुद्र से संवद्ध अनुरूप स्वाहाकार को कहते हैं और जो अध्वर्यु जो सुवर्ण के टुकड़ों को सुवर्ण और रजत करता है वह इन दोनों को इन दोनों से (मंत्रों से) संयुक्त करता है। वह कहता है—'पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया' (ऋ० १०।१७७।१-इत्यादि सूक्त के कुल तीन मन्त्र—असुर की माया से अञ्जित पक्षी)। प्राण ही पतङ्ग (पक्षी) है। वायु प्राण है इनके द्वारा (इन तीन मंत्रों के द्वारा) वह वायु के लिये स्वाहाकार कहता है। प्रजाकाम के घर में वह-अपश्यं त्वा मनसा चेकितानम् (ऋ० १०।१८३।१ इत्यादि सूक्त के कुल तीन मंत्र—मैने आपके मन से देखा) का पाठ करे और यदि कुछ संपन्न नहीं हुआ है तो दोनों का पाठ करे।

८.५ 'स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन् (ऋ० ९।७३।१) इत्यादि संम्पूर्ण सूक्त है तथा 'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते (ऋ० ९।८३।१) इत्यादि दो मन्त्र हैं। 'वियत्पवित्रं धिषणा अतन्वत' (शांखायन श्रौत सूत्र ५।९।१६ में उद्धृत) यह एक मंत्र है। ये सब मिलकर बारह पावमानी है। इससे वह सोम के लिये स्वाहाकार करता हैं। वह कहता है—अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा। (ऋ० १०.१२३.१ यह वेन पृश्नि से उत्पन्नों को प्रेरित करे)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

काशस्तामुत्तरासु करोति तेनो साऽनन्तर्हिता भवत्युभयतो वेनं पापोक्तस्य पावमानीरभिष्टुयादात्मा वै वेनः पवित्रं वै पावमान्यः पुनात्येवैनं तद्गणानां त्वा गणपतिं हवामह इति ब्राह्मणस्पत्या अभिरूपामभिष्टौति शिरो वा एतद्ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणैव तच्छिरः समर्धयति स यत्रोपाधिगच्छेद्बृहद्वदेम विदथे सुवीरा इति तद्वीरकामायै वीरं ध्यायाल्लभते ह वीरं काराधद्धोत्राश्विना वामिति न वा अकूध्रीच्यो गायत्रच्छन्दस इव वा अकूध्रीच्यो गायत्र उ वै प्राणः प्राणो वा अकूध्रीच्य आ नो विश्वाभिरूतिभिरित्यानुष्टुभं तृचं सा वाग्विष्णुर्योनिं कल्पयत्वित्येतदस्याऽऽयतने प्रजाकामस्याभिष्टुयादथो उभे असंपन्नकारी ॥ ५ ॥

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वमिति पूर्वाह्णे सूक्तमाभात्यग्निरुषसामनीकमित्यपराह्णे त्रैष्टुभे पञ्चर्चे तच्चक्षुरीळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तय इति जागतं पञ्चविंशं तच्छ्रोत्रं शिरो वा एतत्तद्वै शिरः समृद्धं यस्मिन्प्राणो वाक्चक्षुः श्रोत्रमिति

वेन इन्द्र है। निश्चय ही इन मंत्रों से (ऋ० १०.१२३.१-८ केवल मंत्र संख्या ६ को छोड़कर) वह इन्द्र के लिये स्वाहाकार कहता है। इसमें से एक मंत्र—नाके सुपर्णमुत्पतन्तम् (ऋ० १०.१२३.६ स्वर्ग में उड़ रहे गरुड़ को) छोड़ देता है। यह आत्मा का प्रकाश है। इस मंत्र को उत्तरवर्ती (मंत्रों) में संयुक्त करता है। इससे वह अन्तर्हित होते हैं। वेन को दोनों ओर से जो पाप कहा है वह (सोम की) प्रशंसा में पावमानी से स्तुति करे। वेन आत्मा है। पावमानी मंत्र पवित्र हैं। इस प्रकार वह उसे पवित्र करता है। वह ब्रह्मणस्पति के अनुरूप मंत्रों से उनकी (ब्रह्मणस्पति की) स्तुति करे—'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' (ऋ० २.२३ हम गणों के स्वामी का आह्वान करते हैं)। यह शिर है। ब्रह्मणस्पति ब्रह्म हैं। इस प्रकार वह ब्रह्म से शिर को समृद्ध करता है। जब पास जाय तौ 'बृहद्वदेम विदथे सुवीराः' (ऋग्वेद २.२३.१९d सभा में सुन्दर पुत्रों सहित हम जोर से बोलें) प्रजाकामिनी के लिये इस मंत्र से पुत्र का ध्यान करे। इससे (प्रजाकामिनी) पुत्र प्राप्त करती है। 'का राधद्धोत्राश्विना वां' (ऋ० १.१२०.१ हे अश्विन ! कौन आहुति आपकी कृपा के लिये हैं) इत्यादि नव मंत्र उद्देश्यहीन (कीथ ?) हैं। ये उद्देश्यहीन मंत्र गायत्री छन्द में हैं। प्राण गायत्री है। प्राण उद्देश्यहीन मंत्र (अकूध्रीच्य)हैं। वह 'आ नो विश्वाभिरूतिभिः' (ऋ० ७.२४.६) इत्यादि तीन अनुष्टुप् छन्दों को पढ़े। यह वाणी है जो प्रजाकामी है उसके घर में वह 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' (ऋ० १०.१८४.१) इस मंत्र को पढ़े। और यदि कोई वस्तु असंपन्न है तो वह दोनों को पढ़े।

८,६ वह पूर्वाह्ण में 'प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं (ऋ० ५.७७.१ जो प्रातः काल प्रथम चलते हैं उन दोनों का यजन करो) इस सूक्त का पाठ करे तथा अपराह्ण में आभात्यग्निरुषसामनीकम् (ऋ० ५.७६.१ अग्नि उषाओं के सामने द्योतित हो रहें हैं) इस सूक्त को पढ़े। ये (सूक्त) पांच ऋचाओं के त्रिष्टुप् हैं। यह चक्षु है। ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये (ऋ०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तानेवास्मिंस्तद्दधाति रुचितो धर्म इत्युक्तेऽरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय इति रुचितवतीमभिरूपा अभिष्टौति द्यामरक्तभिः परिपातमस्मानिति परिवत्या परिदधात्यभिरूपा अभिष्टौति यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्यै ता एकशतमृचो भवन्ति तासामुक्तं ब्राह्मणमथ यदप उपस्पृशति शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियतेऽथ यदवकाशैरुपतिष्ठते प्राणा वा अवकाशाः प्राणानेव तदात्मन्धत्तेऽथ यदप उपस्पृशति शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियते त्रयस्त्रिंशदुत्तरास्त्रयस्त्रिंशद्वै सर्वा देवतास्ता एवैतदुद्यन्तुमर्हन्ति ताभ्यो वै तत्समुन्नीतम् ॥ ६ ॥

अभिरूपादो(?)हवनीया अभिष्टौति यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्येव समृद्ध्या आसुतेऽसिञ्चत श्रियमातूनामश्विनोऋ्षिरित्यासिक्तवत्यावभिरूपे अभिष्टौत्युदुष्य देवः सविता हिरण्मयेत्युद्यम्यमान उद्यतवती अभिरूपामभिष्टौति प्रैतु ब्रह्मणस्पति-

---

१.११२.१ प्रथम ज्ञान के लिये मैं द्यावा-पृथिवी की स्तुति करता हूँ) यह पच्चीस जगती छन्दों का सूक्त है। यह श्रोत्र है। यह शिर है। वह शिर समृद्ध (पूर्ण) है जिसमें प्राण, वाणी, आँख और कान हो। इस प्रकार इसमें उन्हें वह स्थापित करता है। रुचितो धर्म (पात्र तप्त है) यह कहने पर वह 'अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय' (ऋ० ९.८३.१ अग्रगण्य पृश्नि ने उषाओं को चमकाया है) यह 'रुचितवतीं' अभिरूप स्तुति को करता है। द्यामरक्तभिः परिपात यस्मान् (ऋ. १.११२.२५ हमें चारों ओर से दिनों और रातों से वह रक्षा करें) इस 'परिवती' अभिरूप स्तुति से स्तुति करते हुये समाप्त करता है। जो यज्ञ में अभिरूप है वह समृद्ध (पूर्ण) है। यह यज्ञ की समृद्धि के लिये है। ये एक सौ एक ऋचायें हैं। इनका ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। और जो जल का स्पर्श करता है तो जल शान्ति और भेषज है। यह यज्ञ के अन्त में शान्ति और भेषज किया जाता है। और जो अवकाश (अध्वर्यु के प्रारम्भ के मंत्रों) से श्रद्धा प्रकट करता है (द्र.शां. श्रौ.सू. ५.९.३१) तो अवकाश (मंत्र) प्राण हैं और (इससे वह) प्राणों को ही अपने में रखता है। और जो जल स्पर्श करता है तो जल शान्ति और भेषज है। निश्चय ही इससे यज्ञान्त में शान्ति और भेषज किया जाता है। बाद (उत्तर) के मंत्र तैंतीस हैं (कौ. ब्रा. ८.७ में निर्दिष्ट मंत्र); सभी देवता तैंतीस हैं। इन्हें उनका उत्थान करना चाहिये। उन्ही से सभी लिया गया है (या उत्थित है।)

८.७ वह प्रारम्भ में अभिरूप हवनीय (मंत्रों) से स्तुति करता है[1]। जो यज्ञ में अभिरूप हैं वह समृद्ध है। यह यज्ञ की समृद्धि के लिये है। वह दो अभिरूप 'आसिक्त'वती मन्त्रों को स्तुति करता है—आसुते सिञ्चत श्रियं (ऋ. ८।७२।१३ सुत (पीसे गये) में श्रिय

---

१. इन तैंतीस मन्त्रों के लिए द्र० शां. श्रौ. सूत्र ५.११.१।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रिति प्रवृजत्सु प्रवतीं ब्राह्मणस्पत्यामभिरूपामभिष्टौति नाके सुपर्णमुपयत्पतन्तमिति व्रजत्सु पतन्तमित्यभिरूपा अभिष्टौति द्वाभ्यां यज द्वन्द्वं वै वीर्यं सवीर्यतायै त्रिष्टुब्वतीभ्यां पूर्वाह्णे त्रैष्टुभो ह्येष त्रींल्लोकान्स्तब्ध्वा तिष्ठति जगद्वतीभ्यामपराह्णे जागतो ह्येष एतमु ह विशन्तं जगदनु सर्वं विशति विपर्यस्यति दाशतयीभ्यां वषट्कुर्यादिति हैक आहुर्यथाऽऽम्नातमिति त्वेव स्थितमथोत्तरा अभिरूपा अभिष्टौति यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्यै हविर्हविष्मो महिसद्म दैव्यमिति पुराऽऽहुतेः प्रापणात्पुनर्हविषमवनं तदयातयामानं करोति सूयवसाद्भगवती हि भूया इत्याशीर्वत्या परिदधाति पशुभ्य एव तदाशिषं वदते तथा ह यजमानात्पशवोऽनुत्क्रामुका भवन्त्यथ यदप उपस्पृशति शान्तिर्वै

(मिश्रित) को सीचों) तथा आनूनमश्विनोर्ऋषिः (ऋ. ८।९।७ अव अश्विनी के ऋषि)। जब पात्र उठाया जा रहा हो तो वह इस उद्यतवती अभिरूप मन्त्र का पाठ करता है—'उदुष्य देवः सविता हिरण्मया' (ऋ. ६।७१।१ स्वर्णनिर्मित बाहों से ऊपर हों)। जब वे आगे बढ़ते हैं तब वह ब्रह्मणस्पति को निर्दिष्ट इस 'प्रवती' अभिरूप मन्त्र से स्तुति करता हे—प्रैतु ब्रह्मगस्पतिः (ऋ० १।४०।३ ब्रह्मणस्पति आगे चलें)। जब वे चलते है तब वह 'पतन्त' युक्त इस अभिरूप मन्त्र से स्तुति करता है—नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तम् (ऋ० १०।१२३।६ नाक में उड़ रहे सुपर्ण को)। दो (मन्त्रों) से वह यजन करे। वीर्य द्वन्द्व (जोड़ा) है। इससे निश्चय ही वीर्य (शक्ति) की प्राप्ति के लिये है। पूर्वाह्ण में (स्तुति किये जा रहे मन्त्रों में) एक त्रिष्टुभ होता है।[1] क्यों कि त्रिष्टुभ से संयुक्त होने से यह तीनों लोकों को स्तम्भ देकर स्थित होता है। अपराह्ण में एक जगती छन्द संयुक्त रहता है क्योंकि यह जगती से सम्बद्ध है। इसका कारण यह है कि यह जब प्रवेश करता है (विश्राम करता है) संपूर्ण जगत् उसके साथ विश्राम करता है। कुछ लोगो का मत है कि संहिता से दो मन्त्रों को विपर्यस्त कर वह वषट्कार कहे। किन्तु नियम यह है कि संहिता का अनुपालन करे (यथाऽऽम्नातम्)। वह उत्तरवर्ती मन्त्रों से स्तुति करता हैं। ये मन्त्र अभिरूप है। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध है। निश्चय ही यह यज्ञ की समृद्धि के लिये है! हविष के प्रापण (प्राप्ति) से पूर्व वह यह कहता है—'हविर्हविष्मो महिसद्म दैव्यम्' (ऋ. ९।८३।५ हे हविषश्रेष्ठ हविष! देवों के महान् स्थान) इससे वह इसे हविष से युक्त और ताजा करता है। 'सूयवसाद्भगवती हि भूया' (ऋ. १।१६४।४० खेतको चरने से आप भाग्यवती हों) इस आशीर्वाद मन्त्र से वह

१. दो साथ पढ़े जाने वाले प्रातःकालीन मन्त्र हैं—ऋग्वेद १।४६।१५ (गायत्री) तथा शां. श्रौ. सू. ५।११।१८ (त्रिष्टुप) में निर्दिष्ट एक विशिष्ट मंत्र। अपराह्ण में पढ़े जाने वाले दो मन्त्र हैं—ऋ.८।५।१४ तथा शां. श्रौ. सू. में निर्दिष्ट (५।११।२१) एक जगती छन्द।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियतेऽथ वै सुते प्रवर्ग्य इत्याचक्षते स्तुते बहिष्पवमाने तदश्विनौ देवा उपाह्वयन्तैतस्मिन्काल आग्नीध्रीये प्रवृञ्ज्यु-स्तद्यथैवाद उपसत्स्वेवमेवाप्यत्र सुत्यायामनवानमेवोपचारस्तद्यथाकर्मा प्रवृज्यतेऽथ पशुकर्म तायते स एष महावीरो मध्यंदिनो[ने]सर्गस्तद्यदेनेन मध्यंदिने प्रचरन्त्यसौ वै महावीरो योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणन्त्येतस्यैव तद्रूपं क्रियते ॥ ७ ॥

उपसदोऽसुरा एषु लोकेषु पुरोऽकुर्वतायस्मयीमस्मिन्रजतामन्तरिक्षलोके हरिणीं हादो दिवि चक्रिरे ते देवाः परिश्रुतेष्वेषु लोकेष्वेतं पञ्चदशं वज्रमपश्य-न्तिस्रः सामिधेन्यः समनूक्ता नव संपद्यन्ते षड्याज्यापुरोनुवाक्यास्ताः पञ्चदशैतेन वै देवाः पञ्चदशेन वज्रेणैभ्यो लोकेभ्योऽसुराननुदन्त तथो एवैतद्यजमान एतेनैव पञ्चदशेन वज्रेणैभ्यो लोकेभ्यो द्विषतो भ्रातृव्यान्नुदत उपसद्याय मीढ़्लुष इत्येतं तृचं पूर्वाह्णेऽनुब्रूयादुपसदो ह्येतास्तद्वै कर्मसमृद्धं यत्प्रथमेनाभिव्याह्रियत उपसद्यमिव वा एतदहरमुनाऽऽदित्येन भवतीतीमां मे अग्ने समिधमित्यपराह्णे तद्रात्रे रूपं

अन्त में आशीर्वाद देता है। निश्चय ही वह इससे पशुओं को आशीर्वाद देता है। इससे पशु यजमान से अलग नहीं होते। और जो जल का स्पर्श करता है तो जल शान्ति और भेषज हैं। यह यज्ञ के अन्त में शान्ति और भेषज ही किया जाता है। वे कहते हैं कि हवन के बाद इसे अग्नि पर रखा जाना चाहिये (प्रवर्ग्य[1] होता है)। जब बहिष्पवमान स्तोत्र का गान हो जाता है वे दोनों अश्विनीकुमार देवों का आह्वान करते हैं। उसी समय इसे आग्नीध्राग्नि में रखना चाहिए। जैसे उपसदों में है वैसे ही यहाँ सुत्या में भी बिना श्वास लिये कार्य किया जाता है। इस प्रकार कर्म करने के अनन्तर यह (पात्र) रखा जाता है और पशुकर्म (याग) प्रारम्भ किया जाता है। महावीर मध्य दिन का सर्ग है (या मध्यदिन में समाप्त होता है)। अतः इससे मध्यदिन में करते हैं। महावीर वह है जो वहाँ तप रहा है। इसे ही इससे प्रसन्न करते हैं। अतः इस प्रकार उसी का वह रूप किया जाता है।

८.८ असुरों ने इन लोकों में दुर्ग बनाया—इस लोक में लौह का; अन्तरिक्ष में रजत का और उस द्युलोक में स्वर्ण का। देवों ने इन लोकों को इस प्रकार घिरा देखकर पञ्चदश वज्र को देखा। तीन सामिधेनी मन्त्र दुहराये जाने पर नव होते हैं और आज्या (आहुतिपरक) तथा पुरोनुवाक्या (आह्वानकारी) छः है। इस प्रकार ये पन्द्रह होते हैं। इस पञ्चदश वज्र से देवों ने असुरों को इन लोकों से बाहर किया। इसी प्रकार यजमान भी इन लोकों से द्वेषी शत्रुओं को बाहर करता है। पूर्वाह्ण में वह उपसद्याय मीढ़्लुषे (ऋ० ७।१५।१-३ दाता का सेवन करे) इत्यादि तीन मंत्रों का वह पाठ करे क्योंकि ये उपसद हैं। वह कर्म

---

१. प्रवर्ग्य का दूसरा प्रकार है जहाँ दोनों कृत्य सुत्या दिन को होते है एक प्रातः स्तोत्र के बाद और दूसरा मध्यदिन स्तोत्र के बाद।

 CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समिद्धमिव वा इममग्निं सायं पर्यासत इत्यथ द्वितीयेऽहनीमां मे अग्ने समिधमिति पूर्वाह्णे तदह्नो रूपं समिद्धमिव वा एतदहरमुनाऽऽदित्येन भवतीत्युपसद्याय मीह्ळुष इत्यपराह्णे तद्रात्रे रूपमुपसद्यमिव वा इममग्निं सायं पर्यासत इति ते वा एते उभे एव रूपे ज्ञायेते तस्मादहरहर्विपर्यासमन्वूयादुभे रूपे उभौ कामा उपाप्तावसत इत्यनवानमनुब्रूयात्प्राणानां संतत्यै संतता इव हीमे प्राणास्त्रिस्त्रिरेकै-कामनुब्रूयात्त्रयो वा इमे लोका इमानेव तं लोकानाप्नोति ताः समनूक्ता नव संपद्यन्ते षड्वा ऋतवस्त्रय इमे लोका एतदेव तदभिसंपद्यन्ते नैतं निगदं ब्रूयाद्य एव सामिधेनीषूत्सृज्यन्तेह निगदा जामिह स्याद्य एतं निगदं ब्रूयान्नाऽऽवाहयेच्च नेदिति हैक आहुः किमु देवतामनावाह्य यजेदित्यृच एवाऽऽवाहयेदग्निमावह सोममावह विष्णुमावहेति ता वै तिस्रो देवता यजति त्रयो वा इमे लोका इमानेव लोकाञ्ज्योतिष्मतः करोति ॥ ८ ॥

समृद्ध है (सफल है) जो (इस) प्रथम (तृच) द्वारा कहा जाता है (क्योंकि)। यह दिन उस सूर्य द्वारा उपसद्य (सेवित, पास आया हुआ) सा होता है। अपराह्ण में वह कहता है—इमां मे अग्ने समिधम् (ऋ. २।६।१-३ हे अग्नि! मेरी इस समिधा को) इत्यादि तीन मन्त्र। यह रात्रि का रूप है। (क्योंकि वे कहते हैं कि) सायं इस समिद्ध अग्नि के चारों ओर बैठते हैं। फिर दूसरे दिन वह पूर्वाह्ण में कहता है—इमां मे अग्ने समिधम् (ऋ.२।६।१-३ इत्यादि पूर्वोक्त) यह दिन का रूप (प्रतीक) है, (क्योंकि वे कहते हैं कि) यह दिन उस सूर्य द्वारा समिद्ध है। वह अपराह्ण में कहता है—उपसद्याय मीह्ळुषे (ऋ. ७।१५।१-३ इत्यादि पूर्वोक्त तृच) यह रात्रि का रूप है (क्योंकि वे कहते हैं कि) सायं इस उपास्य अग्नि के चारों ओर बैठते हैं। ये दोनों रूप (प्रतीक) ज्ञात हैं। अतः प्रतिदिन वह परिवर्तन (विपर्यास) कर कहें (जिससे) 'दोनों रूप, दोनों कामनायें प्राप्त हो जाँय'। यह विना श्वास लिये ही कहे क्योंकि जैसे ये सतत हैं वैसे ही प्राण हैं। अतः प्राणों (श्वासों) के सातत्य के लिये ऐसा करे। प्रत्येक को वह तीन बार कहे (दुहराये)। ये लोक तीन हैं। इस प्रकार वह तीनों लोकों को प्राप्त करता है। ये एक साथ कहे जाने (दुहरायें) जांने पर नौ होते हैं। छः ऋतुयें हैं। तीन लोक हैं। इससे वे (पूर्ण) होते हैं। निगद कौन कहे। सामिधेनियों (मंत्रों) में निगद छोड़ दिये जाते हैं। यदि इस निगद को कोई कहे तो यह दुहराना होगा। कुछ लोग कहते हैं कि 'आवाहन बिल्कुल न करे।' किन्तु विना आवाहन किये देवताओं का यजन (आहुति परक मंत्र को) कैसे करे(कहेगा)? ऋचा के अनन्तर वह आह्वानकारी मंत्रों से देवताओं का आवाहन करे अग्नि को आवाहन करो, सोम को लावो, विष्णु को ले आओ'। इन तीन देवताओंका यजन करे (इसके लिये आहुति परक मंत्रों को कहे)। ये लोक तीन हैं। इस प्रकार वह इन तीन लोको को ज्योति युक्त करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गायत्र्यावाग्नेय्यौ गायत्रोऽयं लोकस्तदिमं लोकमाप्नोति त्रिष्टुभौ सौम्यौ त्रैष्टुभोऽन्तरिक्षलोकस्तदन्तरिक्षलोकमाप्नोति जगत्यौ वैष्णव्यौ जागतोऽसौ लोकस्तदमुं लोकमाप्नोति ता वै विपर्यस्यति याः पूर्वाह्णे पुरोनुवाक्यास्ता अपराह्णे याज्याः करोति या याज्यास्ताः पुरोनुवाक्या अयातयामतायै वषट्कारेण ह वा ऋग्यातयामा भवति समानेऽहन्नयातयामाभिर्मे वषट्कृतमसदिति यद्वेव विपर्यस्यति ग्रीवाणां स्थेम्ने तस्माद्वाऽऽसां ग्रीवाणां व्यतिषक्तामीव पर्वाणि भवन्त्याज्यहविषो देवताः पयोव्रतो यजमानस्तत्सलोमताः परोवरीयसीरभ्युपेयात्त्रीनग्नेः स्तनानथ द्वावथैकं परस्पर एव तं लोकान्वरीयसः कुरुते नाभ्युन्नयेत स्वर्गं ह वा एते लोकमभिप्रयन्ति य उपसद उपयन्ति द्वादशो ह वा अन्तरुष्याः स्वर्गो लोकः स यः सकृदभ्युन्नयेति यथैकरात्रं सार्थान्प्रेषितान‌नुप्रेयादेवं तद्यो द्वितीयं यथा द्विरात्रमेव तं तद्धीयते तृतीयेन स्वर्गाल्लोँकान्नान्वश्नुतेऽप्यनुगच्छेदिति ह स्माऽह पैङ्ग्यो न त्वेवाभ्युन्नयेत यत्रैव कामयेत तत्पूर्वो गत्वा स्वर्गस्य लोकस्यावस्येदिति

८.९ अग्नि के लिये दो मंत्र (ऋ० ६.१६.३४ तथा ३९) गायत्री मंत्र हैं। यह लोक गायत्री से संबद्ध है। वह इस लोक को प्राप्त करता है। सोम के लिये त्रिष्टुभ् मंत्र है(ऋ० १.९१.२ तथा २१)। अन्तरिक्ष लोक त्रिष्टुभ से संबद्ध है। इससे वह अन्तरिक्ष लोक प्राप्त करता है। विष्णु के लिये जगती मंत्र हैं। (ऋ० १.१५६.२-३) वह लोक (द्युलोक) विष्णु से संबद्ध है। इससे उस लोक को प्राप्त करता है। इन्हें वह उलट देता है। जो पूर्वाह्ण में पुरोनुवाक्या मंत्र हैं उन्हें अपराह्ण में याज्या मंत्र करता है। और जो याज्या हैं उन्हें पुरोनुवाक्या (करता है)। यह उन्हें अयातयाम (ताजा) होने के लिये करता है (वह सोचता है कि) वषट्कार संयुक्त होने पर ऋचा यातयाम (पुराना, वासी) हो जाती है उसी दिन अयातयाम (मंत्र) से मेरा वषट् संयुक्त हो। और जो विपर्यास (उलटा) करता है वह ग्रीवा की स्थिरता के लिये करता है अतः ग्रीवा के पर्व संश्लिष्ट रहते हैं। देवताओं का हविष् घृत है और यजमान पयोव्रत (दुग्ध का व्रत में पान करने वाला) है। यह अनुरूप है। वह उन्हें विस्तृत ग्रहण करे। (प्रथम) अग्न में वह तीन स्तनों को फिर दो को, पुनः एक को (दुहे)। इस प्रकार वह लोकों को परस्पर वरीयान (विस्तृत) करता है। वह ऊपर (बाहर) न करे। जो उपसद करते हैं वे स्वर्गलोक को जाते हैं। स्वर्गलोक के मार्ग में बीच में बारह पड़ाव (रुकने के स्थान) हैं। वह जो कि एक बार बाहर करता है वह मानों एक रात में पहले गये लोगों का अनुसरण करता है और इसी प्रकार जो दो बार ऊपर करता है वह मानों दो रात पूर्व को (गये लोगों का अनुसरण) करता है)। और जो तीसरे को भी लेता है वह स्वर्ग लोक को च्युत कर देता है और उसे नहीं प्राप्त करता। पैङ्ग्य का मत है कि वह अनुसरण करे। किन्तु कौषीतकि का मत है कि 'बाहर न करे। जहाँ कामना करे वहाँ पहले स्वर्ग लोक को जाय और फिर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समाप्तिः श्रेयसीति ह स्माऽऽह कौषीतकिः सम्राजोऽस्मै भक्षे दध्यानयेयुर्न व्रते सोमो वै दध्यनन्तर्हितो ह्यस्य भक्षो भवति समाप्नोत्यु ते यदि संक्रीणीयुर्या मध्यमोपसत्तया ह्यहमन्यतरे चरेयुरावपनं हि सेदमन्तरिक्षलोक आयतनेनाथा-समरमभ्युदैत्यथासमरमभ्युदैति ॥ ९ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हरिः ॐ । ब्रह्म वा अग्निस्तद्यदुपवसथेऽग्निं प्रणयन्ति ब्रह्मणैव तद्यजमानस्य पाप्मानमपघ्नन्ति पुरस्तादाहवनीयेन पश्चाद्गार्हपत्येनोत्तरत आग्नीध्रीयेण दक्षिणतो मार्जालीयेन येऽन्तःसदसं तैर्मध्यतस्तस्मादुपवसथे प्राञ्चमग्निं प्रणयन्ति विधिष्ण्यान्हरन्ति यजमानस्यैव पाप्मनोऽपहत्यै देवा वै दीक्षिष्यमाणा वाचमुपा-सादयन्त बहुत्वमुच्चावचं निगच्छसि सत्यमया उ वयं दममया बुभूषाम इति सा दीक्षा यामाभक्तिमैच्छत तां देवास्तत्र नाभजन्त सा प्रायणीये तामु तत्र नो एव सा क्रये तामु तत्र नो एव साऽऽतिथ्ये तामु तत्र नो एव सो वा एतदुपसदोना च

रुक जाय । ऐसी समाप्ति श्रेयस्करी है ।' यदि भोजन की आवश्यकता हो मित्र (सोम ?) उसके लिये दधि ले आवें किन्तु व्रत में नहीं । दधि सोम है । उसका भोजन अन्तर्हित नहीं होता वह उसे प्राप्त करता है । यदि वे सोम का क्रय करें तो अन्य लोग दो दिन मध्य उपसद से चलें (कार्य करें) क्योंकि यह अन्तरिक्ष लोक में स्थित होकर यह आवपन (जोड़े) हैं । अतः वह बिना द्वन्द्व के वह कार्य करे ।

शाङ्खायन ब्राह्मण में आठवां अध्याय समाप्त ॥८॥

नवाँ अध्याय

९.१ हरिः ओम् । अग्नि ब्रह्म है । अग्नि को उपवास के दिन ये आगे करते हैं और ब्रह्म से यजमान के पाप को नष्ट करते हैं— सामने आहवनीय से, पीछे गार्हपत्य से, उत्तर में आग्नीध्रीय से, दक्षिण में मार्जालीय से और मध्य में उनसे जो सदस् के मध्य में हैं। अतः उपवास के दिन अग्नि को पूर्व में ले जाते हैं । पुरोहितों के अग्नियों का आहरण करते हैं । यह यजमान के पाप के विनाश के लिये हैं । दीक्षित हो रहे देवगण वाणी के पास गए (और कहा–) आप ऊँचा-नीचा (विभिन्न प्रकार का) बहुत जानती हैं । हम सत्य और दम (आत्मदमन) मय होना चाहते हैं । उन्होंने (सरस्वती ने) दीक्षा में विभाग (हिस्सा) चाहा । देवताओं ने उन्हें वहाँ विभाग नहीं दिया । उन्होंने प्रायणीय (प्रारम्भिक यज्ञ) में (चाहा) किन्तु वहाँ भी उन्हें नहीं (दिया) । उन्होंने क्रय में चाहा पर वहाँ भी नहीं (मिला); उन्होंने आतिथ्य में चाहा पर वहाँ भी नहीं (मिला); वह (सरस्वती) उपसद के पास बिल्कुल नहीं गयी क्योंकि निर्विघ्न की भाँति है । अतः यहाँ वे मन्दस्वर (उपांशु) करें

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नाऽऽगच्छन्निर्विद्येव तस्मादु तत्रोपांशु चरेयुर्यथैवैवमिथः संशृण्वीरन्त्सो वा एत-दुपवसथेऽग्नौ प्रणीयमान आगच्छत्तां देवास्तत्राभजन्त तस्मादु तत्र प्रथमत एवोच्चैरनुब्रूयाद्यथैनामागतामनुबुध्येरन्नामक्तां जज्ञे ॥ १ ॥

प्रदेवं देव्या धियेति प्रवन्तं तृचं प्रह्री(ह्रि)यमाणायान्वाहैळायास्त्वा पदे वयमितीयं वा इळा अस्यां हीदं सर्वमीट्टे जातवेदो निधीमहीति निहतवताऽर्धर्चेन निधीयमानमनुस्तौत्यग्ने विश्वेभिः स्वनीकदेवैः सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वा-न्निहोता होतृषदने विदान इति सन्नवतीभिः सन्नमनुस्तौति त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पा इति दूतवत्या परिदधात्यभिरूपान्वाह यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्धयै ता वा अष्टान्वाहाष्टाक्षरा गायत्री गायत्रो वा अग्निर्गायित्रच्छन्दांस्वेनैव तच्छन्दसाऽग्निं प्रणयन्ति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया द्वादश संपद्यन्ते द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै ताः समनूक्ता अष्टादश गायत्र्यः संपद्यन्त आग्नेय-

---

जिससे वे परस्पर ही सुन सकें। वह (सरस्वती) उपवास के दिन अग्नि के लाये जाते समय आयीं वहाँ देवों ने उन्हें भाग दिया अतः वहीं प्रथम उच्च स्वर से बोले जिससे उन्हें (सरस्वती को) वहाँ आया और यज्ञ में विभाग पाया जान सकें।

९.२ जब वह आगे ले जाया जा रहा है तो उसके लिये 'प्र'युक्त तीन ऋचाओं का पाठ करता है—'प्रदेवं देव्या धिया' इत्यादि (ऋ.१०।१७६।२-४ दैवी-बुद्धि से देव अग्नि आगे)। वह कहता है—'इलायास्त्वा पदे वयम्' (ऋ. ३।२३।४ आप को हम इला (यज्ञीयान्न) के पद में)। यह (पृथ्वी) इला है क्योंकि इसमें वह सबकी प्रशंसा (स्तुति—ईट्टे) करता है। जब वह निधीयमान (रखा जाता हुआ) होता है तो 'जातवेदो निधीमहि' (ऋ. ३.२९.४८ हे जातवेद ! हम आप को रख रहे हैं) इस (निहतवती) आधी ऋचा से स्तुति करता है। जब वे बैठ जाते हैं (सन्नम्) तो 'सन्नवती' इन ऋचाओं से स्तुति करता है—अग्ने विश्वेभिः स्वनीकदेवैः (ऋ. ६।१५।१६ हे सुन्दर अग्नि ! सभी देवताओं सहित), सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान् (ऋ. ३।२९।८ हे विद्वान् होता ! अपने स्थान में बैठिये) तथा 'निहोता होतृसदने विदानस् (ऋ. २।९।१ सम्यग् ज्ञाता होता होतृभवन में)। वह 'दूतवती' इस ऋचा से समाप्त करता है—त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पा (ऋ. २।९।२ आप हमारे दूत तथा दूर से रक्षक हैं)। यह अभिरूप कहता है। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध है। यह निश्चय ही यज्ञ की समृद्धि (पूर्णता) के लिये है (अर्थात् यह यज्ञ को पूर्ण करता है)। वह आठ का पाठ करता है। गायत्री अष्टाक्षरा है। अग्नि गायत्री से संबद्ध हैं और गायत्री उनका छन्द है। निश्चय ही वे अग्नि को उन्हीं के छन्द द्वारा आगे करते हैं। वह प्रथम तथा तृतीय को तीन बार पढ़ता है। इससे वे बारह हो जाते हैं। वर्ष में बारह मास हैं वे वर्ष की प्राप्ति के लिये हैं। वे साथ-साथ दुहराये जाने पर अट्ठारह गायत्री होते हैं। छन्द के द्वारा इस प्रकार यह अग्नि से संबद्ध होता है। जिस

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मेव च्छन्दोभिर्यस्य ह कस्य च षट् समानस्य च्छन्दसस्ता गायत्रीमभिसंपद्यन्ते यस्य सप्त ता उष्णिहं यस्याष्टौ ता अनुष्टुभं यस्य नव ता बृहतीं यस्य दश ताः पङ्क्ति यस्यैकादश तास्त्रिष्टुभं यस्य द्वादश ता जगतीम् ॥ २ ॥

वाक्च वै मनश्च हविर्धाने वाचि च वै मनसि चेदं सर्वं हितं तद्यद्धविर्धाने संप्रवर्तयन्ति सर्वेषामेव कामानामाप्त्यै द्वे हविर्धाने भवतश्छदिस्तृतीयमभिनिदधति तैर्यत्किंच त्रिविधमधिदैवतमध्यात्मं तत्सर्वमाप्नोति प्रेतां यज्ञस्य शंभुवेति प्रवतीं प्रवर्तमानाभ्यामन्वाह द्यावा नः पृथिवी इमं तयोरिद्घृतवत्पय इत्याशीर्वती पूर्वाऽथो द्विदेवत्या द्वयोर्हविर्धानयोर्यामध्वर्युर्वर्त्मन्याहुतिं जुहोति तान्पूर्वयाऽनुवदति यद्धविर्धाने प्रवर्तयन्ति तदुत्तरया यमे इव यतमाने यदैतमित्यभिरूपया हविर्धाने अनुस्तौति प्र वां भरन्मानुषा देवयन्त इति बहवो ह्येने हरन्त्यधिद्वयोरदधा उक्थ्यं वचो विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविरिति यच्छदिस्तृतीयमभिनिदधति तत्पूर्वयाऽनुवदति यद्धविर्धाने परिश्रयन्ति तदुत्तरया ॥ ३ ॥

किसी भी छन्द के (चरणों में) छः (अक्षर) हैं वे गायत्री बनाते हैं; जिसके सात हैं वह उष्णिक् होता है। जिसके आठ हैं वह अनुष्टुप् है, जिसके नव हैं उसे बृहती बनाते हैं, जिसके दश वह पङ्क्ति, जिसके एकादश वह त्रिष्टुभ् और जिसके बारह वह जगती होती है।

९.३ वाणी और मन ये (दोनों) हवि के रखने वाले हैं (अर्थात् वाणी और मन में हवि विनिहित है)। वाणी और मन में यह सब (विश्व) निहित है। जो वे दोनों हवि रखने वालों को आगे (प्रवर्तित) करते हैं यह सभी कामनाओं की प्राप्ति के लिये है। हवि रखने वाले दो हैं और तीसरा वे आवरण रखते हैं। इनके द्वारा वह जो देवताओं से सम्बद्ध (अधिदैवत) तथा आत्मा से सम्बद्ध (अध्यात्म) त्रिविध है उसे प्राप्त करता है। जब वे दोनों आगे ले जायी जाती हैं तो वह उनके लिये एक 'प्रवती' (ऋचा) का पाठ करता है— 'प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा' (ऋ. २।४१।१९ दोनों यज्ञ के हित के लिये आगे आवें)। वह कहता है—द्यावा नः पृथिवी इमं (ऋ. २।४१।२० द्यावा पृथिवी हमारे लिये यह) तथा तयोरिद्घृतवत्पयो (ऋ. १।२२।१४ उनका दुग्ध घृतपूर्ण है)। प्रथम मन्त्र आशीर्वचन है। दूसरे मन्त्र में दो देवताओं का उल्लेख है। अध्वर्यु जो दो हवि धारकों के मार्ग में आहुति देता है उसे प्रथम मन्त्र से संयुक्त करता है। इससे वे दोनों हवि धारकों को आगे करते हैं और इसे वह दूसरी से संयुक्त करता है। वह दोनों हविधारकों की अनुरूप मन्त्र से स्तुति करता है (ऋ १०।१३।२)—यमे इव यतमाने यदैतम् जुड़वों की तरह यत्न करते हुये जिस समय आप आये)। क्योंकि बहुत से लोग इन दोनों को खींचते (हरन्ति) हैं अतः वह स्तुति करता है—प्रवां भरन् मानुषा देवयन्तः (ऋ० १०।१३।२ देवों की सेवा में रत मनुष्य)। वह कहता है—अधि द्वयोरदधा उक्थ्य वचो (ऋ. १।८३।३

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथो रराट्यामेवोत्तरया ते यदामन्येतात्र नेङ्गयिष्यन्तीति यदैनेनभ्यस्थे कुर्युरथाऽऽवामुपस्थमद्रुहेति यदा वै क्षेमोऽथोपस्थः परि त्वा निर्वणो गिर इति परिवत्या परिदधात्यभिरूपान्वाह यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्ससृद्धं यज्ञस्यैव समृद्‌ध्यै ता वा अष्टौ भवन्त्येताभिर्वै देवाः सर्वा अष्टीराश्नुवत तथो एवैतद्यजमान एताभिरेव सर्वा अष्टीरश्नुते त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया द्वादश संपद्यन्ते द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै यद्वेव त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमां यज्ञस्यैव तद्बर्हिरसौ नह्यति स्थेम्ने विस्रंसाय तदु होतारमभिभाषन्ते यथा होतरभयमसत्तथा कुर्वीत संप्रेषितः पुरर्चप्रतिवदनाद्दक्षिणस्य पादस्य प्रपदेन प्रत्यञ्चं लोकमपास्यत्यपेतो जज्ञं भयमन्यजज्ञं च वृत्रहन्नपचक्रा आवृत्सतेऽत्यत उदचक्राणामभ्याचारस्तत उ ह तस्मा अर्धायाभयं भवति स प्राच्यं दक्षिणस्य हविर्धानस्योत्तरं वर्त्मोपनिश्रयेतायं वै लोको दक्षिणं हविर्धानं प्रतिष्ठा वा अयं लोकः प्रतिष्ठायामनुच्छिन्नोऽसानीति

(आपने) दोनों के लिये प्रशंसा के शब्द रखे हैं) तथा विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः (ऋ. ५।८१।२ कवि समस्त रूपों को धारण करता है)। जो आवरण को तीसरे पर रखता है उसे प्रथम से संयुक्त करता है। जो दोनों हविर्धारकों घेरते हैं उसे उत्तरवर्त्ती से।

९.४ अनन्तर वह बाद को रराट्या (आगे की) आहुति से संयुक्त करता है जब उसके बारे में सोचता हैं कि वे उन्हें हिलायेंगे नहीं (नेङ्गयिष्यन्तीति)। जब वे उन्हें बीच में खड़ा करते हैं तो वह कहे—आ वामुपस्थमद्रुहा (ऋ. २।४१।२१ अद्रोही आपकी गोद में) जब विश्राम हो तो उपस्थ (गोद) हो। वह 'परि' शब्द युक्त मन्त्र से समापन करता है—परित्वा गिर्वणो गिरः (ऋ० १।१०।१२ हे गायकों! आपके चारों ओर)। यह अभिरूप मन्त्र का पाठ करता है। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध है। यह यज्ञ की समृद्धि के लिये है। वे आठ होती हैं। इन्हीं से देवताओं ने सभी कामनाओं को प्राप्त किया। इसी प्रकार यजमान भी निश्चय ही इनसे सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। प्रथम और अन्तिम को तीन-तीन बार पाठ करने से वे बारह हो जाती हैं। वर्ष में बारह मास है। यह वर्ष की प्राप्ति के लिए हैं और जो पहली और अन्तिम का तीन-तीन बार पाठ करता है वह यज्ञ के ही बाहरी (सिरों) को जोड़ता है। यह उसकी स्थिरता और अविस्रंस के लिये हैं। तब वे होता से कहते हैं—हे होवः! आप ऐसा करें जिससे अभय हो। इस प्रकार कहे जानेपर वह ऋचा के पाठ के पूर्व अपने दाहिने पैर के अग्र भाग से पश्चिम तरफ (यह कहते हुये) लोष्ठ को फेकता है—देव वृत्रहन्! यहाँ मनुष्यों तथा मनुष्येतरों से भय दूर हो गया! चक्र चले गये (?)[1] अतः चक्रों से भय है। अतः इस स्थान (? अर्घाय) के लिये अभय है। दाहिने हविर्धारक के वायें (उत्तर) मार्ग का आश्रय करें जो पूर्वाभिमुख है। (वह चिन्तन करे कि)—'दक्षिण हविर्धारक यह लोक है और यह

---

१. यह मन्त्र पाठान्तर सहित मै०सं० १.२.९ तथा तै०ब्रा० ३.७.७.१४ में प्राप्त होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यत्र तिष्ठन्परिदध्यान्नं तत इति वेति वेयाद्यस्तत इति वेति वेयाद्यस्तं तत्र ब्रूयाज्ञोष्यत इति तथा ह स्यात्परिधाय दक्षिणं बाहुमन्वावृत्य वाचंयमो यथैतं प्रत्येत्य यत्र तिष्ठन्प्रथमामन्यवोचत्तत्स्थित्वाऽत्र चाग्निः प्रहरणे चाथ यथावसथमभ्युपेयात् ॥ ४ ॥

ब्रह्म वा अग्निः क्षत्रं सोमस्तद्यदुपवसथेऽग्नीषोमौ प्रणयन्ति ब्रह्मक्षत्राभ्यामेव तद्यजमानस्य पाप्मानमपघ्नन्ति तदु वा आहुरासीन एव होतैतां प्रथमामनुब्रूयात्सर्वाणि ह वै भूतानि सोमं राजानं प्रणीयमानमनुप्रच्यवन्ते तद्यदासीनो होतैतामृचमन्वाह तत्सर्वाणि भूतानि यथायथं नियच्छसीति सावीर्हि देव प्रथमाय पित्र इति सावित्रीं प्रथमामन्वाह सवितृप्रसूतायै सवितृप्रसूतस्य ह वै न काचन रिष्टिर्भवत्यरिष्ट्या उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इत्युत्थापयति प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति प्रयणन्ति ब्राह्मणस्पते अभिरूपे अन्वाह ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणैव तद्यज्ञं

लोक प्रतिष्ठा (आधार) है मैं प्रतिष्ठा में अनुच्छिन्न रहूँ।' जिस स्थान पर वह अन्तिम मन्त्र कहे उससे दाहिने या बायें न हिले। यदि वह दाहिने या बायें जाता है और कोई कहता हैं कि वह गिर जायेगा' तो ऐसा ही होगा। समाप्त करके, दक्षिण बाहुको घुमाकर मौन रखकर, जैसे आया था वैसे ही जाकर अग्नि आहरण तथा कृत्य में इस स्थान पर खड़ा होकर प्रथम मन्त्र का पाठ किया वहाँ खड़ा होकर (पुनः) अपने स्थान को जाय।

९.५. अग्नि ब्रह्म (ज्ञान, दैवी शक्ति) है, सोम क्षत्र (प्रभु शक्ति) हैं। जो उपवास के दिन अग्नि और सोम को आगे ले जाते हैं वह ब्रह्म और क्षत्र के द्वारा यजमान के पाप को मारते (नष्ट करते) हैं। इस विषय में वे कहते हैं कि होता बैठे ही इस प्रथम (मंत्र) को कहे। सोम राजा को आगे ले जाने से सभी प्राणी अपने (स्थान से) आगे चलने लगते है। जो होता बैठे ऋचा का पाठ करता है इससे वह सभी प्राणियों को अपने स्थान पर नियमित करता है। वह सवितृ द्वारा प्रेरणा के लिये 'सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे' (शा० श्रौ० सू० ५।१४।८ में पूर्णतः उद्धृत—हे देव ! प्रथम पितृ के लिये आप उड़ेलिये।) इस सावित्री मन्त्र का प्रथम पाठ करे। सवितृ द्वारा प्रेरित का कोई भी संभव अनिष्ट नहीं होता। यह अनिष्ट निवारण के लिये है। वह 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' (ऋ० १।४०।१ ब्रह्मणस्पते ! उठिये) इस मन्त्र से अग्नि को उठाता (हटाता) है। वह 'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता' (ऋ० १।४०।३ ब्रह्मणस्पति आगे जाँय सूनृत वाणी पहुँचे) इस मन्त्र से उन्हें आगे करता है। वह ब्रह्मणस्पति के लिये दो उपयुक्त मन्त्रों का पाठ करता है। ब्रह्मणस्पति ब्रह्म (दैवी शक्ति) है। इससे निश्चय ही वह ब्रह्म से यज्ञ को समृद्ध (सफल) करता है। वह अग्नि से सम्बद्ध इन दो तृचों का पाठ करता है क्योंकि अग्नि को ही वे प्रथम लेते हैं—'होता देवो अमर्त्यः' इत्यादि (ऋ० ७।२७।७-९ अमर देव होता) तथा उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे' इत्यादि (ऋ० १।१।७-९ हे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समर्धयति होता देवो अमर्त्य उप त्वाऽग्ने दिवे दिव इति केवलाग्नेय्यौ तृचावन्वाहाग्निं हि पूर्व्यं हरन्ति तौ वा इतवन्तौ भवतो ह्रीयमाणं ह्यग्निं स्तौति स यत्रोपाधिगच्छेद्भूतानां गर्भमादध इति तद्गर्भकामायै गर्भं ध्यायाल्लभते ह गर्भमथाऽऽग्नीध्रीयेऽग्निं निदधति तद्यदध्वर्युराहुतिं जुहोति तां सम्प्रत्येतामनुब्रूयादग्ने जुषस्व प्रतिहर्य तद्वच इति तस्या एवैषा याज्या जुषस्व प्रतिहर्येत्यभिरूपा ॥ ५ ॥

अथ केवलं सोमं प्राञ्चं हरन्ति तस्मात्केवलीः सौमीरन्वाह सोमो जिगाति गातुविदिती तवत्तृचमनुब्रुवन्ननु समेत्ययाध्वर्युराहवनीये पुनराहुतिं जुहोति तां सम्प्रत्येतामनुब्रूयादुप प्रियं पनिप्नतमिति तस्या एवैषा याज्याहुतीवृधमित्यभिरूपाऽथ पूर्वया द्वारा राजानं प्रपादयन्ति तस्मिन्प्रपाद्यमाने तमस्य राजा वरुण-

---

अग्नि देव ! आपके पास प्रतिदिन)। इन तृचों में 'इत' (गमन) शब्द है क्योंकि इनमें ह्रीयमाण (लाये जा रहे) अग्नि की स्तुति है। जब वह 'भूतानां गर्भमादधे (ऋ० ३। २७।९) पर पहुँचे तो जो गर्भ की कामना करता है उसके लिये वह गर्भ का चिन्तन करे। वह गर्भ को प्राप्त करती है। आग्नीध्रीय (वेदी) में वे अग्नि को रखते हैं। जब अध्वर्यु आहुति का हवन न करे तो वह इस मंत्र का अनुवचन (आवृत्ति) करे—अग्ने जुषष्व प्रति हर्य तद्वचो (ऋ० १।१४४।७ हे अग्नि ! इस वचन से प्रसन्न होइये; तृप्त होइये) इस (आहुति) का यह याज्या (हवन) मंत्र है। इससे 'जुषष्व' तथा 'प्रतिहर्य' शब्द हैं। अतः यह अभिरूप है।

९.६. तदन्तर वे केवल सोम को पूर्व दिशा में ले जाते हैं अतः केवल सोम सम्बन्धी मन्त्रों का पाठ करता है—सोमो जिगाति गातुविद्' इत्यादि (ऋ० ३।६२।१३-१५ मार्गज्ञाता सोम जाते है)। इस 'गमनयुक्त' तृच (तीन ऋचाओं) का पाठ करता हुआ वह अनुसरण करता है। यहाँ अध्वर्यु आहवनीय में पुनः आहुति का हवन करता है। फिर वह इस मन्त्र का पाठ करे—उप प्रियं पनिप्नतं (ऋ० ९।६७।२९ दृढ करने वाले प्रिय को)। यह इस आहुति का याज्या मन्त्र है। यह अभिरूप मन्त्र है क्योंकि इसमें 'आहुतिवृधं' (आहुति बढ़ाने वाला) शब्द है। तदनन्तर वे पूर्व द्वार से राजा को ले आते है। उन्हें भीतर ले आते समय वह इस मंत्र का पाठ करता है—तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना' (ऋ० १।१५६।४ उसका यह राजा वरुण, यह अश्विन)। यह अभिरूप है क्योंकि 'व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते' (१।१५६।४d मित्रता युक्त विष्णु ने इस व्रज (गोष्ठ) को खोल दिया है) यह अभिरूप शब्द हैं। उनके आ जाने पर वह यह मन्त्र पढ़ता है—'अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवासी' (ऋ० ८।४८।२ आप भीतर आगे आये हैं आप अदिति हैं।) यह 'प्र' युक्त मन्त्र हैं। जब वह बैठ जाँय (सन्नम्) तो 'सन्न' वती इन मन्त्रों से वह स्तुति करता है—श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतम् (ऋ० ९।७१।६ श्रद्धापूर्वकनिर्मित सदन में श्येन की भाँति); गणानां त्वा गणपतिं हवामहे (ऋ० २।२३।१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्तमश्विनेति व्रजं च विष्णुः सखिवां अपोर्णुत इत्यभिरूपां प्रपाद्यमानयान्वाहान्तश्च प्रागा अदितिर्भवासीति प्रवतीं प्रपन्नाय श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं गणानां त्वा गणपतिं हवामहेऽस्तभ्नाद्यामसुरो विश्ववेदा इति सन्नवतीभिः सन्नमनुस्तौत्येवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तमित्याशीर्वत्या परिदधात्यभिरूपाऽन्वाह यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्यै ता विंशतिमन्वाह ता विराजमभिसंपद्यन्ते वैराजः सोमोऽन्नं विराळन्नं सोमोऽन्नेन तदन्नाद्यं समर्धयति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया चतुर्विंशतिः संपद्यन्ते चतुर्विंशतिर्वै संवत्सरस्यार्धमासाः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्या एवं नु यदि पूर्वया द्वारा राजानं प्रपादयन्ति यद्यु वा अपरया तेनैव होताऽनुसमीयादात्मा वै यज्ञस्य होता प्राणः सोमो नेत्प्राणादात्मानमपादधानीत्युत्तरतो दक्षिणा तिष्ठन्परिदधाति यश उ वै सोमो राजाऽन्नाद्यममुत एव तदर्वागात्मन्यशो धत्तेऽर्वागात्मन्यशो धत्ते ॥ ६ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हरिः ॐ। वज्रो वा एष यद्यूपस्तद्यदुपवसथे यूपमुच्छ्रयन्ति वज्रेणैव तद्यजमानस्य पाप्मानमपघ्नन्ति स नापनत एव स्यादशनायतो वा एतद्रूपमभिनत इवौदेरेणा-

---

गणों के गणपति आपका हम आह्वान करते है); तथा अस्तभ्नाद्यामसुरो विश्ववेदा (ऋ० ८।६२।१ सर्वज्ञ असुर उसने द्यौः को स्थिर किया है)। वह इस आशीः युक्त मन्त्र से समाप्त करता है—आवन्दस्व वरुणं वृहन्तम् (ऋ० ८।६२।२ महान् वरुण की वन्दना करो)। वह अभिरूप (मन्त्रों) को कहता है। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध है। यह यज्ञ की समृद्धि के लिये है। वह बीस मन्त्रों का पाठ करता है। वे विराज होती हैं। सोम विराज से सम्बद्ध (वैराज) है। अन्न विराट् है। अन्न सोम है। अतः अन्न से वह अन्न के भोजन को सम्यक् बढ़ाता है। वह प्रथम तथा अन्तिम को तीन-तीन बार पढ़ता है। इस प्रकार वह चौबीस होता है। वर्ष में २४ अर्धमास (पक्ष) हैं। इस प्रकार वे संवत्सर की प्राप्ति कराते हैं। यदि वे राजा को पूर्व द्वार से प्रवेश कराते हैं तो यह इस प्रकार से है; पर यदि वे दूसरे (पश्चिम) द्वार से प्रवेश कराते हैं तो यह सोचते हुये अनुसरण करे कि 'होता यज्ञ का आत्मा (शरीर) है, सोम प्राण है। मैं आत्म को प्राण से अलग न करूँ।' वह (हविर्धारक के) उत्तर में दक्षिणाभिमुख स्थित होकर समाप्त करता है। सोम राजा यश है। उसके बाद वह अन्नाद्य और यश अपने में रखता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में नवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

१०.१ हरिः ओम्। यूप (यज्ञीय स्तम्भ) वज्र है। तो जो उपवास के दिन वे यूप को खड़ा करते है तो इस प्रकार निश्चय ही वे वज्र से यजमान के पाप को नष्ट करते हैं। यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

थाऽऽहवनीयं पुनरभ्यावृतस्तद्वै सुहितस्य रूपमनशनायुका ह्यस्य भार्या भवति य एवं रूपं कुरुते पालाशं ब्रह्मवर्चसकामः कुर्वीत वैल्वमन्नाद्यकामः खादिरं स्वर्गकाम-स्त्र्यरत्नि[:] स्याल्लोकानां रूपेण चतुररत्निः पशूनां रूपेण पञ्चारत्निः पङ्क्त्यै रूपेण षळरत्निऋर्तूनां रूपेण सप्तारत्निश्छन्दसां रूपेणाष्टारत्निर्गायत्र्यै रूपेण नवाररत्नि-र्बृहत्यै रूपेण दशारत्निर्विराजो रूपेणैकादशारत्निस्त्रिष्टुभो रूपेण द्वादशारत्निर्ज-गत्यै रूपेणैता मात्रा सम्पदो यूपस्य तासामेकां संपदमभिसंपाद्य यूपं कुर्वीत तदु वा आहुर्न मिमेद्यूपमपरिमित एव स्यान्मितं ह वै मितेन जयत्यमितममितेना-परिमित एव (वा)स्यावरुद्ध्यै यत्रैव मनसा वेलां मन्येत तद्यूपस्य च वेदेश्चेति ह स्माऽऽह प्रजापतिर्वै मनो यज्ञ उ वै प्रजापतिः स्वयं वै तद्यज्ञो यज्ञस्य जुषते यन्मनसो वाजपेययूप एवावधृतः सप्तदशारत्निः सोऽष्टाश्रिर्निष्ठितो भवति सर्वेषामेव कामा-नामष्ट्या अथैतं प्रर्णेनिजति तद्यदेवेदं परशुना क्रूरीकृत इव तष्ट इव भवति तदेवा-स्यैतदाप्याययति तद्भिषज्यत्यथैनमभ्यञ्जति तद्या एवेमाः पुरुषा आपस्ता एवास्मिस्तद्दधाति स्वभ्यक्तं स्वयमेव यजमानः कुर्वीत तथा ह यजमानो रूक्ष इव भवति ॥ १ ॥

नम्र (झुका हुआ) नहीं होना चाहिये क्योंकि जो पेट से झुका हैं वह भूखे का लक्षण है। पुनः यह आहवनीय की ओर उन्मुख होना चाहिये क्योंकि वह जो इसप्रकार यूप को बनाता है उसकी स्त्री भूखो की तरह नहीं है। ब्रह्म तेज की कामना वाला पालाश का, अन्न-भोजन की कामना वाला बिल्व का और स्वर्ग की कामना वाला खदिर का यूप बनावे। यह (तीन) लोकों के रूप (प्रतीक) से तीन अरत्नि, पशुओं (चतुष्पदों) के रूप से चार अरत्नि, पंक्ति के रूप से पाँच अरत्नि, ऋतुओं के रूप से छः अरत्नि, छन्दों के रूप से सात अरत्नि, गायत्री के रूप से आठ अरत्नि, वृहती के रूप से नौ अरत्नि, विराज के रूप से दस अरत्नि, त्रिष्टुप् के रूप ग्यारह अरत्नि और जगती के रूप से बारह अरत्नि का होना चाहिये। ये माप यूप के लिये उचित परिमाण हैं। इनमें से एक रूप को ग्रहण कर यूप का निर्माण करता करना चाहिये। वे कहते हैं--यूप को न मापे यह अपरिमित ही हो। मित को मित से जीत लिया जाता है और अपरिमित को अपरिमित से; अतः यह अपरिमित की विजय के लिये है। (इस विषय में कौर्षतकि (?) का) कहना है कि इनसे जिस रूप को उचित समझे उसे यूप और वेदरी के लिये ग्रहण करे। मन प्रजापति हैं। प्रजापति यज्ञ हैं। जब मन से (मन संयुक्त होता) है तो यज्ञ से यज्ञ आनन्द लेता है। वाजपेय (यज्ञ) में ही केवल यूप सत्रह अरत्निका होता है। यह सभी कामनाओं की प्राप्ति के लिये आठों कोणों में रखा रखा जाता है। तदनन्तर इसे साफ करते हैं। तो इसमें जो परशु के द्वारा क्रूरी कृत तथा कटा होता है उसे (इस सफाई के द्वारा) पूर्ण तथा स्वस्थ किया जाता है। फिर इसे अञ्जित (मालिश) किया जाता है। इस प्रकार जो जल

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्त इत्यक्तवतीमभिरूपाऽज्यमानायान्वाहोच्छ्रयस्व वनस्पते समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताज्जातो जायते सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्व ऊषुण ऊतय ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो निकेतुनेत्युच्छ्रितवतीश्चोद्वतीश्चोच्छ्रीयमाणायान्वाह युवा सुवासाः परिवीत आगादिति परिवीतवत्या परिदधात्यभिरूपाऽन्वाह यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्यै ता वै सप्तान्वाह सप्त वै छन्दांसि सर्वेषामेव च्छन्दसामाप्त्यै त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमयैकादश संपद्यन्त एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्त्रै-ष्टुभाः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्या इति न्वेकयूप एकपशु चाथ यद्येकयूप एकाद-शिनीमालभेरन्पशौ पशावेवाध्वर्युः संप्रेष्यति पशौ पशावेव युवा सुवासाः परिवीत आगादिति सैव परिधानीया सा परिवीयमाणायेति न्वेकयूपेऽथ कथं यूपैकादशिन्या-मित्येता एव सप्त सप्तदशभ्योऽनुब्रूयादथ यमुत्तमं सम्यन्वन्ति तस्मिन्यत्सूक्तस्य परिशिष्येत तदनुवर्तयेत्पुरस्तान्प्रगाथस्य तच्छृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां संददृश्र इति

मानव में हैं उन्हें इसमें रखा जाता है। इसे यजमान स्वयं अच्छी प्रकार लेप लगावे। इस प्रकार यजमान रुक्ष की तरह नहीं होता है।

१०.२ जब उस पर अञ्जन (लेप, मालिस) हो रही हो तो वह इस अनुरूप 'अक्त' युक्त मन्त्र का पाठ करता है— अञ्जन्तिवामध्वरे देवयन्तः (ऋ० ३।८।१ यज्ञ में आप को पवित्र लोग लेप करते हैं)। जब वह खड़ा किया जा रहा है तो उस समय इन उच्छ्रितवती तथा 'उद्वती' ऋचाओं (मन्त्रों) का पाठ करता है—उच्छ्रयस्व वनस्पते (ऋ० ३।८।३ हे वनस्पते! सीधे उठिये); समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तात् (ऋ० ३।८।२ समिद्ध के सामने खड़े होते हुये); जातो जायते सुदिनत्वे अह्नाम् (ऋ० १।८।५ दिनों के सुदिनत्व में उत्पन्न हुआ उत्पन्न हो रहा है)। ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा (ऋ० १.३६.१३ हमारे मङ्गल के लिये ऊपर रहिये); ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो निकेतुना (ऋ० १।३६।१४ अपनी किरणों से आप ऊपर हमें पापों से बचाइये)। वह 'परिवीत' वती इस अभिरूप ऋचा से समाप्त करता है—युवा सुवासाः परिवीत आगात् (ऋ० ३।८।४ सुन्दर वस्त्रों वाला, युवा, चारों ओर से ढका हुआ आया है)। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध है। यह यज्ञ की समृद्धि (साफल्य) के लिये है। वह सात (मन्त्रों) का पाठ करता है; छन्द सात है; इस प्रकार वे सभी छन्दों की प्राप्ति के लिये हैं। वह प्रथम और अन्तिम को तीन-तीन बार पढ़ता है जिससे वे एकादश होते हैं। त्रिष्टुप् में एकादश अक्षर है; पशु त्रिष्टुप् से सम्बद्ध है। यह पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। यह एक यूप और एक पशु की अवस्था का नियम है। यदि एक यूप में एकादश पशुओं का आनमन करना है तो प्रत्येक पशु में अध्वर्यु व्यवस्था करता है। प्रत्येक पशु में 'युवा सुवासाः परिवीत आगात् (ऋ० ३.८.४ सुन्दर वस्त्रों वाला युवा आवृत होकर आया) इसका पाठ करता है। यह आवृत किये जाते समय कहा जाता है। (वे कहते हैं कि) यह तो एक यूप की स्थिति है पर जब

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सर्वानिवानुवदति युवा सुवासाः परिवीत आगादिति सैव परिधानीया सा परिवीय-माणायतमाहुरनुप्रहरेद्यजमानो वा एष यद्यूपः स्वर्गो लोक आहवनीयस्तदेनं स्वर्गं लोकं गमयति तत्स्वर्ग्यमिति तदु वा आहुस्तिष्ठेदेव यदिदमास्थानं स्वरोस्तत ईश्वराय यदि नासुररक्षांस्यन्ववपातोस्तस्मात्त्वे उद्यतो वज्रो यज्ञवास्तौ तिष्ठेदेवासुररक्षांस्यपघ्नन्नपबाधमानो यज्ञं चैव यजमानं चाभिगोपायन्नित्यथ यूप्य एको द्रव्य एको गर्त्य एको योऽवाचीनवकलः स गर्त्यस्तस्यासान्येयादथ य उर्ध्ववकलो द्रव्यः स मानुषः कामं तस्यापि कुर्वीताथ यस्य प्रसव्या आदित्यस्या-न्वावृत्तावकला स्वयूप्यस्य स्वर्ग्य एकस्थो भ्रातृव्यो यो वाऽनुवृत्तः पलाशैरामूला स्यात्सोऽनग्नः स पशव्यस्तं पशुकामः कुर्वीत ॥ २ ॥

अग्नीषोमयोर्वा एष आस्यमापद्यते यो दीक्षते तद्यदुपवसथेऽग्नीषोमीयं पशुमा-लभत आत्मनिष्क्रयणो हैवास्यैष तेनाऽऽत्मानं निष्क्रीयानृणो भूत्वाऽथ यजते तस्मादु तस्य नाश्नीयात्पुरुषो हि सप्रतिमया तदु वा आहुर्हविर्वा आत्मनिष्क्रयणं हविषो

ग्यारह यूप होंगे तब कैसे होगा ? दश तक वे उन्हीं सात मन्त्रों का पाठ करें अन्तिम के स्थापित करते समय प्रगाथ के पूर्व जो सूक्त का अवशिष्ट है उसे कहे—श्रृङ्गाणीवेच्छृ-ङ्गिणां संददृशे (ऋ० ३।८।१० तदनन्तर श्रृङ्ग वालों की सीग की तरह दिखाई पड़ा) । वह सभी का अनुबाद (कथन) करता है उसके आवृत किये जाते समय वही समापनीय मन्त्र है—युवा सुवासाः परिवीत आगात् (ऋ० ३।८।४) । इस विषय में कहते हैं कि उसे फेंके (अनुप्रहरेद्) । यूप यजमान है । आहवनीय स्वर्ग है । इस प्रकार उसे वे स्वर्ग लोक में भेजते हैं । क्यों कि वह स्वर्गीय है । पर इस विषय में कहते हैं कि यह स्थिर (खड़ा) रहे । क्योंकि इस रूप में यह स्वः का ईश्वरीय स्थान है । यदि वह स्थिर न रहे तो असुरों और राक्षस इसका पान करेंगे । अतः यह यूप यज्ञीय स्थान पर वज्र के रूप में स्थिर रहे और असुरों और राक्षसों का प्रतीक बन विध्वंस करे तथा यज्ञ और यजमान की रक्षा करे । एक यूप योग्य होता है; एक द्रव्य (घना काष्ठ) होता है और एक गर्त (छिद्र) योग्य होता है जिसकी ढाल नीचे की ओर हो वह गर्त (छेद) योग्य होता है; ऐसे की कामना न करे । जिसके त्वच ऊपर की ओर उन्मुख हों और तथा काष्ठ युक्त (घना काष्ठ मोटा) हो उसे यदि चाहे तो प्रयुक्त करें क्योंकि वह मनुष्य से सम्बद्ध है ।' जिसकी त्वचा सूर्य की गति के अनुरूप बायें से दाहिने की ओर उन्मुख हो वह स्वर्ग्य है और यूप के लिये उपयुक्त है । जो वृक्ष प्रतिद्वन्द्वी रहित अकेले हो या जिसके मूल पलाशों से आवृत हों वह नग्न नहीं है । वह पशुओं से सम्बद्ध है । पशुओं की कामना वाला उसका उपयोग करे ।

१०.३ जो दीक्षित होता है वह अग्नि और सोम के मुख में पड़ता है; तो जो उपवास के दिन वह अग्नि और सोम के लिये एक पशु का आलम्भन करता है वह उसका अपने लिये निष्क्रय होता है । इस निष्क्रय (आत्मविक्रय) से वह ऋण रहित होता है और अनृण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हविष एव स तर्हि नाश्नीयाद्य आत्मनिष्क्रयणमिति नाश्नीयात्तस्मादु काममेवासि (शि)तव्यमहोरात्रे वा अग्नीषोमौ तद्यद्दिवा वपया चरन्ति तेनाहः प्रीतमाग्नेयं रात्रिमनुसंतिष्ठते तेन रात्रिः सौमी प्रीता सैषाऽहोरात्रयोरतिमुक्तिरित्यहोरात्रे यज्ञेन मुच्यते नैनं ते आप्नुतो य एवं विद्वानेतं पशुमालभते तमाहुर्विरूपः स्याच्छुक्लं च कृष्णं चाहोरात्रयो रूपेण शुक्लं वाऽथ लोहितं याऽग्नीषोमयो रूपेणेति तस्यैकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशोपयाजास्तानि त्रयस्त्रिंशत्त्रयस्त्रिंशद्वै सर्वे दवाः सर्वेषामेव देवानां प्रीत्यै प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयायाजास्तस्मात्समा भवन्ति समाना हीमे प्राणापानास्तदाहुः कस्मादृचा प्रयाजेषु यजति प्रतीकैरयानुजेष्विति रेतःसिच्यं वै प्रयाजा रेतोधेयमनुयाजास्तस्मादृचा प्रयाजेषु यजति प्रतीकैरनुयाजेष्वित्यथा यत्सर्वमुत्तममाह स्वर्ग एव तं लोकेयजमानं दधात्पाप्रीभिराप्रीणाति सर्वेण ह वा एष आतमना सर्वेण मनसा यज्ञं

होकर यज्ञ करता है इसलिये इसे उसको नहीं खाना चाहिये क्योंकि यह पुरुष की ही प्रतिमा है। लेकिन वे कहते हैं कि 'प्रत्येक हवि आत्मनिष्क्रय है और प्रत्येक हवि में इस प्रकार वही (पुरुष) है अतः वह कोई हवि न खाय। अतः जो आत्मनिष्क्रय को नहीं खाना चाहता वह न खाय। अतः जब किसी की इच्छा हो तो खाय।' अग्नि और सोम दिन तथा रात्रि है। जो दिन में वपा से कार्य प्रारम्भ करते हैं इससे दिन प्रसन्न होता है और रात्रि में अग्नि को आहुति दो जाती है इससे सोम से संबद्ध रात्रि प्रसन्न होती है। (वे कहते हैं कि) यह दिन और रात्रि की अतिमुक्ति (पूर्ण या अन्तिम मुक्ति) है। दिन और रात यज्ञ से मुक्त होते हैं। जो इस प्रकार जानते हुये पशु का आलभन करते हैं वे उसे नहीं प्राप्त करते। वे कहते है—वह दिन और रात्रि हमसे शुक्ल और कृष्ण दो रंगों का हो या अग्नि और सोम के रूप से शुक्ल या लोहित (रक्त) रंग का। इसमें ग्यारह प्रयाज, ग्यारह अनुयाज, ग्यारह उपयाज (पूरक) आहुतियाँ है। ये तैंतीस हैं। सभी देवता तैंतीस हैं। ये सभी देवों की प्रीति के लिये हैं। प्राण प्रयाज है; अपान अनुयाज है। इससे ये दोनों समान होते हैं क्योंकि प्राण और अपान समान (बराबर) हैं। वे कहते है कि क्यों प्रयाजों में तो ऋचा से यजन करते हैं और अनुयाजों में प्रतीकों (मंत्र के आरम्भिक चरण) से यजन करते हैं। प्रयाज सींचे जाने वाले रेतस् हैं और अनुयाज आधान (रखे जाने वाले) रेत हैं। इसलिये वह प्रयाज में ऋचा से यजन करता है और अनुयाज में प्रतीक से यजन करता है। जो अन्त में सभी कहता है वह यजमान को स्वर्गलोक में रखता है। आप्री-मन्त्रों से प्रसादन करता है। जो यज्ञ करता है वह सम्पूर्ण आत्मा से, सम्पूर्ण मन से यज्ञ का संभरण करता है। जो यज्ञ करता है उसकी आत्मा रिक्त जैसी हो जाती है उसे इन 'आप्री' मन्त्रों से प्रसन्न (पूर्ण) करता है। क्योंकि इनसे प्रीणन करता है अतः ये 'आप्री' (मन्त्र) कहे जाते हैं। राक्षसों के विनाश के लिये वह पशुओं के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संभरते यो यजते तस्य रिरिचान इव वा एतस्य आत्मा भवति तमस्यैताभिरा-प्रीभिराप्रीणाति तद्यदा प्रीणाति तस्मादाप्रियो नाम पर्यग्नि पशुं करोति रक्षसाम-पहत्या [अ]ग्निर्वै रक्षसामपहन्ता त्रिः प्रसविषर्यग्निं करोति तद्यथा तिस्रोऽग्निः पुरः कुर्यादिवं तत्तस्मात्पुनः परीहीत्यग्नीधं ब्रूयाद्यमिच्छेन्न प्रच्यवेतेति ॥ ३ ॥

दैव्याः शमितार उत च मनुष्या आरभध्वमुपनयत मेध्यादुर आशासाना मेधपतिभ्यां मेधमिति तद्धैक आहुर्यजमानो वै मेधपतिरिति को मनुष्य इति ब्रूयाद्देवतैव मेधपतिरिति षड्विंशतिरस्य वङ्क्रय इति परशव उ ह वै वङ्क्रय उभयतोऽसृक्यर्यवानित्यसृग्भाजनानि ह वै रक्षांसि भवन्ति नेद्रक्षसां भागेन दैवं भागं प्रसृजानीति स एषोऽध्रिगुः संशाननमेवाङ्गानि वा परिकर्तारिति यद्ध वा अदुष्टं तद्देवानां हविर्न वै ते दुष्टं हविरदन्ति नवकृत्वोऽध्रिगाववानीति नवेमे प्राणाः तद्यजमाने दधाति सर्वायुत्वायास्मिल्लोकेऽमृतत्वायामुष्मिंस्त्रिः परिदधात्य-परत्वाय सकृत्पुरस्तादाह सकृदिव वै पितरः पितृदेवत्य इव वै पशुरालभ्यमानो भवत्यथ यत्त्रिरुपरिष्टादाह त्रिर्वै देवत्रा देवदेवत्यमेवैनं तदयातयामानं करोति परिधायोपांशु जपत्युभावपापश्चेत्यपापो ह वै देवानां शमिता तस्मा एवैनं तत्सं-

---

चारों ओर अग्नि करता है; अग्नि राक्षसों के अपहन्ता हैं। वह अग्नि के चारों ओर तीन बार बायें से दाँये ले जाता है; (प्रदक्षिण कराता है)। यह वैसे ही है जैसे अग्नि पुरों (दुर्गों) को करें। अतः वह अग्नीध को यदि वह न च्युत हो इस कामना से कहे— 'पुनः परिक्रम करो।'

१०.४ हे दैवी शमित करने वाले (मारने वाले) तथा मानव कार्यारम्भ करने वाले आप दोनों यज्ञ को दो यज्ञपतियों के लिये निर्दिष्ट करते हुये (पशु को) यज्ञ के द्वार पर ले आइये। इस विषय में कुछ लोग कहते हैं कि यजमान ही यज्ञपति (मेधपति, है। 'कौन मनुष्य (स्वामी) है ?' ऐसा वह कहे। किन्तु 'देवता ही यज्ञपति है' ऐसा सिद्धान्त है इसके मोड़ छब्बीस है। इसके परशु ही मोड़ हैं। शलाकायें ही वङ्क्रि (मोड़) हैं।' रक्त (असृक्) के दोनों ओर वह (यह सोचते हुये) श्वास लेता है कि राक्षस असृक् के दावेदार (भाजन) हैं। मैं देवों के भाग को राक्षसों के भाग के साथ अलग न करूँ।' यह अध्रिगु (का सूत्र) है ! अनुशासन यह है कि अंगों को भ्रष्ट न करे। जो अदुष्ट है वह देवों का भाग है। वे दुष्ट हवि को नहीं खाते। वह अध्रिगु से नव बार श्वास लेता है। ये प्राण नौ हैं, इस प्रकार वह इस लोक में पूर्णायुष्य तथा उस लोक में अमरत्व की प्राप्ति के लिये यज्ञ में प्राण को रखता है। समापन मन्त्र को वह तीन बार बढ़ता है जिससे इसकी पुनरावृत्ति न हो (अपरत्वाय)। वह एक पहले कहता है। पितर एक बार जैसे हैं। जब पशु आलम्भन किया जाता है तो पितर उसके देवता होते हैं और जो तीन बाद में कहता है और देवताओं में तीन है तो इस प्रकार वह देवताओं को इसका देवता बनाता है और इसे नवीव (अयातयाम) बनाता है। समापन कर वह उपांशु (मन्दस्वर में) जप

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रयच्छति स हि देवानमु वेद ॥ ४ ॥

अथ स्तोकीयान्वाह स्तोकानेवैताभिरग्न ये स्वदयत्येता ह वा उ तेषां पुरोनुवाक्या एता याज्यास्तस्मादभिरूपा भवन्ति स्वाहाकृतिभिश्चरित्वा वपया चरन्ति प्रयाजानेव तत्पशुभाजः कुर्वन्ति न स्वाहाकृतीश्च वपां चात(न्त)रेण वाचं विसृजेत प्राणा वै स्वाहाकृतय आत्मा वपा नेत्प्राणांश्चाऽऽत्मानं चान्येनान्तर्दधानीत्यथ यदनुष्टुभोऽग्नीषोमीयस्य[1] पशोः पुरोनुवाक्या भवन्ति गायत्री वै सा याऽनुष्टुब्गायत्रमग्नेश्छन्दोऽथ यत्त्रिष्टुभो याज्याः क्षत्रस्यैवेतच्छन्दो यत्त्रिष्टुप्क्षात्रं सोमस्तद्यथाछन्दसं देवते प्रीणात्यथ वै पशुमालभ्यमानं पुरोडाशो निरुप्यते मेधो वा एष पशूनां यत्पुरोडाशः समेधमेनं तद्यज्ञियं करोत्यथ यत्र पशुपुरोडाशो न निरुप्यते तत्पुरोडाशः स्विष्टकृदच्युतोऽग्निर्वै स्विष्टकृत्तस्मादच्युतो भवति वैश्वामित्रीं पुरोडाशः स्विष्टकृतः पुरोनुवाक्यामनूच्य वैश्वामित्र्या यजति ततिर्वै यज्ञस्य पुरोडाशो वाग्वै विश्वामित्रो वाचा यज्ञस्तायते ॥ ५ ॥

करता है। दोनों और वह अपाप हैं। देवों का शमिता (काटनेवाला) अपाप है। उसे यह देता है। क्योंकि देवताओं को जानता है।

१०.५ तदन्तर 'स्तोक' सम्बन्धी मन्त्रों का पाठ करता है। इससे अग्नि को 'स्तोक' (विन्दु, अल्प) का आस्वादन कराता है। ये उनके लिये पुरोनुवाक्या (आह्वानकारी) मन्त्र हैं, ये उनके लिये याज्या (आहुतिकारी) मंत्र हैं। अतः ये अभिरूप हैं। 'स्वाहा'कार से प्रारम्भ कर 'वपा' की आहुति करते हैं। इससे वे प्रयाजों (पूर्वाहुतियों) को पशु का भागी बनाते हैं। स्वाहाकार की आहुति और वपा की आहुति के मध्य वह वचन को नहीं कहे (अर्थात् कुछ उच्चारण न करो) (वह यह सोचते हुये ऐसा न करे कि) स्वाहाकार प्राण हैं और वपा आत्मा (क्षीण) है। प्राण और आत्मा के मध्य में कुछ अन्य को रखकर न करूँ। जो अग्नि और सोम के पशु के लिये पुरोनुवाक्या अनुष्टुभ (छन्द) हैं वह इसलिये कि अनुष्टुभ गायत्री है और अग्नि का छन्द गायत्री है। याज्या मन्त्र त्रिष्टुभ है वह इसलिये कि त्रिष्टुभ क्षत्र (राजा) का छन्द है और सोम क्षत्र (राजा) है। इस प्रकार छन्द से वह दोनों देवताओं को प्रसन्न करता है। पशु के आलम्भन के समय पुरोडाश दिया जाता है। पुरोडाश पशु का मेध (रस) है। इस प्रकार पशु को मेध से पूर्ण तथा यज्ञ के उपयुक्त करता है और जहाँ पशु पुरोडाश नहीं दिया जाता (कीथ के अनुसार 'ऽनुनिरुप्यते' अर्थात् दिया जाता है।) पुरोडाश का स्विष्टकृत् अच्युत (स्थायी) होता है। अग्नि स्विष्टकृत् (स्थायी) हैं अतः यह अच्युत (स्थिर) होता है। स्विष्टकृत् पुरोडाश के लिये विश्वामित्र से संबद्ध एक पुरोनुवाक्या मन्त्र का पाठ कर विश्वामित्र से संबद्ध मन्त्र का याज्या के रूप में पाठ करता है। पुरोडाश यज्ञ का सातत्य है। विश्वामित्र वाक् हैं। वाणी से यज्ञ सतत किया जाता है।

---

१. यत्त्रिष्टु।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ मनोतामन्वाह सर्वा ह वै देवताः पशुमालभ्यमानमुपसंगच्छन्ते मम नाम ग्रहीष्यति मम नाम ग्रहीष्यतीति तासां सर्वासां पशावेव मनांस्योतानि भवन्ति ता अत्र प्रीणाति तथा हाऽऽसां सर्वासां पशावेव मनांस्योतानि भवन्ति ता अत्र प्रीणाति तथा हाऽऽसां सर्वासाममोघायैवोपसमेतं भवति तदाहुर्यन्नानादेवताः पशव आलभ्यन्तेऽथ कस्मादाग्नेयमेवान्वाहेति तिस्रो वै देवानां मनोता अग्निर्वै देवानां मनोता तस्मिन्ह्येषां मनांस्योतानि भवन्त्यथो वाग्वै देवानां मनोता तस्यां ह्येषां मनांस्योतानि भवन्त्यथो गौर्वै देवानां मनोता तस्यां ह्येषां मनांस्योतानि भवन्त्यग्निः सर्वा मनोता अग्नौ मनोताः संगच्छन्ते तस्मादाग्नेयमेवान्वाहेति ता वै त्रयोदश भवन्ति त्रयोदश वै पशोरवदानानि तेषां समवद्यति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया सप्तदश संपद्यन्ते सप्तदशो वै प्रजापतिरेतद्वा आर्धुकं कर्म यत्प्रजापतिसंमितं सप्तदश सामिधेनीरन्वाह सप्तदशो वै प्रजापतिरेतद्वा आर्धुकं कर्म यत्प्रजापतिसंमितमथ यत्र पशुरालभ्यते तद्वनस्पतिरच्युतोऽग्निर्वै वनस्पतिः स वै देवेभ्यो हविः प्रयच्छति तस्मादच्युतो भवति स उ वै पयोभाजनोऽत्राग्निः सर्वेषु हविःषु भागी भवति तदाहुर्यद्धामभाजो देवा अथ कस्मात्पाथोभाग्वनस्पतिरिति धाम वै

१०.६. तदनन्तर वह मनोता (ऋ० ६।१) का पाठ करता है। सभी देवता आलभ्यमान पशु के पास (यह सोचते हुये) इकट्ठे होते हैं कि 'मेरा नाम लेगा, मेरा नाम लेगा'। उन सभी के मन पशु में लगे (ओत) रहते हैं। इन्हें वह यहाँ प्रसन्न करता है। (क्योंकि) इन सभी का मन इस (पशु) में लगा रहता है और उन्हें वह यहाँ प्रसन्न करता है अतः यहाँ आना व्यर्थ नहीं होता। वह कहते हैं—चूंकि पशु नाना देवताओं के लिये आलभन होता है तो क्यों वह अग्नि का ही मन्त्र कहता है। देवताओं के तीन मनोता हैं। अग्नि देवों के मनोता हैं क्यों कि उनमें देवताओं के मन ओत हैं। वाक् देवों के मनोता हैं क्योंकि उनमें देवों के मन ओत हैं। और गीः (गौः) देवों के मनोता हैं क्यों कि देवों के मन उनमें ओत हैं। सभी मनोता अग्नि हैं। (क्योंकि) अग्नि में (सभी) मनोता इकट्ठे होते हैं। अतः वह अग्नि से सम्बद्ध का ही पाठ करता है। ये तेरह हैं। पशु के अवदात (कार) तेरह हैं। इनसे उन्हें संयुक्त करता है। ये तीन पहले और तीन अन्तिम से सत्रह होती हैं। प्रजापति सप्तदश (सत्रह से संबद्ध) है। प्रजापति के अनुकूल कर्म लाभदायक हैं। वह सत्र सामिधेनी मन्त्रों का पाठ करता है। प्रजापति सप्तदश हैं। प्रजापति के अनुकूल कर्म लाभदायक (ऋद्धिकारी) है। जहाँ पशु का आलभन होता है वह वनस्पति अच्युत होता है। अग्नि वनस्पति है। वे देवों को हवि देते हैं। इससे वे अच्युत होते हैं। वे पय (दुग्ध) भागी भी हैं। इस प्रकार वे सभी हवि में भागी होते हैं इस विषय में कहते हैं कि देवता तो धाम (ठोस ?) के भागी हैं तो वनस्पति क्यों पाथ (पेय) के भागी हैं। (इसका उत्तर है कि) यज्ञ के धाम को दो देवता ग्रहण करते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देवा यज्ञस्याभजन्त पाथः पितरः पितृदेवत्य इव वै पशुः पितृदेवत्यं पयस्तस्मादिति ब्रूयात्तदाहुः कस्मात्सौम्य एवाध्वरे प्रवृत्ताहुती जुह्वति न हविर्यज्ञ इत्यकृत्स्नैव वा एषा देवयज्या यद्धविर्यज्ञोऽथैषैव कृत्स्ना देवयज्या यत्सौम्योऽध्वरस्तस्मात्सौम्य एवाध्वरे प्रवृत्ताहुती जुह्वति न हविर्यज्ञ इति जुष्टो वाचो भूयासं जुष्टो वाचस्पतेर्देवि वाग्यत्ते वाचो मधुमत्तमं तस्मिन्नो अद्य धात्स्वाहा सरस्वत्या इति पुरस्तात्स्वाहाकारेण जुहोति वाचं तदुत्सृजते तस्माद्वा गत ऊर्ध्वोत्सृष्टा यज्ञं वहति मनसोत्तरां मनसा हि मनः प्रीतं मनसा हि मनः प्रीतम् ॥ ६ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

हरिः ॐ । अथातः प्रातरनुवाको यदेवैनं प्रातरन्वाह तत्प्रातरनुवाकस्य प्रातरनुवाकत्वमथ यत्प्रपदो जपति यदाहुतीर्जुहोति स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते हिंकृत्य प्रातरनुवाकमन्वाह वज्रो वै हिंकारो वज्रेणैव तद्यजमानस्य पाप्मानं हन्त्युच्चैर्नि-

---

हैं और पाथ (पेय) को पितर । पशु पितृदैवत्य की ही भाँति है और पय पितृदैवत्य ही है । अतः यह ऐसा होता है । वे पूछते हैं कि क्यों सोमयाग में प्रवृत्त (अध्वर्यु चयन) के लिये दो आहुतियों को देते हैं पर हवि यज्ञ में ऐसा नहीं करते ? हविर्यज्ञ अपूर्ण देवयजन (यज्ञ) है; सोमयाग पूर्ण (कृत्स्न) देवयज्या (यज्ञ) है इसलिये सोमयाग में दो को प्रवृत्ताहुतियों (चयन के लिये आहुतियों) का हवन करते हैं । हविर्यज्ञ में नहीं (यह उत्तर है) । वह पहले में (इस) स्वाहाकार से हवन करता है—'वाणी से जुष्ट (स्वीकृत, प्रिय) मैं वाचस्पति को स्वीकृत (प्रिय) बनूँ । हे देवि वाणि ! आप की वाणी में जो मधुरतम है उसमें हमें (वाचस्पति वह) आज रखें । स्वाहा ।' इस प्रकार वह वाणी का उत्सृजन करता है । अतः इसके बाद उत्सृष्ट (उन्मुक्त) वाणी यज्ञ का वहन (निर्वाह) करती है । मन से उत्तर (द्वितीय) (आहुति को देता है) क्योंकि मन से मन प्रसन्न होता है ।

शाङ्खायन ब्राह्मण में दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

११.१ हरिः ओम् । इसके बाद प्रातः अनुवाक (प्रार्थना, मन्त्र) आता है । क्योंकि इसे प्रातःकाल कहता है इससे प्रातःअनुवाक का प्रातःअनुवाकत्व है । जो प्रपद का जप करता है, जो आहुतियों का हवन करता है वह स्वस्त्ययन (मङ्गलाचरण) करता है । 'हिं'कार का उच्चारण कर प्रातःअनुवाक का पाठ करता है । हिकार वज्र है । वज्र से यजमान के पाप को नष्ट करता है । वह उच्च स्वर में स्पष्ट (निरुक्त) उच्चारण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रुक्तमनुब्रूयादेतद्ध वा एकं वाचो नन्ववसितं पाप्मनो यन्निरुक्तं तस्मान्निरुक्तमनुब्रूयाद्यजमानस्यैव पाप्मनोऽपहत्या अर्धर्चशोऽनुब्रूयादृक्संमिता वा इमे लोका अयं लोकः पूर्वोऽर्धर्चोऽसौ लोक उत्तरोऽथ यदर्धर्चावन्तरेण तदिदमन्तरिक्षं तद्यदर्धर्चशोऽन्वाहैभिरेव तं लोकैर्यजमानं समर्धयत्येष्वेव तं लोकेषु यजमानं दधाति ॥ १ ॥

अथ वै पङ्क्तेः पञ्च पदानि कथं सार्धर्चशोऽनूक्ता भवतीति प्रणव उत्तरयोस्तृतीयस्तथा साऽर्धर्चशोऽनूक्ता भवत्याग्नेयं क्रतुमन्वाह तदिमं लोकमाप्नोत्युषस्यमन्वाह तदन्तरिक्षलोकमाप्नोत्याश्विनमन्वाह तदमुं लोकमाप्नोति गायत्रीमन्वाह मुखमेव गायत्र्यनुष्टुभमन्वाह वागनुष्टुम्मुखे तद्वाचं दधाति मुखेन वै वाचं वदति त्रिष्टुभमन्वाह बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधाति बृहतीमन्वाह गोश्वमेव बृहत्युष्णिहमन्वाहाजाविकमेवोष्णिग्जगतीमन्वाह बलं वै वीर्यं जगती बलं वीर्यं पुरस्तात्त्रिष्टुब्बलं वीर्यमुपरिष्टाज्जगती ॥ २ ॥

करे। यह स्पष्ट उच्चारण वाणी का एक रूप है जो पाप से अवसित (अप्रभावित) होता है, अतः वह स्पष्ट स्वर में यजमान के पाप को नष्ट करने के लिये पाठ करे। आधी ऋचा से पाठ करे। ये लोक ऋक् के संमित (समान, तुल्य) हैं। प्रथम आधी ऋचा यह लोक है, दूसरा आधा वह लोक है, जो दो आधी ऋचाओं के मध्य है वह अन्तरिक्ष लोक है। जो आधी ऋचाओं से पाठ करता है इससे वह यजमान को इन लोकों से समृद्ध करता है। और इस प्रकार इन लोकों में यजमान को स्थापित करता है।

११.२ पङ्क्ति में पाँच पद (चरण) होते हैं। यह आधे मन्त्र (ऋचा) से कैसे पढ़ी जाती है ?' ऐसा (पूछते हैं)। अन्तिम दो के साथ प्रणव (ओंकार) तीसरा है। इसलिये यह आधी ऋचा से कही जाती है। वह आग्नेय क्रतु का पाठ करता है। इससे वह इस लोक को प्राप्त करता है; वह उषा से सम्बद्ध को कहता है इससे अन्तरिक्ष लोक को प्राप्त करता है। अश्विन से संवद्ध को कहता है (पढ़ता है) इससे उस लोक को प्राप्त करता है। वह गायत्री का पाठ करता है। गायत्री मुख है। वह एक अनुष्टुप् का पाठ करता है। वाक् अनुष्टुप् है। इससे वह मुख में वाणी को रखता है। मुख से वह वाणी बोलता है। वह एक त्रिष्टुभ् को कहता है। त्रिष्टुभ् बल और वीर्य है। इस प्रकार यजमान में बल और वीर्य को रखता है। वह एक बृहती को कहता है। बृहती गौ और अश्व है। वह उष्णिक् को कहता है। उष्णिक् बकरी और भेड़ है। वह एक जगती को कहता है। जगती बल और वीर्य है। त्रिष्टुप् बल और वीर्य आगे (सामने) है तथा जगती पीछे बल और वीर्य है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मध्ये बार्हताश्चौष्णिहाश्च पशवो बलेनैव तद्वीर्येणोभयतः पशून्परिगृह्य यजमाने दधाति तथा ह यजमानात्पशवोऽनुत्क्रामुका भवन्ति तद्यथा ह वा अस्मिँल्लोके मनुष्याः पशूनश्नन्ति यथैभिर्भुञ्जत एवमेवामुष्मिल्लोँके पशवो मनुष्यानश्नन्त्येवमेभिर्भुञ्जते स एनानि ह प्रातरनुवाके नावरुन्धे तमिहावरुद्धा अमुष्मिँल्लोके नाश्नन्ति नैनेन प्रतिभुञ्जते यथैवैनानस्मिँल्लोकेऽश्नाति यथैभिर्भुङ्क्त एवमेवैनानमुष्मिँल्लोकेऽश्नात्येवमेवभिर्भुङ्क्ते पङ्क्तिमन्वाह प्रतिष्ठा वै पङ्क्तिः सर्वेष्वेव तद्भूतेषु यजमानं प्रतिष्ठापयति ॥ ३ ॥

अथ सर्वा ह वै देवता होतारं प्रातरनुवाकमनुवक्ष्यन्तमाशंसमानाः प्रत्युपतिष्ठन्ते मया प्रतिपत्स्यते मया प्रतिपत्स्यत इति स यदेकां देवतामादिश्य प्रतिपद्येताथेतराभ्यो देवताभ्यो वृश्चेतानिरुक्तया प्रतिपद्यते तेनो न कस्यैचन देवताया आवृश्चत आपो रेवतीरिति प्रतिपद्यत आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभिरेव तद्देवताभिः प्रतिपद्यत उप प्रयन्तो अध्वरमित्युपसंदधात्युपेति तदस्य लोकस्य रूपं

११.३ मध्य में पशु बृहती तथा उष्णिक् से सम्बद्ध हैं। निश्चय ही इस प्रकार वह दोनों ओर पशुओं को आवृत कर यजमान में रखता है। इससे पशु यजमान से अलग नही होते। जैसे इस लोक में मनुष्य पशुओं को खाते हैं, उनका भोग करते हैं उसी प्रकार उस लोक (परलोक) में पशु मनुष्यों को खाते हैं, उनका उपभोग करते हैं। वह उन्हें इस लोक में प्रातः अनुवाक से जीतता (प्राप्त) करता है। इस लोक में अवरुद्ध (प्राप्त) किये जाने पर वे इसे उस लोक में नहीं खाते, उनके द्वारा उसका उपभोग नहीं होता है। जैसे वह उन्हें इस लोक में खाता हैं उनका उपभोग करता है उसी प्रकार इनको उसलोक में खाता और उपभोग करता है। वह पङ्क्ति का पाठ करता है। पङ्क्ति प्रतिष्ठा है। इस प्रकार यजमान को वह सभी प्राणियों में प्रतिष्ठापित करता है।

११.४ जब होता प्रातःअनुवाक का पाठ करने को उद्यत होता है तो सभी देवता इस कामना से कि यह 'मेरे से प्रारम्भ करेगा, मेरे से प्रारम्भ करेगा' होता के पास आते हैं (उपस्थित होते हैं)। यदि वह एक देवता का उद्देश कर प्रारम्भ करे तो अन्य देवताओं का अपराधी होगा। वह एक मन्त्र से प्रारम्भ करता है (जो एक देवता को) उदिष्ट नहीं होता। इससे वह किसी देवता का अपराधी नहीं होता (किसी को क्षति नहीं पहुँचाता)। वह इस मन्त्र से प्रारम्भ करता है—'आपो रेवतीः' इत्यादि (ऋ० १०।३०।१२ : 'संमृद्ध जल' इत्यादि)। सभी देवता जल (आपः) हैं। इस प्रकार वह सभी देवताओं से प्रारम्भ करता है। वह इस मन्त्र से 'उप प्रयन्तो अध्वरम्' (ऋ० १।७४।१ : यज्ञ में आगे चलते हुये) चालू रखता है। 'उप' इस लोक का रूप (प्रतीक) है 'प्रयन्तः' उस लोक का रूप है। उप अग्नि का रूप है। 'प्रयन्तः' उस सूर्य का प्रतीक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रयन्त इति तदमुष्योपेति तदग्ने रूपं प्रयन्त इति तदमुष्याऽदित्यस्यैवमेव सर्वासु प्रतिपत्सु सर्वेषु क्रतुष्वाग्नेय उषस्याश्विने पूर्वा पूर्वैव व्याहृतिरग्ने रूपमुत्तराऽमुष्याऽऽदित्यस्याथैतद्वै नाना छान्दांस्यन्तरेण गर्ता इवाथैते बलिष्ठे अरिष्टे अनार्ते देवते ताभ्यां प्रतिपद्यते समानेन सूक्तेन समारोहेत्तदगर्त्यंस्कन्द्यं रोहस्य रूपं स्वर्ग्यं यत्र वा समानस्याऽर्षेयः स्यात्तदनवानं संक्रामेदमृतं वै प्राणोऽमृतेन तन्मृत्युं तरति तद्यथा वंशेन वा मर्त्येन वा गर्तं संक्रामेदेवं तत्प्रणवेन संक्रामति ब्रह्म वै प्रणवो ब्रह्मणैव तद्ब्रह्मोपसंतनोति ॥ ४ ॥

शुद्धः प्रणवः स्यात्प्रजाकामानां मकारान्तः प्रतिष्ठाकामानां मकारान्तः प्रणवः स्यादिति हैक आहुः शुद्ध इति त्वेव स्थितो मीमांसितः प्रणवोऽथात इह शुद्ध इह पूर्ण इति शुद्ध एव प्रणवः स्याच्छस्त्रानुवचनयोर्मध्य इति ह स्माऽऽह कौषीतकिस्तथा संहितं भवति मकारान्तोऽवसानार्थे प्रतिष्ठा वा अवसानं प्रतिष्ठित्या एवाथो उभयोः कामयोराप्त्या एत उ ह वै छन्दः प्रवह्वा अवरं छन्दः परं छन्दोऽतिप्रवहन्ति तस्याऽऽप्तिर्नास्ति च्छन्दसा छन्दोऽतिप्रोल्हस्याति यन्नेव यं द्विष्यात्तं

है । अतः सभी प्रत्यावर्तन के सूत्रों और अग्नि, उषा तथा अश्विन के क्रतुओं में प्रथम उच्चारण अग्नि का रूप (प्रतीक) है और उत्तर (बाद की) व्याहृति (उच्चारण) उस सूर्य का रूप है । बहुत से छन्द हैं और ये उनके बीच गर्त जैसे हैं । ये दोनों देवता बलिष्ठ (सब से बली), अहिंसित (अरिष्ट) तथा अनुपद्रुत (अनार्त) हैं । उन दोनों से वह प्रारम्भ करता है । वह एक सूक्त से समारोहण करे । (द्र. शां. श्रौ. सू. ६।६।२९) यह विना किसी गर्त में गिरे समारोहण का प्रतीक और स्वर्ग्य है । जब एक सूक्त में द्रष्टा ऋषिका वैभिन्य हो तो विना श्वास लिये वह आगे बढ़े । प्राण अमृत है । इस प्रकार वह अमृतत्व से मृत्यु को पार करता है । जैसे कोई बाँस या किसी मिट्टी (की दीवार) से गड्ढे को पार करता है इसी प्रकार प्रणव से वह पार करता है । प्रणव ब्रह्म (दैवी शक्ति) है । इस प्रकार वह ब्रह्म को चालू (संतत) करता है ।

११.५. प्रजा की इच्छा वाले के लिये शुद्ध प्रणव (का उच्चारण) हो, प्रतिष्ठा की कामना वाले के लिये मकारान्त हों । ऐसा कुछ लोग कहते हैं कि मकारान्त प्रणव होता है । किन्तु नियम यह है कि यह शुद्ध ही प्रयुक्त हो । प्रणव की मीमांसा कर यह निश्चित हुआ कि यहाँ यह शुद्ध है यहाँ पूर्ण । कौषीतकि का कथन हैं कि शस्त्र और पाठ के मध्य में प्रणव शुद्ध हो । इस प्रकार संहित होता है । अन्त में यह मकारान्त हो अवसान (समाप्ति) के लिये । अवसान प्रतिष्ठा है । इसलिये यह प्रतिष्ठा के लिये होता है । इससे इन दोनों से (उपर्युक्त) दोनों कामनाओं की प्राप्ति होती है । यह छन्दों का प्रवह (ले जाना) है । वे पूर्व पर उत्तर छन्द को वहन करते हैं । जो छन्द के द्वारा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मनसा प्रेव विध्येच्छन्दसां क्रन्तत्रेषु द्रवति वासं वा शीर्यत इति ह स्माऽऽह समानोदकाण्युत्तमानि ऋतूनां पाङ्क्तान्यन्वाह रसो वा उदर्कः पशवश्छन्दांसि रसमेव तच्छन्दांस्यभ्युपनिवर्तन्त उपनिवर्तमिव वै पशवः सौयवसे रमन्ते सैकोना विराड्द्विरनूक्तया संपदि विराट्त्रिरनूक्तयैका विराजमत्येति ॥ ५ ॥

त्रयो वै यज्ञे कामा यः संपन्ने यो न्यूने योऽतिरिक्ते यद्वै यज्ञस्य संपन्नं तत्स्वर्ग्यं यन्न्यूनं तदन्नाद्यं यदतिरिक्तं तत्प्रजात्यै तदत्रैव यजमानः सर्वान्कामानाप्नोत्यभूदुषा रुशत्पशुरित्याशीर्वत्या परिदधाति पशुभ्य एव तदाशिषं वदते तथा ह यजमानात्पशवोऽनुत्क्रामुका भवन्ति तस्यां वाचमुत्सृजति तदेनमजनीति देवेभ्यो निवेदयत्यत्र हि जायते अया वाजं देवहितं सनेमेति द्विपदामभ्यस्यति पशवो वा एतानि चतुरुत्तराणि च्छन्दांसि यजमानच्छन्दसं द्विपदा अधिष्ठायामेव तत्पशूनां यजमानं दधात्यधीव वै पशून्पुरुषस्तिष्ठति त्रिःसप्तानि ऋतूनां छन्दांस्यन्वाह तदेकविंशतिरेकविंशो वै चतुष्टोमः स्तोमानां परमस्तत्परमं स्तोममाप्नोति यद्वेवैक-

---

छन्द पर ले जाया जाता है उसकी कोई हानि नहीं होती। जब वह दूसरे (छन्द) पर जा रहा हो तो जिसको द्वेष कर रहा है उसका मन से वेधन करे। छन्दों के कटानों में या तो वह गिर जाता है या नष्ट हो जाता हैं ऐसा वह कहता हैं। पंक्तियों को ऋतुओं के अन्त में वह उसी उदर्क (अन्त) से कहता है। उदर्क (अन्त) रस है, छन्द पशु हैं। इस प्रकार छन्द रस से समाप्त होते हैं। पशु लौटते हुए यवस (घास) में रमण करते हैं। यह एक (अक्षर से) कम विराज है। एक (अक्षर) दो बार कहने से यह वस्तुतः विराज है। एक को तीन बार कहने से यह विराज से एक अधिक होता है।

११.६. एक यज्ञ में तीन कामनाएँ हैं—एक पूर्णता में, एक न्यूनता में और एक अधिकता में। यज्ञ की पूर्णता स्वर्गीय है, न्यूनता अन्न है, और अधिकता प्रजाति के लिये है। इस प्रकार इस यज्ञ में यजमान सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। 'अभूदुषा रुशत्पशुः' (ऋ० ५।७५।९ : रुशद्वर्ण की गायों सहित उषा प्रकट हुयी है) इस आशीर्वचन से वह समाप्त करता है। इस प्रकार वह पशुओं के लिये आशीर्वचन कहता है। अतः पशुओं के यजमान से हटने की संभावना नहीं रहती। इस मन्त्र के साथ वह वाणी को छोड़ता है (कहता है)। इस प्रकार वह देवताओं से 'वह उत्पन्न हुआ है' यह घोषणा करता है क्योंकि इसमें वह उत्पन्न हुआ है। वह 'अया वाजं देवहितं सनेम' (ऋ० ६।१७।१५ : इससे देवप्रेषितं पुरस्कार को हम प्राप्त करें) इस द्विपदा को अभ्यस्त करता है (आवृत करता है)। चार (अक्षरों) से बढ़ने वाले छन्द पशु हैं। दो पदों के मन्त्र यजमान के मन्त्र हैं। इससे वह यजमान को पशुओं का स्वामी बनाता है। पुरुष पशुओं के ऊपर (स्वामी होकर) स्थित होता है। वह ऋतु के साथ छन्दों को तीन बार कहता है। इससे इक्कीस होते हैं। स्तोम में सर्वश्रेष्ठ चतुष्टोम एकविंशति है। इससे वह सर्वोच्च स्तोम

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विंशतिर्द्वादश वै मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशस्तेनैव तत्स-लोकतायां यजमानमध्यूहति ॥ ६ ॥

तदाहुर्यदिमा हविर्यज्ञस्य वा पशोर्वा सामिधेन्योऽथ काः सौम्यस्याध्वरस्येति प्रातरनुवाक इति ब्रूयादक्षरैर्ह वा इतरासां संवत्सरमुपेप्सेत्यृग्भिर्हि शतमात्रमनु-ब्रूयाच्छतायुर्वै पुरुष आयुरेवास्मिंस्तद्दधाति विंशतिशतमनुब्रूयाद्विंशतिशतं वा ऋतोरहानि तदृतुमाप्नोत्यृतुना संवत्सरं ये च संवत्सरे कामास्त्रीणि षष्टिशतान्यनु-ब्रूयात्त्रीणि वै षष्टिशतानि संवत्सरस्याह्नां संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै सप्तविंशतिशतान्यनु-ब्रूयात्सप्त वै विंशतिशतानि संवत्सरस्याहोरात्राणां तत्संवत्सरस्याहोरात्राण्याप्नोति सहस्रमनुब्रूयात्सर्वं वै तद्यत्सहस्रं सर्वं प्रातरनुवाकस्तत्सर्वेण सर्वमाप्नोति य एवं वेद तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिः प्रजापतिर्वै प्रातरनुवाकोऽपरिमित उ वै प्रजापतिः कस्तं मातुमर्हेदित्येषा हैव स्थितिः ॥ ७ ॥

तदाहुर्यत्सदस्युक्थानि शस्यन्तेऽथ कस्माद्धविर्धानयोः प्रातरनुवाकमन्वाहेति शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धाने प्राणाच्छन्दांसि शीर्षस्तत्प्राणं दधाति सदस्यु-

---

को प्राप्त करता है। जो इक्कीस हैं (उनमें) बारह मास हैं, पांच ऋतुयें हैं, ये तीन लोक हैं तथा वह आदित्य इक्कीसवाँ है। इससे निश्चय ही वह यजमान को उसकी सलोकता में स्थापित करता है।

११.७ वे कहते हैं कि जब ये हविर्यज्ञ या पशु (यज्ञ) की सामिधेनी (मंत्र) हैं तो सोमयज्ञ के (सामिधेनी) क्या है? 'प्रातःअनुवाक' वह उत्तर दे। क्योंकि दूसरे के अक्षरों से वह वर्ष को प्राप्त करना चाहता है। यहाँ ऋचाओं से (प्राप्त करना चाहता है)। वह केवल एक सौ का पाठ करे। मनुष्य की आयु सौ वर्ष है। इस प्रकार उससे (सौ वर्ष की) आयु इसमें रखता है। वह एक सौ बीस का पाठ करे। एक ऋतु में एक सौ बीस दिन होते हैं। इस प्रकार वह ऋतु को प्राप्त करता है। ऋतुओं से वर्ष तथा वर्ष में निहित कामनाओं को (प्राप्त करता है)। तीन सौ साठ का पाठ करे। वर्ष में तीन सौ साठ दिन हैं। इस प्रकार वे वर्ष की प्राप्ति के लिये हैं। वह सात सौ बीस पाठ करे। वर्ष में सात सौ बीस दिन-रात हैं। इसप्रकार वह वर्ष के दिनों और रातों को प्राप्त करता है। वह एक सहस्र का पाठ करे। एक सहस्र सब कुछ (सर्व) है। प्रातः अनुवाक सर्व है। जो इस प्रकार जानता है वह सर्व को सर्व से प्राप्त करता है। पर कौषीतकि ने कहा है (कौषीतकि का मत है) कि प्रातःअनुवाकः प्रजापति हैं। प्रजापति अपरिमित हैं। उन्हें कौन माप सकता है? यही स्थिति (नियम) है।

११.८ वे कहते हैं चूंकि उक्थों (सूक्तों) का पाठ सदस् में होता है तो दो हविर्धानों (हवि के धारकों) में प्रातः अनुवाक का क्यों पाठ करता है? दो हविर्धान यज्ञ के शिर हैं। छन्द प्राण है। इस प्रकार वह शिर में प्राण (श्वास) को रखता है। सदस् में उक्थों का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्थानि शस्यन्त उदरं वै सदोऽन्नमुक्थान्युदरसा चेयमु वा अनाद्यं तद्यथा ह वा अन्न एनं यज्ञः प्रतिमया यथा धान्यमेवं प्रातरनुवाको यथा पात्राण्येवमुक्थानि स योऽल्पकमन्वाह यथाऽल्पधान्ये पात्राणि समृच्छेरन्नेवं तस्योक्थानि समृच्छन्त उक्थानामनुसमरमीश्वरो यजमानं भ्रेषोऽन्वेतोस्तस्माद्बह्वृच एवानुब्रूयादुक्थानि तत्परिबृंहति या यज्ञस्य समृद्धस्याऽऽशीः सा मे समृध्यतामिति या वै यज्ञस्य समृद्धस्याऽऽशीः सा यजमानस्याथो त्रीणि वा एतानि सहस्राण्यधियज्ञं प्रातरनुवाक आश्विनं महदुक्थं महारात्रमुपाकुर्यात्पुरा वाचो विसर्गाद्यत्रैतत्पशवो मनुष्या वयांसीति वाचं व्यालभन्ते पुरा ततो वाचं ह वा एतद्भूतान्याप्याययन्ति यद्वाचंयमानि शेरत आपीनां वाचमभ्यासिक्तां प्रथमत ऋध्नवामेति न प्रातरनुवाकं चोपांश्वन्तर्यामौ चान्तरेण वाचं विसृजेत प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ वाक्प्रातरनुवाको नेत्प्राणापानौ च वाचं चान्येनान्तर्दधानीति तद्धैके छन्दसां योग इति जपित्वाऽथाऽऽपो रेवतीरिति प्रतिपद्यन्ते नाऽऽपो रेवत्यै पुरस्तात्किंच परिहरेदिति तदिह स्थितमनाब्रस्काय तदिह स्थितमनाब्रस्काय ॥ ८ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

कथन होता है। सदस् उदर है। उक्थ अन्न हैं। उदर के लिये उचित अन्न (आवश्यक) है। यज्ञ गाडी का प्रतिरूप है (? कीथ)। प्रातरनुवाक धान्य जैसा है। उक्थ पात्र जैसे हैं। यदि कोई थोड़ा पढ़ता हैं तो जैसे गाड़ी में बहुत पात्र एक साथ थोड़े अन्न से (खड़खड़ाते) हुये आवें वैसे ही उसके उक्थ (सूक्त) आते हैं और उनके एक साथ आने से यजमान का स्खलन होगा। इसलिये वह बहुतों का कहे (पढ़े)। इस प्रकार वह उक्थों को दृढ़कर देता है। वह यह कहे—समृद्ध (सफल) यज्ञ की आशिषें मुझे प्राप्त हों। सफल यज्ञ की आशिषें यजमान की हैं। यज्ञ में सहस्र के तीन स्थान हैं – प्रातःअनुवाक, आश्विनों का अनुवाक और महदुक्थ। जब रात्रि ज्यादा बीत जाय (महारात्र) तो प्रारम्भ करे—वाणी के निकलने से पूर्व, जब पशु, मनुष्य और पक्षी वाणी बोलें उससे पूर्व। ये प्राणी वाणी को तृप्त करते हैं। जो वाणी का नियमन कर बे सोते हैं तो सोचते हैं कि वाणी को निगरण कर पहले वाणी को समृद्ध करें और उसे निकाले न। प्रातः अनुवाक तथा उपांशु एवं अन्तर्यामों के बीच वह वाणी को (यह सोचते हुये) न छोड़े (बोले) कि 'उपांशु और अन्तर्याम (चमस्) प्राण तथा अपान हैं तथा प्रातरनुवाक वाणी है। मैं प्राण, अपान तथा वाणी को किसी अन्य वस्तु से पृथक् न करूँ।' कुछ लोग 'छन्दों का योग' ऐसा जप कर 'आपो रेवतीः' इससे प्रारम्भ करते हैं। किन्तु नियम यह यह है कि 'आपो रेवतीः' इससे पूर्व कुछ भी न रखे। यह उसे नीचे न गिराने के लिये है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हरिः ॐ । यज्ञ वा आपस्तद्यदपोच्छ्रयन्ति यज्ञमेव तदुच्छ्रयन्त्यथो ऊर्वा आपो रस ऊर्जैनैव तद्रसेन हविः संसृजन्त्यथो अमृतत्वं वा आपोऽमृतत्वमेव तदात्मं धत्ते तद्ध स्म वै पुरा यज्ञमुहो रक्षांसि तीर्थेष्वपो गोपायन्ति तद्येके चापोऽच्छजघ्नुस्त एव तान्सर्वाञ्जघ्नुस्तत एतत्क वषः सूक्तमपश्यत्पञ्चदशर्चं प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्विति तदन्वब्रवीत्तेन यज्ञमुहो रक्षांसि तीर्थेभ्योऽपाहंस्तत उ हैतदर्वाक्स्वस्ति रिष्टयाः पुनः प्रत्यायन्त्यथादोऽमुत्रास्वध्वर्युराहुतिं जुहोति तां संप्रत्येनामनुब्रूयाद्धिनोता नो अध्वरं देवयज्ययेति तस्या एवैषा याज्या देवयज्येत्यभिरूपाऽऽववृंततीरधनु द्विधारा इत्यावृतासु प्रति यदापो अदृश्रमायतीरिति प्रतिख्यातासु समन्या यन्त्युप यन्त्यन्या इति समायतीषु यन्ति वा आप उपयन्त्यन्या आपो न देवीरुपयन्ति होत्रियमिति होतृचमसेऽवनीयमानास्वाधेनवः पयसा तूर्ण्यर्था इत्यापो वै धेनव आपो होदं सर्वं

बारहवाँ अध्याय

१२.१ हरिः ओम् । जल यज्ञ हैं । जो जल के पास जाते हैं वे इस प्रकार यज्ञ के पास जाते हैं । और जल ऊर्ज (बल) और रस हैं । इस प्रकार वे ऊर्ज तथा रस से यज्ञ को संयुक्त करते हैं । और आप (जल) अमृतत्व है । इस प्रकार वह अपने में अमृतत्व को रखता है । प्राचीन काल में यज्ञ के मोहक राक्षस गण तीर्थों में जल की रक्षा करते थे (निरीक्षण करते थे ? कीथ) उस समय जो कोई जल के पास जाता था उन सबको मार डालते थे । तदनन्तर कवष ने 'प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु' (ऋ० १०।३०।१ : ब्रह्मन् के लिये देवता आगे आवे) इत्यादि पन्द्रह ऋचाओं को देखा और उनको कहा और उससे यज्ञों के मोहक राक्षसों को तीर्थों से मारा और तब से वे यज्ञ से अहिंसित और सुरक्षित लौटने लगे । यहाँ अध्वर्यु जल में आहुति देता है । उस समय वह इसे इस मंत्र से संयुक्त करे—हिनोता नो अध्वरं देवयज्या' (ऋ० १०।३०।११ : हमारे यज्ञ को दैवी याज्या सहित आगे करें) । यह उस (आहुति) का याज्या मंत्र है तथा 'देवयज्या' युक्त होने से अभिरूप है । 'आववृंततीरध नु द्विधारा' (ऋ० १०।३०।१० : दो धाराओं वाली इस ओर मुड़ती हुई) इसका वह पाठ करता है । यह जल ले आते समय पढ़ता है । जलों के प्रतिख्यात (संचयन) समय वह 'प्रति यदापो अदृश्रमायतीः' (ऋ० १०।३०।१३ : किस समय आते हुये जल देखे गये) का पाठ करता है । उनके आने पर 'समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः (ऋ० १।३५।३ : कुछ जल आते हैं कुछ अन्य ऊपर आते हैं) का पाठ करता है । कुछ जल आते हैं कुछ ऊपर आते हैं । जब वे होतृ के चमस में गिराये जाते हैं उस समय 'आपो न देवीरुपयन्ति होत्रियम्' (ऋ० १।८३।२ : दैवी जल की भाँति वे होतृपात्र में आते है) इसका पाठ करता है । 'आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्थाः' (ऋ० ५।४३।१ समापन या तीव्रता इच्छुक दुग्धपूर्ण गायें) । जल गाये हैं क्योंकि जल इस संपूर्ण (जगत्) को प्रेरित करते हैं । अध्वर्यु होतृ की ओर उन्मुख होकर खड़ा होता है । उससे होता पूछता है 'हे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हिन्वन्त्यथाध्वर्युर्होतारमभ्यावृत्य तिष्ठति तं होता पृच्छत्यध्वर्यवैषीरपा३त्येषीर्यज्ञ-मित्येवैनं तदाहोतेवननमुरिति प्रत्याहादिदाम तद्यदास्वप्स्वै शीष्मर्णिं सत तस्मा इत्येवैनं तदाह प्रयुक्तो होतैतं निगदं प्रतिपद्यत ऊर्ग्वै रसो निगद ऊर्जमेव तद्रसं निगदेन हविषि दधाति ॥ १ ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिरित्यापो वा अम्बयोऽपोहीयति स्तौत्येमा अग्मन्रेवती-र्जीवधन्या इत्यागतास्वाग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदमित्यागतवत्या परिदधात्यभिरुपा-ऽन्वाह यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्ध्या अनूक्तः प्रातरनुवाक आसीदप्राप्ता उक्थान्यासंस्तानेतस्मिसंनिधावसुरा उदायंस्ते देवाः प्रतिबुध्य बिभ्यत एतं त्रिः समृद्धं वज्रमपश्यन्नाप इति तत्प्रथमं वज्ररूपं सरस्वतीति तद्द्वितीयं वज्ररूपं पञ्चदशर्च्चं भवति तत्तृतीयं वज्ररूपमेतेन वै देवास्त्रिः समृद्धेन वज्रेणैभ्यो लोकेभ्यो-ऽसुराननुदन्त तथो एवैतद्यजमान एतेनैव त्रिः समृद्धेन वज्रेणैभ्यो लोकेभ्यो द्विषतो भ्रातृव्यान्नुदते ॥ २ ॥

अध्वर्यु ! आपने जल प्राप्त किया है। आपने यज्ञ को प्राप्त किया है ?' इस प्रकार वह पूछता है। वह उत्तर देता है 'वे वस्तुतः प्रसन्न हैं। निश्चय ही वह इस प्रकार उससे कहता है। वह उससे कहता है कि इन जलों में जो कुछ हमने चाहा था वह प्राप्त कर लिया। इसके लिये वे प्रसन्न हैं। इस प्रकार उत्तर पाकर होता निगद् प्रारम्भ करता है। निगद् शक्ति (ऊर्ज) और रस है। इस प्रकार वह निगद से ऊर्ज और रस को हविष में रखता है।

१२.२ (वह) अम्बयो यन्त्यध्वभिर् (ऋ० १।२३।१६ : मातायें मार्ग से जाती हैं) इसका (पाठ करता है)। जल मातायें है। वह चल रहे जलों की स्तुति करता है। जब वे आ जाती हैं तो 'एमा अग्मन् रेवतीर्जीवधन्या : (ऋ० १०।३०।१४ : जीवन के पदार्थों से युक्त वे आयी हैं) इससे स्तुति करता है। वह आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदम्' (ऋ० १०।३०।१५ : कामयमान जल इस कुश पर आये हैं) इस 'आगत' युक्त समापन मंत्र का पाठ करता है। वह उपयुक्त (अभिरूप) मंत्र का पाठ करता है। यज्ञ में जो अभिरूप है वह समृद्ध है। इससे यह यज्ञ की समृद्धि (संपन्नता) के लिये है। प्रातः अनुवाक का पाठ हो चुका है। उक्थ (सूक्त) अप्राप्त है। इस संधि में असुर उनके विरुद्ध हुये। देवता डर कर तीन प्रकार से समृद्ध वज्र को देखे। जल वज्र के प्रथम रूप हैं। 'सरस्वती' यह मंत्र (ऋ० १०।३०।१२) जल का दूसरा रूप है। यह पन्द्रह मंत्रों का सूक्त (ऋ० १०।३०) है जो वज्र का तीसरा रूप है। देवों ने इस त्रिवृत् वज्र से असुरों को लोकों से बाहर फेंक दिया। इसी प्रकार यजमान भी इस तीन प्रकार से समृद्ध वज्र से द्वेष कर रहे शत्रुओं को इन लोकों से बाहर कर देता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

माध्यमाः सरस्वत्यां सत्रमासत तद्धापि कवषो मध्ये निषसाद तं हेम उपोदुर्दास्या वै त्वं पुत्रोऽसि न वयं त्वया सह भक्षयिष्याम इति स ह क्रुद्धः प्रद्रवत्सरस्वतीमेतेन सूक्तेन तुष्टाव तं हेयमन्वियाय तत उ हेमे निरागा इव मेनिरे तं हान्वावृत्योचुर्ऋषे नमस्ते अस्तु मा नो हिंसीस्त्वं वै नः श्रेष्ठोऽसि यं त्वेयमन्वेतीति तं ह ज्ञपयांचक्रुस्तस्य ह क्रोधं विनिन्युः स एष कवषस्यैव महिमा सूक्तस्य चानुवेदिताऽथ यत्सह पत्नीभिर्यन्ति गन्धर्वा ह वा इन्द्रस्य सोममप्सु प्रत्यायिता गोपायन्ति त उह स्त्रीकामास्ते हाऽऽसु मनांसि कुर्वते तद्यथा प्रमत्तानां यज्ञमाहरेदेवं तदुपनामुक उ एवेनं यज्ञो भवति य एवं वेद ता वै विंशतिमन्वाह ता विराजमभिसंपद्यन्ते वैराजीर्वा आपोऽन्नं विराळन्नमापोऽन्नेन तदन्नाद्यं समर्धयति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमया चतुर्विंशतिः संपद्यन्ते चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्री प्रातः सवनं वहति तदु ह प्रातः सवनरूपा न्वाप इतीति न्वा आपोनप्त्रियस्य ॥ ३ ॥

अथवा उपांशु प्राण एवं तं हूयमानमनुप्राण्यात्प्राणं मे पाहि प्राणं मे जिन्व स्वाहा त्वा सुभव सूर्यायेति स एव तस्य वषट्कारस्य स्वाहाकारो न ह वै ता

१२.३ माध्यम (ऋषियों) ने सरस्वती के तट पर सत्र किया। तब कवष मध्य में बैठे। उन लोगों ने उनसे कहा 'तुम दासी के पुत्र हो तुम्हारे साथ हम नहीं खायेंगे।' वह क्रुद्ध होकर भागा और इस सूक्त से सरस्वती की स्तुति की। वह उसके पीछे चलीं। तदनन्तर वे अपने को रागहीन जैसा देखे निस्तेज(?) वे उनके (कवष के) पास गये और बोले—'हे ऋषे ! आपको नमस्कार है। हम लोगों को नष्ट न करें। आप ही हम सब में श्रेष्ठ होक्योंकि आपके पीछे ही यह (सरस्वती) चल रही है।' इस प्रकार उन लोगों ने उनसे घोषित किया और उनके क्रोध का शमन किया। और यह इस सूक्त की अनुवेदिता (ज्ञातृत्व) है। जो पत्नियों के साथ चलते हैं वह (इसलिये कि) इन्द्र के विश्वस्त गन्धर्व जल में उनके सोम की रक्षा करते हैं। वे (गन्धर्व) स्त्रीकामी हैं तथा इनमें मन को चलाते हैं। तो वह इस प्रकार है जैसे कोई प्रमत्तों (असावधानों) का यह यज्ञ न ले ले। जो इसे जानता है यज्ञ उसपर प्रसन्न होता है। वह बीस मंत्रों का पाठ करता है; यह विराज है। जल विराज से संबद्ध है; विराज अन्न है। जल अन्न हैं। इस प्रकार अन्न से वह अन्नाद्य (भोज्य अन्न) को समृद्ध करता है। वह पहली और अन्तिम को तीन-तीन बार पढ़ता है। इससे वे चौबीस होती हैं। गायत्री में चौबीस अक्षर हैं। गायत्री प्रातः सवन का वहन करती है। इस प्रकार आप (जल) प्रातःसवन रूप हैं। यह इतना आपोनप्त्रिय का है।

१२.४. उपांशु (चमस) प्राण है। जब उसका हवन हो रहा हो उसके साथ वह श्वास लेते हुये यह कहे—'प्राणं मे पाहि प्राणं में जिन्वः स्वाहा त्वा सुभव सर्याय'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आहुतयो देवान्गच्छन्ति या आ वषट्कृता वा स्वाहा कृता वा भवन्त्यन्तर्यामोऽपान एव तं हूयमानमन्ववान्यादपानं मे पाह्यपानं मे जिन्व स्वाहा त्वा सुभव सूर्यायेति स एव तस्य वषट्कारस्य स्वाहाकारो न ह वै ता आहुतयो देवान्गच्छन्ति यावषट्कृता वास्वाहाकृता वा भवन्ति तौ वा एतौ प्राणापानावेव यदुपांश्वन्तर्यामौ तयोर्वा उदितेऽन्यमनुदितेऽन्यं जुह्वतीमावेव तत्प्राणापानौ वितारयति तस्माद्धीमौ प्राणापानौ सह सन्तौ नानेव यद्वेवोदितेऽन्यमनुदितेऽन्यं जुह्वत्यहोरात्राभ्यामेव तदसुरानन्तरयन्त्युभयतो ह्यमुमादित्यमहोरात्रे पाप्मानं वा यजमान इति ह स्माऽऽहाथ यस्यैता उभा उदिते जुह्वत्युभौ वाऽनुदित उदकयाजी स न सोमयाजी यस्यैवैतौ यथायथं हूयेते स सोमयाजीतीति न्वा उपांश्वन्तर्यामयोः ॥ ४ ॥

अनूत्थेयः पवमानोना३इति नानूत्य नानूत्थेय इत्याहुर्ऋच एतदायतनं यत्रैतद्धोतास्तेऽथातः साम्नो यत्रामी साम गायन्ति स योऽनूतिष्ठत्यृचं स स्वादायतनाच्च्यवयत्यृचं स साम्नोऽनुवर्त्मानं करोति तस्मादनानूतिष्ठेन्नेदृचं स्वादायतनाच्च्यवया-

---

(मेरे प्राण की रक्षा कीजिये । मेरे प्राण को तीव्र करिये । सुन्दर जन्म वाले आप सूर्य के लिये) यही इसका वषट्कार का स्वाहाकार है । वे आहुतियाँ जिनमें वषट्कार या स्वाहाकार उच्चारित नहीं होता देवों को नहीं जातीं । अन्तर्याम अपान है । जब यह दी जा रही हो तो वह श्वास छोड़ते हुये कहे—मेरे अपान की रक्षा करें, मेरे अपान को तीव्र करें । स्वाहा । सुन्दर जन्मवाले आप सूर्य के लिये । यह इसका वषट्कार और स्वाहाकार है । वे आहुतियाँ देवों को नहीं जातीं जो वषट्कार या स्वाहाकार से युक्त नहीं होतीं । उपांशु तथा अन्तर्याम प्राण तथा अपान हैं । इनमें से एक की आहुति सूर्य के उदित होने पर दूसरी की सूर्य के उदित होने से पूर्व देते हैं । इस प्रकार के प्राण तथा अपान को इसके द्वारा पृथक् करते हैं । इस प्रकार प्राण तथा अपान साथ होते हुये भी नाना (पृथक्) हैं । 'जो एक सूर्य के उदित होने पर दूसरे को उदित होने से पूर्व आहुति देते हैं वह दिन-रात से असुरों को रोकते हैं क्योंकि सूर्य के दोनों ओर दिन और रात हैं । 'यजमान पाप को रोकता है' ऐसा वे कहते हैं । सूर्य के उदित होने तथा अनुदित होने पर जिसके लिये आहुति देते हैं वह उदकयाजी (यजमान) है । सोमयाजी नहीं । जिनके लिये ये दोनों यथाविधि दी जाती है । वह वस्तुतः सोमयाजी ही हैं । यह उपांशु और अन्तर्याम का है ।

१२.५ 'पवमान' का अनुगमन करना चाहिये या नहीं (वे पूछते हैं) ? वे कहते हैं कि उसका अनुगमन नहीं करना चाहिये । ऋचा का आयतन वह है जहाँ होता स्थित होता है । साम का आयतन वहाँ है जहाँ वे साम का गायन करते हैं । जो अनुगमन करता है वह ऋचा को अपने आयतन से हटाता है और ऋचा को साम का अनुगामी बनाता

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नीति नेदृचं स साम्नोऽनुवर्तमानं करवाणीति यदि तु स्वयं होता स्यादनूत्तिष्ठेदौपगात्रं ह्यस्य भवति स्वर्गो वै लोकः स्वरसामः स्वर्गे लोके स्वरे सामन्यात्मानमतिसृजा इत्यथ पवमाने ह वा उ प्रातः सर्वा देवताः संतृप्यन्ते कथं तत्रापरिभक्षितो भवतीति स स्तुते पवमान एतं जपं जपेदुपहूता देवा अस्य सोमस्य पवमानस्य विचक्षणस्य भक्ष उप मां देवा ह्वयन्तामस्य सोमस्य पवमानस्य विचक्षणस्य भक्षे मनसा त्वा भक्षयामि वाचा त्वा भक्षयामि प्राणेन त्वा भक्षयामि चक्षुषा त्वा भक्षयामि श्रोत्रेण त्वा भक्षयामीति स एष देवैः समुपहवस्तथा हास्यासौ सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमा भक्षो भक्षितो भवति यममु देवा भक्षं भक्षयन्ति ॥ ५ ॥

अथ पशुसोम एवैष प्रत्यक्षं यत्पशुरुदकपेयमिव ह स्याद्यदेष आलभ्यते सवनान्येतेन तीव्री करोति तद्यद्वपया चरन्ति तेन प्रातःसवनं तीव्रीकृतं यच्छ्रपयन्ति यत्पशुपुरोळाशेन चरन्ति तेन माध्यंदितं सवनं तीव्रीकृतमथ यदेनेन तृतीयसवने प्रचरन्ति तेन तृतीयसवनं तीव्रीकृतं स एष सवनानामेव तीव्रीकारो याश्च

है। अतः वह (यह सोचकर) अनुगमन न करे कि 'मैं ऋचा को अपने स्थान से न हटाऊँ और मैं ऋचा को साम का अनुगामी न करूँ।' किन्तु यदि यजमान स्वयं होता भी हो तो वह अनुगमन करे क्योंकि उस पर उपगाता का भी कर्त्तव्य आता है। (वह यह सोचे कि) 'स्वरसाम स्वर्ग लोक है। मैं अपने को स्वर्गलोक स्वरसाम में स्थापित करूँ।' 'प्रातः सभी देवता एकत्र पवमान में संतृप्त होते हैं तो यह उस समय पूर्णतः भक्षित क्यों नहीं हो जाता' (ऐसा वे पूछते हैं)? जब पवमान का गान हो जाय तो वह यह जपे 'उपहूता देवा अस्य सोमस्य पवमानस्य विचक्षणस्य भक्ष उप मां देवा ह्वयन्तामस्य सोमस्य पवमानस्य विचक्षणस्य भक्षे मनसा त्वा भक्षयामि वाचा त्वा भक्षयामि प्राणेन त्वा भक्षयामि चक्षुषा त्वा भक्षायमि श्रोत्रेण त्वा भक्षयामि (इस पावनकारी एवं विचक्षण सोम के भक्षण के लिये देवता मुझे आहूत करें। मनसा मैं तुझे भक्षण करूँ। वाणी से मैं तुझे भक्षण करूँ। प्राण से मैं तुझे भक्षण करूँ। चक्षु से तुझे मैं भक्षण करूँ। श्रोत्र से मैं तुझे भक्षण करूँ) यह देवताओं के साथ समान आह्वान है। इस प्रकार उसके द्वारा वह, राजा, विचक्षण, चन्द्रमा, भक्ष सोम भक्षित होता है जिस भक्ष (भोजन) को देवता भक्षित करते हैं।

१२.६. अब पशुसोम है। यह पशु प्रत्यक्ष सोम है क्योंकि यदि यह आलंभित (नहीं) होता तो यह उदक पेय होता। इससे वह तीव्र करता है। इसमें जो वपा से प्रारम्भ करते हैं इससे प्रातःसवन तीव्र (दृढ़) किया जाता है। जो पकाते हैं, जो पशु पुरोडाश से करते हैं इससे मध्यंदिन सवन तीव्र किया जाता है। जो तृतीय सवन में इससे करते हैं इससे तृतीय सवन का तीव्रीकरण होता है। यह सवनों का तीव्रीकरण है। जो सोमपायी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सोमपादेवता याश्च पशुभाजनास्त्रयस्त्रिंशद्वै सोमपा देवता याः सोमाहुतीरन्वायत्ता अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशाऽऽदित्या इन्द्रो द्वात्रिंशत्प्रजापतिस्त्रयस्त्रिंशत्त्रयस्त्रिंसत्पशुभाजनास्ता उभय्यः प्रीता भवन्ति यदेष आलभ्यते तमेतमैन्द्राग्नः स्यादिति हैक आहुरिन्द्राग्नी वै सर्वे देवास्तदेनेन सर्वान्देवान्प्रीणातीति वदन्तस्तदु वा आहुराग्नेय एवैष स्यादैन्द्राः पुरोळाशास्तत्समिन्द्राग्नी भजेते इत्यग्नेर्वै प्रातः सवनं प्रसःसवन एष आलभ्यतेऽग्नेर्वा एतं सन्तमन्यस्मै हरन्ति येऽन्यदेवत्यं कुर्वन्ति तद्यथाऽन्यस्य सन्तमन्यस्मै हरेदेवं तदपि केवलं संवत्सरं संवत्सरः सदामाग्नेय एव न च्यवेतेति तद्ध्यु हैक आहुः शिक्षायामेवावधृत आग्नेयः ॥ ६ ॥

तस्य भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेतेति भुवद्वती वपायै याज्या प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वमिति शुक्रवती पुरोळाशस्य प्रकारवो मनना वच्यमाना इति हविष्मती हविष एकादशिनी त्वेवान्वायातयेयुरिति सा स्थितिर्यदि पृष्ठोपायं भवत्यथाऽऽवाहन आवह देवान्जमानायाग्निमग्न आवह वनस्पतिमावहेन्द्रं वसुमन्तमावहेति तत्प्रातः सवन-

---

और पशुयागी देवता तैंतीस हैं। सोम की आहुति पर आश्रित देवता जो सोमपायी है (उनमें) आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, बत्तीसवें इन्द्र तथा तैतीसवें प्रजापति हैं। तैंतीस पशुभाजन देवता भी हैं। ये दोनों प्रसन्न (तृप्त) होते हैं। यह पशु जो दिया जाता है कुछ लोग कहते हैं कि यह इन्द्र और अग्नि के लिये होना चाहिये। (उनका कहना है कि) सभी देवता इन्द्र और अग्नि हैं। और इस प्रकार इससे वह सभी देवताओं को प्रसन्न करता है। किन्तु अन्य लोग कहते हैं कि यह पशु अग्नि का होना चाहिये और पुरोडाश इन्द्र के लिये है। इस प्रकार इन्द्र और अग्नि के समान याग हैं। प्रातःसवन अग्नि का है। यह पशु प्रातःसवन में आलंभित होता है। जो इसे दूसरे देवता का करते हैं अग्नि के भाग को दूसरे का बनाते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे कोई किसी दूसरे की वस्तु को दूसरे का बनावे। पुनश्च संवत्सर केवल उन्हीं का है जो संवत्सर सत्र वाले हैं। (यह पशु) अग्नि का है। यह बदलना नहीं चाहिये। ऐसा कुछ लोग कहते हैं। (कौषीतकि की) शिक्षा में (नियमानुसार) (पशु) अग्नि का निश्चित है।

१२.७. पशु के वपा का याज्या मन्त्र 'भुवत्' शब्द युक्त है—'भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता' (ऋ० १०।८।६ आप यज्ञ तथा लोकों के नेता बने हैं)। पुरोडाश का मन्त्र 'शुक्र' (शुद्ध) शब्द युक्त है—'प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं' (ऋ० ७।४।१ : अपने शुक्र दीप्ति के लिये आप आगे आयें) हविष् (आहुति) का मन्त्र 'हविष्' शब्द युक्त है—'प्र कारवो मनना वच्यमाना' इत्यादि (ऋ० ७।६।१ बुद्धि से प्रेरित गानकर्ता)। एकादश को वे लगावें (व्यवस्थित करें) ऐसा नियम है। यदि यह पृष्ठ्या से युक्त हो तो वह प्रातः सवन में वह आवाहन को इन शब्दों से युक्त करे— देवों को यजमान के पास लावें। हे अग्नि! अग्नि को लावें। वनस्पति को ले आवें। वसुओं सहित इन्द्र को ले आवें। माध्यन्दिन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मावाहयतीन्द्रं रुद्रवन्तमावहेति तन्माध्यंदिनं सवनमावाहयतीन्द्रमादित्यवन्तमृभुमन्तं विभुमन्तं वाजवन्तं बृहस्पतिमन्तं विश्वदेव्यावन्तमावहेति तत्तृतीयसवनमावाहयति तत उ हैके वनस्पतिमावाहयन्त्यन्तत आवाह्यस्तृतीयसवने ह्येनं यजन्तीति वदन्तस्तदु वा आहुरात्मा वै पशुः प्राणो वनस्पतिर्यस्तं तत्र ब्रूयात्प्राणादात्मानमन्तराऽगान्न जीविष्यति तथा ह स्यात्तस्मात्पशुमेवोपसंधाय वनस्पतिरावाह्यो मीमांसितः पशुः ॥ ७ ॥

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा रिरिचान इवामन्यत स हैक्षत कथं नु तेन यज्ञक्रतुना यजेयं येनेष्ट्वोपकामानाप्नुयाम वान्नाद्यं रुन्धीयेति स एतामेकादशिनीमपश्यत्तामाहरत्तया यजत तयेष्ट्वोपकामानाप्नोदवान्नाद्यमरुन्धत्तथो एवैतद्यजमान एतयैवैकादशिन्येष्ट्वोपकामानाप्नोत्यवान्नाद्यं रुन्धे तस्यै वा एतस्या एकादशशिन्यै याज्यापुरोनुवाक्याश्चैव नाना मनोतायै च हविषोऽथेतरत्समानमाग्नेयः प्रथमो ब्रह्म वा अग्निर्ब्रह्मयशसस्यावरुद्ध्यै सारस्वतो द्वितीयो वाग्वै सरस्वती वाचा वा इदं स्वदितमन्नमद्यतेऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै सौम्यस्तृतीयः क्षत्रं वै सोमः क्षत्रयशसस्यावरुद्ध्यै

सवन में इस प्रकार आवाहन करे—रुद्रों सहित इन्द्र को ले आवें। तृतीय सवन में वह इस प्रकार आवाहन करे—इन्द्र को आदित्यों, ऋभुओं, विभुओं, वाज, बृहस्पति तथा विश्वेदेवों के साथ लावें। कुछ लोग वनस्पति को भी इस आवाहन में रखते हैं। इनका कथन है कि अन्त में (वनस्पति) का आवाहन होना चाहिये क्योंकि तृतीय सवन में इनका यजन करते हैं। इसके विषय में वे कहते हैं पशु आत्मा (शरीर) है वनस्पति प्राण है। यदि वहाँ उसका कोई उल्लेख करता है तो उसने आत्मा को प्राण से अलग किया है वह नहीं जीवेगा' यह ऐसा होगा। अतः पशु के सम्बन्ध में वनस्पति का आवाहन करना चाहिये। पशु का विवेचन हो चुका है।

१२.८. प्रजापति ने प्रजाओं की सृष्टि कर अपने को रिक्त-सा अनुभव किया। उन्होंने सोचा—मैं कैसे ऐसे यज्ञ से यजन करूँ जिससे यजन कर मैं अपना अभीष्ट प्राप्त करूँ और अन्नाद्य को प्राप्त करूँ।' उन्होंने इस एकादशिनी (ग्यारह पशुओं के वर्ग) को देखा। उन्होंने उसका आहरण किया (उसे लाया) और उससे यजन किया। इससे यजन कर उन्होंने अपनी कामनाओं को प्राप्त किया और अन्नाद्य को जीता। इसी प्रकार यजमान भी इस एकादशिनी से यजन कर कामनाओं को प्राप्त करता है तथा अन्नाद्य को प्राप्त करता है। इस एकादशिनी के याज्या तथा पुरोनुवाक्या एवं मनोता के लिये हवि के मन्त्र पृथक्-पृथक् हैं पर शेष समान हैं। प्रथम अग्नि के लिये हैं। अग्नि ब्रह्म हैं। यह ब्रह्म तेज की प्राप्ति के लिये होता है।। द्वितीय सरस्वती के लिये है। सरस्वती वाक् है। वाणी से सुस्वादु अन्न खाया जाता है। यह अन्नाद्य की प्राप्ति के लिये है। तीसरा सोम के लिये है। सोम क्षत्र है। यह क्षत्रयश की प्राप्ति के लिये है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पौष्णश्चतुर्थोऽन्नं वै पूषाऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै बार्हस्पत्यः पञ्चमो ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मयशसस्यावरुद्धयै वैश्वदेवः षष्ठो विश्वरूपं वा इदमन्नमद्यतेऽन्नाद्यस्योपाप्त्या ऐन्द्रः सप्तमः क्षत्रं वा इन्द्रः क्षत्रयशसस्यावरुद्धयै मारुतोऽष्टम आपो वै मरुतोऽन्नमापोऽन्नाद्यस्योपाप्त्या ऐन्द्राग्नो नवमो ब्रह्मक्षत्रे वा इन्द्राग्नी ब्रह्मयशसस्य च क्षत्रयशसस्य चावरुद्धयै सावित्रो दशमः सवितृप्रसूतं वा इदमन्नमद्यतेऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै वारुण एकादश क्षत्रं वै वरुणः क्षत्रयशसस्यावरुद्धया एवं वै प्रजापतिर्ब्रह्मणा च क्षत्रेण च क्षत्रेण च ब्रह्मणा ब्रह्मणा चोभयतोऽन्नाद्यं परिगृह्णानोऽवरुन्धान ऐत्तथो एवैतद्यजमान एवमेव ब्रह्मणा च क्षत्रेण च क्षत्रेण ब्रह्मणा चोभयतोऽन्नाद्यं परिगृह्णान्नोऽसन्धान ऐत्यवरुन्धान एति ॥ ८ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

हरिः ॐ। प्रजापतिर्वै यज्ञस्तस्मिन्स ःकामाः सर्वममृतत्वं तस्यैते गोप्तारो यद्धिष्ण्यास्तात्सदः प्रसृप्स्यं नमस्यति नमो नम इति न हि नमस्कारं मतिदेवास्ते नमसिता होतारमतिसृजन्ते स एतं प्रजापतिं यज्ञं प्रपद्यते तदत्रैव यजमानः सर्वान्कामानाप्नोति ॥ १ ॥

चतुर्थ पूषा के लिये है। पूषा अन्न हैं। यह अन्नाद्य की प्राप्ति के लिये है। पाँचवाँ बृहस्पति के लिये है। बृहस्पति ब्रह्म हैं। यह ब्रह्मयशस् की जय के लिये है। छठां विश्वेदेव के लिये है। विश्व (समस्त) रूपों वाला यह अन्न खाया जाता है। यह अन्नाद्य की प्राप्ति के लिये है। सातवाँ इन्द्र के लिये है। इन्द्र क्षत्र (क्षात्रतेज) हैं। यह क्षत्र यश प्राप्ति के लिये है। आठवाँ मरुतों के लिये है। मरुत् आप (जल) हैं। अन्न अप् (जल) है। यह अन्नाद्य की प्राप्ति के लिये हैं। नवाँ इन्द्र और अग्नि का है। इन्द्र और अग्नि ब्रह्म तथा क्षत्र हैं। यह ब्रह्मयश तथा क्षत्रयश को प्राप्ति के लिये है। दसवाँ सविता का है। सविता से प्रेरित (या उत्पादित) ही यह अन्न खाया जाता है। यह अन्नाद्य की प्राप्ति के लिये है। ग्यारहवाँ वरुण का है। वरुण क्षत्र हैं। यह क्षत्रयश की विजय के लिये है। इस प्रकार प्रजापति ने ब्रह्म से तथा क्षत्र से एवं क्षत्र से तथा ब्रह्म से अन्नाद्य को दोनों ओर आवृत कर प्राप्त किया। निश्चय ही उसी प्रकार यजमान भी ब्रह्म तथा क्षत्र से एवं क्षत्र तथा ब्रह्म से अन्नाद्य को दोनों ओर घेर कर प्राप्त करता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

१३.१ हरिः ओम्। प्रजापति ही यज्ञ हैं। उसमें सभी कामनायें, सभी अमृतत्व हैं। धिष्ण्य (वेदियाँ) उसकी रक्षिकायें हैं। उनको सदस् में प्रवेश करते नमस्कार करता है— 'नमः नमः' ऐसा। देवता नमस्कार से ऊपर नहीं हैं वे नमस्कृत होकर होता को जाने देते हैं। वह इस प्रजापति यज्ञ के पास जाता है। इस प्रकार यजमान सभी कामनाओं को प्राप्त करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ हविष्पङ्क्त्या चरन्ति पशवो वै हविष्पङ्क्तिः पशूनामेपाप्त्यैतानि वै पञ्च हवींपि भवन्ति दधिधानासक्तवः पुरोळाशः पयस्येति पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्ताः पशवः पाङ्क्तः पुरुषो यज्ञस्य च पशूनां चाऽऽप्त्यै सेयं निरुप्यते पशूनामेव परिग्रहायाथो सवनानामेव तीव्रीकारायाथ वै हविष्पङ्क्तिः प्राण एव तस्माद्येनैव मैत्रावरुणः प्रेष्यति तेन होता यजति समानो ह्ययं प्राणस्तदाहुर्यया वै प्रातर्यजत्यृक्सा तदहर्यातयामा भवत्यथ कस्मादेषा सर्वेषु सवनेष्वयातयामेति यदेव सवनैर्वितारयन्नेति प्रातः प्रातःसावस्येति प्रातःसवने माध्यंदिनस्य सवनस्येति माध्यंदिने सवने तृतीयस्य सवनस्येति तृतीयसवने तेनायातयामा तदाहुः कस्मात्प्रातरेव पयस्या न मध्यंदिने न तृतीयसवन इति यज्ञो वै मैत्रावरुण एतद्वै यज्ञो जायते यत्प्रातःसवने पयोभाजनो वैतरणः कुमारस्तद्यथा जाताय स्तनमुपदध्यादेवं तद्वृद्धो वा उत्तरयोः सवनयोर्यदा वै वर्धतेऽतिस्तनो वै तदा तस्मात्प्रातरेव पयस्या न मध्यंदिने न तृतीयसवन इति ॥ २ ॥

१३.२ तदनन्तर वे हविष् पङ्क्ति (पाँच हविषों) से चलते हैं (प्रारम्भ करते हैं) पशु ही हविष् पङ्क्ति हैं। ये पाँच हविष् पशुओं की ही प्राप्ति के लिये होती हैं। दधि, धान्य, सत्तू, पुरोडाश और दुग्ध इनकी पाँच हवि होती है। पङ्क्ति में पाँच पद होते हैं। यज्ञ पाँच (पदों का) है। पशु पञ्चावृत (पाङ्क्त) है। यज्ञ और पशुओं की प्राप्ति के लिये यह दिया जाता है तथा पशुओं के परिग्रह (आवरण) एवं सवनों के तीव्रीकरण के लिये भी यह दिया जाता है। प्राण हविष् को पङ्क्ति (पाँच का वर्ग) है। अतः होता आहुति मंत्र के रूप में उसी मंत्र को कहता है जिसे मैत्रावरुण उसके निर्देश के लिये देता है (?) क्योंकि प्राण वही है। वे कहते हैं कि प्रात काल यजन के लिये जिस ऋचा का प्रयोग करता है वह उस दिन में यातयाम (बासी) हो जाती है। तो वह सभी सवनों में अयातयाम (ताजी) कैसे रहती है ? वह जो सवनों को (यह कहते हुये) चालू रखता हैं (कि) प्रातः सवन के, मध्यंदिन सवन में 'मध्यदिन सवन के' तथा तृतीय सवन में 'तृतीय सवन के' इससे वे अयातयाम होती है। वे कहते हैं कि क्यों केवल प्रातः ही पयस्या है, मध्यदिन और तृतीय सवन में नहीं ? मैत्रावरुण यज्ञ है। यज्ञ प्रात सवन में उत्पन्न होता है। कुमार (नवजात शिशु) का अंश दुग्ध ही होता है। अतः जिस प्रकार उत्पन्न बालक को स्तन दिया जाय उसी प्रकार यह है। वह परवर्ती दोनों सवनों में वृद्ध हो जाता है(बड़ा हो जाता है)। जब कोई बड़ा हो जाता है तो स्तन (पान) से बढ़ जाता है। स्तनपान की स्थिति को पार कर जाता है। अतः केवल प्रातःसवन में पयस्या (दुग्ध निर्मित पदार्थ) होता है। मध्यंदिन सवन और तृतीय सवन में नहीं। (यह उत्तर है।)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हविरग्ने वीहीत्यनुसवनं पुरोळाशः स्विष्टकृतो यजत्यवत्सारो ह प्राश्रवणो देवानां होता सतमेतस्मिन्द्युम्ने मृत्युः प्रत्यालिल्येऽग्निर्वै मृत्युः स हविरग्ने वीहीति हविषाऽग्निं प्रीत्वाऽथातिमुमुचे तथो एवं विद्वान्होता हविरग्ने वीहीत्येव हविषाऽग्निं प्रीत्वाऽथातिमुच्यत एतैर्ह वा अन्तराकाशैर्देवाः स्वर्गं लोकं जग्मुस्तानेतस्मिन्द्युम्ने मृत्युः प्रत्यालिल्येऽग्निर्वै मृत्युस्ते हविरग्ने वीहीति हविषाऽग्निं प्रीत्वाऽथातिमुमुचिरे तथो एवैवं विद्वान्होता हविरग्ने वीहीत्येव हविषाऽग्निं प्रीत्वाऽथातिमुच्यते तानि वा एतानि षळक्षराणि हविरग्ने वीहीति षळङ्गोऽयमात्मा षड्विधस्तदात्मनैवाऽऽत्मानं निष्क्रीयानृणो भूत्वाऽथ यजते स एषोऽवत्सारस्य प्राश्रवणस्य मन्त्रः स न मन्येत केन वा उ केन वा यजा इत्यृषिकृतेन मन्त्रेणर्चा यजानीत्येव विद्यात् ॥ ३ ॥

अथ सोम इति वै पशुमवोचामैवं पुरोळाशान्दशान्वा एते सोमांशवः प्रत्नोंऽशुर्यमेतमभिषुण्वन्ति तृप्तोंऽशुरापो रसोंऽशुर्व्रीहि वृषोंऽशुर्यवः शुक्रोंऽशुः पयो जीवोंऽशुः पशुरमृतोंऽशुर्हिरण्यमृगंशुर्यजुर्यजुरंशुः सामांशुरित्येते वा उ दश सोमांशवो यदा वा एते सर्वे संगच्छन्तेऽथ सोमोऽथ सुतः ॥ ४ ॥

१३.३ पुरोडाश के स्विष्टकृत यजन के लिये तीनों सवनों में वह 'हविरग्ने वीहि' (हे अग्नि ! हवि को खाइये) यह कहे। देवताओं के होता अवत्सार प्राश्रवण थे। उन्हें उस द्युम्न (प्रतिष्ठा) में मृत्यु ने पकड़ा। अग्नि ही मृत्यु हैं। अग्नि को हवि द्वारा 'हे अग्नि इस (हवि) का उपभोग करिये।' (यह कहकर) प्रसन्न करके मुक्त हुये। इसी प्रकार होता भी यह जानकर 'हे अग्नि इस हवि का उपयोग करिये' यह कह कर हवि से अग्नि को प्रसन्न कर मुक्त होता है। इन मध्यवर्ती आकाशों द्वारा देवता स्वर्गलोक को गये। उन्हें द्युम्न में मृत्यु ने आवृत किया। मृत्यु अग्नि है। उन्होंने हवि से अग्नि को (यह कह कर) प्रसन्न किया—हे अग्नि ! हवि का उपभोग कीजिये। इससे वे मुक्त हुये। इसी प्रकार जो होता यह जानकर अग्नि को यह कहकर प्रसन्न करता है कि 'हे अग्नि ! हवि का उपयोग करिये' वह मुक्त होता है। हविरग्ने वीहि' हवि का उपभोग करिये। इसमें छह अक्षर है। यह शरीर छः अङ्गों वाला और छः प्रकार का (षड्विध) है। इस प्रकार आत्मा से आत्मा का निश्चय कर ऋणों से मुक्त होकर वह यज्ञ करता है। यह अवत्सार प्राश्रवण का मन्त्र है। यह न सोचे कि मैं अब किससे यज्ञ करूँ ? वह जाने कि 'मैं ऋषि कृत मंत्र से, ऋचा से मैं यज्ञ करुँ।

१३.४ सोमपशु को हमने कहा है और इसी प्रकार पुरोडाशों को भी। वे सोम के दश अंश (शाखा) हैं। प्राचीन अंशु जिसे वे अभिषुत करते हैं, तृप्त अंशु, जल, रस अंशु, व्रीहि, वृष (पुरुष) अंशु यव, शुक्र (तेजस्वी) अंशु पय (दुग्ध, जीव अंशु पशु, अमृत अंशु हिरण्य, ऋक्थंशु यजुष्, यजुष अंशु, साम अंशु अंशु (शाखायें भेद) हैं जब ये सभी एक साथ मिलते हैं तब सोम होता है, तब अभिषुत (सोम) होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पुरोळाशैश्चरित्वा द्विदेवत्यैश्चरन्त्यात्मा वै यजमानस्य पुरोळाशाः प्राणा द्विदेवत्यास्तद्यत्पुरोळाशैश्चरित्वा द्विदेवत्यैश्चरन्ति प्राणानेव तद्यजमाने दधाति सर्वायुत्वायास्मिँल्लोकेऽमृतत्वायामुष्मिँस्तथा ह यजमानः सर्वमायुरस्मिँल्लोक एत्याप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं स्वर्गे लोक ऐन्द्रवायवः प्रथमो वाग्वा इन्द्रः प्राणो वायुश्चक्षुर्मैत्रावरुणः श्रोत्रमाश्विनस्ते वा एते प्राणा यद्द्विदेवत्यास्तस्मादनवानं यजति प्राणानां संतत्यै संतता इव हीमे प्राणा नानुवषट्करोति प्राणा वै द्विदेवत्याः संस्थाऽनुवषट्कारो नेत्पुरा कालात्प्राणं संस्थापयानीति युक्ता हीमे प्राणा ऐन्द्रवायवं पूर्वार्द्धर्यं सादयति पूर्वार्द्धर्यो ह्येष एषां प्राणानामभिधानतर इवाभित इतरौ पश्चादुपनिदधात्यभित इव हीदं चक्षुश्च श्रोत्रं च तानवगृह्यास्तेनेत्प्रवर्तन्ता इति नापिदधाति प्राणा वै द्विदेवत्या नेत्प्राणानापिदधानीति ॥ ५ ॥

इदं ते सोम्यं मध्विति प्रस्थितानां याज्या मधुश्चुतां मधुमत्यनु वषट्-कारोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथ होत्राः संयजन्ति यजमान-

---

१३.५ पुरोडाशों को देकर वे दो देवताओं वाले (चमसों) से प्रारम्भ करते हैं। पुरोडाश यजमान का आत्मा (शरीर) है और दो देवताओं वाले (चमस) प्राण (श्वास) हैं। जो पुरोडाशों को पूरा कर (देकर) दो देवताओं वाले से चलते हैं वह यजमान के शरीर में प्राण का संचार करते हैं जिससे वह इस लोक में सर्व (पूर्ण) आयु प्राप्त करे तथा उस लोक में अमृतत्व प्राप्त करे। इससे यजमान इस लोक में पूर्ण आयु प्राप्त करता है तथा स्वर्ग लोक में अमृतत्व तथा अक्षय्यता प्राप्त करता है। प्रथम इन्द्र तथा वायु के लिये हैं। इन्द्र वाक् है तथा वायु प्राण है। मैत्रावरुण चक्षु हैं, अश्विन श्रोत्र हैं। ये प्राण दो देवताओं के लिये हैं। अतः प्राणों की संततता के लिये वह विना श्वास लिये आहुति देता है क्योंकि ये प्राण संतत जैसे हैं। वह दूसरी बार वषट् नहीं कहता (यह सोचकर कि) ये प्राण दो देवताओं के लिये हैं। दूसरा 'वषट्' पूर्णता को घोषित करता है। समय से पूर्व मैं प्राणों (श्वासों) को पूर्ण न करूँ क्योंकि ये प्राण युक्त (लगे) हुये से हैं। वह इन्द्र तथा वायु के लिये पूर्व (सामने) रखता है क्योंकि इन प्राणों का यह पूर्व का अभिधान है अन्य दो को पास ही पीछे रखता है क्योंकि यह चक्षु और श्रोत्र पास ही जैसे हैं। उनको वह पकड़े रखता है और सोचता है कि वे अभी आगे न चले जाँय। वह (यह सोचकर) ढकता नहीं कि दोनों देवताओं के (चमस) प्राण है। मैं प्राणों को आवृत न करूँ।

१३.६ प्रस्थितों का याज्या मंत्रा है 'इदं ते सोम्यं मधु' यह मधुर सोम आपके लिये है। यह मधु शब्द युक्त है और मधु का स्रवण करती हैं। वह आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये दूसरी बार वषट्कार कहता है। अनन्तर होत्र-गण साथ-साथ यजन करते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मेव तदृणतायै संप्रमुञ्चन्ति द्विदेवत्यानां प्रथमो भक्षोऽथेलाऽथ होतृचमस आत्मा वै यजमानस्य पुरोलाशाः प्राणा द्विदेवत्या अन्नं पशव इलाऽन्नेन वै प्राणाश्चाऽऽत्मा च संहितस्तस्माद्द्विदेवत्यानां प्रथमो भक्षोऽथेळाऽथ होतृचममसस्तानध्वर्यवे प्रयच्छति नानुसृजति प्राणा वै द्विदेवत्या नेत्प्राणानुसृजानीति द्विरैन्द्रवायवस्य भक्षयति द्विर्हि तस्य वषट्करोति सकृन्मैत्रावरुणस्य सकृदाश्विनस्य सर्वतः परिहारमाश्विनस्य भक्षयति सर्वतो ह्येनेन श्रोत्रेण शृणोति संस्रवान्होतृचमसेऽवनयतीळाभाज एवैनांस्तत्करोति ॥ ६ ॥

अथेळामुपह्वयते दक्षिणेनोत्तरेळां धारयत्सव्येन होतृचमसं च पात्रीं च संयच्छत्यसंस्पर्शयन्वज्रो वा आज्यं रेतः सोमो नेद्वज्रेण रेतो हिनसानीति तस्यां न सुन्वदाहानाशिपो निराहोपहूयेलामवघ्रायावस्यति प्राश्नात्युत्तरेळामथाप आचम्य होतृचमसं भक्षयत्येतद्वै परममन्नाद्यं यत्सोमः परममेवैतदन्नाद्यं सर्वे समुपहूय भक्षयन्ति ॥ ७ ॥

अथ वै प्रत्युपहवोऽच्छावाकस्य प्रत्येता वामा सूक्ता यं सुन्वन्यजमानो अग्रभी-

---

हैं। निश्चय ही इस प्रकार इसके द्वारा वे यजमान को ऋण से मुक्त करते हैं। प्रथम भक्ष दो देवताओं (के चमस) का है फिर इला (यज्ञान्न) फिर होतृ चमस। पुरोडाश यजमान की आत्मा हैं; दो देवताओं के (चमस) प्राण हैं। यज्ञान्न पशु तथा अन्न हैं। अन्न से प्राण तथा आत्मा संयुक्त हैं। अतः प्रथम भक्ष दो देवताओं का (चमस) से फिर इला (यज्ञान्न) का फिर होतृ चमस का। उन्हें वह अद्ध्वर्यु को देता है वह त्याग नहीं करता यह सोचते हुये कि दो देवताओं के (चमस) प्राण है, मुझे प्राणों को नहीं छोड़ना है। इन्द्र और वायु के चमस को वह दो बार खाता है क्योंकि वह दो बार इसके लिये वषट्कार कहता है। एक बार मित्र और वरुण के तथा एकबार अश्विन के (चमस के लिये)। अश्विन के (चमस को) चारों ओर घुमाकर खाता है क्योंकि कानों से वह चारो ओर सुनता है। वह होतृचमस में संश्रवों मलों को गिराता है इससे वह उन्हें इला भागी यज्ञान्न भागी कहा है।

१३.७ तदनन्तर वह इला का आह्वान करता है। वह दक्षिण हाथ से उत्तर (द्वितीय भाग) को धारण करता है और बायें हाथ को संयुक्त करता है पर होतृचमस और पात्र को (यह समझ कर) स्पर्श नहीं करता कि आज्य वज्र है और सोम रेत है मैं वज्र से रेत को हिंसित न करूँ। वह अभिषव के मंत्र या आशिष नहीं कहता। इला का आह्वान कर तथा घ्राण कर आगे बढ़ता है और उत्तर इला को खाता है। तदनन्तर जल का आचमन कर होतृचमस का भक्षण करता है। यह सोम सर्वश्रेष्ठ अन्नाद्य है। इस प्रकार सभी सर्वश्रेष्ठ अन्नाद्य का आह्वान कर उसका भक्षण करते हैं।

१३.८ अनन्तर अच्छावाक का उत्तर (प्रत्युपहव) है। अभिषव करने वाले इस यजमान ने इन प्रिय सूक्तों को ग्रहण कर लिया है। उपवक्तृ प्रतिष्ठा है। गायें नहीं बुला

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दुत प्रतिष्ठोतोपवक्त उत नो गाव उपहूता इति यदि नोप जुहूषत्युतोपहूत इत्यभ्य-स्यति यद्युपजुहूषते प्रत्युपहूतोऽच्छावाको निवर्तध्वं माऽनुगातेत्येतस्य सूक्तस्य यावतीः पर्याप्नुयात्तावतीरनुद्रवेद्धोता वा प्रतिकामिनमच्छावाकं सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ८ ॥

प्राणा वा ऋतुयाजास्तद्यदृतुयाजैश्चरन्ति प्राणानेव तद्यजमाने दधति स वा अयं त्रेधा विहितः प्राणः प्राणोऽपानो व्यान इति षळृतुनेति यजन्ति प्राणमेव तद्यजमाने दधति चत्वार ऋतुभिरित्यपानमेव तद्यजमाने दधति द्विर्ऋतुनेत्यु-परिष्टाद्व्यानमेव तद्यजमाने दधाति सर्वायुत्वायास्मिँल्लोकेऽमृतत्वायामुष्मिंस्तथा ह यजमानः सर्वमायुरस्मिँल्लोक एत्याप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं स्वर्गे लोके ते वा एते प्राणा एव यदृतुयाजास्तस्मादनवानं यजन्ति प्राणानां संतत्यै संतता इव हीमे प्राणा नानुवषट् कुर्वन्ति प्राणा वा ऋतुयाजाः संस्थाऽनुवषट्कारो नेत्पुरा काला-त्प्राणान्संस्थापयानीति युक्ता इव हीमे प्राणास्तदाहुः कस्माद्धोता यक्षद्धोता यक्षदित्येव सर्वेभ्यः प्रेष्यतीति वाग्वै होता वाग्यक्षद्वाग्यक्षदित्येव तदाहाथो सव वा एते सप्त होतारोऽपि वा ऋचाभ्युदितं सप्त होतार ऋतुशो यजन्तीत्यथयद्द्विरुपरिष्टा-

---

ली हैं यदि वह बुलाना न चाहे (तो कहे)। यदि वह बुलाना चाहे तो कहे वह भी बुला लिया गया है। आह्वान के उत्तर में अच्छावाक सूक्त के उतने मंत्रों का हो जितना वह कह सके-आप रुके जायँ नहीं (निवर्तध्वं माऽनुगात) (ऋ० १०।१९।१) अथवा प्रतिकामी (अनिच्छुक) अच्छावाक के प्रति ऐसा कहे। यही यहाँ प्रायश्चित्त है।

१३.९ ऋतुओं के यजन(ऋतुयाज)प्राण हैं। जो ऋतुयाज से चलते हैं वह यजमान में प्राण का निधान करते हैं। यह प्राण तीन प्रकार का विहित है-प्राण, अपान और व्यान, छः (आचार्य) 'ऋतु से' ऐसा कह कर यजन करते हैं। इससे वे यजमान में प्राण को रखते हैं। 'ऋतुओं से चार' इससे यजमान में अपान को रखता है। दो बार बाद में वे 'ऋतुना' कहकर यजन करते हैं। इससे यजमान में व्यान को रखते हैं। यह इस लोक में पूर्णायुष्य तथा उस लोक में अमरत्व के लिये है। इससे यजमान इस लोक में समस्त आयु तथा उस लोक में अमरत्व तथा अक्षयता प्राप्त करता है। ऋतुयाज ये प्राण हैं। अतः प्राणों की संतता के लिये, क्योंकि ये प्राण संतत जैसे हैं, वे विना श्वास लिये यजन करते है। वह दूसरी बार वषट् नही कहता क्योंकि वह सोचता है कि वह ऋतुयाज प्राण है। दूसरा वषट् कार पूर्णता का प्रतीक है अतः समय से पूर्व मैं इन प्राणों को पूर्ण न करूँ क्योंकि ये प्राण युक्त (मिले) से है। वे पूछते है-क्यों वह सभी आचार्यों को इन शब्दों से आदेश करता है-होता यक्षद्, होता यक्षत्। होता वाक् है अतः वह वस्तुतः कहता है कि वाक् यक्षत् (वाणी आहुति करे) वाक् यक्षत् और सात होता वस्तुतः सब कुछ हैं। ऋचा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

द्द्वा(व्या)दशत्यजामितायै ते वै द्वादश भवन्ति द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽवाप्त्ये स योऽत्र भक्षयेद्यस्तं तत्र ब्रूयाद्दशान्तो भक्षो ननु वषट्कृतः प्राणानस्य व्यगान्न जीविष्यति तथा ह स्याद्य उ वै न भक्षयेद्यस्तं तत्र ब्रूयात्प्राणो भक्षः प्राणादात्मानमन्तरगान्न जीविष्यतीति तथा हैव स्याल्लिम्पेदिवैवावेव जिघ्रेदत्र च द्विदेवत्येषु चेति तदु तत्र शासनं वेदयन्तेऽथ यदमू व्यतिचरतो नान्योन्यमनुप्रपद्येते अध्वर्यू तस्मादृतुरॠतुं नानुप्रपद्यते तस्मादृतुरॠतुं नानुप्रपद्यते ॥ ९॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

हरिः ॐ। अथात आज्यमाज्येन वै देवाः सर्वान्कामानाजयन्त सर्वममृतत्वं तथो एवैतद्यजमान आज्येनैव सर्वान्कामानाजयति सर्वममृतत्वं तद्वा इदं षड्विधमाज्यं तूष्णीं जपस्तूष्णीं शंसः पुरोरुक्सूक्तमुक्थवीर्यं याज्येति षळ्ॠतुः संवत्सरः षड्विध एतेन वै देवाः षड्विधेनाऽऽज्येत षळ्ॠतुं संवत्सरमाप्नुवन्षड्विधं संवत्सरेण सर्वान्कामान्सर्वममृतत्वं तथो एवैतद्यजमान एतेनैव षड्विधे-

---

द्वारा भी कहा गया है–सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति (द्र. वाज०सं० २३।५८ : सप्त होता ऋतुओं के अनुसार यज्ञ करते हैं । इसमें वह दो को ऊपर से कहता है । यह पुनरावृत्ति को बचाने के लिये है। ये बारह हैं। वर्ष में बारह मास होते हैं। यह वर्ष की प्राप्ति के लिये है। यदि वह खाये तो कोई उससे कहे कि 'जिस अन्न के लिये दूसरा वषट्कार नहीं कहा गया है वह अपूर्ण है। यह इसके प्राणों में गया हैं यह जीवेगा नहीं।' तो ऐसा ही होगा। यदि वह नहीं खाता है और कोई उसके बारे में कहता है–'अन्न प्राण हैं इसने अपने को प्राण से अलग कर दिया है। यह नही जीयेगा।' तो ऐसा ही होगा। वह इसे तथा दो देवताओं वाले (चमस) को लेप करे तथा सूंघे। यही नियम है जिसको वे बताते हैं। जो दो अध्वर्यु परस्पर उल्लंघन (आर-पार) करते हैं और एक दूसरे में बाधा नहीं करते। तो इससे एक ऋतु-अन्य ऋतु से बाधा नहीं करती।

शाङ्खायन ब्राह्मण में तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

१४.१ हरिः ओम्। इसके बाद आज्य (शस्त्र) है। आज्य से देवों ने सभी कामनाओं और सभी अमरत्व को प्राप्त किया। निश्चय ही इसी प्रकार यजमान आज्य से सभी कामनाओं और सभी अमरत्व को प्राप्त करता है। आज्य षड्विध (छः प्रकारका) है–तूष्णीं (शान्त) जप, तूष्णीं शंस (प्रशंसा), पुरोरुक्, सूक्त, उक्थ वीर्य और याज्या। वर्ष में छः ऋतु हैं अतः वह षड्विध है। इस षड्विध आज्य से देवों ने छः ऋतुओं से युक्त षड्विध वर्ष को प्राप्त किया और वर्ष के द्वारा सभी कामनाओं और सभी अमरत्व को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नाऽऽज्येन षल्ऋतुं संवत्सरमाप्नोति षड्विधं संवत्सरेण सर्वान्कामान्सर्वममृतत्वमथ यत्पुरस्तात्तूष्णीं जपं जपति स्वर्गो वै लोको यज्ञस्तद्यत्पुरस्तात्तूष्णीं जपं जपति स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या अथैतं तूष्णीं शंसमुपांशु शंसति सर्वेषामेव कामानामाप्त्या अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति तदिमं लोकं लोकानामाप्नोति प्रातःसवनं यज्ञस्येन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्र इति तदन्तरिक्षलोकं लोकानामाप्नोति मध्यंदिनं सवनं यज्ञस्य सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य इति तदमुं लोकं लोकानामाप्नोति तृतीयसवनं यज्ञस्याथ वै निविदसावेव योऽसौ तपत्येष हीदं सर्वं निवेदयन्नेति सा पुरस्तात्सूक्तस्य प्रातः सवनेऽधीयते पुरस्ताद्ध्येष तदा भवति मध्ये सूक्तस्य माध्यंदिने सवने मध्ये ह्येष तदा भवत्युत्तमाः परिशिष्य तृतीयसवने पश्चाद्ध्येष तर्हि परिक्रान्तो भवति तदेतस्यैव रूपेण निविदं दधतेति तदु वा आहुरञ्जयो वै प्रातः सवनं वहति शितिपृष्ठा माध्यंदिनं सवनं श्वेतानूकाशास्तृतीयसवनमित्यादित्येनैवं द्वादशपदां पुरोरुचमुपसंशंसति द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै ॥ १ ॥

प्राप्त किया। ठीक इसी प्रकार यजमान भी षड्विध आज्य से षड्विध वर्ष और उसकी ऋतुओं को प्राप्त करता है। और वर्ष से सभी कामनाओं और सभी अमरत्व को प्राप्त करता है। और जो सामने चुप (शान्त) होकर जप करता है वह इसलिये कि यज्ञ स्वर्गलोक है। इस प्रकार जो सामने शान्त जप करता है वह स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिये स्वस्त्ययन करता है। तदनन्तर वह चुप होकर शंस (प्रशंसा) को उपांशु (मन्द स्वर) से पढ़ता है। यह स्वर्ग की प्राप्ति के लिये हैं। वह कहता है—अग्नि, ज्योति, ज्योति अग्नि' इस प्रकार लोकों के इस लोक को, प्रातःसवन को प्राप्त करता है यज्ञ के। (वह कहता है) 'इन्द्र ज्योति, ज्योति इन्द्र'। इससे वह लोकों के अन्तरीक्ष (मध्यलोक) यज्ञ के माध्य दिन सवन को प्राप्त करता है। (वह कहता है) सूर्य ज्योति, ज्योति सूर्य। इससे वह लोकों के उस लोक, यज्ञ के तृतीय सवन को प्राप्त करता है। वे जो ज्योति दे रहे हैं (तपति) वे निविद हैं क्योंकि वे यह सब निवेदन (सूचित) करते हैं। यह प्रातः सवन में सूक्त आदि में (सामने) पढा जाता है क्योंकि उस समय (सूर्य) सामने रहते हैं मध्यदिन सवन में सूक्त के मध्य में (पढा जाता है) क्योंकि उस समय वे मध्य में रहते हैं; तृतीय सवन में अंतिम को छोड़कर क्योंकि उस समय वे पश्चिम चले गये होते हैं। इस प्रकार वह निविद को उसके स्वरूप के अनुसार (दृश्य के अनुसार) रखता है। वे कहते हैं अञ्जय (रंगीन) प्रातः सवन का वहन करते हैं श्वेत पृष्ठ वाले मध्य दिन संवन का वहन करते हैं, और श्वेत दर्पण वाले तृतीय सवन का वहन करते हैं। सूर्य के द्वारा इस प्रकार द्वादश पदों वाले पुरोरुच्का पाठ करता है। वर्ष में द्वादश मास हैं। यह संवत्सर की ही प्राप्ति के लिये है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ सप्तर्चमाज्यं शंसति सप्त वै छन्दांसि सर्वेषामेव च्छन्दसामाप्त्यै तद्वा आनुष्टुभं भवति वागनुष्टुप्तद्यत्किंच वाचाऽनुष्टुभाऽभ्यनूक्तं तत्सर्वमाप्नोति पदे विगृह्णाति तत्प्रजात्यै रूपं वीव वै स्त्रियै पुमान्गृह्णाति यद्वेव विगृह्णाति प्रतिष्ठयोस्तद्रूपमथो एतद्ध वै मृत्योरास्यं यदेते पदे अन्तरेण स योत्रावानन्तं ब्रूयान्मृत्योरास्यमापाति न जीविष्यति तथाह स्यात्तस्मात्तदनवानं संक्रामेदमृतं वै प्राणोऽमृतेन तन्मृत्युं तरति समरतेनोत्तरेणार्धर्चेन प्रणौति वज्रमेव तत्पाप्मने भ्रातृव्याय प्रहरति ता दश गायत्र्यः संपद्यन्तेऽष्टाक्षरं हि दशमं पदं गायत्री वै सा याऽनुष्टब्गायत्रमग्नेश्छन्दो दश प्रातःसवनेऽध्वर्युर्ग्रहान्गृह्णाति नवसु बहिष्पवमानेन स्तुवते हिंकारो दशमो दशेमास्ते नाना कुर्वन्तो विराजमभिसंपादयन्त्येतद्वै कृत्स्नमन्नाद्यं यद्वैराट्तदेतत्संपाद्यं यजमाने प्रतिदधति त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमयैकादश संपद्यन्ते याज्या द्वादशी द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै ताः संशस्ताः षोळश गायत्र्यः संपद्यन्ते तद्गायत्रीमाज्यमभिसंपद्यत आग्नेन्द्र्या यजतीन्द्रमेव तदर्धभाजं सवनस्य करोति याज्यायां देवता अन्वाभजतेति ह स्माऽऽह कौषीत-

---

१४.२ तदनन्तर वह सात मंत्रों वाले (ऋ. ३.१३) आज्य का पाठ करता है। छन्द सात है। यह छन्दों की प्राप्ति के लिए है। यह अनुष्टुप् छन्दों में हैं। अनुष्टुप् वाक् है। जो कुछ भी अनुष्टुप् वाणी द्वारा कहा जाता है वह सभी कुछ प्राप्त करता है। वह दो पदों को पृथक् ग्रहण करता है। यह प्रजनन का रूप है। मनुष्य स्त्री के अंगों को पृथक् ग्रहण करता है और जो वह अलग करता है वह प्रतिष्ठा (आधार) का रूप है। इन दो पदों के बीच में मृत्यु का मुख है। यदि कोई इस स्थान पर श्वास लेता है और कोई मनुष्य उसके बारे में कहता हैं कि यह मृत्यु के मुख में गिर रहा हैं, नहीं जीवेगा, तो यह ऐसा ही होगा। अतः विना श्वास लिये वह पार करे। प्राण (श्वास) अमृतत्व है। इस प्रकार वह अमृतत्व से मृत्यु को पार करता है। समस्त आधी ऋचा के अन्त में वह प्रणव का उच्चारण करता है। यह वह पापी (द्वेषी) शत्रु के प्रति वज्र का प्रहार करता है। वे दश गायत्री मंत्र बनते हैं क्योंकि दशवाँ पद अष्टाक्षर है। अनुष्टुप् गायत्री है। अग्नि का छन्द गायत्री है; प्रातः सवन में अध्वर्यु दश ग्रहों (पात्रों) का ग्रहण करता है। नव के लिये वे वहिष्पवमान स्तोत्र का गान करते हैं। दसवाँ हिंकार है। इन दसों को वे पृथक्-पृथक् लेकर विराज बनाते है। विराज समस्त अन्नाद्य है। इसका प्राप्त कर व यजमान रखते है। वह पहली को तीन बार तथा अंतिम से तीन बार उच्चारण करता है इस प्रकार वे ग्यारह होती हैं। याज्या (मंत्र) बारहवाँ है। वे एक समय पढे जाने पर सोलह गायत्री होते है। इसके प्रकार आज्य गायत्री हो जाता है। वह याज्या मंत्र को अग्नि और इन्द्र के लिये कहता है इस प्रकार वह सवन का इन्द्र को आधा भागी बनाता हैं। कौषीतकि का कहना है कि 'याज्या (मंत्राहुति) में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विरस्त्रयस्त्रिंशदक्षरा वै विराट्त्रयस्त्रिंशद्देवता अक्षरभाजो देवताः करोत्यग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोण इति पदं परिशिष्य विराजोऽर्धर्चे वाऽनिति श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियां तद्विराज्यन्नाद्ये प्रतितिष्ठत्युत्तरेण विराजोऽर्धर्चेन वषट् करोति स्वर्ग एव तं लोके यजमानं दधात्यनु वषट् करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥ २ ॥

शोंसावो ३ इति प्रातःसवन आह्वयते यच्छुद्धं प्रणवं कुर्वन्ति तदस्य लोकस्य रूपं यन्मकारान्तं तदमुष्य तद्यच्छुद्धं प्रणवं कुर्वन्ति पराङ्वा असौ लोको नेत्पराञ्चो गामेत्यथो प्रजापतिर्वा अयं लोकः प्रजात्या एवाथो प्रतिष्ठा वा अयं लोकः प्रतिष्ठित्या एव शोंसामो दैवेत्यध्वर्युरतान्यष्टाक्षराण्युक्थमवाचीति प्रातःसवन उपांशु होता ब्रूयादुक्थशा इत्यध्वर्युस्तान्यष्टौ गायत्र्या सवनं प्रतिपद्य गायत्र्यां प्रत्यष्ठातामध्वर्यो शोंसावो३ इति माध्यंदिने सवन आह्वयते शोंसामो दैवेत्यध्वर्युस्तान्येकादशाक्षराण्युक्थमवाचीन्द्रायेति माध्यंदिने सवन उपांशु होता ब्रूयादुक्थशा इत्यध्वर्युस्तान्येकादश त्रिष्टुभा सवनं प्रतिपद्य त्रिष्टुब्भिः प्रत्यष्ठातामध्वर्यो शोंशों-

---

देवताओं को भागीदार बनाओ। विराज में तैंतीस अक्षर हैं। देवता तैंतीस हैं। वह देवताओं को अक्षर का भागी बनाता है। अग्ने इन्द्रश्च दाशुषो दुराणे (ऋ.३.२५.४ हे अग्नि! इन्द्र सहित दाता के घर में) इस पद पर छोड़कर वह विराज के आधे मंत्र पर श्वास लेता है। विराज श्री तथा अन्नाद्य है। इस प्रकार श्री तथा अन्नाद्य रूप विराज पर वह प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। विराज के दूसरे अर्धर्च पर वह वषट्कार करता है। इस प्रकार निश्चय ही वह स्वर्गलोक में यजमान को रखता है। वह आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये दूसरी बार वषट् का उच्चारण करता है।

१४.३ 'हम दोनों गान करें' वह प्रातः सवन में आह्वान् करता है। इसमें वे शुद्ध प्रणव(ओंकार)को करते हैं। यह इस लोक का रूप है। जो इसको मकारान्त करते हैं वह उस लोक का रूप है। जो शुद्ध प्रणव को करते हैं वह यह सोचकर कि वह लोक पराक् (उधर की ओर) है, हम उधर की ओर न जांय। और यह लोक प्रजापति (प्रजनन ?) है; यह प्रजापति के लिये है; यह लोक प्रतिष्ठा है; यह प्रतिष्ठिति (प्रतिष्ठा) के लिये है। अध्वर्यु (उत्तर देता है—) 'हम गान करें।' ये आठ अक्षर हैं। प्रातः सवन में होता उपांशु (मन्दस्वर में) कहे—'उक्थ कहा गया' अध्वर्यु उत्तर देता है—'सूक्त का गान करने वाला।' ये आठ हैं। गायत्री से सवन प्रारम्भकर उन्होंने गायत्री में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। वह माध्यन्दिन सवन में कहता है—हे अध्वर्यु! हम दोनों गान करें।' अध्वर्यु कहता है—हे देव! हम गान करें। ये एकादश अक्षर हैं। माध्यन्दिन सवन में होता उपांशु (मन्दस्वर में) कहे—इन्द्र के प्रति उक्थ कहा गया।' अध्वर्यु (कहता है—) 'उक्थ के वक्ता'। ये एकादश हैं। त्रिष्टुप् से सवन को प्रारम्भ कर त्रिष्टुभ् से

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सावो३ इति तृतीयसवनेऽभ्यासमाह्वयते शोशोंसामो देवेत्यध्वर्युस्तानि द्वादशाक्षराणि रोमशेन त्रयोदशवाचीन्द्रायोक्थं देवेभ्य इति तृतीयसवन उपांशु होता ब्रूयादुक्थशा इत्यध्वर्युस्तानि द्वादश संपदि जगत्या सवनं प्रतिपद्य जगत्यां प्रत्यष्ठातामेतद्वै तद्यन्मध्य ओप्यते स यदि ह वा अपि व्यूह्ळच्छन्दा भवति क्लृप्तान्येवैवं विदुषच्छन्दांसि यज्ञं वहन्त्यथो एतदेष ऋगभ्यनूक्तेति ह स्माऽऽह यद्गायत्रे अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुरित्यथो यदिमा देवता एषु लोकेष्वध्यूह्ळा गायत्रे अस्मिल्लोके गायत्रोऽयमग्निरध्यूह्ळस्त्रैष्टुभेऽन्तरिक्षलोके त्रैष्टुभो वायुरध्यूह्ळो जागतेऽमुष्मिल्लँोके जागतोऽसावादित्योऽध्यूह्ळः ॥ ३ ॥

आज्यं शस्त्वा प्रउगं शंसत्यात्मा वै यजमानस्याऽऽज्यं प्राणा प्रउगं तद्यदाज्यं शस्त्वा प्रउगं शंसति प्राणानेव तद्यजमाने दधाति सर्वायुत्वायास्मिल्लोकेऽमृतत्वायामुष्मिंस्तथा ह यजमानः सर्वमायुरस्मिँल्लोक एत्याप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं स्वर्गे लोके पवमाने स्तुत आज्यं शंसत्याज्ये स्तुते प्रउगं तदेतत्पवमानोक्थमेव

प्रतिष्ठा उन्होंने प्राप्त की है। तृतीय सवन में वह उससे कहता है—'हे अध्वर्यु ! हम दोनों गान करें।' अध्वर्यु (कहता है—) हे दैव। हम गान करें। ये साधारणतः (रोमशेन ?) द्वादश अक्षर है; त्रयोदश। तृतीय सवन में होता उपांशु कहे—इन्द्र के लिये, देवताओं के लिये उक्थ कहा गया।' अध्वर्यु (कहता है—) 'उक्थ का वक्ता'। ये वस्तुतः (संपदि) द्वादश हैं। जगती से सवन प्रारम्भकर उन्होंने जगती में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। यह वह है जो मध्य में रखा गया है। यदि वह छन्दों का व्यत्यास से प्रयोग करे तथापि छन्द यथावत् (क्लृप्त) हैं और इसके ज्ञाता के यज्ञ का हवन करते हैं। वह कहता है—'यह अधोनिर्दिष्ट मंत्र कहा गया है—'कि गायत्री पर गायत्री रखा गया है या त्रिष्टुभ से त्रैष्टुभ को उन्होंने बनाया (निरतक्षत–काट कर निर्माण किया) या जगती पद जगती पर रखा गया—'जो यह जानते हैं वे अमृतत्व प्राप्त करते हैं।' और ये देवता इन लोकों में संलग्न है—इस गायत्री से संबद्ध लोक में गायत्री से संबद्ध देव अग्नि संलग्न है। त्रिष्टुभ से संबद्ध अन्तरिक्ष लोक से त्रैष्टुभ देवता वायु संलग्न हैं तथा जगती से संबद्ध उस लोक से जगती से संबद्ध देवता आदित्य संबद्ध (अध्यूह्ळः) हैं।

१४.४ आज्य का गान कर वह प्रउग का गान करता है। आज्य यजमान का आत्मा (शरीर) है तथा प्रउग प्राण है। तो जो आज्य का गान कर प्रउग का पाठ करता है वह यजमान में प्राण का निधान करता है कि वह इस लोक में सर्वायु को प्राप्त करे और उस लोक में अमृतत्व प्राप्त करे। इस प्रकार यजमान इस लोक में सर्वा (पूर्ण) आयु को प्राप्त करता है तथा उस लोक में अमरत्व तथा अक्षयता को प्राप्त करता है। पवमान के गान होने के बाद वह आज्य का गान करता है। जब आज्य का गान हो जाता है तो प्रउग का गान करता है। प्रउग पवमान का उक्थ (सूक्त) है और आज्य आज्य का में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्प्रउगमाज्यस्योक्थं ते एतद्विहरति यथा रथस्यान्तरौ रश्मीन्व्यतिपजेदेवं तद्ग्रहाननुशंसतीति ह स्माऽऽह कौषीतकिर्योऽसौ वायोरिन्द्रवाय्वोर्ग्रहस्तं वायव्येन चैन्द्रवायवेन च मैत्रावरुणं मैत्रावरुणेनाऽऽश्विनमाश्विनेन यत्प्रस्थितानां यजति तदैन्द्रेण यद्धोत्राः संयजन्ति तद्वैश्वदेवेन वागेव सरस्वती सर्वेषु सवनेष्वथ वै पुरोरुगसावेव योऽसौ तपत्येष हि पुरस्ताद्रोचतेऽथ वै पुरोरुक्प्राण एवाऽऽत्मा सूक्तमथ वै पुरोरुगात्मैव प्रजा पशवः सूक्तं तस्मान्न पुरोरुचं च सूक्तं चान्तरेण व्याह्वयते शंसस्य पुरोरुचा सूक्तं पुरोरुचे पुरोरुच एवाऽऽह्वयते वायुरग्रेगास्तत्प्राणरूपं वायवा तदपानस्य रूपं गायत्रं प्रउगं शंसति तेन प्रातःसवनमाप्तमैन्द्रं शंसति तेन माध्यंदिनं सवनमाप्तं वैश्वदेवं शंसति तेन तृतीयसवनमाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ वैश्वदेवीं पुरोरुचं शंसति सा षट्पदा भवति तां त्वामृतव इत्याहुः षळृतवस्तस्यै द्वे द्वे पदे अवग्राहं शंसति तस्माद्द्वन्द्वं समस्ता ऋतव आख्यायन्ते ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इत्यत्र हैके सारस्वतीं पुरोरुचं शंसति न तथा कुर्यादतिरिक्तं

उक्थ है। इन दोनों को वह व्यत्यस्त करता है। वह वैसे ही है जैसे कोई रथ के वाह्य लगामों को (परस्पर संग्रथित करे)। कौषीतकि का कहना था कि इस प्रकार ग्रहों (चमसों) को संयुक्त करता है। जो वायु और इन्द्र-वायु का ग्रह है उसे वायु तथा इन्द्र एवं वायु (के पाठ से संयुक्त करता है; मित्र तथा वरुण के मित्र तथा वरुण से (और)अश्विनों के अश्विन (के पाठ) से (संयुक्त करता है)। जो प्रस्थितों का यजन करता है उसे इन्द्र के लिये से संयुक्त करता है और जो होत्रकों का एक साथ यजन होता है उसे वैश्वदेव से करता है। सभी सवनों में सरस्वती वाक् हैं। वे वहाँ पुरोरुक् में तप रहे हैं क्योंकि वे सामने तप रहे हैं; प्राण पुरोरुक् हैं सूक्त आत्मा (शरीर) है। पुनः पुरोरुक् आत्मा (शरीर) है, सूक्त प्रजा तथा पशु हैं। अतः वह पुरोरुक् तथा सूक्त के मध्य कोई आह्वान नहीं करता।[1] सूक्त को पुरोरुक् के साथ गान करता हुआ वह प्रत्येक पुरोरुक् के लिये जोर से आह्वान करता है; प्राण का रूप (प्रतीक) है—'वायु अग्रगामी है'। और 'हे वायो' यह अपान का रूप है। वह गायत्र प्रउग का शंसन (गायन)करता है। इससे प्रातःसवन प्राप्त होता है। यह इसे इन्द्र को कहा हुआ गान करता है। इससे मध्यन्दिन सवन प्राप्त होता है। यह इसे वैश्वदेव शंसन करता है जिससे तृतीय सवन प्राप्त होता है।

तदनन्तर वह विश्वेदेवों से संबद्ध पुरोरुक् का पाठ करता है। यह छः पदों की है ऐसी तुम्हे (उसे) ऋतु कहते हैं। छः ऋतुएँ हैं। इसके प्रत्येक दो पदों को पृथक्-पृथक् कहते (पढ़ते) हैं। इससे समस्त ऋतुयें द्वन्द्व (जोड़े) में कहीं गयी है—ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त इस प्रकार। कुछ लोग सरस्वती से संबद्ध पुरोरुच को कहते हैं। ऐसा न करें। क्योंकि यह अतिरिक्त (बेकार) होगा। वाक् स्वयं रुचिता (चमक) युक्त है। वाक् पुरोरुच है।

---

१. सूक्त में आरम्भ में केवल एक पुरोरुक् और उसके बाद प्रथम मंत्र। तदनन्तर प्रत्येक नवीन तृचा के बाद एक आहाव तथा पुरोरुक् के पूर्व अध्वर्यु का उत्तर है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तद्रुचिता वै वाक्स्वयं पुरोरुग्वै वाग्वायवायाहि दर्शताश्विना यज्वरीरिष इत्येते उभे तत्प्रउगं नवर्चं च द्वादशर्चं च तदेकविंशतिरेकविंशो वै चतुष्टोमः स्तोमानां परमस्तत्परमं स्तोममाप्नोति यद्वेवैकविंशतिर्द्वादश वै मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशस्तेनैव तत्सलोकतायां यजमानमध्यूहति तानि वै सप्त तृचानि भवन्ति सप्त वै छन्दांसि सर्वेषामेव च्छन्दसामाप्त्या अथो एतैर्वै देवा असुराणां सप्तसाप्तान्यवृञ्जत तथो एवैतद्यजमान एतैरेव द्विषतो भ्रातृव्यस्य सप्त-साप्तान्यवृङ्क्तेऽग्नेरग्रे प्रातःसवनमासीदिन्द्रस्य माध्यंदिनं सवनं विश्वेषां देवानां तृतीयसवनं सोऽग्निरकामयत तस्यां मे माध्यंदिने सवनेऽथो तृतीयसवन इतीन्द्रो-ऽकामयत तस्यां मे प्रातःसवनेऽथो तृतीयसवन इति विश्वे देवा आकामयन्त तस्यां नो माध्यंदिने सवनेऽथो प्रातःसवन इति ता अमुतोऽर्वाच्यो देवतास्तृतीयसवना-त्प्रातःसवनमभिप्रायुञ्जत तद्यदभिप्रायुञ्जत तत्प्रउगस्य प्रउगत्वं तस्माद्बह्व्यो देवताः प्रउगे शस्यन्ते तस्मात्सर्वाणि सवनानि सर्वदेवत्यानि भवन्ति विश्वेभिः सोम्यं मध्वित्युक्थं शस्त्वा यजति वैश्वदेव्या वैश्वदेवं ह्येतदुक्थं गायत्र्या गायत्रं प्रातःसवनमन्विदु वषट्करवदन्विदु वषट्करवत् ।

इति शाङ्खायनब्राह्मणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

'वायवायाहि दर्शत'(ऋ० १.२.१ : हे सुन्दर वायु! इधर आइये)तथा 'अश्विना यज्वरीरिष' (ऋ० १.३.१ : हे अश्विन् ! यज्ञीयान्न) ये दोनों(सूक्त)प्रउग हैं। ये दोनों सूक्त नव मंत्रों तथा बारह मंत्रों के हैं। ये इक्कीस(मंत्र)होते हैं। स्तोमों में सर्वश्रेष्ठ चतुष्टोम एकविंश है। इस प्रकार वह परम स्तोम को प्राप्त करता है। और जो इक्कीस हैं (उसमें) बारह मास है, पाँच ऋतुये हैं, ये तीन लोक हैं तथा इक्कीसवाँ वह सूर्य है। इससे यजमान को उनकी सलोकता में स्थापित करता है। ये सात तृचायें हैं। सात छन्द हैं। यह सभी छन्दों की प्राप्ति के लिये हैं। और देवों ने इसके द्वारा असुरों के सात-सात के आवरणों को तोड़ा अतः इनके द्वारा यजमान द्वेषी शत्रुओं के सात सप्तावरणों को भेदता है। पहले प्रातः सवन अग्नि का था, मध्यन्दिन सवन इन्द्र का था, और तृतीय सवन विश्वदेवों का था। अग्नि ने कामना की कि मध्यन्दिन सवन तथा तृतीय सवन में भी मेरा भाग हो, इन्द्र ने कामना की कि मेरा भाग प्रातः सवन तथा तृतीय सवन में भी हो तथा विश्वेदेवों ने कामना की कि उनका भाग प्रातः सवन तथा मध्यन्दिन सवन में भी हो। उसके बाद देवों ने तृतीय सवन से प्रातःसवन को विस्तृत किया। जो उन्होंने विस्तार किया (अभिप्रायुञ्जत) उससे प्रउग का प्रउगत्व बना। इससे बहुत से देवता प्रउग में प्रशंसित होते हैं। इससे सभी सवनों में सभी देवता हैं। विश्वेभिः सोम्यं मधु ऋ० १.१४.१० : 'सभी के साथ मधुर सोम') इस स्तुति को करके वैश्वदेवी मंत्र से विश्वेदेवों का यजन करता है क्योंकि यह उक्थ (सूक्त) वैश्वदेवों का है। यह गायत्री में है क्योंकि प्रातः सवन गायत्री से संबद्ध है। तदनन्तर वह द्वितीय वषट्कार करता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हरिः ॐ। देवा वा अर्बुदेन च पावमानीभिश्च ग्राव्णोऽभिष्टुत्याऽऽप्नुवन्न-मृतत्वमाप्नुवन्सत्यं संकल्पं तथो एवैतद्यजमानो यदर्बुदेन च पावमानीभिश्च ग्राव्णोऽभिष्टौत्याप्नोत्यमृतत्वमाप्नोति सत्यं संकल्पमथ स्तुते पवमाने दधिघर्मेण चरन्त्यत्र कालो हि भवत्यथो सवनस्यैव सरसताया अथ हविष्पङ्क्तया चरन्ति तस्या उक्तं ब्राह्मणं भारद्वाज्या मध्यंदिने प्रस्थितानां यजति भरद्वाजो ह मध्यंदिन इन्द्राय सोमं प्रददौ सा वा ऐन्द्री त्रिष्टुब्भवत्यैद्रं हि त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनमनु वषट्करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथ होत्राः संजयन्ति तासा-मुक्तं ब्राह्मणमथेळाऽथ होतृचमसस्तस्योक्तं ब्राह्मणं हुतेषु दाक्षिणेषु दक्षिणा नीयन्ते-ऽत्रापवर्गो ह्यभिषवो भवत्यथो आत्मानमेवैतन्निष्क्रीणाति यद्दक्षिणा नीयन्तेऽथो दक्षिणाभिर्वै यज्ञं दक्षयति तद्यद्दक्षिणाभिर्यज्ञं दक्षयति तस्माद्दक्षिणानामात्मदक्षिणं वै सत्रं तस्मादहरहर्जपेयुरिदमहं मां कल्याण्यै कीर्त्यै स्वर्गाय लोकायामृतत्वाय दक्षिणान्नयानीत्यात्मानमेवैतत्कल्याण्यै कीर्त्यै स्वर्गाय लोकायामृतत्वाय दक्षिणां

पन्द्रहवाँ अध्याय

१५.१ हरिः ओम्। देवताओं ने अर्बुद सूक्त (ऋ० १०.९४) तथा सोम के पावमानी मंत्रों से (सोम पीसने के) प्रस्तरों की स्तुति कर अमरत्व, सत्य तथा संकल्प को प्राप्त किया। इस प्रकार निश्चय ही यजमान भी जो अर्बुद सूक्त तथा सोम के पावमानी सूक्त से प्रस्तरों (सोम पीसने के पत्थरों) की स्तुति करता है अमरत्व को प्राप्त करता है तथा सत्य एवं संकल्प को प्राप्त करता है। पवमान की स्तुति हो जानेपर वे दुग्ध पात्र से चलते हैं (कार्य करते हैं)। यह उसका समय होता है तथा यह सवन को सरस बनाता है। और तदनन्तर जो पांच हविषों से कार्य करते हैं उसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मध्यन्दिन में प्रस्थितों के लिये भरद्वाज के मंत्र से यजन करता है। मध्यन्दिन में भरद्वाज ने इन्द्र को सोम दिया। मध्यन्दिन सवन इन्द्र का तथा त्रिष्टुभ का सवन है। वह आहुतियों की शान्ति के तथा प्रतिष्ठा के लिये तथा दूसरा वषट् करता है। तदनन्तर होत्रक यजन करते हैं। इनका व्याख्यान किया जा चुका है। तदनन्तर इला तथा होतृ चमस है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। दक्षिणा आहुतियों के हवन हो जाने पर दक्षिणा ली जाती है। उस समय अभिषव रुक जाता है। और जो दक्षिणा ली जाती हैं उसमें वह अपना ही निष्क्रय करता है। और दक्षिणाओं से वह यज्ञ को दक्ष (पूर्ण, दृढ़) करता है। क्योंकि दक्षिणा से वह यज्ञ को दक्ष करता है अतः दक्षिणाओं का दक्षिणात्वहै। सत्र का आत्मा दक्षिणा हैं। अतः वह अनुदिन जप करे। 'यह मैं अपने को कल्याणमयी कीर्ति, स्वर्गलोक तथा अमरत्व के लिये दक्षिणा के रूप में लेता हूँ।' (शां. श्रौ. स. १३.१४.६) निश्चय ही इस प्रकार वे अपने को प्रशस्त यश, स्वर्गलोक तथा अमरत्व के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नयन्ति वैश्वामित्रीं मरुत्वतीयग्रहस्य पुरोनुवाक्यामनूच्य वैश्वामित्र्या यजति सवनततिर्वै मरुत्वतीयग्रहो वाग्वै विश्वामित्रो वाचा यज्ञस्तायते ते वा ऐन्द्र्यौ त्रैष्टुभौ भवत ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनमनु वषट्करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥ १ ॥

अथ षड्विधं मरुत्वतीयं शंसति षड्वा ऋतवः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्या अनुष्टुभं गायत्रीं बृहतीमुष्णिहं त्रिष्टुभं जगतीमिति षट्छन्दांसि शंसति तस्मात्षड्विधं भवत्या त्वा रथं यथोतय इत्यनुष्टुभा मरुत्वतीयं प्रतिपद्यते पवमानोक्थं वा एतद्यन्मरुत्वतीयमनुष्टुप्सोमस्य च्छन्द उक्थं पदविग्रहणस्य ब्राह्मणं गायत्रीः शंसति प्राणो वै गायत्र्यः प्राणमेव तदात्मन्धत्त इदं वसो सुतमन्ध इत्यनुचरः सुतवान्पीतवान्पवमानोक्थं ह्येतदिन्द्र नेदीय एदिहीतीन्द्रनिहवः प्रगाथो

के लिये दक्षिणा में लेते हैं। विश्वामित्र के एक मंत्र (ऋ० ३.५१.७) को मरुतों के चमस (ग्रह) के लिये पुरोनुवाक्या रूप से जपकर विश्वामित्र के ही एक मन्त्र (ऋ० ३.४७.२) को याज्या के रूप में प्रयुक्त करता है (विश्वामित्र के मन्त्र से यजन करता है)। मरुतों ग्रह सवन का ही विस्तार है और विश्वामित्र वाक् हैं। वाक् से यज्ञ का विस्तार होता है। ये इन्द्र को कहे गये दो त्रिष्टुभ् हैं। मध्यन्दिन सवन इन्द्र तथा त्रिष्टुभ से संवद्ध है। वह आहुतियों की शान्ति के लिये तथा प्रतिष्ठा के लिये दूसरा वषट् कहता है।

१५.२. तदनन्तर वह षड्विध (छः प्रकार के) मरुत्वतीय का पाठ करता है। वर्ष में छः ऋतुयें हैं। निश्चय ही यह संवत्सर की प्राप्ति के लिये है। वह अनुष्टुभ् गायत्री, बृहती, उष्णिह्, त्रिष्टुभ् तथा जगती इन छः छन्दों का शंसन (कथन) करता है। इस प्रकार यह छः प्रकार का है। वह एक अनुष्टुभ् 'आ त्वा रथं यथोतय' (ऋ० ८.६८.१ : रथ की भाँति आप को ऊति (मंगल, साहाय्य) के लिये) से मरुत्वरीय को आरम्भ करता है। यह मरुत्वतीय पवमान का उक्थ (सूक्त) है। सोम का छन्द अनुष्टुप् है। पदविग्रह का ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। गायत्री का गान करता है। गायत्री मन्त्र प्राण हैं। इस प्रकार वह प्राणों को ही अपने में रखता है। 'इदं वसो सुतमन्धः (ऋ० ८.२.१. : प्रकाशशील ! यह सुत पिष्ट हुआ) यह अनुचर (पश्चाद्वर्ती) है। इसमें 'सुत' तथा 'पीत' शब्द हैं क्योंकि यह पवमान सूक्त है। 'इन्द्र नेदीय एदिहि' इत्यादि ऋ० ८।५३।५ : हे इन्द्र ! नजदीक आवें यह इन्द्र का प्रगाथ आवाहन है (८।५३।५-६)। मरुतों ने उन्हें आनन्दित करते हुये उनसे कहा—'हम नजदीक चलें' उन्होंने कहा—'वृत्र को जीतकर तथा मार कर आप लोगों के साथ यह मेरा सोमपान है।' यह उनके साथ सोमपान है। प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिः (ऋ० १.४०.५ 'ब्रह्मणस्पति आगे') ब्रह्मणस्पति का प्रगाथ है तथा 'प्र' शब्द युक्त है। ब्रह्म ने उत्साहित करते हुये उनसे कहा—'प्रहार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नेदीय उपनिष्क्रामेति हैनं मरुत ऊचुः प्रहर्षयन्तः सोऽब्रवीद्धत्वा वृत्रं विजित्य युष्माभिर्मेऽयं सह सोमपीथ इति तैरेवास्यैष सह सोमपीथः प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिरिति प्रवान्ब्राह्मणस्पत्यः प्रहरेति हैनं ब्रह्मोवाच प्रहर्षयन्सोऽब्रवीद्धत्वा वृत्रं विजित्य त्वया मेऽयं सह सोमपीथ इति स एष ब्रह्मण एव सोमपीथस्तस्मिन्देवता अन्वाभजतेति ह स्माऽऽह कौषीतकिर्यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिर इत्यत्र देवता अन्वाभक्तास्तदाहुर्यन्नैव स्तोत्रियो नानुरूप इन्द्रनिहवश्च ब्राह्मणस्पत्यश्च प्रगाथावथ कस्मात्पुनरादायं ककुष्कारं शस्येते ३ इति पुनरादायं वै सामगाः पवमाने स्तुवते तस्यैवैतद्रूपं क्रियतेऽग्निर्नेता भग इव क्षितीनां त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूरित्यग्नीषोमीयेऽग्नीषोमौ वा अन्तर्वृत्र आस्तां ताविन्द्रो नाशक्नोदभिवज्रं प्रहर्तुं तावेतं भागमुपनिराक्रामतां यश्चैनयोरसौ पौर्णमासे तदेतद्वार्त्रघ्नमेवोक्थं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रो वृत्रमहन् ॥ २ ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानव इति पिन्वन्त्यपीयापो वै पिन्वन्त्यपीया तद्यदेव वृत्रं हतमापो व्यायन्यत्प्रापिन्वस्तस्मात्पिन्वन्त्यपीया सा वै जगती तया सर्वाणि सवनानि जगद्वन्ति भवन्ति जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति जातवन्मरुत्वतीयमेतद्वा इन्द्रो जायते यद्वृत्रमहन्नेतदु वा एष जायते यो यजते तस्य प्रथमायामध्वर्युः

करें।' उन्होंने कहा 'वृत्र को जीतकर तथा मारकर यह मेरा आपके साथ सोमपान है' यह ब्रह्म का सोमपीथ है। कौषीतकि ने कहा है कि 'इसमें देवताओं को भाग दो। यस्मिन्विन्द्रो वरुणो मित्र अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे (ऋ० १.४०.५ जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा और देवों ने घर बनाया) इसमें देवताओं को भाग दिया गया। वे कहते है कि इसमें स्तोत्रिय और अनुरूप नहीं है अपितु केवल इन्द्र का आवाहन और ब्रह्मणस्पति की (तृचा) है तो क्यों उनको आवृत कर पाठ किया जाता है और उन्हें ककुभ (मन्त्रों) में पाठ किया जाता है ? सामगायक पवमान में बार बार दुहराकर (पुनरादायं) गान करते है अतः यह उसी का रूप (प्रतीक) किया जाता है। 'अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां (ऋ० ३.२०.४ : भग की भाँति अग्नि प्राणियों के नेता हैं) तथा 'त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस् (ऋ० १.९१.२ : हे सुन्दर क्रतु वाले सोम ! आप क्रतुओं से) ये दोनों मन्त्र अग्नि और सोमको कहे गये हैं। अग्नि और सोम वृत्र के भीतर थे। इन्द्र वज्र प्रहार करने में उसपर असमर्थ थे। वे दोनों अपने भाग के लिये बाहर आये। उनका यह भाग पौर्णमास में है अतः जो मरुत्वतीय उक्थ है वह वृत्रघ्न है। इससे इन्द्रने वृत्र को मारा।

१५.३. 'पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः' (ऋ० १.६४.६ : सुदानु मरुत जल पीते है) यह जल पीने का मन्त्र है, जल पीने का मन्त्र जल है। वृत्र के मारे जाने पर जल बाहर निकले और इससे वे पिये अतः यह जल पीने के (मन्त्र) (पिबन्त्यपीया) कहे गये। यह जगती छन्द है। इसके द्वारा सभी सवन जगती हैं। 'जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सकृन्मद्वत्प्रत्यागृणात्यत्र हेन्द्रः प्रथममाद्यत्तदेतत्पृतनाजिदेवसूक्तं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रः पृतना अजयत्तस्य मध्ये निविदं दधाति मध्ये वा इदमात्मनोऽन्नं धीयतेऽथ निविदः शंसति प्राणा वै निविदः प्राणानेव तदात्मन्धत्ते तासामेकैकं पदमवग्राहं शंसत्येकैकमेव तत्प्राणमात्मन्धत्त उत्तमेन प्रणौतीममेव तत्प्राणमुत्सृजते तस्माद्धीमं प्राणं सर्वे प्राणा अनुप्राणन्त्यथोऽन्नं निविद इत्याहुस्तस्मादेना आरतं शंसेदत्वरमाण इव हि प्रतिकामिनमन्नाद्यमत्ति ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्नित्युक्थं शस्त्वा यजति ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टावित्येतैर्वा एष एतानि सह वीर्याण्यकरोत्तैरेवास्यैष सह सोमपीथः सा वा ऐन्द्री त्रिष्टुब्भवत्यैन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनमनु वषट्करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै वागेवासौ प्रथमाऽनुष्टुप्पां पञ्च गायत्र्योऽनुवर्तन्ते मन इन्द्रनिहवः श्रोत्रं ब्राह्मणस्पत्यः प्राणोऽपानो व्यान इति तिस्र एकपातिन्य आत्मा सूक्तं यदन्तरात्मस्तं निवित्प्रतिष्ठा परिधानीयाऽन्नं याज्या ॥ ३ ॥

(ऋ० १०.७३.१ : अत्यन्त त्वरा के लिये उग्र आप उत्पन्न हुये) यह 'जात' युक्त मन्त्र मरुत्वतीय है। इन्द्र ने उत्पन्न होकर वृत्र को मारा। इस प्रकार जो यजन करता है वह उत्पन्न होता है। प्रथम मन्त्र पर अध्वर्यु 'मद्' युक्त एक बार उत्तर देता है। यहाँ प्रथम बार इन्द्र मद युक्त हुये, मरुत्वतीय युद्ध जीतने का सूक्त है। इससे इन्द्र ने पृतना (युद्ध) जीता। इसके मध्य में वह एक निविद को रखता है। शरीर के मध्य में अन्न रखा जाता है। तदनन्तर वह निविद पढ़ता है। निविद प्राण हैं। वह प्राणों को अपने में रखता है। प्रत्येक पद को पृथक्-पृथक् पढ़ता। इस प्रकार वह प्रत्येक प्राण को अपने में रखता है। अन्तिम के साथ वह प्रणव का उच्चारण करता है। इस प्रकार इस प्राण का उत्सर्ग करता है। इस प्रकार इस प्राण के साथ सभी प्राण प्राणित होते है। वे कहते हैं 'निविद अन्न है इससे वह इन्हें शान्ति से पढ़े क्यों कि अस्वाद्य (प्रतिकामी ?) अन्न को वह धीरे से खाता है। 'ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्' (ऋ० ३.४७.४ a) हे मघवन्! जो आपको वृत्रका वध करने पर बढ़ाये) इस उक्थ (मन्त्र ?) का पाठ कर यजन करता है। वह कहता है 'ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ (ऋ० ३।४७।४ b : जो शम्बर (के युद्ध) में, जो गायोंके लिये युद्ध में आपको)। इनके द्वारा उन्होंने वीर्य के कार्य किये, इनके द्वारा उन्होंने सोमपान किया। यह इन्द्र को कहा गया त्रिष्टुभ् है क्योंकि मध्यन्दिन सवन इन्द्र तथा त्रिष्टुभ से सम्बद्ध है। वह आहुतियों की शान्ति तथा प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट् कहता है। प्रथम अनुष्टुभ् वाक् है। इसके बाद पाँच गायत्री मन्त्र हैं। इन्द्र का आवाहन मन है। ब्रह्मणस्पति को कहे (मन्त्र) श्रोत्र हैं। तीनों एकपातिनी (धाय्या ऋ० ३.२०.४; १.९१.२;६४.६) प्राण, अपान, तथा व्यान है। सूक्त आत्मा (शरीर) है। जो शरीर के अन्दर हैं वह निविद है। परिधानीय (समापन) मन्त्र प्रतिष्ठा है तथा याज्या (मन्त्र) अन्न है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

निष्केवल्यं बह्वृचो देवताः प्राच्यः शस्यन्ते बह्वृच ऊर्ध्वा अथैतदिन्द्रस्यैव निष्केवल्यं तन्निष्केवल्यस्य निष्केवल्यत्वमथ यद्बृहत्या प्रतिपद्यते बार्हतो वा एष य एष तपति तदेनं स्वेन रूपेण समर्धयति द्वे तिस्रः करोति पुनरादाय तत्प्रजात्यै रूपं द्वाविवा अग्रे भवतस्तत उपप्रजायेते स्तोत्रियं शस्त्वाऽनुरूपं शंसत्यात्मा वै स्तोत्रियः प्रजानुरूपस्तस्मात्प्रतिरूपमनुरूपं कुर्वीत प्रतिरूपो हैवास्य प्रजायामाजायते नाप्रतिरूपो धाय्यां शंसति प्राणो वै धाय्या प्राणमेव तदात्मन्धत्ते प्रगाथं शंसति पशवो वै प्रगाथः पशूनामेवाऽऽप्त्या अथो प्राणापानौ वै बार्हतः प्रगाथः प्राणापानावेव तदात्मन्धत्त इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचमिति पञ्चदशर्चं निष्केवल्यं पञ्चदशो वै वज्रो वज्रेणैव तद्यजमानस्य पाप्मानं हन्ति तस्य मध्ये निविदं दधाति मध्ये वा इदमात्मनोऽन्नं धीयतेऽथ निविदः शंसति प्राणा वै निविदः प्राणानेव तदात्मन्धत्ते तासामेकैकं पदमवग्राहं शंसत्येकैकमेव तत्प्राणमात्मन्धत्त उत्तमेन प्रणौतीममेव तत्प्राणमुत्सृजते तस्माद्धीमं प्राणं सर्वे प्राणा अनुप्राणन्त्यथोऽन्नं निविद इत्याहुस्तस्मादेना आरतं शंसेदत्वरमाण इव हि प्रतिकामिनमन्नाद्यमत्ति

१५.४. (अब निष्केवल्य है । बहुत देवता पहले तथा बहुत देवता बाद में कहे (पढ़े) जाते हैं । किन्तु निष्केवल्य केवल इन्द्र का है । इसीलिये निष्केवल्य नाम है । और जो बृहती से प्रारम्भ करते हैं (तो) जो ये देवता तप रहे हैं वे बृहती से संबद्ध हैं । इसप्रकार वह उन्हें अपने रूप से समृद्ध करता है । वह पुनः लेकर (आवृत कर) दो को तीन करता है । यह प्रजापति (प्रजनन) का रूप है । पहले दो होते हैं और तदनन्तर उत्पन्न होते हैं । स्तोत्रिय का पाठ कर अनुरूप का पाठ करता है । स्तोत्रिय आत्मा है और अनुरूप प्रजा है । इसलिये अनुरूप को रूप के अनुकूल करे । प्रजा के रूप में रूप के अनुकूल ही (प्रतिरूप) उत्पन्न होता है रूप के प्रतिकूल नहीं । वह एक पूरक (धाय्या) मन्त्र का पाठ करता है । धाय्या प्राण है । इस प्रकार वह अपने में प्राण को रखता है । वह प्रगाथ का पाठ करता है । प्रगाथ पशु हैं । इस प्रकार यह पशुओं की प्राप्ति के लिये है । और बृहती प्रगाथ प्राण तथा अपान है । इससे वह प्राण तथा अपान को अपने में रखता है । 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम् (ऋ० १.३२.१ इत्यादि— मैं इन्द्र के पराक्रम युक्त कार्यो को कहूँगा) यह पन्द्रह मन्त्रों का निष्केवल्य है । पञ्चदश (पर्वंवाला) वज्र है । इस प्रकार वह यजमान के पाप को वज्र से नष्ट करता है । इसके मध्य में वह एक निविद को रखता है । शरीर के मध्य में अन्न रखा जाता है । तदनन्तर वह निविदों का पाठ करता है । निविद प्राण हैं । इस प्रकार वह अपने में प्राणों को रखता है । इसके प्रत्येक पद को पृथक्-पृथक् कहता है । इस प्रकार वह प्रत्येक प्राण को अपने में रखता है । अन्तिम के साथ वह प्रणव को कहता है । इस प्रकार इस प्राण को वह छोड़ता है । अतः सभी प्राण इस प्राण के साथ प्राणित होते हैं । अन्न निविद है, ऐसा कहते हैं । अतः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नितरां परिधानीयां शंसेत्तथा ह पत्न्यप्रच्यावुका भवत्यनुदायिततरां तथा ह पत्न्यनुद्धतमना इव भवत्यथ यदश्वं ददातीन्द्रो वा अश्व ऐन्द्रं ह्येतदुक्थमिन्द्रमेव तत्प्रीणात्यात्मा वै स्तोत्रियः प्रजानुरूपो महिषी धाय्या प्रगाथः पशव आत्मा सूक्तं यदन्तरात्मंस्तन्निवित्प्रतिष्ठा परिधानीयाऽन्नं याज्या ॥ ४ ॥

पवमाने स्तूयमाने होतारं मृत्युः प्रत्यालीयत तमाज्येन न्यकरोदन्यत्र स्तोत्रियादाज्ये सामाज्ये प्रत्यालीयत तं प्रउगेन न्यकरोदन्यत्र स्तोत्रियात्तं माध्यंदिने पवमाने प्रत्यालीयत तं मरुत्वतीयेन न्यकरोदन्यत्रैव स्तोत्रियादथ वै निष्केवल्ये स्तोत्रियेणैव प्रतिपद्यते तद्यथा भयेऽतिमुच्य मृत्युं यथाऽतिमुमुचान एव तदाहुर्निष्केवल्यमेवेदं निष्केवल्यमदो महाव्रते शस्यन्ते वा अमुत्र चतुरुत्तराणि कथमिहोपाप्यन्त इति तानि वा इहोपाप्ततराणि भवन्ति स्तोत्रियानुरूपौ शंसस्तौ सप्तचतुरुत्तराणि संपद्यन्ते चतुरक्षरं च पदमुदैति ते पशवस्तान्पशून्यजमाने दधाति विराड्वा अग्निष्टोमो नवतिशतं स्तोत्रियाः संपद्यन्ते प्रत्यक्षमेवैतदग्निष्टोमस्य रूपमुपैति यद्विराजा यजति पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वेति पदं परिशिष्य विराजोऽर्धर्चे

इसे धीरे से (आरतं) कहे क्योंकि प्रतिकामो (अरवाद्य) अन्न को वह धीरे से (अत्वरमाण) खाता है। समापनीय (परिधानी) मन्त्र को मंदस्वर (नितरां) में कहे। इससे उसकी पत्नी अलग नहीं होती। वह और मंद स्वर में कहे इससे पत्नी उद्धत मन की नहीं होती और वह जो अश्व देता है अश्व इन्द्र है क्योंकि सूक्त इन्द्र से संबद्ध है इस प्रकार वह इन्द्र को प्रसन्न करता है। स्तोत्रिय आत्मा है, अनुरूप प्रजा है, धाय्या महिषी है, प्रगाथ पशु हैं, सूक्त आत्मा (शरीर) है, निविद जो शरीर के अन्दर है, परिधानीय मन्त्र प्रतिष्ठा है तथा याज्या मन्त्र अन्न है।

१५.५ पवमान के गान होते समय होता पर मृत्यु लटकी उसे आज्य शस्त्र के द्वारा स्तोत्रिय (मन्त्र विशेष) से अन्यत्र हटाया। आज्य (शस्त्र के गान होने) पर वह आज्य पर लटका तब उसे प्रउग के द्वारा स्तोत्रिय से अन्यत्र किया जब माध्यन्दिन पवमान हो रहा था तो उसपर लटका तो उसे मरुत्वतीय के द्वारा स्तोत्रिय से अन्यत्र किया। निष्केवल्य में वह स्तोत्रिय से प्रारम्भ करता है यह वैसे ही जैसे कोई मृत्यु को अलग कर भय से मुक्त हो। वे कहते हैं 'एक निष्केवल्य यहाँ हैं और एक निष्केवल्य महाव्रत में है। वहाँ छन्द चार बढाकर पढ़े जाते हैं। यहाँ वे कैसे प्राप्त होते हैं ? यहाँ वे उससे भी अधिक प्राप्त होते हैं। स्तोत्रिय तथा अनुरूप साथ कहे जाने पर चार से अधिक सात हो जाते हैं तथा चार अक्षरों का एक पद शेष रहता है। ये पशु हैं इन पशुओं को वह यजमान में रखता है। अग्निष्टोम विराज है। वे एक सौ नब्बे स्तोत्रिय बनाते हैं। वह जो विराज को याज्या के रूप में प्रयुक्त करता है उससे स्पष्ट ही अग्निष्टोम का रूप प्राप्त करता है। पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा ? (ऋ० ७.२२.१ हे इन्द्र ! आप सोम का पान करिये। यह आप को प्रसन्न करे) इस पद को छोड़कर वह विराज के आधे मन्त्र पर श्वास लेता है। विराज

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऽवानिति श्रीर्विळन्नाद्यं श्रियां तद्विराज्यन्नाद्ये प्रतितिष्ठत्युत्तरेण विराजोऽर्धर्चेन वषट् करोति स्वर्ग एव तं लोके यजमानं दधात्यनु वषट् करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥ ५ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पूर्वार्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ । वसूनां वै प्रातःसवनं रुद्राणां माध्यंदिनं सवनमादित्यानां तृतीयसवनं तद्यदादित्यग्रहेण तृतीयसवनं प्रतिपद्यते स्वयैव तद्देवतया प्रतिपद्यतेऽथोऽधीतरसं वा एतत्सवनं यत्तृतीयसवनमथैष सरसो ग्रहो यदादित्यग्रहस्तेनैव तत्तृतीयसवनं सरसं करोति त्रिष्टुभमादित्यग्रहस्य पुरोनुवाक्यामनूच्य त्रिष्टुभा यजति बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधाति तस्य नानु वषट् करोति सवनततिर्वा आदित्यग्रहः संस्थाऽनु वषट्कारो नेत्पुरा कालात्सवनं संस्थापयानीति

श्री तथा अन्नाद्य है । इस प्रकार वह विराज में श्री और अन्नाद्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करता हैं । वह विराज के द्वितीय अर्धर्च के साथ वषट् कहता है । इस प्रकार वह यजमान को स्वर्गलोक में स्थापित करता हैं । वह आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट् को कहता है ।

शाङ्खायन ब्राह्मण में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

हरिः ओम् । प्रातःसवन वसुओं का, माध्यन्दिन सवन रुद्रों का और तृतीय सवन आदित्यों का है । जो तृतीय सवन को आदित्य से प्रारम्भ करता है वह निश्चय ही अपने देवता से प्रारम्भ करता है । और इस सवन में रस निकाला रहता है इससे यह तृतीय सवन है । और यह आदित्य ग्रह (पात्र) रसपूर्ण (सरस) होता हैं इससे वह तृतीय सवन को सरस बनाता है । आदित्य ग्रह के लिये त्रिष्टुभ् को पुरोनुवाक्या के रूप में पाठ कर वह एक त्रिष्टुभ् से यजन करता हैं । त्रिष्टुभ् बल और वीर्य को यजमान में रखता हैं । वह द्वितीय वषट् को (यह सोचकर) नहीं कहता कि आदित्य ग्रह सवन का सातत्य हैं, वषट्कार समापन (पूर्णता) है, मैं समय से पूर्व सवन को पूर्ण न करूँ । याज्या मंत्र 'मद्' शब्द युक्त है (ऋ. ७.५१.२ 'आदित्यासो अदितिमदियन्तां' इत्यादि) क्योंकि तृतीय सवन 'मद्' युक्त हैं । तदनन्तर पवमान के गान हो जाने पर वे 'पशु' से चलते हैं (कार्य प्रारंभ करते हैं) क्योंकि इसका यह समय है । और यह सवन में सरसता के लिये है (सरसता लाता है) अनन्तर पाँच हविष् (यज्ञ) से चलते हैं । इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है । तृतीय सवन में (चमस) भरने के लिये (उन्नीयमानेभ्य) इन्द्र और ऋभु के मंत्रों का पाठ करता

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मद्वती याज्या मद्वद्धि तृतीयसवनमथ स्तुते पवमाने पशुना चरन्त्वत्र कालो हि भवत्यथो सवनस्यैव सरसताया अथ हविष्पङ्क्त्या चरन्ति तस्या उक्तं ब्राह्मण-मैन्द्रार्भव्यस्तृतीयसवन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह यत्र ह तदृभवः प्रजापतेः प्रेमाणं प्रापुस्तदेनानिन्द्रः सोमपीथेऽन्वाभेजे तस्मान्नाऽऽर्भवीषु स्तुवतेऽथाऽऽर्भवः पवमान इत्याचक्षत ऐन्द्रार्भव्या तृतीयसवने प्रस्थितानां यजतीन्द्रमेव तदर्धभाजं सवनस्य करोति जगत्या जागतं हि तृतीयसवनं मद्वत्या मद्वद्धि तृतीयसवनमनु वषट्करो-त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथ होत्राः संयजन्ति तासामुक्तं ब्राह्मणमथेळाऽथ होतृचमसस्तस्योक्तं ब्राह्मणमौपासनं तृतीयसवन उपास्यन्ति पितॄनेव तत्प्रीणन्ति ॥ १ ॥

अथ सावित्रग्रहेण चरन्ति प्रातःसवने तमग्रेऽयजंस्ताः प्रजनः प्राजायन्त तं माध्यंदिने सवने ता उ तत्र नो एव तमत्र तृतीयसवनेऽयजंस्ततः प्रजाः प्राजायन्त तस्मात्तृतीयसवनेऽवधृतः सविताऽथो आदित्यानां वा एकः सविताऽऽदित्यानां तृतीयसवनं तस्मात्तृतीयसवने सवितारं यजति त्रिष्टुभं सावित्रग्रहस्य पुरोनुवाक्या-मनूच्य जगत्या यजति बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप्पशवो जगती बल एव तद्वीर्येऽन्ततः पशुषु च प्रतितिष्ठति तस्य नानु वषट्करोति प्राणो वै सावित्रग्रहः संस्थाऽनु वषट्-

---

है (ऋ. ४.३५)। जब ऋभुओं ने प्रजापति के प्रेम को प्राप्त किया तब इन्द्र ने इनको सोमपान में भागी बनाया। इसलिये वे ऋभुओं के मन्त्र को नहीं पढ़ते अपितु इसे आर्भव पवमान कहते हैं। तृतीय सवन में वह प्रस्थितों के लिये इन्द्र और ऋभुओं को कहे एक मंत्र से यजन करता है (ऋ.३.६०.५)। इससे वह सवन में इन्द्र को आधे का भागी बनाता है। यह जगती छन्द है क्योंकि तृतीय सवन जगती से संबद्ध है। यह 'मद्वती' है क्योंकि तृतीय सवन 'मद्वत्' (मद युक्त हो) है। आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये वह द्वितीय वषट् कहता है। अनन्तर होत्रक साथ-साथ यजन करते हैं। इन आहुतियों का ब्राह्मण कहा जा चुका है। तदनन्तर इला और तदनन्तर होतृ चमस है। इसका भी ब्राह्मण कहा जा चुका है। तृतीय सवन में पितरों की उपासना (पुरोडाश प्रदान) करते हैं। इससे वे पितरों को प्रसन्न करते हैं।

१६.२ तदनन्तर सवितृग्रह (सूर्यपात्र) से प्रारम्भ करते हैं। पूर्व में उनका प्रातःसवन में उन लोगोंने यजन किया। इससे प्रजाओं की उत्पति नहीं हुई। फिर माध्यन्दिन सवन में (यजन) किया। इस पर उत्पत्ति नहीं हुई। तदनन्तर तृतीय सवन में उनका यजन किया तब प्रजाओं की उत्पति हुई। अतः तृतीय सवनमें सविता स्थित हैं। और सविता आदित्यों में से एक है। तृतीय सवन आदित्यों का है। अतः उनका तृतीय सवन में यजन करते हैं। सवितृग्रह के लिये एक त्रिष्टुभ को (ऋ.४.५४.१) पुरोनुवाक्या (आह्वानकारी) मंत्र के रूप में प्रयुक्त कर वह एक जगती को याज्या के रूप में प्रयुक्त करता है (शां. श्रौ.सू.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कारो नेत्पुरा कालात्प्राणं संस्थापयानीति युक्त इव ह्ययं प्राणो मद्वती याज्या मद्वद्धि तृतीयसवनम् ॥ २ ॥

सवित्रा वैश्वदेवं प्रतिपद्यते सवितृप्रसूता वै देवास्तृतीयसवनं समभरंस्तस्मात्-प्रतिपदनुचरौ सूक्तमिति सावित्राणि भवन्ति तत्सवितुर्वृणीमह इत्यनुष्टुभा वैश्वदेवं प्रतिपद्यते पवमानोक्थं वा एतद्यद्वैश्वदेवमनुष्टुप्सोमस्य च्छन्द उक्थं पदविग्रहणस्य ब्राह्मणं गायत्रीः शंसति प्राणो वै गायत्र्यः प्राणमेव तदात्मन्धत्ते सावित्रं शंसति सावित्रो हि ग्रहो गृहीतो भवति तमेवैतेनानुशंसति वायव्यां शंसति प्राणो वै वायव्याः प्राणमेव तदात्मन्धत्ते तस्यै शस्त्रे द्विदेवत्यान्विमुञ्चन्ति वायौ प्राणे प्राणान् द्यावापृथिवीयं शंसति प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिवी प्रतिष्ठित्या एव तस्मिन्न-ध्वर्युर्मद्वत्प्रत्यागृणाति मद्वद्धि तृतीयसवनं सुरूपकृत्नुं शंसत्यन्नं वै सुरूपमन्नमेव तदात्मन्धत्तेऽथो रूपाणामेवैष सोमपीथो रूपमेव तदात्मन्धत्त आर्भवं शंसत्यत्र

८।३।४ में प्रदत्त मंत्र)। त्रिष्टुप् बल और वीर्य है और जगती पशु है। यह पशुओं में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है वह इसके लिये द्वितीय वषट्कार नहीं करता (क्योंकि वह सोचता है कि)सवित्रग्रह प्राण है। द्वितीय वषट्कार विराम है। समय से पूर्व प्राण को विराम न दूं। क्योंकि प्राण यहाँ युक्त (संलग्न) की भाँति हैं। याज्या 'मद्वती' है। तृतीय सवन मद्वत् है।

१६ ३ सवितृ से वह वैश्वदेव प्रारम्भ करता है। सवितृ से प्रेरित देवता तृतीय सवन में साथ आये। इससे प्रतिपद, अनुचर और सूक्त सवितृ से संबद्ध है। (ऋ.५।८२। १-३;४-६ तथा ४।५४) वह वैश्वदेव को तत्सवितुर्वृणीमहे(ऋ.५।८२।१ : सविता के उसको हम चुनते है) वैश्वदेव पवमान का सूक्त है। सोम का छन्द अनुष्टुभ् है। छन्दों के पदों के विग्रह का ब्राह्मण कहा जा चुका है। वह गायत्री मंत्रों का शंसन(कथन)करता है। गायत्री मंत्र प्राण हैं। इस प्रकार वह अपने में प्राण को रखता हैं। वह सविता के लिये एक सूक्त पढ़ता है क्योंकि सविता का ग्रह गृहीत हुआ है। इससे उसका वह अनुशंसन(कथन)करता है। वह वायु के लिये एक(एक मंत्र) पढ़ता है (शां.श्रौ.सू ८.३.१० में प्रदत्त)। वायु का मंत्र प्राण है। इस प्रकार वह अपने में प्राण को रखता है। इस पाठ में वह वायु में दो देवताओं के (ग्रह) को छोड़ता है(और इस प्रकार वह)प्राण में प्राण को(छोड़ता है)। वह द्यावा पृथिवी के लिये सूक्त पढ़ता है (ऋ. १।१५९)। द्यावा पृथिवी प्रतिष्ठा है। इस प्रकार यह प्रतिष्ठाका कार्य करता है इसमें अध्वर्यु मद् युक्त एक मंत्र पढ़ता है। ('शंसामो दैव' जो शंसा मोदैव के रूप में व्यवहृत होता है) क्योंकि तृतीय सवन 'मद्' युक्त होता है। वह 'सुरूपकृत्नुं (ऋ. १।४।१ सुन्दर रूप को बनाने वाले) मंत्र का पाठ करता है। अन्न सुरूप है। इस प्रकार वह अपने में अपने अन्न को रखता है। और यह रूपों का सोमपान है। इस प्रकार वह अपने में रूप रखता है। वह ऋभुओं के लिये एक सूक्त का पाठ करता है(ऋ.१।१११)क्योंकि इनके लिए प्रजापति ने तब बनाया।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ह्येभ्यः प्रजापतिरेवाकल्पयत्तस्मादत्राऽऽर्भवं शस्यतेऽथ वैनामाऽऽदित्यां बार्हस्पत्यामिति शंसति शुक्रामन्थिनायाग्रयणमित्येवैताभिरनुशंसत्यथो वैश्वदेवं वै शस्त्रं देवतानामपरिहाणाय वैश्वदेवं शंसति वैश्वदेवो हि ग्रहो गृहीतो भवति तमेवैतेनानुशंसति तस्य द्विः पच्छः परिधानीयां शंसत्यर्धर्चशस्तृतीयं सा विराजमभिसंपद्यते श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै चत्वारि सूक्तानि वैश्वदेवे शंसति पशवो वै वैश्वदेवं चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यै तस्मादेनदारतं शंसेद्रमन्ते हास्मिन्पशवः ॥ ३ ॥

षोळशाहावं वैश्वदेवं शंसति षोळशकलं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वस्याऽऽप्त्यै तत्सप्तदशविधं भवत्येकादश देवताश्चतस्रो निविद उक्थवीर्यं याज्येति सप्तदशो वै प्रजापतिरेतद्वा आर्धुकं कर्म यत्प्रजापतिसंमितं विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं म इत्युक्थं शस्त्वा जयति वैश्वदेव्या वैश्वदेवं ह्येतदुक्थं मद्वत्या मद्वद्धि तृतीयसवनं त्रिष्टुभा बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधात्यनु वषट्करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै वागेवासौ प्रथमाऽनुष्टुप्तां पञ्च गायत्र्योऽनुवर्तन्ते

इस लिये ऋभुवो का सूक्त पढ़ा जाता है। अनन्तर वह वेन, आदित्य और बृहस्पति के लिये मंत्रों का पाठ करता हैं (ऋ. १०।१२३।१; ६३।३; ४।५०।६)। इनके साथ वह शुक्र, मन्थिन और आग्रयण ग्रहों को संयुक्त करता है और यह वैश्वदेव शस्त्र है(ऋ.१।८९) यह वैश्वदेव शस्त्र है अतः इसमें इसमें कोई देवता छूटता नहीं। वह वैश्वदेव का पाठ करता है क्योंकि वैश्वदेव ग्रह (पात्र) गृहीत होता है। इससे वह उसे संयुक्त करता है। परिधानीय (समापनीय) मंत्र को दो बार वह पद (चतुर्थांश) से पढ़ता है और तीसरी बार आधी ऋचा पढ़ता है। यह विराज होता है। विराज श्री तथा अन्नाद्य है इस प्रकार यह श्री तथा अन्नाद्य के रूपमें विराज की प्राप्ति के लिये होता है। वैश्वदेव में वह चार सूक्तों का पाठ करता है। वैश्वदेव पशु है। पशु चतुष्टय तथा चौपाये हैं। निश्चय ही वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। इससे इसे संसक्त की भाँति पढ़ें। उसके साथ पशु रमण करते हैं (अनुरक्त रहते हैं)।

१६.४ वह वैश्वदेव को सोलह आहावों से कहता है (अर्थात् यह सोलह बार होता है। यह सोलह कलाओं (अंशों) का है। यह इसी सब की प्राप्ति के लिये है। यह सप्तदश है—एकादश देवता, चार निविद, उक्थ (सूक्त) का वीर्य और याज्या मन्त्र प्रजापति सप्त दश हैं; जो प्रजापति के अनुकूल (संमित) कर्म है वह ऋद्धिकारी (आर्धुक) हैं। उक्थ का पाठ कर वह एक याज्या मंत्र विश्वेदेवों के लिये कहता है—विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं मे (ऋ० ६।५२।१३ हे विश्वेदेव ! मेरे इस आह्वान को सुनें) क्योंकि यह उक्थ विश्वेदेवों के लिये है। यह 'मद् वत्' मंत्र है क्योंकि तृतीय सवन 'मद्वत्' से संबद्ध है। यह त्रिष्टुभ् छन्द है क्योंकि त्रिष्टुभ् बल तथा वीर्य है। इस प्रकार वह यजमान में बल तथा वीर्य रखता है। वह आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मनः सावित्रं प्राणो वायव्या चक्षुषी द्यावापृथिवीयं योऽयमनिरुक्तः प्राणः स सुरूपकृत्नुः श्रोत्रमार्भवं प्राणोऽपानो व्यान इति तिस्र एकपातिन्य आत्मा सूक्तं यदन्तरामंस्तन्निवित्प्रतिष्ठा परिधानीयाऽन्नं याज्या तदाहुः कस्माद्ब्रह्मक्षत्रे एव प्रच्यावुके बिलच्युतेति ब्रह्म वै प्रातःसवनं क्षत्रं माध्यंदिनं सवनं विट्तृतीयसवनं तद्यद्यथोपपादमेव प्रातःसवनमाध्यंदिनयोः परिदधाति तस्माद्ब्राह्मण्यप्रजा अनवधृतं क्षियन्त्यनवधृतं क्षत्रिया अथ यत्तृतीयसवनस्य परिधानीया च्युता तस्माद्बिलच्युतेति ॥ ४ ॥

घृतस्य यज सौम्यस्य यजेत्याहैताभ्यां वै यज्ञस्तायते यद्घृतेन च सोमेन च ते अत्र प्रीणाति प्रीते यज्ञं वहाते इत्युपांशु घृतस्य यजति रेतःसिक्तिर्वै घृतमुपांशु वै रेतः सिच्यतेऽथ यदुच्चैः सौम्यस्य यजति चन्द्रमा वै सोमोऽनिरुक्त उ वै चन्द्रमास्तस्य न परस्तात्पर्यजेदित्याहुस्तथाऽमी अमुत इदमर्वाञ्चः पश्यन्तीति पर्यजेदिति त्वेव स्थितं देवलोको वा आज्यं पितृलोकः सोमो देवलोकमेव तत्पितृलोकादभ्युत्क्रामन्त्यथो पितॄनेव तत्प्रीणन्ति यत्सोम्येन चरन्त्यथो एतदुपसद उत्सृज्यन्त

वषट् कहता है। वह प्रथम अनुष्टुप् वाक् है। अनुष्टुभ् के अनन्तर पाँच गायत्री मंत्र हैं। सावित्र (सूक्त) मन है, वायु का (मंत्र) प्राण है। द्यावा-पृथिवी का (सूक्त) दोनों आंखें हैं। यहाँ जो 'सुरूपकृत्नुः' मंत्र में जो प्राण है वह पृथक् नहीं है। ऋभुओं का सूक्त श्रोत्र है। तीनों असंबद्ध (एकपातिनी) मंत्र प्राण, अपान तथा व्यान है। सूक्त आत्मा है। जो आत्मा (शरीर) के अन्दर है वह निविद् है। परिधानीय (समापन) मंत्र प्रतिष्ठा है। याज्या (मंत्र) अन्न है। वे कहते हैं 'क्यों ब्रह्म और क्षत्र ही पतनशील है। प्रजा अपतनशील है ?' प्रातः सवन ब्रह्म है, मध्यन्दिन सवन क्षत्र है। तृतीय सवन विट् (प्रजा) है। प्रातःसवन तथा माध्यन्दिन सवन में वह वैसे ही समाप्त करता है जैसे वे होते हैं अतः ब्राह्मण तथा क्षत्रिय प्रजा का अस्थिर (अनवधृत) शासन करते हैं। किन्तु तृतीय सवन का परिधानीय मंत्र अच्युत (स्थिर) है अतः विश (प्रजा स्थिर हैं।) (यह उत्तर है।)

१६.५ घृत की आहुति परक मंत्र को कहो और सोम की आहुतिमंत्र को कहो (शां श्रौ. सू. ८.४.१,२)। ऐसा वह कहता है। घृत और सोम से यज्ञ का विस्तार होता है। अर्थात् (यज्ञ किया जाता है)। उनको यहाँ प्रसन्न करता है। वे प्रसन्न होकर यज्ञ का वहन करते हैं। घृत का यजन मंत्र वह उपांशु कहता है। घृत रेतःसिक्ति है। रेतःसेचन उपांशु होता है। और सोम का जो उच्च स्वर से यजन मंत्र कहता है तो सोम चन्द्रमा है और चन्द्रमा स्पष्ट हैं। वे कहते हैं 'इसके बाद, कोई अतिरिक्त यजन न करे। क्योंकि वे वहाँ से इस (लोक की) ओर देखते हैं'। पर नियम यह है कि वह (यजन) करे। घृत देवलोक है। सोम पितृलोक है। इस प्रकार वे निश्चय ही पितृलोक से देवलोक को उत्क्रमण करते हैं। 'और जो सोम से प्रारम्भ करते हैं उससे पितरों को प्रसन्न करते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इत्याहुरग्निं सोमं विष्णुमिति वा उपसत्सु प्रतियजत्यग्निं सोमं विष्णुमितीदं हरन्त्येतं सौम्यं सदस्तं होता प्रतिगृह्योपनिधत्तेऽथास्य सर्पिष्यात्मानं पर्यवेक्ष्याङ्गुलिभ्यां सर्पिरुपस्पृशति चक्षुष्या असि चक्षुर्मे पाहीति चक्षुषी विमृजीत चक्षुरेवास्य तद्गोपायन्ति तमुद्गातृभ्यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥

अथ पात्नीवतग्रहेण चरन्ति पत्नीरेव तदाहवनीयभाजः कुर्वन्ति तस्य नानुवषट्करोत्याज्यसंसृष्टो हि भवत्यननुवषट्कारभागाज्यमुपांशु यजति रेतःसिक्तिर्वै पत्नीवतग्रह उपांशु वै रेतः सिच्यते नानुवषट्करोति रेतः सिक्तिर्वै पत्नीवतग्रहः संस्थाऽनुवषट्कारो नेत्पुरा कालाद्रेतःसिक्तिं संस्थापयानीति मद्वती याज्या मद्वद्धि तृतीयसवनं तदाहुर्यदेषा नेष्टुर्याज्याऽथ कस्मादेनयाऽऽग्नीध्रो यजतीत्याग्नेयी वा एषा याज्याऽऽग्नेय आग्नीध्रस्तस्मादेनयाऽऽग्नीध्रो यजत्यथो एवं समा अनुक्तानां वषट्कारा भवन्तीति ॥ ६ ॥

एकविंशत्याहावमाग्निमारुतं शंसत्येकविंशो वै चतुष्टोमः स्तोमानां परमः

और इस प्रकार उपसद को छोड़ देते हैं' ऐसा वे कहते हैं। उपसदों में वह अग्नि, सोम और विष्णु का यजन करता है और उसी के अनुरूप इसमें भी अग्नि, सोम और विष्णु का यजन करता है। वे सोमरस को सदस् में ले आते हैं। होता इसे लेकर रखता है। फिर इसमें सर्पिस् (घृत) में वह अपने को देखता है और और दो अङ्गुलियों से सर्पिस् का स्पर्श करता है। 'चक्षुष्या असि चक्षुर्मे पाहि' (तै. सं. १.२.१.२; वाज० सं. २.४.४ तुम आँख की रक्षिका हो मेरी आँख की रक्षा करो) (इन शब्दों से) वह आँखों को रगड़े। इस प्रकार वह अपने आँखों की रक्षा करता है। उसे वह उद्गाताओं को देता है।

१६.६ फिर वे पात्नीवत् ग्रह से चलते हैं। इस प्रकार वे (देवताओं की) पत्नियों को आह्वनीय में भागी बनाते हैं। वह इसके लिए द्वितीय वषट् नहीं कहता क्योंकि यह घृत में संसृष्ट होता है और द्वितीय वषट्कार में घृत का भाग नहीं है। वह उपांशु यजन करता है (याज्या मंत्र पढ़ता है)। पत्नीवत् ग्रह रेतस् की सिक्ति है। रेतःसेचन उपांशु होता है। कुछ (यह सोचकर) द्वितीय वषट् नहीं कहता (कि) 'पत्नीवतग्रह रेतःसेक है; द्वितीय वषट्कार संस्था (समापन) है। मैं समय से पूर्व रेतःसिक्ति को समाप्त (पूर्ण) न कर दूँ।' याज्या (मंत्र) (ऋ० ३.६.९) मद्वती है क्योंकि तृतीय सवन मद्वत् है। वे कहते हैं कि 'यह तो नेष्टा का याज्या मंत्र है फिर आग्नीध्र इससे क्यों यजन करता है?' यह याज्या अग्नि से संबद्ध है; आग्नीध्र अग्नि से संबद्ध है; इसलिये आग्नीध्र इसे याज्या के रूप में प्रयुक्त करता है। और इस प्रकार इन अनुक्तों के वषट्कार वही होते हैं।' (यह उत्तर है।)

१६.७ वह 'अग्नि मारुत' को इक्कीस आह्वानों से कहता है। स्तोमों में सर्वश्रेष्ठ चतुष्टोम जिस पर प्रतिष्ठा प्राप्त की जाती है यह एकविंश प्रकार का है। यह प्रतिष्ठा के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रतिष्ठानीयः प्रतिष्ठित्या एव तच्चतुर्विंशतिविधं भवति विंशतिः पर्वाणि तानि चतुश्चत्वारिंशच्चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुब्वलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधाति वैश्वानरीयं शंसति वैश्वानरीयो हि ग्रहो गृहीतो भवति तमेवैतेना· नुशंसति रौद्रीं शंसति घोरो वै रुद्रो भैषज्यमेव तत्कुरुतेऽथो अन्तभाग्वा वा एष तस्मादेनामन्ते शस्त्रे शंसति मारुतं शंसत्येतत्पूगो वै रुद्रस्तदेनं स्वेन पूगेन समर्ध- यत्यथ यज्ञायज्ञीयस्य स्तोत्रियानुरूपौ तौ वै मध्ये भिया एव शंसति मध्ये हीय- मात्मनो भिया एव योनिर्जातवेदसीयं शंसति तेनाऽग्निमारुतमित्याख्यायते तस्मा- देनदभ्यग्रं शंसेद्यथाऽग्निं प्रदाव्यमिति मोक्षमाण एवमापोदेवत्याः शंसति शान्तिर्वै भेषजमापः शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियते तस्मादेना आरतं शंसेद्यथाऽप्सु न्युन्दमान एवमहिर्बुध्न्यं शंसत्यग्निर्वा अहिर्बुध्न्यस्तमेतयोर्ज्वलयत्यथो धिष्ण्याने- वैतयाऽनुशंसति देवानां च पत्नी राकां च शंसति पात्नीवतग्रहमित्येवैताभिरनु- शंसत्यथो अन्तभाजो वै पत्न्यस्तस्मादेना अन्ते शस्त्रे शंसति ॥ ७ ॥

लिये है। यह (शास्त्र) चौबीस प्रकार का है। इसमें वीस पर्व (जोड़) हैं। इससे चौवालीस होते हैं। त्रिष्टुभ् में चौवालीस अक्षर हैं। त्रिष्टुप् बल और वीर्य है। निश्चय ही इस प्रकार अह यजमान में बल और वीर्य रखता है। वह वैश्वानर के लिये एक सूक्त (ऋ० ३।३) पढ़ता है। क्योंकि वैश्वानर के लिये ग्रह लाया गया होता है। इस प्रकार इससे उसे संयुक्त करता है। वह रुद्र के लिये एक मंत्र (ऋ० २।३३।१) पढ़ता है। रुद्र घोर (भयंकर) हैं। इस प्रकार वह भैषज्य (चिकित्सा) करता है। और उनका अंश अन्त में है अतः अन्तिमशास्त्र में उनका पाठ करता है। वह मरुतों के लिये एक सूक्त (ऋ० १।८७) का पाठ करता है। ये रुद्र के गण हैं। अतः इस प्रकार उन्हें (रुद्र को) अपने गणों के साथ समृद्ध करता। तदनन्तर यज्ञायज्ञीय का स्तोत्रिय और अनुरूप आते हैं (ऋ० ६।४८।१,२; ऋ० ७।१६।११, १२) ये प्रत्येक स्थिति में तीन मंत्रों के बनाये जाते हैं)। इन दोनों को बीच में भयभीत करने के लिये पाठ करता है क्योंकि शरीर के मध्य में योनि (गर्भ ?) भयभीत करने के लिये हैं। वह जातवेदस (अग्नि) के लिये एक सूक्त (ऋ० १।१४३)। का पाठ करता है। इससे यह अग्नि मारुत (शस्त्र) वहाँ जाता है। इसलिये इसका शीघ्रता से पाठ करे जैसे कोई जंगल की अग्नि से मोक्ष के लिये भागे। वह आपांदेवत्य (ऋ० १०।९।१-३) मन्त्रों का पाठ करता है। आप (जल) शान्ति और भेषज हैं। वह यज्ञान्त में शान्ति और भेषज करता है। इसलिये वह उन्हें धीरे-धीरे पढ़े जैसे जल में अपने को बिखेर रहा हो। वह 'अहिर्बुध्न्य' (ऋ० ६।५०।१४) का पाठ करता है। अहिर्बुध्न्य (पाताल का अहि) अग्नि है। इससे उसे (अग्नि को) वह प्रज्वलित करता है। और इससे वह धिष्णियों (वेदियों) को साथ करता है। देवताओं की पत्नियों (ऋ० ५।४६।७,८) और राका (ऋ० २।३२।४,५) का पाठ करता है। निश्चय ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अक्षरपङ्क्तयः शंसति पशवो वा अक्षरपङ्क्तयः पशूनामेवाऽऽप्त्या अथो प्राणापानौ वा अक्षरपङ्क्तयः प्राणापानावेव तदात्मन्धत्तेऽथो शस्त्रस्यैव सेन्द्रतायै पैत्रीश्च यामीश्च शंसति नाराशंसानेवैताभिरनुशंसत्यथो अन्तभाजो वै पितरस्तस्मादेना अन्ते शस्त्रे शंसति स्वादुष्कुलीयाः शंसति सोममेवैताभिरिन्द्राय स्वदयत्यथो देवलोको वा इन्द्रः पितृलोको यमो देवलोकमेव तत्पितृलोकादभ्युत्क्रामन्ति तास्वध्वर्युर्मद्वत्प्रत्यागृणाति मद्वद्धि तृतीयसवनं वैष्णुवारुणीं शंसति यज्ञो वै वैष्णुवारुणो यद्वै यज्ञस्य स्खलितं वोल्वणं वा भवति तदेतया भिषज्यति भैषज्यमेवैषा वैष्णवीं चाऽऽग्नेयीं च शंसत्यग्नाविष्णू वै देवानामन्तभाजौ तस्मादेने अन्ते शस्त्रे शंसत्यैन्द्रया परिदधातीन्द्रस्य ह्येष तमिन्द्र एवान्ततः प्रतितिष्ठति ॥ ८ ॥

किंदेवत्यः सोम इति मधुको गौश्रं पप्रच्छ स ह सोमः पवत इत्यनुद्रुत्यैतयस्य

इससे वह पत्नीवत ग्रह को संयुक्त (साथ) करता है। और पत्नियों का भाग अन्त में है। इसलिये अन्त शस्त्र में इन मंत्रों का पाठ करता है।

१६.८ वह अक्षर पंक्तियों (ऋ० ६।४४।७-९) का पाठ करता है। अक्षर पंक्ति पशु है। इसलिये वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। और अक्षर पंक्ति प्राण तथा अपान हैं। इससे वह प्राण तथा अपान को अपने में रखता है। और वे शस्त्र में इन्द्र की उपस्थिति के लिये हैं। वह पितरों के लिये (ऋ० १०।१५।१-३) तथा यम के लिये ऋ० १०।१४।४,३ तथा ५) मंत्रों का पाठ करता है और इस प्रकार नाराशंस (ग्रहों) को साथ करता है। पितर अन्त में भागी होते हैं अतः इन्हें अन्त शस्त्र में पढ़ता है। वह स्वादुष्कुलीयाः (ऋ० ६।४७।१-३) मंत्रों का पाठ करता है। इससे इन्द्र के लिये वह सोम को स्वादनीय बनाता है। और इन्द्र देवलोक है और यम पितृलोक हैं। इस प्रकार वे पितृलोक से देवलोक को उत्क्रमण करते हैं। उनसे अध्वर्यु 'मद्' युक्त उत्तर देता है क्योंकि तृतीय सवन 'मन्' युक्त है। वह विष्णु तथा वरुण के लिये एक मंत्र[1] कहता है। यज्ञ विष्णु तथा वरुण से सम्बद्ध है। यज्ञ में जो स्खलित या भ्रान्ति है उसे इससे ठीक करता है। इसलिये यह भैषज्य (ओषधिकर्म) है। वह एक मन्त्र विष्णु के लिये (ऋ० १।१५४।१) तथा एक मन्त्र अग्नि के लिये (ऋ० १०।५३।६) पढ़ता है। देवताओं में अग्नि और विष्णु वे हैं जिसका अंश अन्त में होता है। इसलिये इन मन्त्रों को वह अन्त में पढ़ता है। वह इन्द्र के लिये एक मन्त्र (ऋ० १।१७।२०) से समाप्त करता है क्योंकि यह इन्द्र का है। इस प्रकार अंत में उसे इन्द्र प्रतिष्ठित करते हैं।

१६.९ मधुक ने गौश्र से पूछा—सोम के कौन देवता हैं ? वे 'सोमः पवते' (सोम पवित्र होते हैं) इन शब्दों का अनुधावन कर उत्तर दिया—'इसके दूसरे होंगे' ऐसा कहो

---

१. यह मन्त्र ऋग्वेद में नहीं है। इसका एक पाठ अथर्ववेद (७।२९।१) तथा दूसरा पाठ आ० श्रौ० सू० (५।२०) में है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वा अन्ये स्युरिति प्रत्युवाच बह्वृचवदेवैन्द्र इति त्वेव पैङ्ग्यस्य स्थितिरासैन्द्राग्न इति कौषीतकिरग्निना वै प्रतिपद्यते यदाज्येनेन्द्रमनुसंतिष्ठत एतां परिधानीयां तस्मादैन्द्राग्न इत्येष वा अग्निष्टोम एष वा उ कामाय कामायाऽऽह्रियते यो ह वा एतेनानिष्ट्वाऽथान्येन यजते गर्तपत्यमेव तद्धीयते प्र वा मीयत इति ह स्माऽऽह स वा एषोऽग्निष्टोम आज्यप्रभृत्याग्निमारुतान्तो यच्छस्यं त्रीणि षष्टिशतान्यृचां संपद्यन्ते त्रीणि वै षष्टिशतानि संवत्सरस्याह्नां संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्या अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिरित्युक्थं शस्त्वा यजत्याग्निमारुत्याऽऽग्निमारुतं ह्येतदुक्थं जगत्या जागतं हि तृतीयसवनं मद्वत्या मद्वद्धि तृतीयसवनमनुवषट्करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥ ९ ॥

सोमेनेष्ट्वा सौत्रामण्या यजेत श्रियं प्रजां विराजं चेच्छन्नैन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत्सौत्रामण्यात्मा वै यज्ञस्य त्रिपशुर्बाहूपशुस्तस्मादात्मानमभितो बाहू भवतस्तस्मादात्मानमभितः पार्श्वे स्यातां यत्सुरासोमग्रहाननुवषट्कृत्य सर्वे तस्मात्सोमेनेष्ट्वा सौत्रामणी कुर्याद्य एवं विद्वान्सोमेनेष्ट्वा सौत्रामण्या यजेत स श्रियं

पैङ्ग्य का मत है कि बह्वृच (शाखा या ब्राह्मण) के समान इन्द्र है।' कौषीतकि का मत है कियह इन्द्र और अग्नि से संबद्ध है। जो यह आज्य से प्रारम्भ होता है वह अग्नि से प्रारम्भ होता है और इस समापन मंत्र (का०श्रौ०सू० १०।९।२५ प०ब्रा० १६.१.२ इससे साम्य रखता है) में इनसे समाप्त होता है। इसलिये यह इन्द्र और अग्नि से संबद्ध होना चाहिये। 'यह अग्निष्टोम है यह सभी मनोकामनाओं के लिये होता है। जो इससे यजन न कर अन्य से यजन करता है वह अपने लिये पतन-गर्त का निर्माण करता है और नष्ट होता है।' ऐसा वे कहते हैं। यह अग्निष्टोम आज्यशास्त्र से प्रारंभ होता है और अग्निमारुत से समाप्त होता है। जो यहाँ पाठ होता है वह तीन सौ साठ ऋचायें होती हैं। वर्ष में तीन सौ साठ दिन हैं। इस प्रकार इससे वर्ष की प्राप्ति होती है। उक्थ का पाठ कर वह 'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः (ऋ.५।६०।८) हे अग्नि ! शुभकारी गायनशील मरुतों के साथ–इस अग्नि और मरुतों को कहे मंत्र से यजन करता है क्योंकि उक्थ अग्नि और मरुतों को कहा गया है। यह जगती छन्द में है क्योंकि तृतीय सवन जगती से संबद्ध है; इसमें 'मद्' हैं क्योंकि तृतीय सवन 'मद्वत्' है। वह आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये वषट् कहता है।

१६.१० श्री, प्रजा तथा विराज की कामना वाला सोम से यजन कर सौत्रामणि से यजन करे। सौत्रामणि इन्द्र का यज्ञक्रतु (यज्ञीय कर्म) है। तीसरा पशु यज्ञ की आत्मा (शरीर) है। दो पशुबाहु हैं। अतः बाहु शरीर आस-पास होते हैं। अतः ये दोनों शरीर को दोनों ओर होने चाहिए। जो सुरा और सोम के ग्रह के बाद सभी द्वितीय वषट्कार (करते हैं)। अतः सोम याग कर सौत्रामणि करना चाहिये। वह जो ऐसा जानकर सोम याग

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रजां विराजमाप्नोति यश्चैवं वेद श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्या अवभृथमवैति यथा सोमे मैत्रावरुण्या वा पयस्यया यजेत तस्य उक्तं ब्राह्मणम् ॥ १० ॥

ऐन्द्राग्नान्युक्थ्योक्थानि भवन्तीन्द्राग्नी वै सर्वे देवा वैश्वदेवं तृतीयसवनं सर्वेषामेव देवानां प्रीत्या आग्नेयवीषु मैत्रावरुणाय प्रणयन्त्यैन्द्रीष्वितरयोस्तेन तान्यैन्द्राग्नानि भवन्ति चत्वारि चत्वारि सूक्तानि शंसन्ति पशवो वा उक्थानि चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यैतानि द्वादश संपद्यन्ते द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै चतुराह्वावानि शस्त्राणि पशवो वा उक्थानि चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यै द्विदेवत्या उक्थयाज्या द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यैतानि चत्वारि संपद्यन्ते पशवो वा उक्थानि चतुष्टया वै पशवोऽथो

कर सौत्रामणि यजन करता है श्री, प्रजा तथा विराज को प्राप्त करता है। और जो ऐसा जानता है वह भी (प्राप्त करता है)। विराज श्री तथा अन्नाद्य है। अतः यह श्री तथा अन्नाद्य के रूप में विराज की प्राप्ति के लिये है। सोम याग की ही भाँति वह अवभृथ स्नान करता है। अथवा पयस्या से मित्रावरुण का यजन करे। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है।'

१६.११ उक्थ से संबद्ध (यजन) इन्द्र और अग्नि का होता है। सभी देव इन्द्र और अग्नि हैं। तृतीय सवन विश्वेदेवों से संबद्ध है। इससे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। अग्नि के मंत्रों में मित्रावरुण को आगे करते हैं। अन्य दो में जो इन्द्र को हैं (उनमें आगे करते हैं)। इससे ये इन्द्र और अग्नि कहे गये हैं। वे चार-चार सूक्तों का पाठ करते हैं। उक्थ पशु हैं। पशु चार हैं और चार पैरों वाले हैं। निश्चय ही वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। वे बारह बनते हैं। वर्ष में बारह मास हैं। वे वर्ष की प्राप्ति के लिये हैं। शस्त्रों में चार आह्वान हैं। उक्थ पशु हैं। पशु चतुष्टय हैं और चार पैरों वाले हैं। वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। उक्थ के याज्या मंत्र दो देवताओं को कहे गये हैं। यजमान को दो पैर हैं। अतः वे प्रतिष्ठा के लिये हैं। वे चार बनती है (चार देवता हैं–इन्द्र, वरुण, विष्णु, बृहस्पति)। उक्थ पशु है पशु चतुष्टय और चार पैरों वाले हैं। निश्चय ही वे पशुओं की प्राप्ति के लिए हैं। मैत्रावरुण की ऋचा (ऋ. ६.६८.११) इन्द्र और वरुण को कहे गये हैं क्योंकि उक्थ इन्द्र और बृहस्पति का है। ब्राह्मणाच्छंशी के (ऋ.७.९७.१०) इन्द्र और बृहस्पति हैं क्योंकि इसका उक्थ इन्द्र और बृहस्पति को कहा गया है। अच्छावाक् (ऋ. ६.६९.३) के इन्द्र और विष्णु है क्यों कि इसका उक्थ इन्द्र और विष्णु से संबद्ध है। प्रथम तथा अन्तिम 'मद्' युक्त है क्योंकि तृतीय सवन 'मद्' वत् है। वे तीन

१. डा० कीथ ने इस खण्ड को प्रक्षिप्त माना है क्योंकि इसकी यहाँ उपस्थिति अस्तमित सी है और शां० श्रौ० सू० में इसका निर्देश नहीं है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्या ऐन्द्रावरुणी मैत्रावरुणस्यैन्द्रावरुणं ह्यस्योक्थं भवत्यैन्द्राबार्हस्पत्या ब्राह्मणाच्छंसिन ऐन्द्राबार्हस्पत्यं ह्यस्योक्थं भवत्यैन्द्रावैष्णव्यच्छावाकस्यैन्द्रावैष्णवं ह्यस्योक्थं भवति प्रथमोत्तमे मद्वत्यौ मद्वद्धि तृतीयसवनं ता वै तिस्रो भवन्ति त्रयो वा इमे लोका इमानेव तं लोकानाप्नुवन्ति ता वै त्रिष्टुभो भवन्ति बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधत्यनुवषट्कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥ ११ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हरिः ॐ आनुष्टुभो वा एष वज्रो यत्षोळशी तद्यत्षोळशिनमुपयन्त्यानुष्टुभेनैव तद्वज्रेण यजमानस्य पाप्मानमपघ्नन्ति स वै हरिवान्भवति प्राणो वै हरिः स हि हरति तस्माद्धरिवान्भवति तदसौ वै षोळशी योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणन्त्यथो षोळशं वा एतत्स्तोत्रं षोळशं शस्त्रं तस्मात्षोळशीत्याख्यायते तद्यत्षोळशिनमुपयन्ति षोळशकलं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वस्याऽऽप्त्या अथो इन्द्र उ वै षोळशी तस्माद्धरिवान्भवति हरिस्तवो हीन्द्र इन्द्र जुषस्व प्रवहाऽऽयाहि शूर हरिहेति ताः पञ्चविंशत्यक्षरा एकैका नवभिर्नवभिरक्षरैरुपसृष्टाऽऽत्मा वै पञ्चविंशः प्रजापशव उपसर्गाः

होती है। ये लोक तीन है। निश्चय ही वे इन तीनों लोकों को प्राप्त करते हैं। वे त्रिष्टुभ् मन्त्र हैं। त्रिष्टुभ् बल तथा वीर्य है। इससे वे यजमान में बल और वीर्य को रखते हैं। वे आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट् कहते हैं॥

शाङ्खायन ब्राह्मण में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

१७.१ हरिः ओम्। षोडशी कृत्य अनुष्टुभ् से निर्मित वज्र है। तो जो षोडशी को करते है वह अनुष्टुभ् से निर्मित वज्र से यजमान के पाप को मारते है। यह 'हरि' (हरितवर्ण के अश्वों) से युक्त होता है। हरि प्राण है क्योंकि वह हरता (चलता-खींचता) है। इसलिये यह हरिवान् होता है। षोडशी वह है जो वहाँ तप रहे हैं। इस प्रकार वे उन्हें प्रसन्न करते हैं। यह सोलहवाँ स्तोत्र है, सोलहवाँ शस्त्र हैं इसलिये इसे षोडशी कहते हैं। जो वे षोडशी को करते हैं तो यह समस्त विश्व सोलह भागों का है अतः यह इस समस्त की प्राप्ति के लिये हैं। और षोडशी इन्द्र हैं इस लिये यह हरित अश्वों का उल्लेख करता हैं (हरिवान्) क्योंकि इन्द्र के हरित अश्वों की प्रशंसा की जाती हैं। 'इन्द्र जुषस्व प्र वह आयाहि शूर हरिहा' ये मंत्र पच्चीस अक्षरों के हैं और एक-एक में नौ अक्षर जोड़े गये हैं [1]। आत्मा पञ्चविंश है और जोड़ प्रजा तथा पशु हैं। इससे वह

---

१. ये मंत्र शा. श्रौ. सू. ९।५।२ अवर्त्र २।५।१ सामवेद २।३०२-३०४ आ. श्रौ. सू. ६।८।१ में श्रुत हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रजयैव तत्पशुभिः प्रेष्येरन्नाद्येनेत्यात्मानमुपसृजते ताश्चतुस्त्रिंशदक्षराः संपद्यन्ते स्वराड् वैतच्छन्दो यत्किंच चतुस्त्रिंशदक्षरं स्वाराज्यमेनेनाऽऽप्नोति ताः संशस्ताः पञ्चानुष्टुभः संपद्यन्ते दशाक्षरं च पदमुदैत्येकैकस्यै द्वे द्वे त्वावतः पुरूवसो३ इति गायत्रीमुपसंशंसत्येतेषामेवाक्षराणां संपदेऽथो एतया सह स्तोत्रियः षळनुष्टुभः संपद्यन्ते तस्मादेतां शंसति संपद एतत्प्रतिरूपमु हैकेऽनुरूपं कुर्वन्ति तदु वा आहुरसौ वै षोळशी योऽसौ तपति न वा एतस्यान्योऽनुरूपोऽस्ति स योऽत्रानुरूपं कुर्वंतं ब्रूयादप्रिय एनं भ्रातृव्यः प्रत्याख्यायिष्यत इति तथा ह स्यात्तस्मादत्रानुरूपं नाऽऽद्रियेत ॥ १ ॥

अथात ऊर्ध्वानि च्छन्दांसि विहरति प्राणा वै छन्दांसि प्राणानेव तदात्मन्व्यतिषजत्यवबर्हाय तस्माद्धीमे प्राणा विष्वञ्चोऽवाञ्चोऽनुनिर्वाञ्च्यथो आनुष्टुभो वै षोळशी सर्वाण्येवैतच्छन्दांस्यनुष्टुभमभिसंपादयति गायत्रीश्च पङ्क्तीश्च विहरति यजमानच्छन्दसं पङ्क्तिस्तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री तेज एव तद्ब्रह्मवर्चसं यजमाने दधात्युष्णिहश्च बृहतीश्च विहरति यजमानच्छन्दसमेवोष्णिक्पशवो बृहतीर्बार्हतानेव

अपने को प्रजा, पशु, प्रेष्य तथा अन्नाद्य से संयुक्त करता है। ये चौंतीस अक्षरों की होती हैं। जो कुछ चौंतीस अक्षरों का है वह स्वराज छन्द है। इससे वह स्वराज्य को प्राप्त करता है। साथ आवृत्त किये जाने पर वे पाँच अनुष्टुभ् मंत्र बनाते हैं तथा और दश अक्षरों का एक पद अवशिष्ट बचता है, प्रत्येक मंत्र के लिए दो अक्षर हैं। इन अक्षरों की पूर्णता के लिये वह त्वावतः पुरूवसो३ (ऋ.८।४६।१ हे पर्याप्त तेजवाले ! आप जैसे) इस गायत्री मंत्र को बाद में जपता है। और इसके साथ ही वे छः अनुष्टुभ् मंत्रों का एक स्तोत्रिय बनाते हैं। अतः इसे पूर्णता के लिये पढ़ता है। इसकी प्रतिरूपता के लिए कुछ लोग एक अनुरूप करते हैं पर इसके लिये वे कहते हैं कि षोडशी वे हैं जो वहाँ तप रहे हैं। उनका कोई प्रतिरूप नहीं है। यदि कोई उनका अनुरूप करते हुये कहता है 'द्वेषपूर्ण भ्रातृव्य प्रत्याख्यान करेगा तो ऐसा ही होता है। अतः यहाँ अनुरूप का नहीं करना चाहिये।

१७.२ इसके अनन्तर बाद में छन्दों को पलट कर रखता है (विहरति)। छन्द प्राण हैं इस प्रकार वह शरीर में प्राणों को संसक्त करता है जिससे वे पृथक् न हों। इससे ये प्राण यद्यपि विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होते हैं पर पृथक् नहीं होते। और षोडशी अनुष्टुभ् से सम्बद्ध है। इस प्रकार वह सभी छन्दों को अनुष्टुभ् से संबद्ध करता है। वह गायत्री (ऋ.१।१६।१-३) तथा पङ्क्ति (ऋ.१।८४।१०-२) छन्दों को ऊपर नीचे रखता है (विहरति)। पंक्ति यजमान का छन्द है। गायत्री तेज और ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार वह यजमान में तेज और ब्रह्मवर्चस् रखता है। वह उष्णिह(ऋ.८।९८।१-३) तथा बृहती (ऋ.३।४५।१-३) छन्दों का विहरण (व्यत्यास) करता है। उष्णिह यजमान का छन्द है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्पशून्यजमाने दधाति द्विपदां च विंशत्यक्षरां त्रिष्टुभं च विहरति यजमानच्छन्दसं द्विपदा बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधाति द्विपदाश्च षोळशाक्षरा जगतीश्च विहरति यजमानच्छन्दसमेव द्विपदाः पशवो जगतीर्जागतानेव तत्पशून्यजमाने दधाति गायत्रीः शंसति प्राणो वै गायत्र्यः प्राणमेव तदात्मन्धत्ते सप्तपदां शंसति सप्त वै छन्दांसि सर्वेषामेव च्छन्दसामाप्त्या अथो एतया सह गायत्र्यश्चतस्रोऽनुष्टुभः संपद्यन्ते तस्मादेतां शंसति संपदे ॥ २ ॥

अथ नित्या आनुष्टुभः शंसत्यानुष्टुभो वै षोळशी तदेनं स्वेन रूपेण समर्धयति ता वा अष्टौ भवन्त्येवाभिर्वै देवाः सर्वा अष्टीरश्नुवत तथो एवैतद्यजमान एताभिरेव सर्वा अष्टीरश्नुते त्रिः शस्तया परिधानीयया दश संपद्यन्ते दश दशिनी विराट्श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्या उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपमिति परिदधात्यदो वै ब्रध्नस्य विष्टपं यत्रासौ तपति तदेव तद्यजमानं दधाति त्रिरेव

बृहती पशु है। इस प्रकार वह बृहती से संबद्ध पशुओं को यजमान में रखता है। वह बीस अक्षरों के दो पदों वाले एक मंत्र (ऋ.९।३४।४) तथा एक त्रिष्टुभ् (ऋ. ६।४९।८) को विहरण (व्यस्त) करता है। दो पदों का मंत्र (द्विपदा) यजमान का छन्द है। त्रिष्टुभ् बल तथा वीर्य है। इससे वह यजमान में बल और वीर्य को रखता है। वह षोडश् अक्षरों वाली द्विपदाओं (दो पदों वाले मंत्र जो शा०श्रौ०सू० ९।६।६ में प्रदत्त है) जगती मंत्रों (ऋ.१०।३६।१-४) का विहरण करता है। दो पदों के मंत्र यजमान के छन्द है। जगती पशु है। इस प्रकार वह जगती से संबद्ध पशुओं को यजमान में रखता है। वह गायत्री मंत्रों का पाठ करता है। गायत्री मंत्र प्राण हैं। इस प्रकार वह अपने में प्राण रखता है। वह सात पदों के एक मंत्र का पाठ करता है। छन्द सात हैं। यह सभी छन्दों की प्राप्ति के लिये है। इसके साथ एक गायत्री मंत्र मिलाकर चार अनुष्टुप् होते हैं (ऋ० १।८४।१३-१५ तथा १०।१३३।१) अतः वह इसे पूर्णता के लिये पढ़ता है।

१७.३ तदनन्तर नित्य (सामान्य) अनुष्टुपों का पाठ करता है।[1] षोडशी अनुष्टुभ् से संबद्ध है। अतः उसे यह अपने रूप से समृद्ध करता है। वे आठ हैं। इन मंत्रों से देवों ने सभी कामनाओं (प्राप्तव्यों) को प्राप्त किया। इस प्रकार यजमान भी सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। अन्तिम मंत्र तीन बार आवृत किये जाने पर वे दश होते हैं। विराज दश से बना है। विराज श्री तथा अन्नाद्य (भोज्यान्न) है। ये अन्नाद्य तथा श्री के

---

१. शां० श्रौ० सू० ९.६.१४-१९ में ऋ० ८.६९.१-३, १०, १३-१५ तथा १७ का विधान है जो सभी अनुष्टुप् हैं। ये पूर्वोक्त कृत्रिम अनुष्टुभों की तुलना में नित्य हैं। निविद ऋ० ८.६९.१५ के पूर्व में है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

षोळशिन आह्वयते स्तोत्रिये निविदे परिधानीयायै त्रिवृद्वै षोळशी त्रिवृतैव तद्-वज्रेण यजमानस्य पाप्मानं हन्ति त एते श्लोका घोषा वीर्याणीत्युक्थानां श्लोकी घोषी वीर्यवान्कीर्तिमान्भवति य एवं वेदोक्थानां वीर्याणि ताः शंसस्ताश्चत्वारिंश-दनुष्टुभः संपद्यन्ते चत्वारिंशदक्षरा पङ्क्तिः प्रतिष्ठा वै पङ्क्तिः तद्भूतेषु यजमानं प्रतिष्ठापयति ॥ ३ ॥

विहृतया त्रिष्टुभा यजेदिति हैक आहुरेवाहिवाज्यपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानां वाजी हि वाज्यथो इदं सवनं केवलं तेवोह्ला हि वाजी ममद्धि सोमं मधुमन्त-मिन्द्रजिष्णुर्हि वाजी सत्रा वृषं जठर आवृषस्वेत्यविहृतयेति त्वेव स्थितं संसिद्धानि वा एतानि देवपात्राणि यद्याज्याः संसिद्धेनैव तद्देवपात्रेण देवेभ्यो हविः प्रयच्छति तन्न रात्र्यामुपेयादिन्द्र उ वै षोळशी न वा इन्द्रादन्यदुत्तरमति बहुरात्र्यामुपाह्रियते

रूप में विराज की प्राप्ति के लिये हैं। 'उद्यद् ब्रह्मस्य विष्टपम्'[1] (ब्रह्म (तेजस्वी) के विष्टप (स्थान) को कब ऊपर)। ब्रह्म का स्थान वहाँ है जहाँ से वह तपता है। इस प्रकार वह यजमान को वहाँ रखता है। षोडशियों का वह तीन बार आह्वान करता है—स्तोत्रिय में निविद के लिये और परिधानीय के लिये। षोडशी त्रिवृत् है। इसप्रकार वह त्रिवृत् वज्र से यजमान के पाप को दूर करता है। ये यश, शब्द (घोष) तथा उक्थों के वीर्य हैं। जो उक्थों के वीर्य को इस प्रकार जानता है वह श्लोकवान्, घोषवान्, वीर्यवान् तथा कीर्तिमान् होता है। वे एक साथ पढ़े जाने पर चालिस अनुष्टुप् होते हैं। पङ्क्ति में चालीस अक्षर हैं। पंक्ति प्रतिष्ठा है। इस प्रकार वह समस्त भूतों में यजमान को प्रतिष्ठित करता है।

१७.४ कुछ लोगों का कहना है कि वह विहृता (प्रक्षिप्त) त्रिष्टुभ् से यजन करता है अहिवाजि अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानां वाजी याज्यथो इदं सवनं केवलं तेवोह्ला हि वाजी ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र जिष्णुर्हि वाजी सत्रा वृषं जठर आवृषस्व (ऋ० १०.९६.१३ : वेगवान् के लिये। हे हरितों के स्वामी ! आपने प्राचीन अवर्षण का पान किया। वेगवान् के लिये वेगवान्। यह सवन केवल आपका हो। वेगवान् धारक है। हे इन्द्र ! मधु युक्त सोम का पान करें। वेगवान् सक्रिय है। हे शक्तिवान् ! आप सर्वदा अपने जठर में गिरावें)।[2] किन्तु नियम यह है कि विना प्रक्षिप्त के ही हों। याज्या मंत्र देवताओं के लिये तैयार (संसिद्ध) देव पात्र हैं। इस प्रकार वह संसिद्ध देवपात्रों से देवताओं को हवि देता है। यह रात्रि में न किया जाय। षोडशी इन्द्र हैं। इन्द्र से ऊपर (श्रेष्ठ) कुछ नहीं

१. यह शा० श्रौ० सू० ९६.१७ में निर्दिष्ट है।

२. ऋग्वेद का यह मंत्र इस प्रकार है—

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आवृषस्व ॥ १०.९६.१३ ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पर्याया इव त्वदाश्विनं त्वद एवैनं चतुर्थेऽहन्युपेयात्तद्वै षोळशिन आयतनं तद्वैतदहः षोळश्यन्तं संतिष्ठते तदु वा आहुरुपेयादेवं तत्कृत्स्ने वा अहोरात्रे यत्षोळशी तद्यत्षोळशिनमुपयन्त्यहोरात्रयोरेव कृत्स्नतायै ॥ ४ ॥

अथ यदतिरात्रमुपयन्त्येतावान्वै संवत्सरो यदहोरात्रे तद्यदतिरात्रमुपयन्ति संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्या अथो द्वयं वा इदं सर्वं स्नेहश्चैव तेजश्च तदुभयमहोरात्राभ्यामाप्तं तद्यदतिरात्रमुपयन्ति स्नेहतेजसोरेवाऽऽप्त्यै ॥ ५ ॥

गायत्रान्स्तोत्रियानुरूपाञ्शंसन्ति ज्योतिर्वै गायत्री तमः पाप्मा रात्रिस्तेन तज्ज्योतिषा तमः पाप्मानमपघ्नन्ति पुनरादायं शंसन्त्येवं हि सामगाः स्तुवते यथास्तुतमनुशस्तं भवतीति तदाहुरथ कस्मादुत्तमात्प्रतीहारादूर्ध्वमाहूय साम्ना शस्त्रमुपसंतन्वन्तीति ॥ ६ ॥

पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिर एव हविर्धाने मुखमाहवनीय उदरं सदोऽन्नमुक्थानि बाहू मार्जालीयश्चाऽऽग्नीध्रीयश्च या इमा अन्तर्देवतास्ते अन्तःसदसं धिष्ण्या प्रतिष्ठा गार्हपत्यव्रतश्रवणावित्यथापरं तस्य मन एव ब्रह्मा प्राण उद्गाताऽपानः प्रस्तोता व्यानः प्रतिहर्ता वाग्घोता चक्षुरध्वर्युः प्रजापतिः सदस्य आत्मा यजमानोऽङ्गानि

रात्रि में बहुत पर्याय से हो चुका है तथा अश्विन शस्त्र (भी हुआ है) अतः इसे वह चौथे दिन करे । वह षोडशी का गृह है । यह दिन षोडशी से समाप्त होता है । पर वे कहते हैं 'वह करे' क्योंकि षोडशी पूरा दिन और रात है । जो वे षोडशी करते हैं यह दिन और रात को पूर्ण करने के लिये हैं ।

१७.५ जो वे अतिरात्र करते हैं वह इसलिये कि वर्ष उतना है जितना दिन और रात । तो जो अतिरात्र करते हैं वह संवत्सर की ही प्राप्ति के लिये । और यह सभी (विश्व) दुहरा है—स्नेह तथा तेज (युक्त) । ये दोनों दिन और रात (के द्वारा) प्राप्त होते हैं । तो जो अतिरात्र करते हैं वह स्नेह और तेज की प्राप्ति के लिये ही ।

१७.६ वे गायत्री (छन्द) में स्तोत्रियों और अनुरूपों का पाठ करते हैं । गायत्री प्रकाश है । रात्रि अन्धकारमय पाप है । अतः वे ज्योति से पाप तथा तम को हटाते हैं । वे आवृत्तिकर (दुहराकर) पाठ करते हैं क्योंकि सामग ऐसा ही स्तवन करते हैं । वे कहते हैं कि 'जैसा यह गाया गया है वैसा ही पाठ होता है ।' तदनन्तर वे कहते हैं कि 'क्यों उत्तम (अन्तिम) प्रतीहार के बाद आह्वान कर वे शस्त्र को साम से संबद्ध करते हैं ?'

१७.७ यज्ञ पुरुष है; उसके दोनों हविर्धान शिर हैं, आहवनीय मुख है; सदस् उदर है; उक्थ अन्न हैं; मार्जालीय और आग्नीध्रीय दोनों बाहु हैं; सदस् के अन्दर की वेदियाँ अन्तःदेवता हैं; गार्हपत्य तथा व्रत के (दुग्ध) पकाने का अग्नि प्रतिष्ठा है । पुनः उसका ब्रह्मा मन है, उद्गाता प्राण है, प्रस्तोता अपान है, प्रतिहर्ता व्यान है, होता वाक् है, अध्वर्यु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होत्राशंसिनस्तद्यदध्वर्युः स्तोत्रमुपाकरोति चक्षुरेव तत्प्राणैः संदधात्यथो अपानमेव तन्मनसा संतनोत्यथ यत्प्रस्तोता ब्रह्माणमामन्त्रयते ब्रह्मन्स्तोष्यामः प्रशास्तरिति मनो वा अग्रणीर्भवत्येषां प्राणानां मनसा प्रसूताः स्तोमेन स्तुयामेत्यथो अपानमेव तन्मनसा संतनोत्यथ यद्ब्रह्मा स्तोत्रमनुमन्यते मन एव तत्प्राणैः संदधात्यथो अपानमेव तन्मनसा संतनोत्यथ यत्प्रस्तोता प्रस्तौत्यपानमेव तत्प्राणे दधात्यथ यदुद्गातोद्गाति प्राणमेव तद्व्याने दधात्यथ यत्प्रतिहर्ता प्रतिहरति व्यानमेव तत्प्राणे दधात्येवमेवैताः सर्वा देवताः प्राण एव प्रतिष्ठिता अथ यद्धोता साम्ना शस्त्रमुपसंतनोति वाग्वै होता वाचमेव तत्प्राणैः संदधात्यथो अपानमेव तन्मनसा संतनोत्यथ यद्धोत्राशंसिनः सामसंततिं कुर्वन्त्यङ्गान्येव तत्प्राणैः संदधत्यथ यद्यजमानः स्तोत्रमुपगाति प्राणा वा उद्गातारः प्राणानेव तदात्मन्धत्ते तस्मान्नैनं बहिर्वेद्यभ्यस्तमीयान्नाभ्युदियान्नाभ्युपाकुर्यान्नाभ्याश्रावयेन्नाभिवषट्कुर्यान्नाधिष्ण्ये प्रतपेत नेत्प्राणेभ्य आत्मानमपादधानीति ॥ ७ ॥

चक्षु है, सदस्य प्रजापति (प्रजाति) है, यजमान(सदस्य)आत्मा(शरीर)हैं तथा होत्राशंसीगण अङ्ग हैं। अध्वर्यु जो स्तोत्र प्रारम्भ करता है इससे वह चक्षु को प्राण से संयुक्त करता है और अपान को मन से संयुक्त करता है। और जो प्रस्तोता इससे ब्रह्मा को आमन्त्रित करता है कि 'हे ब्रह्मन्! हे प्रशास्ता! क्या हम स्तवन प्रारम्भ करें ?' (तो वह इसलिये कि वे सोचते हैं कि) मन इन प्राणों का अग्रणी होता है। मन से प्रेरित होकर हम स्तोम गान करें।' और इस प्रकार वह अपान को मनसे संयुक्त करता है। और जो ब्रह्मा स्तोत्र की अनुमति देता है वह इस प्रकार मन को प्राण से संयुक्त करता है। और इस प्रकार अपान को मन से संयुक्त करता है। और जो प्रस्तोता स्तवन प्रारम्भ करता है वह प्राण में अपान को रखता है। और जो उद्गाता गान करता है वह व्यान में प्राण को रखता है। और जो प्रतिहर्ता प्रतिहार करता है (अपना गान करता है) इससे वह व्यान को प्राण में रखता है। इसी प्रकार ये सभी देवता प्राण में प्रतिष्ठित हैं। और जो होता शस्त्र को साम से सम्बद्ध करता है तो होता वाक् है। इस प्रकार वह वाक् को प्राणों से संयुक्त करता है। और इस प्रकार वह अपान को मन से संयुक्त करता है। और जो होत्राशंसी गण साम से संतत करते हैं इस प्रकार वे अंगों को प्राणों से सम्बद्ध करते हैं। और यजमान जो स्तोत्र के साथ गान करता है तो प्राण उद्गाता है और इस प्रकार वह प्राणों को अपने में रखता है। इसलिये सूर्य वेदी से बाहर उसपर अस्त न हो न उदित हो और न वह तैयारी करे और न आवाहन करे, न वषट् कहे और न वेदी से बाहर तपे (क्योंकि वह यह सोचता है कि) मैं आत्मा (शरीर) को प्राण से पृथक् न करूँ।'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ यत्प्रथमेषु पर्यायेषु प्रथमेषु पदेषु निनर्तयन्ति प्रथमरात्रादेव तदसुरान्निर्घ्नन्त्यथ यन्मध्यमेषु पर्यायेषु मध्यमेषु पदेषु निनर्तयन्ति मध्यमरात्रादेव तदसुरान्निर्घ्नन्त्यथ यदुत्तमेषु पर्यायेषूत्तमेषु पदेषु निनर्तयन्त्युत्तमरात्रादेव तदसुरान्निर्घ्नन्ति तद्यथाऽभ्यागारमभिनिनर्तं पुनः पुनः पाप्मानं निर्हन्यादेवमेवैतैः स्तोत्रियानुरूपैरहोत्राभ्यामेव तदसुरान्निर्घ्नन्ति ॥ ८ ॥

गायत्र्यान्युक्थमुखानि शंसन्ति तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री तेज एव तद्ब्रह्मवर्चसं यजमाने दधाति गायत्रीः शस्त्वा जगतीः शंसन्ति व्याह्वयन्ते गायत्रीश्च जगतीश्चान्तरेण च्छन्दांस्यैवैतन्नानावीर्याणि कुर्वन्ति जगतीः शस्त्वा त्रिष्टुभ्भिः परिदधति बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप्पशवो जगती बल एव तद्वीर्येऽन्तः पशुषु च प्रतितिष्ठत्यन्धस्वत्यो मद्वत्यः पीतवत्यस्त्रिष्टुभो याज्याः समृद्धास्त्रिर्लक्षणा एतद्वै रात्रे रूपं जागृयू रात्रिं ज्योतिर्वै जागरितं तमः पाप्मा रात्रिस्तेन तज्ज्योतिषा तमः पाप्मानं तरन्ति यावदु ह वै न वा स्तूयते न वा शस्यते तावदीश्वरा यदि नासुररक्षांस्यन्ववपातोस्तस्मादाहवनीयं समिद्धमाग्नीध्रीयं गार्हपत्यं धिष्ण्यान्समुज्ज्व-

---

१७.८ और जो प्रथम पर्यायों में प्रथम पदों में दुहराते हैं वह प्रथम रात्रि से ही असुरों को नष्ट करते हैं। और जो मध्यम पर्यायों में मध्यम पदों में आवृत्त करते हैं वह इस प्रकार मध्य रात्रि से असुरों को नष्ट करते हैं। जो अन्तिम पर्यायों में अन्तिम पदों में आवृत करते हैं वह अन्तिम रात्रि से असुरों को मारते हैं। जैसे पृथक् आवृति और पृथक्-पृथक् दुहराने से कोई पापों को पुनः पुनः नष्ट करता है उसी प्रकार इन स्तोत्रियों और अनुरूपों के द्वारा दिन-रात से असुरों को दूर करते हैं।

१७.९ उक्थों के मुख (प्रारम्भ) को गायत्री मन्त्रों में पाठ करते हैं। गायत्री तेज तथा ब्रह्मवर्चस् है। इस प्रकार इसके द्वारा वह तेज और ब्रह्मवर्चस् को यजमान में रखता है। गायत्री छन्दों का पाठ कर वे जगती का पाठ करते हैं और गायत्री तथा जगती के मध्य 'आहाव' को रखते हैं। इस प्रकार छन्दों को विविध शक्तियों का बनाते हैं। जगती छन्दों का पाठ कर वे त्रिष्टुप् छन्दों से समाप्त करते हैं। त्रिष्टुप् बल तथा वीर्य है। जगती पशु है। इस प्रकार बल तथा वीर्य में एवं अंत में पशु में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। याज्या मन्त्र त्रिष्टुभ् में हैं तथा 'अन्धस्' वती, 'मद्वती एवं 'पीत'वती हैं। वे पूर्ण हैं। यह रात्रि का रूप है। वे रात्रि में जागते रहें। जागते रहना ज्योति है। रात्रि अन्ध, पाप है। इससे वे ज्योति से अन्धकार, पाप को पार करते हैं। जब तक गान या पाठ नहीं होता तब तक राक्षस-असुर बाद में पान करते हैं(?)। इसलिये 'आप लोग समिद्ध आहवनीय आग्नीध्रीय, गार्हपत्य और वेदियों को प्रज्वलित करें' ऐसा जोर से कहें। वे प्रज्वलित करें। प्रकाशित की भाँति हो। खर्राटे लेते हुए पड़े (लेटे) रहें। उन्हें पाप ग्रसित नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लयतेति भाषेरञ्ज्वलयेयुः प्रकाशमिवैव स्यादारेफन्तः शयीरंस्तान्ह तं चेष्टि तन्वा इति पाप्मा नापधृष्णोति ते पाप्मानमपघ्नते ते पाप्मानमपघ्नते ।। ९ ।।

इति शाङ्खायनब्राह्मणे सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

हरिः ॐ । अतिरिक्तसोमो वा एष यदाश्विनं यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते भ्रातृव्यस्तेन यजमानस्य प्रत्युद्यमी भवत्यथ यत्पुरस्तादश्विनौ यजत्यश्विनौ वै देवानां भिषजौ भैषज्यमेव तत्कुरुतेऽथ यत्र ह तत्सविता सूर्यां प्रायच्छत्सोमाय राज्ञे यदि वा प्रजापतेस्तत्सहस्रमन्वाकरोद्दुहित्र उह्यमानाया एतदासां देवतानामासीत्ता अब्रुवन्नाजिमया मास्मिन्सहस्र इति ता आजिमायंस्तदश्विना उदजयतां रासभेन तस्माद् बह्व्यो देवताः शस्यन्तेऽथाऽऽश्विनमित्याख्यायते तत उ हैतदुत रासभो न सर्वमिव जवं धावति श्रितं नयेति हतं मन्यमानः सहस्रं शंसेत्सहस्रं ह्युदजयताम् ।। १ ।।

तदाहुर्यद् बृहत्यायतनानि पृष्ठानि भवन्त्यथ कस्मात्त्रिष्टुभा प्रतिपद्यत इति त्रिःशस्तैषा तिस्रश्च बृहत्यः संपद्यन्त एका च गायत्रीदमु ह संधे रूपं यत्तिस्रो

करता (क्योंकि सोचता है कि) वे क्रियाशील हैं । वे पाप को नष्ट करते हैं । वे पाप को नष्ट करते हैं ।

शाङ्खायन ब्राह्मण में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।। १७ ।।

अठारहवाँ अध्याय

१८.१ हरिः ओम् । आश्विन (शस्त्र) में सोम की अतिरिक्ति होती है । जहाँ यज्ञ में अतिरिक्तता होती है वहाँ यजमान का शत्रु उसके विरोध में उद्यमी (शक्तिशाली) होता है । उसमें जो बाद में अश्विनों का यजन करता है तो अश्विन देवताओं के चिकित्सक हैं इससे वह भैषज्य करता है । जब सूर्य ने सोमराजा को सूर्या दिया तो उन्होंने अपनी कन्या को चाहे प्रजापति की हो, इन देवताओं के अधीन के इन सहस्र का स्वामी बनाया ।[1] उन्होंने कहा— इस सहस्र के लिये हम एक दौड़ करें । उन्होंने दौड़ लगायी । उसमें अश्विन रासभ के द्वारा विजयी रहे । इसलिये इसमें बहुत से देवता पढ़े जाते हैं पर यह अश्विन का कहा जाता है । और रासभ अपने को जीर्ण मान कर पूर्ण वेग से नहीं दौड़ता और सोचता है कि मैं दौड़ चुका । सहस्र का पाठ करे क्योंकि उन्होंने सहस्र जीता था ।

१८.२ वे कहते हैं कि 'पृष्ठ बृहती पर निर्भर करते हैं तो वह त्रिष्टुभ् से क्यों प्रारम्भ करता है । तीन बार आवृत्त होने पर यह तीन बृहती तथा एक गायत्री बनाता

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण ४.७ में सूर्य पिता तथा प्रजापति दाता हैं । अश्विन शस्त्र के विवरण के लिये द्र.ऐ.ब्रा. ४.७-११; विधि के लिये द्र.शा.श्रौ.सू. ९.२० ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बृहत्य: प्रथमरूपं गायत्र्यथ यद्बृहतीमभिसंपादयति बृहती ह्यभित्रतं संपद्यन्तेऽथ यद्बार्हतीनां प्रतिपदां प्रथमं प्रथमं प्रगाथं पुनरादायं ककुङ्कारं शंसति पुनरादायं वै सामगाः स्तुवते तस्यैवैतद्रूपं क्षिप्रत आग्नेयं क्रतुं शंसति तदिमं लोकमाप्नोत्यु-षस्यं शंसति तदन्तरिक्षलोकमाप्नोत्याश्विनं शंसति तदमुं लोकमाप्नोति सौर्यं क्रतुं शंसत्यस्ति वै चतुर्थो देवलोक आपस्तमेव तेनाऽऽप्नोति प्रगाथं शंसति पशवो वै प्रगाथः पशूनामेवाऽऽप्त्या अथो प्राणापानौ वै बार्हतः प्रगाथः प्राणापानावेव तदात्मन्धत्तेऽथो शस्त्रस्यैव सेन्द्रतायै द्यावापृथिवीयं शंसति प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिवी प्रतिष्ठित्या एव द्विपदां शंसति प्रतिष्ठानीयं वै छन्दो द्विपदाः प्रतिष्ठित्या एव बार्ह-स्पत्यया परिदधाति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मण्येव तदन्ततः प्रतितिष्ठत्यथैषा संपद्भवति ॥ २ ॥

त्रीणि गायत्रीशतानि ते द्वे बृहतीशते सप्ततिमनुष्टुभः सप्तति पङ्क्तीश्चत्वा-रिंशच्छतं बृहतीनां त्रयाणां त्रिष्टुप्शतानां गायत्रीशतमुद्धृत्य तानि त्रीणि बृहती-शतानि तच्च गायत्रीशतं जगतीशतं च ते द्वे बृहतीशते पञ्चाशत्त्रिष्टुभः पञ्चाश-

---

है। तीन बृहती मन्त्र सन्धि का रूप हैं और गायत्री प्रथम का रूप है। जो बृहती को सम्पन्न करते हैं वह इसलिये कि बृहती से सम्बद्ध व्रत को सम्पन्न किया जाता है। बृहती के स्तोत्रियों में वह प्रथम प्रगाथ का आवृत करते हुये तथा ककुभ् बनाते हुये पाठ करता है। यह इसलिये करता है कि सामग आवृत्त कर (पुनरादाय) गान करते हैं। इस प्रकार इसका रूप सम्पन्न हो जाता है। वह अग्नि क्रतु का पाठ करता है। इस प्रकार वह यह लोक प्राप्त कर लेता है। वह उषस् का पाठ करता है इस प्रकार अन्तरिक्ष लोक प्राप्त करता है। वह अश्विनों का (क्रतु) पाठ करता है इससे उस लोक को प्राप्त करता है। वह सूर्य क्रतु का पाठ करता है इससे वह देवताओं का चतुर्थ लोक का जो जल है उसे प्राप्त करता है। वह एक प्रगाथ का पाठ करता है। प्रगाथ पशु है। इस प्रकार यह पशुओं की प्राप्ति के लिये है। और बृहती में प्रगाथ प्राण तथा अपान है। इस प्रकार वह अपने में प्राण तथा अपान को रखता है। और यह शस्त्र में इन्द्र की उपस्थिति के लिये भी है। वह द्यावा-पृथिवी के एक सूक्त का पाठ करता है। द्यावा-पृथिवी प्रतिष्ठा हैं। इस प्रकार यह प्रतिष्ठा के लिये है। वह एक द्विपदा मन्त्र का पाठ करता है। द्विपदा मन्त्र प्रतिष्ठा का छन्द है। इस प्रकार यह प्रतिष्ठा (आधार) के लिये है। वह बृहस्पति के लिये एक मन्त्र से समाप्त करता है। बृहस्पति ब्रह्म है। इस प्रकार अन्त में वह ब्रह्म में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यह पूर्णता है।

१८.३ तीन सौ गायत्री मन्त्र दो सौ बृहती मंत्र हैं। सत्तर अनुष्टुभ् और सत्तर पङ्क्ति मन्त्र एक सौ चालीस बृहती मन्त्र हैं। तीन सौ त्रिष्टुभ् मन्त्रों से एक सौ गायत्री मन्त्र निकालने पर तीन सौ बृहती मन्त्र होते हैं। एक सौ गायत्री मन्त्र तथा एक सौ जगती मन्त्र दो सौ बृहती मन्त्र हैं। पचास त्रिष्टुभ् तथा पचास उष्णिह् मन्त्र एक सौ बृहती मन्त्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दुष्णिहः शतं बृहत्यः संपद्यन्तेऽथ याः सप्तपञ्चाशतं बृहत्योऽत्रैव ताः संपन्ना अथ ये द्वापञ्चाश्यौ त्रिष्टुभौ द्विपदा च तास्तिस्रो बृहत्यः संपद्यन्ते तन्नानाछन्दस्यानां सहस्रं सत्सहस्रं बृहत्यः संपद्यन्ते न सहस्रमतिशंसेन्नार्वाक्सहस्रादित्येषा हैव स्थितिः प्रो त्वेवाऽऽश्विनस्य विभूतिरतिदृश्यत एष आग्नेयक्रतुराग्नेयादेव क्रतोर्न निश्चवेताथ यद्याग्नेयं क्रतुं पुराकालात्समतीयादाश्विनमनु यत्किंचिद्द्विदेवत्यमृक्षुस्तदनुवर्तयेत्सौर्ये क्रतौ पावमानीर्यथाछन्दसं गायत्रीर्गायत्रे त्रिष्टुभस्त्रैष्टुभे जगतीर्जागते सर्वं सौर्यं न्यङ्गं सौर्यस्याऽऽयतने सर्वानैन्द्रान्प्रागाथान्प्रगाथस्याऽऽयतने सर्वं द्यावापृथिवीयं द्यावापृथिवीयस्याऽऽयतने सर्वा द्विपदा द्विपदाया आयतने सर्वं बार्हस्पत्यं पुरस्तात्परिधानीयाया एतद्वै किंचिदिवर्चा न प्रदृश्यते ॥ ३ ॥

होते हैं। तदनन्तर सत्तावन बृहती मन्त्र वास्तव में यहाँ प्राप्त हैं। इक्यावनवाँ तथा बावनवाँ त्रिष्टुभ् मन्त्र तथा द्विपदा मन्त्र ये तीन बृहती मन्त्र हैं। इस प्रकार एक हजार विविध छन्दों से एक हजार बृहती छन्द बनते हैं। नियम यह है कि वह 'एक हजार से से अधिक तथा कम न पढ़े।' तथा अश्विन की वृद्धि अतिरिक्त में देखी जाती है। यह आग्नेय क्रतु है। इससे वह अग्नि-क्रतु से अलग नहीं होता। यदि वह समय से पूर्व अग्नि-क्रतु से पार करे तो आश्विन में दो देवताओं के लिये जो ऋचाओं में कहा है उसे प्रयुक्त करे। सौर्यक्रतु में वह पावमानी मन्त्रों को छन्दानुसार गायत्री गायत्री में, त्रिष्टुभ् त्रिष्टुभ् में तथा जगती जगती में पढ़े। जो कुछ भी सूर्यक्रतु के स्थान में जो कुछ भी सूर्य से सम्बद्ध है (वह पढ़े)। प्रगाथ के स्थान में सभी प्रगाथ इन्द्र के लिये है। द्यावा पृथिवी के सूक्तके स्थान में द्यावापृथिवी के सभी को, द्विपदा मन्त्रों के स्थान में सभी द्विपदाओं को। और अंतिम मंत्र से पूर्व बृहस्पति को कहे सभी को। यह ऋचाओं का वह (अंश)है जो देखा नही गया है (निर्दिष्ट नहीं है)।[1]

१. शा.श्रौ.सू. के अनुसार प्रातरनुवाक की विकृति के रूप में आश्विन शस्त्र इस प्रकार बना है ऋ. १०.३०.१२ के स्थानपर ऋ. ६.१५.१३-१५ से यह प्रारम्भ होता है। गायत्री मंत्रों में १९, अनुष्टुभ् में दो तथा त्रिष्टुभ् में ११३ हटा दी गयी है। कक्षीवन्त के सूक्त (ऋ. १.११६-११८) और आगस्त्य सूक्त (ऋ.१.१८०, १८१,१८३, १८४, तो है पर बाद १.१२०.१-९ रखे गये हैं; १.१८४ के बाद सुपर्ण के १०३ मंत्र या इसके स्थानपर अश्विनों के दूसरे १०३ मंत्र (आनर्तीय प्रदत्त) आते हैं। तदनन्तर प्रातरनुवाक में(ऋ. १०.१५०.१-३)हटा दिया गया है। ऋ. १.४७.१-८ का सभी (केवल १,३,५, ही नही) पढ़ा जाता है। उष्णिह के ११ नंत्र और जगती छन्द में अग्नि के ११ मंत्र हटा दिये गये हैं। सूर्योदय अंतिम पङ्क्ति पद पर होगा तब सूर्य सूक्त १.५०.१-९; १.११५; १०-३७; प्रगाथ ७.३२.२६ २७,१.२२. १३-१५, एक द्विपदा (१२ + ८) होगा और अंतिम में ऋ. २.२३.१५ (बृहस्पति) होगा। पुरोनुवाक्या मंत्र शा. श्रौ. सू. ९.२०.३१ में प्रदत्त है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ वै चक्रीवदाश्विनमालम्बने चक्रे अकूध्रीच्योऽक्ष आवां रथो अश्विना श्येनपत्वेति स उद्धिरथ चत्वार्यागस्त्यानि युक्तानि स एष देवरथः स एतेन देवरथेन स्वस्ति स्वर्गं लोकं समश्नुते स सुपर्णं स्याद्वयो वै सुपर्णस्तद्यथा पक्षी वयो भूत्वैवं स स्वस्ति स्वर्गं लोकं समश्नुते द्विरेवाऽऽश्विनायाऽऽह्वयते प्रतिपदे चैव परिधानीयायै च तद्यथा प्रतीघातेनानिवेष्ट्यमानो धापयेदेवं तदथातः परिधानस्यैव मीमांसा यदादित्यो रराट्यामतिसर्पेद्यदैनं स्वयं होता निर्जानीयाद्यदास्य लोहितमापीयाद्यदैनं सर्वे रश्मयः प्रत्युत्पेरन्स कालः परिधानस्यैतस्मिन्ह वा एष कालेऽपहतपाप्मा विविक्तपाप्मा भवत्यपहते पाप्मानं विविच्यते पाप्मना य एतस्मिन्काले परिदधात्यथ यदभ्रं स्यादेतद्वा अस्य तद्रूपं येन प्रजा विभर्तीदमेकं यदयं प्राणोऽध्यात्ममतिलोहितोमदित्येव ॥ ४ ॥

तं मन्यमानः परिदध्याद्विभ्राज आहुतिं जुहुयादनिर्ज्ञायमान आदित्ये येऽनुपयुक्तः स्यादाविरेभ्यो भवति द्वाभ्यां यजेद् द्वाभ्यां ह्याश्विनमित्याख्यायतेऽनवानं गायत्रीमुक्त्वा विराजोऽर्धर्चेऽवानिति श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियां तद्विराज्यन्नाद्ये प्रति-

---

१८.४ आश्विन चक्रीवत् (चक्र युक्त डब्बे के) समान हैं। दोनों आलम्बन चक्र हैं। अकूध्रीच्य (मंत्र) अक्ष हैं, 'आ वां रथो अश्विना श्येन पत्वा (ऋ. १.११८.१ हे आश्विनो! श्येन की गति से आपका रथ इस ओर) यह मन्त्र बैठने का स्थान हैं, और चार अगस्त्य सूक्त (ऋ. १.१८०, १८१, १८३, १८४) जुवा हैं। यह देवों का रथ है। देवों के इस रथ से वह सुरक्षापूर्वक स्वर्गलोक प्राप्त करता है। शस्त्र में सुपर्ण होना चाहिये। सुपर्ण पक्षी है। पक्ष युक्त पक्षी होने के समान वह सुरक्षापूर्वक स्वर्गलोक प्राप्त करता है। वह दो बार प्रतिपद् (प्रारम्भ) और समाप्ति के लिये अश्विन के लिये आह्वान करता है। यह उस प्रकार है जैसे कोई अनावृत होने पर एक प्रतीघात (बाधक) से आवरण करे। अब परिधान (समापन) का व्याख्यान है। जब सूर्य रराट्या (हविर्धानी के)सामने आवे, जब होता स्वयं इसे जाने, जब इसकी लोहित (वर्ण किरणें) आवें और जब इसकी सभी किरणें उसकी ओर आवें वही परिधानीय (समापन) का काल है। इसी समय वह नष्ट पाप और पापविरहित होता है। जो इस समय समापन करता है वह पाप को नष्ट करता है, पापसे पृथक् होता है। यदि इस समय अभ्र (वृष्टि) है तो यह उसका वह रूप है जिससे प्रजा (संतानों) का भरण करता है। आत्मा में यह प्राण एक है। यह मुझ से तिरोहित नहीं है।

१८.५ इस प्रकार मानकर इसके विषय में समाप्त करे। सूर्य के अनिर्ज्ञायमान होने पर जो अनुपयुक्त है वह विभ्राज को आहुति दे। तब वह उनके प्रति प्रकट होता है। दो मंत्रों से वह आहुति दे क्योंकि दो के कारण यह आश्विन कहा जाता है। गायत्री को विना श्वास लिये कहकर वह विराज के आधे मंत्र पर श्वास लेता है। विराज श्री

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तिष्ठत्युत्तरेण विराजोऽर्धर्चेन वषट् करोति स्वर्ग एव तं लोके यजमानं दधाति विराजैव यजेदिति ह स्माऽऽह कौषीतकिस्त्रयस्त्रिंशदक्षरा वै विराट्त्रयस्त्रिंशद्देवता अक्षरभाजो देवताः करोत्यश्विना वायुना युवं सुदक्षेति, त्वेव स्थिता अश्विनी त्रिष्टुप्तिरो अह्न्यवती तिरो अह्न्या हि सोमा भवन्त्यथो बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बल-मेव तद्वीर्यं यजमाने दधात्यनुवषट्करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै संसन्नेषु च्छन्दोगेषु प्रवृत्तहोमीये आहुती जुहोति महच्छस्त्रं वाक्च मनश्च प्रीते उद्यत्साते इति ॥ ५ ॥

अथ हारियोजनेन चरन्ति हरी एव तत्प्रीणन्त्यत्र देवाः साश्वाः प्रीता भवन्ति त्रिष्टुभं हारियोजनस्य पुरोनुवाक्यामनूच्य जगत्या यजति बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप्पशवो जगती बल एव तद्वीर्येऽन्ततः पशुषु च प्रतितिष्ठति मद्वती याज्या मद्वद्धि तृतीय-सवनमनुवषट्करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यैतासां भूयिष्ठा धाना-नामाददीत पशवो वै धाना भूमानमेव तत्पशूनामात्मन्धत्तेऽथ यदृचं जपन्ति

तथा अन्नाद्य है। इस प्रकार वह विराज में श्री तथा अन्नाद्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। विराज के द्वितीय आधे मंत्र से वह वषट्कार कहता है। इस प्रकार वह यजमान को स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठापित करता है। कौषीतकि का कथन है कि वह विराज को केवल याज्या मंत्र के रूप में प्रयुक्त करें'। विराज में तैंतीस अक्षर हैं। देवता तैंतीस है। देवताओं को वह अक्षरों का भागी बनाता है। तथापि नियम यह है कि 'अश्विना वायुना युवं सुदक्षा' (ऋ. ३.५८.७ हे अश्विनो! सूक्ष्म दृष्टि वाले आप दोनों वायु के साथ) अर्थात् अश्विनों के प्रति कहा गया त्रिष्टुप् जो 'अहन्य' शब्द युक्त है क्योंकि सोम रात को रखे जाते हैं। और त्रिष्टुप् बल तथा वीर्य है। इस प्रकार वह यजमान में बल और वीर्य रखता है। वह आहुतियों के भेषज तथा प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट् कहता है। जब सामग गान कर शान्त हो जाते हैं तब वह चयन की दो आहुतियों को हवन करता है। (वह सोचता है कि) प्रसन्न वाक् और मन महत् शस्त्र को प्रेरित (प्रतिष्ठित) करेंगे।

१८.६ वे हरित के जोड़ने वाले को आहुति से प्रारम्भ करते हैं। (इसके संबद्ध मंत्र हैं ऋ. ३.५३.२; १.८२.६)। इस प्रकार वे दोनों हरियों को प्रसन्न करते हैं। इससे देवता अपने अश्वों सहित प्रसन्न होते हैं। हारियोजन के लिये एक त्रिष्टुप् को पुरोनुवाक्या के रूप में प्रयुक्त कर जगती को याज्या के रूप में प्रयुक्त करते हैं। त्रिष्टुप् बल तथा वीर्य हैं एवं जगती पशु है। इस प्रकार अंत में वह बल तथा वीर्य में एवं पशुओं में प्रतिष्ठित होता है। याज्या मंत्र 'मद्' शब्द युक्त है क्योंकि तृतीय सवन 'मद्' युक्त है। आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये वह द्वितीय वषट् करता है। वह पर्याप्त धान्य ले। धान्य पशु हैं। इस प्रकार वह अपने में पर्याप्त पशुओं को रखता है। जो वे ऋक्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदाहुतीर्जुह्वति स्वस्त्ययनमेव तत्कुर्वते यज्ञस्यैव शान्त्यै यजमानस्य च भिषज्यायै ता आहवनीयस्य भस्मान्ते निर्वपन्ति ज्योतिर्वै पशूनामाहवनीयः स ऐवैनांस्तद्गोष्ठेऽनपक्रमे दधति ॥ ६ ॥

अथ शाकलाञ्जुह्वति तद्यथाऽहिर्जीर्णायै त्वचो निर्मुच्येतेषीका वा मुञ्जादेवमेवैते सर्वस्मात्पाप्मनः संप्रमुच्यन्ते ॥ ७ ॥

अथ सव्यावृतोऽप्सु सोमानुपपरायन्ति तानिहान्तर्वेद्यासादयन्ति तद्धि सोमस्याऽऽयतनं व्यवदधति दर्भपिञ्जूलानि यदा वा आपश्चौषधयश्च संगच्छन्तेऽथ कृत्स्नः सोमस्ता वैष्णव्यर्चा निनयन्ति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञ एवैनास्तदन्ततः प्रतिष्ठापयन्त्यथ प्राणान्संमृशन्ति तद्यदेवात्र प्राणानां क्रूरीकृतं यद्विलिष्टं तदेवैतदाप्याययन्ति तद्भिषज्यन्ति भक्षपरिधीन्कुर्वते मानुषेणैव तद्भक्षेण दैवं भक्षमन्तर्दधते ॥८॥

अवभृथोऽमुमेवैत्सवनैरीप्सन्ति योऽसौ तपत्युद्यन्तं प्रातःसवनेन मध्ये सन्तं

का जप करते हैं, आहुतियों का हवन करते हैं इस प्रकार वे यज्ञ की शान्ति और यजमान के भेषज के लिये स्वस्त्ययन करते हैं। वे उन्हें (आहुतियों को) आहवनीय के भस्मान्त में डालते हैं। आहवनीय पशुओं की योनि (जन्मस्थान) है।[1] इस प्रकार उन्हें वह गोष्ठ (सुरक्षित स्थान) में रखता है।

१८.७ तदनन्तर वे शाकलाओं का हवन करते हैं। जैसे सूर्य प्राचीन त्वचा को छोड़ता है या इषीका मुञ्ज को छोड़ती है उसी प्रकार वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

१८.८ तदनन्तर बायें घूमकर जल में सोमों के पास जाते हैं। यहाँ वे उन्हें वेदी पर रखते हैं क्योंकि वह सोम का आयतन (निवास स्थान) है। दर्भ को शाखाओं को बाँटते हैं। जब जल और सोम मिलते हैं तो सोम पूर्ण होता है। विष्णु के एक मंत्र से (ऋ. ७.३६.९) उन्हें वे गिराते हैं। विष्णु यज्ञ हैं। इस प्रकार यज्ञान्त में इन्हें प्रतिष्ठापित करते हैं। तदनन्तर वे प्राणों (मर्मस्थानों) पर प्रहार (स्पर्श)करते हैं। इस प्रकार यहाँ जो प्राणों का क्रूरीकृत या क्षतिग्रस्त होता है उसे पूर्ण और चिकित्सित करते हैं। वे भोजन की परिधि (घेरा, मण्डल) बनाते हैं। इस प्रकार मनुष्यों के भोजन से देवताओं का भोजन अलग करते हैं।[3]

१८.९ अवभृथ (अंतिम स्थान) अब वर्णित है। वह जो वहाँ तप रहा है उसे प्राप्त करने के लिए इन सवनों से कामना करते हैं। उदित हो रहे को प्रातःसवन से,

---

१. ग्रन्थ में प्राप्त ज्योतिः के स्थान पर अन्यत्र उपलब्ध 'योनिः' पाठ ज्यादा संगत लगता है।

२. इनके लिये द्र. शां. श्रौ. सू. ८.९.१

३. ज्योतिष्टोम के लिये द्र. शा. श्रौ. सू. ८.९.२-९

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

माध्यंदिनेन सवनेनास्तं यन्तं तृतीयसवनेन स वा एषोऽपः प्रविश्य वरुणो भवति तस्माद्वारुणमेककपालं पुरोळाशं निर्वपत्येकस्था वै श्रीः श्रीर्वै वरुणः श्रियामेव तदन्ततः प्रतितिष्ठति तेऽन्तरेण चात्वालोत्करा उपनिष्क्रामन्ति तद्धि यज्ञस्य तीर्थमाप्नानं नाम तदेतदृचाऽभ्युदितमाप्नानं तीर्थं क इह प्रवोचदित्येतेन वै देवास्तीर्थेन यज्ञं प्रपद्य सर्वान्कामानापुस्तथो एवैतद्यजमान एतेनैव तीर्थेन यज्ञं प्रपद्य सर्वान्कामानाप्नोति ॥ ९ ॥

ते यस्यां दिश्यापो भवन्ति तां दिशमभ्यावृत्य चरन्ति सा वै प्राची दिग्यस्यां देवताश्चतुरः प्रयाजान्यजत्यृते बर्हिष्कान्बर्हिष्मन्तमुत्सृजति न ह्यत्र बर्हिस्तीर्यते वार्त्रघ्नावाज्यभागौ भवतः पाप्मन एव वधायाथो हास्य पौर्णमासात्तन्त्रादनितं भवत्यप्सुमन्तौ हैके कुर्वन्ति वार्त्रघ्नौ त्वेव स्थितावथ यदप्सु वरुणं यजति स्व एवैनं तदायतने प्रीणात्यथ यदग्नीवरुणौ यजत्यत्राग्निः सर्वेषु हविस्सु भागी भवति द्वावनुयाजौ यजत्यृते बर्हिष्कौ बर्हिष्मन्तमुत्सृजति प्रजा वै बर्हिर्नेत्प्रजामप्सु

मध्य में स्थित को माध्यन्दिन सवन से और अस्त हो रहे को तृतीय सवन से। वही जल में प्रवेश कर वरुण हो जाता है। इसलिये वह वरुण को एक-कपाल पुरोडाश देता है। श्री एक स्थान में है। वरुण श्री हैं। इस प्रकार अन्त में वह श्री में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वे गर्त तथा टीले के बीच बाहर होते हैं क्योंकि वह यज्ञ का 'आप्नान' तीर्थ (मार्ग) है। यह (इस) ऋचा में कहा गया है—आप्नानं तीर्थं क इह प्रवोचद्। (ऋ. १०.११४.७; किसने यहाँ आप्नान तीर्थ को कहा है?) इस मार्ग से यज्ञ के पास पहुँच कर वे सभी कामनाओं को प्राप्त किये। इसी प्रकार यजमान इस तीर्थ (मार्ग) से यज्ञ के पास पहुँचकर सभी कामनाओं को प्राप्त करता है।[1]

१८.१० जहाँ जल है उस दिशा में घूमकर वे (इस कृत्य को) करते हैं।[2] यह प्राची दिशा है जिसमें देवता हैं। वह चार पूर्व आहुतियों को, कुश की आहुतियों को छोड़कर यजन करता है। इसमें कुश की आहुति को छोड़ देता है क्योंकि इसमें कुश नहीं बिछाया जाता। दोनों आज्य भाग वृत्रवध से संबद्ध हैं। यह पाप के वध के लिये है। और इस प्रकार वह पौर्णमास याग से पृथक् नहीं होता। कुछ लोग इन्हें 'अप्सु' शब्द युक्त (ऋ. ८.४३.९ तथा १.२३.२०) करते हैं पर नियम यह है कि यह वृत्रघ्न' ही हो। वह जो वरुण का जल में यजन करता है इससे वह उन्हें अपने आयतन (गृह) में प्रसन्न करता है। जो वह अग्नि और वरुण का यजन करता है इससे अग्नि सभी हविषों में भागी बन जाते हैं। इसमें वह दो बर्हि वाले को छोड़कर अनुयाजों का यजन करता है। वह बर्हि वाले को

---

१. अवभृथ के लिये द्र. शा. श्रौ.सू. ८.१०

२. वरुण की आहुति के लिये द्र. शा. श्रौ. सू. ८.११

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रवृणजानीति ते एव शतं प्रयाजानुयाजा भवन्ति शतायुर्वै पुरुषः शतपर्वा शतवीर्यः शतेन्द्रिय उप य एव शततमः स आत्मा तदेतदङ्गिरसामयनं स एनेनायनेन प्रतिपद्यतेऽङ्गिरसां सलोकतां सायुज्यमाप्नोत्यथ याः षड्वा अष्टौ वा वषट्कृतयस्तदादित्यानामयनं स एनेनायनेन प्रतिपद्यत आदित्यानां सलोकतां सायुज्यमाप्नोति ॥ १० ॥

अनूबन्ध्या चतुर्थमेवैतत्सवनं यदनूबन्ध्या तस्मादच्युता भवति चतुर्थं ह्येवैतत्सवनानां सा वै मैत्रावरुणी भवत्यग्नीषोमीयो हि पुरस्तात्कृतो भवति तस्मान्मैत्रावरुणी भवति यज्ञस्यैव समारताया अथ यदप्सु वरुणं यजत्यत्र मित्रो हि नो भवति तस्मान्मैत्रावरुणी भवति मित्रस्यैवानुलब्ध्यै ॥ ११ ॥

अथ यदि पशुरानीतोऽनुपाकृतो म्रियेतर्त्विग्भ्यस्तं कारयेदथान्यं तद्रूपं तद्देवत्यं पशुमालभेरंस्तमा प्रीतं पर्यग्निकृतमुदञ्चं नयेयुस्तं संज्ञपयेयुस्तस्यानुज्ञायमितरं कर्षयेयुरतयोर्नाना वपे उत्खिद्य नाना श्रपयित्वा नानाऽवदाय समाने वषट्कारे जुहुयुरतयोर्नानैव पशुपुरोळाशौ श्रपयित्वा नानाऽवदाय समाने वषट्कारे

(यह सोचकर) छोड़ता है कि बहि प्रजा है मैं प्रजाओं को जल में न फेंकूँ।' इसमें एक सौ एक प्रयाज तथा अनुयाज हैं। मनुष्य की आयु सौ वर्ष है, उसे सौ गांठ (पर्व) हैं। वह शतवीर्य, शत इन्द्रिय है। एक सौ एकवाँ आत्मा (शरीर) है। यह आङ्गिरसों का मार्ग है। वह इस मार्ग (पद्धति) से करता है वह आङ्गिरसों की सलोकता और सायुज्य प्राप्त करता है। छः या आठ वषट्कार आदित्यों का मार्ग है। वह इस मार्ग से चलता है। वह आदित्यों की सलोकता और सायुज्य प्राप्त करता है।

१८.११ अनूबन्ध्या का विवेचन है।[1] अनूबन्ध्या चतुर्थ सवन है। यह चौथा सवन है अतः अच्युत (स्थिर) होती है। यह मित्र और वरुण को दी जाती है क्योंकि अग्नि और सोम का (पशु) पहले दिया जा चुका रहता है। इसलिये यह मित्र और वरुण के लिये है जिससे यज्ञ की समारता (सुव्यवस्थिति) हो। और जो वह वरुण को जल में यजन करता है तो वहाँ मित्र नही होते इसलिये यह मित्र की प्राप्ति के लिये मैत्रावारुणी होती है।

१८.१२ यदि पशु लाया जा चुका है और विना उपाकृत (प्रस्तुत) किये मर जाता है तो उसे ऋत्विजों को देना चाहिये।[2] तदनन्तर वे दूसरे उसी रूप और उसी देवता के पशु का आलंभन करें (दें)। जब 'आप्री' मंत्रों का पाठ हो चुका हो और अग्नि इसके चारों ओर घुमा दिया गया हो उसे उत्तर ओर ले जाय और इसका संज्ञपन करें। इसी प्रकार से वे दूसरे को लें। उनकी वपाओं को निकाल कर पृथक् पकाकर अलग-अलग

---

१. अनूबन्ध्या के लिये द्र. शा. श्रौ. सू. ८.१२.५-१४।

२. इसके लिये द्र. शा. श्रौ. सू. १३.२.१ इत्यादि।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जुहुयुस्तयोर्नानैव हविषी श्रपयित्वा नानाऽवदाय समाने वषट्कारे जुहुयुरेवं तृतीयगुदावेवं जाघन्यौ यदि त्वप्येकयैवाऽऽप्रियाप्रीतः स्यात्तेनैव प्रचरेयुरिति सा स्थितिः प्राणा वा आप्रियः प्राणानेवास्मिंतद्दधात्यथ यद्यष्टापदी स्यात्कथं स्यादिति गर्भस्य त्वचो वपारूपं फलीकरणानां फालीकरणां गर्भमिति शामित्रे श्रपयित्वेतरस्य वषट्कारेषु शामित्रा एव जुहुयु रक्षांसि ह वा एतद्यज्ञं गच्छन्ति यदत्रैतादृग्भवति तानि तेनापहन्ति तदरक्षोहतमेवं नु यदि पशुरनूबन्ध्या भवति यद्यु वैं पयस्यैतद्वै मित्रावरुणयोः संहविर्यत्पयस्या मित्रावरुणयोः पयस्येति हि स्थिता ।। १२ ।।

अथ यदि गोपशुर्भवति गोसंस्तवो वै मित्रावरुणौ तस्माद्गोपशुर्भवति युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे इति वपायै याज्या पीवसेति तद्वपायै मेदसो रूपं यद्वंहिष्ठं नातिविधे सुदानू इति पुरोळाशस्य बंहिष्ठमिति बहुल इव हि पुरोळाशः प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न इति हविषो बाहवेति तद्धविषोऽङ्गानां रूपम् ।। १३ ।।

लेकर एक वषट्कार से हवन करें। उनके लिये पृथक् पशु-पुरोडाश और उनका पृथक्-पृथक् भाग लेकर समान वषट्कार से हवन करे। हवि को पृथक्-पृथक् लेकर तथा पृथक्-पृथक् पकाकर उन्हें एक वषट्कार से हवन करे। इसी प्रकार तृतीय आँत तथा इसी प्रकार पिछले हिस्से को। नियम यह है कि यदि अंतिम को छोड़कर 'आप्री' मन्त्रों का पाठ हो चुका है तो वह प्रारम्भ करे। 'आप्री' प्राण हैं। इस प्रकार वह इसमें प्राणों को रखता है। वे पूछते हैं 'यदि पशु आठ पैरों वाला है तो कैसे होगा?' गर्भ के वपारूप त्वचा को और पीसे अन्न की भूसी से गर्भ को शामित्र अग्नि पर पका कर दूसरे के वषट्कार से उसे शामित्र अग्नि में हवन करें। जब ऐसी वस्तु होती है तो राक्षस यज्ञ में जाते हैं। इससे वह उन्हें मारता है। यह राक्षसों से आहृत नहीं होता। यदि पशु दिया जाता है तो यह है। पर जब यह पयस्या (दुग्ध पदार्थ) है, क्योंकि पयस्या मित्र और वरुण की अपनी हवि है, तो उसके लिये नियम है मित्र और वरुण के लिये पयस्या ही दी जावे।

१८.१३ यदि पशु गौ है तो यह इसलिये कि मित्र और वरुण गाय के साथ प्रशंसित हुये हैं। इसलिये पशु गाय है। वपा के लिये याज्या मन्त्र है—युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे (ऋ. १.१५.१ : आप दोनों मोटे वस्त्रों को धारण करते हैं) 'पीवसा' (मोटा) वपा के मेद का रूप है। पुरोडाश का (याज्या मन्त्र है)—यद्वंहिष्ठं नातिविधे सुदानू (ऋ. ५.६२.९ : हे ओससिक्त देवो ! जो अति प्रचुर (बंहिष्ठ) है वह बेध्य योग्य नहीं है)। पुरोडाश प्रचुर (बहुल) है अतः उसे वह बंहिष्ठ कहता है। हविष् के लिये वह कहता है प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नः (ऋ. ७.६२.५ : हमारे जीवन के लिये आप हाथ फैलावें) बाहें हवि के अंगों के रूप हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उदङ्ङुदवस्यत्युदं हि जीवलोक उदङ्ङुदवसाय वैष्णव्यर्चा पूर्णाहुतिं जुहोति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञमेव तदारभते पञ्चकपालः पुरोळाशो भवति पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्यै यद्यु वा अष्टाकपालः पौर्णमासमेव तन्त्रं भवति प्रतिष्ठा वै पौर्णमासं प्रतिष्ठित्या एवेदं त्वेव प्रत्यक्षं पुनराधेयस्य रूपं यत्पद-पङ्क्तयो याज्यापुरोनुवाक्यास्तथैव व्यतिषक्तास्तस्यां संस्थितायां यजमानोऽग्नि-होत्रं जुहोति संस्थिते ह्यग्न्याधेयेऽग्निहोत्रं हूयते तस्मात्तस्यां यजमानोऽग्निहोत्रं जुहोति जुहुयादिति ॥ १४ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

हरिः ॐ। ते वै दीक्षिष्यमाणा अग्नीन्त्संनिवपन्त एकधैव तद्बलं वीर्य-मात्मन्दधतेऽथैतान्संनिवपनीयामिष्टिं तन्वते ते अग्नये ब्रह्म एव तेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपन्त्यग्नये क्षत्रवत एकादशकपालमग्नये क्षत्रभृते द्वादशकपालं

१८.१४ वह उत्तर दिशा में मुख कर समाप्त करता है क्योंकि उत्तर दिशा जीवितों का लोक है उत्तर में मुखकर समाप्त कर वह एक विष्णु मंत्र से पूर्णाहुति का हवन करता है। विष्णु यज्ञ हैं। इस प्रकार वह यज्ञ को प्राप्त करता है। पुरोडाश पाँच कपालों में होता है। पङ्क्ति पाँच पदों की है। यज्ञ पाङ्क्त (पञ्चावृत) है। यह यज्ञ की प्राप्ति के लिये है। यदि यह आठ कपालों में होता है तो यह पौर्णमास यज्ञ का तन्त्र (रूप) है। पौर्णमास यज्ञ प्रतिष्ठा है। यह प्रतिष्ठा के लिये है। जो याज्या और पुरोनुवाक्या मन्त्र पदपङ्क्ति मंत्र है यह प्रत्यक्षतः (अग्नि के) पुनरस्थापन का प्रतीक है। इसी प्रकार वे परस्पर व्यतिषक्त है।[1] जब यह पूर्ण हो जाता है तब यजमान अग्निहोत्र का हवन करता है। क्योंकि अग्नियों के आधान के पूर्ण होने पर अग्निहोत्र का हवन किया जाता है। अतः जब यह पूर्ण हो जाय तो यजमान अग्निहोत्र का हवन करे।

शाङ्खायन ब्राह्मण में अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

१९.१ हरिः ओम्। स्वयं दीक्षित होने के समय वे अग्नियों को एकत्र करते हैं। इस प्रकार वे बल और वीर्य को एकत्र कर अपने में रखते हैं। इसके बाद वे संनिवपनीय इष्टि (इष्टि को एकत्र करना) को करते हैं। वे ब्रह्म अग्नि को अष्टकपाल पुरोडाश देते है। क्षत्रशक्ति संपन्न अग्नि को एकादश कपाल पुरोडाश देते हैं। क्षत्र के धारक अग्नि को

१. ये मंत्र है ऋ. ४.१०-१-४;१, और ३ आहुतियो के पुरोनुवाक्या और याज्या के रूप में प्रयुक्त हैं तथा २ और ४ स्विष्टकृत् के लिये। इसलिये वे व्यतिषक्त है। द्र. शा. श्रौ. सू. ८।१३।४

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ब्रह्मक्षत्र एव तद्यजमानाः समारोहन्ति तान्यामेवैतत्वस्ति संवत्सरं चरन्ति बहूनां चेष्यमाणानामेषा संनिवपनीयोषा संभरणो या सैवैकस्य दीक्षिष्यमाणस्य भवति ॥ १ ॥

अथैतेन प्राजापत्येन पशुना यजन्ते प्रजापतिप्रसूता स्वस्तीमं संवत्सरं समश्नुवामहा इति तस्य हैके वायव्यं पशुपुरोळाशं कुर्वन्त्येतद्वै प्रजापतेः प्रत्यक्षं रूपं यद्वायुरित्यग्नय उ हैके कामाय कुर्वन्त्यग्निर्वै कामो देवानामीश्वरः सर्वेषामेव देवानां प्रीत्यै तस्य हैके वैश्वानरीयं पशुपुरोळाशं कुर्वन्त्यसौ वै वैश्वानरो योऽसौ तपत्येतमेव तत्प्रीणन्ति ते पुरस्तादेव दीक्षाप्रसवान्कल्पयन्ते तैषस्यामावास्याया एकाह उपरिष्टाद्दीक्षेरन्माघस्य वेत्याहुस्तदुभयं व्युदितं तैषस्य त्वेवोदिततरमिव त एतं त्रयोदशमधिचरं मासमाप्नुवन्त्येतावान्वै संवत्सरो यदेष त्रयोदशो मासस्तदत्रैव सर्वः संवत्सर आप्तो भवति ॥ २ ॥

स वै माघस्यामावास्यायामुपवसत्युदङ्ङावत्स्यन्नुपेमे वसन्ति प्रायणीयेनातिरात्रेण यक्ष्यमाणास्तदेनं प्रथममाप्नुवन्ति तं चतुर्विंशेनाऽऽरभन्ते तदारम्भणीयस्या-

---

द्वादश कपाल पुरोडाश देते हैं। इस प्रकार यजमान ब्रह्म ओर क्षत्र पर आरूढ होते हैं। इस प्रकार उनसे वे सुरक्षापूर्वक वर्ष पार करते हैं। अग्नि को संग्रह करने वालों का यह संनिवपनीया संभरणी (एकत्र करने को) इष्टि है। जो दीक्षित होने जा रहा है उसके लिये यही है।[1]

१९.२ तदनन्तर प्रजापति के पशु से यजन करते हैं। (वे सोचते हैं कि) प्रजापति से प्रेरित हम मंगलपूर्वक वर्ष पार कर जायेंगे। कुछ लोग इनके लिये वायव्य (वायु का) पशु पुरोडाश बनाते हैं। (वे कहते हैं कि) वायु स्पष्टतः प्रजापति का रूप है। कुछ लोग कामना के रूप अग्नि के लिये करते हैं। कामना (रूप) अग्नि देवताओं के स्वामी हैं। यह सभी देवताओं की प्रसन्नता के लिये हैं। कुछ लोग वैश्वानर के लिये पशु पुरोडाश करते हैं। वे जो तप रहे हैं वे वैश्वानर हैं। इस प्रकार वे उन्हें ही प्रसन्न करते हैं। वे पहले ही दीक्षा के लिये प्रसव (सोम सवनों) को प्रस्तुत करते हैं। वे तैष या माघ की अमावस्या से एक दिन बाद अपने को दीक्षित करें, ऐसा (वे लोग) कहते हैं। दोनों सम्भव हैं पर तैष (पौष) का ज्यादा प्रचलित है। वे इस तेरहवें अतिरिक्त मास को प्राप्त करते हैं। जो यह तेरहवाँ मास है इतना (बड़ा) वर्ष है। इसमें निश्चय हो संपूर्ण वर्ष प्राप्त हो जाता है।

१९.३ उत्तर की ओर घूमते समय माघ की अमावस्या को वह विश्राम करता है। ये भी अतिरात्र के प्रायणीय से यक्ष्यमाण (यज्ञ करने वाले) स्थिति में विराम करते हैं।

---

१. चतुर्विंशं के लिये द्र. ऐ. ब्रा. ४.१२-१४; शां श्रौ सू ९-२२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऽऽरम्भणीयत्वं स षण्मासानुदङ्ङेति तमूर्ध्वैः षळहैरनुयन्ति स षण्मासानूदङ्ङित्वा तिष्ठते दक्षिणाऽऽवर्त्स्यन्नुपेमे वसन्ति वैषुवतीयेनाह्ना यक्ष्यमाणास्तदेनं द्वितीयमाप्नुवन्ति स षण्मासान्दक्षिणैति तमावृत्तैः षळहैरनुयन्ति षण्मासान्दक्षिणे त्वातिष्ठत उदङ्ङावर्त्स्यन्नुपेमे वसन्ति महाव्रतीयेनाह्ना यक्ष्यमाणास्तदेनं तृतीयमाप्नुवन्ति तं यत्त्रिराप्नुवन्ति त्रेधा विहितो वै संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै तदुतैषाऽपि गीयते। अहोरात्राणि विदधदूर्णा वा इव धीर्यः षण्मासो दक्षिणा नित्यः षळुदङ्ङति सूर्य इति षड्ढ्येष उदङ्मासानेति षड्दक्षिणा तद्वै न तस्मिन्काले दीक्षेरन्ननागतं सस्यं भवति दहरकान्यहानि भवन्ति संवेपमाना अवभृथादुदायन्ति तस्मादत्र न दीक्षेरंश्चैत्रस्यामावास्याया एकाह उपरिष्टाद्दीक्षेरन्नागतं सस्यं भवति महान्यहानि भवन्त्यसंवेपमाना अवभृथादुदायन्ति तस्मादेतत्स्थितम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार वे उसको प्रथम बार प्राप्त करते हैं। उस पर वे चतुर्विंश आरम्भ करते हैं। इससे इसका आरम्भणीय नाम है। वह षण्मास (छः मास) के लिये उत्तर जाता है। उसका वे ऊर्ध्व (अग्रिम) रूप में छः दिनों के कालों से अनुगमन करते हैं। वह छः मास उत्तर जाकर रहता है और दक्षिण दिशा में घूमने वाला होता है। ये भी विषुवन्त याग से यजन करने के लिये प्रस्तुत होकर रहते हैं। इस प्रकार वे द्वितीय बार उसे प्राप्त करते हैं। वह छः मास के लिये दक्षिण दिशा में जाता है। उसका वे उलटे क्रम में छः दिन के काल से अनुगमन करते हैं। छः मास के लिये दक्षिण में जाकर उत्तर को आने के लिये स्थित रहता है। ये महाव्रत दिन के याग करने के लिये विराम करते हैं। इस प्रकार वे तीसरी बार उसे प्राप्त करते हैं। उसे वे तीन बार प्राप्त करते हैं और वर्ष तीन प्रकार स्थित है अतः यह संवत्सर की प्राप्ति के लिये है। इसके विषय में इस प्रकार से गान किया जाता है—

अहोरात्राणि विद्धादूर्णा वा इव धीर्यः
षण्मासो दक्षिणा नित्यः षळुदङ्ङेति सूर्यः । इति

[दिन और रात को बुद्धिमान ऊर्णा (मकड़ी) की तरह बनाते हुये सूर्य नित्य छः मास दक्षिण और छः मास उत्तर जाते हैं।]

वे छः मास उत्तर जाते हैं और छः मास दक्षिण। वे इस समय अपने को दीक्षित न करें। (इस समय) अन्न नहीं आये हो वे दिन होते हैं अवभृथ (अंतिम) स्नान से वे कांपते हुये अपने आते हैं अतः वे इस समय दीक्षित न हों। चैत्र की अमावास्या से एक दिन बाद अपने को दीक्षित करें। (क्योंकि इस समय) दिन बड़े होते हैं, अन्न आ गये रहते हैं और अवभृथ के बाद वे कांपते हुये नहीं निकलते। अतः यही नियम है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथैतानामग्निचित्यायां पञ्चहविषं दीक्षणीयामिष्टिमेके तन्वते पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्या अथैतामातिथ्यां पञ्चहविषमेवेष्टिमेके तन्वते पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्या अथैता वह्वग्नीरन्वाह बहून् ह्यग्नीन्प्रणयन्ति ता वै चतस्रो भवन्ति चतुष्टयं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वमस्यैव सर्वस्याऽऽप्त्यै त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमयाऽष्टौ संपद्यन्तेऽष्टाक्षरा गायत्री गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दाः स्वेनैव तच्छन्दसाऽग्नीन्प्रणयन्त्यथ चिन्वन्ति यावदहं कामयन्तेऽथैतं संचितं सामभिः परिष्टुवन्त्यथ होतारमाहुरग्न्युक्थमनु जपेति रुद्रो ह वा एष देवानामशान्तः संचितो भवति तमेवैतच्छमयति निरुक्तं वैश्वानरं यजति निरुक्तो ह्येव तदा भवति यदाऽग्नीन्प्रणयन्ति ॥ ४ ॥

अथात ऊर्ध्वमैकाहिकं कर्म हविर्धानयोः प्रवर्तनमग्नीषोमयोः प्रणयनमग्नीषोमीयः पशुस्तस्योक्तं ब्राह्मणमथाग्नीषोमीयस्य पशुपुरोळाशमन्वञ्चि देवसूभ्यो हवींषि निर्वपन्त्येता ह वै देवताः सवानामीशते ता अत्र प्रीणन्ति ता अत्र प्रीताः सवान्प्रस्वन्ति तस्माद्देवस्य स्तावा अष्टौ भवन्त्येताभिर्वै देवाः सर्वा अष्टीराश्नुवत तथो

१९.४ अनन्तर अग्नि-चयन में कुछ लोग पाँच हविषों से युक्त इस दीक्षणीय इष्टि को करते हैं। पङ्क्ति में पाँच पद हैं। यज्ञ पाङ्क्त (पाँच से बना) है। यह यज्ञ की प्राप्ति के लिये है। तदनन्तर कुछ लोग इस पाँच हविषों वाली इस आतिथ्या इष्टि को करते हैं। पङ्क्ति में पांच पद हैं। यज्ञ पाङ्क्त है। अतः यह यज्ञ की प्राप्ति कराती है। तदनन्तर वह इन बहुत से अग्नि मंत्रों का पाठ करता है क्योंकि वे बहुत अग्नियों का आगे आनयन करते हैं। वे चार हैं। यह समस्त विश्व चतुष्टय है। यह इसी सब की प्राप्ति के लिये है। वह प्रथम और अंतिम को तीन-तीन बार पढ़ता है। इस प्रकार वे आठ होते हैं। गायत्री आठ अक्षरों वाली है। अग्नि गायत्री से संबद्ध है तथा गायत्री उसका छन्द है। इस प्रकार उनके अपने छन्द से वे अग्नियों को आगे ले आते हैं। तदनन्तर वे जितना दिन चाहते हैं वह उतना इकट्ठा करते हैं। संचित होने पर वे उसका सामगानों से स्तवन करते हैं। तदनन्तर वे होता से कहते है 'अग्नि उक्थ का पाठ करें।' संचित (अग्नि) रुद्र हो जाता है जो देवताओं में अशान्त है। यह उन्हीं को इस प्रकार शान्त करता है। यह वैश्वानर के लिये स्पष्ट (नियुक्त) याज्या मंत्र को कहता है। क्योंकि जब वे अग्नियों को आगे करते हैं तो वे पृथक् (निरुक्त) हो जाते हैं।[1]

१९.५ इसके अनन्तर ऐकाहिक (एक दिन का) कर्म (कृत्य) है, दोनों हविर्धारकों का प्रवर्तन (आगे करना), अग्नि सोम का आगे ले जाना तथा अग्नि और सोम का पशु। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। अग्नि तथा सोम के पशु पुरोडाश के अनन्तर वे दैवी प्रेरकों को हवियाँ देते हैं। ये देवता सवनों के स्वामी हैं। यहाँ उन्हें वे प्रसन्न करते हैं।

---

१. यहाँ निर्दिष्ट कृत्य शां. श्रौ. सू. ९.१४,२५ में वर्णित है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एवैतद्यजमाना एताभिरेव सर्वा अष्टीरश्नुवतेऽत्र हैके सर्वपृष्ठायै हवींषि निर्वपन्ति सर्वं वा अग्निचित्या सर्वेण सर्वमाप्नुवामेति तानि वै दश हवींषि भवन्ति दशदशिनी विराट्च्छ्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्या अथ सुन्वन्ति यावदहं कामयन्ते ॥ ५ ॥

अथानूबन्ध्यस्य वपायां संस्थितायां त्वाष्ट्रेण पशुना चरन्ति रेतःसिक्तिर्वै त्वाष्ट्रः पत्नीशाले चरन्ति पत्नीषु वै रेतः सिच्यत उपांशु चरन्ति रेतःसिक्तिर्वै त्वाष्ट्र उपांशु वै रेतः सिच्यते पर्यग्निकृतमुत्सृजन्ति न संस्थापयन्ति रेतःसिक्तिर्वै त्वाष्ट्रो नेद्रेतःसिक्तिं पुरा कालात्संस्थापयामेति । तदाहुर्यदेते देवते आवाहयति त्वष्टारं च वनस्पतिं च क्वास्यैते इष्टे भवत इति प्रयाजेषु वा एते देवते यजति तत्रैवास्यैते इष्टे भवतः ॥ ६ ॥

अथानूबन्ध्यस्य पशुपुरोळाशमन्वञ्चि देविकाभ्यो हवींषि निर्वपन्ति यातया-

---

वे यहाँ प्रसन्न होकर आहुतियों को प्रेरित करते हैं । इसलिये वे प्रेरक हैं । वे आठ हैं । उनके द्वारा देवताओं ने सभी प्राप्तियों (अष्टीः) प्राप्त किया । इसी प्रकार यजमान भी उनके द्वारा सभी प्राप्तियों (कामनाओं) को प्राप्त करता है । यहाँ कुछ लोग सर्वपृष्ठा के लिये हवि देते हैं । (वे सोचते हैं कि) 'अग्निचय सब कुछ है । सब कुछ से हम सब कुछ प्राप्त करें ।' वे दश हवि हैं । विराज दशिनी (दश वे वर्ग का) है । विराज श्री तथा अन्नाद्य है । इस प्रकार यह श्री तथा अन्नाद्य के रूप में विराज की प्राप्ति के लिये है । तदनन्तर वे दिन के लिये उतना सोम सवन करते हैं जितनी कामना करते हैं ।[1]

१९.६ अनूबन्ध्या (गौ) की वपा की आहुति पूर्ण हो जाती है । वे त्वष्टा के पशु का (कार्य) प्रारम्भ करते हैं । त्वष्टा की रेतःसिक्ति है । वे पत्नी की शाला में जाते हैं । पत्नियों में रेतःसिक्ति होती है । वे उपांशु (मन्दस्वर) में करते हैं । त्वष्टा का (पशु) रेतःसिक्ति है । रेतः सेचन उपांशु होता है । अग्नि से इसे आवृत कर छोड़ देते हैं; संस्थापित (समाप्त) नहीं करते है (क्योंकि वे सोचते हैं कि) 'त्वष्टा का (पशु) रेतः सिक्ति है समय से पूर्व मैं इस रेतःसिक्ति को संस्थापित न करें ।' वे कहते हैं कि—'वह त्वष्टा और वनस्पति इन दो देवताओं को आवाहित करता है तो ये दोनों किस स्थान पर इष्ट (यजित) होते हैं ?' प्रयाजों (पूर्व आहुतियों) में वह इन दोनों देवताओं का यजन करता है । वहीं ये दोनों उसके द्वारा यजित होते हैं ।

१९.७ अनूबन्ध्या कृत्य के पशुपुरोडाश के उपरान्त वे देविकाओं (छोटे देवताओं)

---

१. द्र. शां. सू. ९।२६,२७

२. द्र. शां. श्रौ. सू. ९।२९।४-७ यहाँ पशु रुप में घृत की आहुति का विधान है ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मानि ह वा एतस्य च्छन्दांसि भवन्ति यः सोमेन यजते छन्दांसि वै देविकास्त-द्यद्देविकाभ्यो हवींषि निर्वपन्ति तथा हास्यायातयामानि पुनर्यामानि भवन्त्यथो-ऽपीतरसानि ह वा एतस्य च्छन्दांसि भवन्ति यः सोमेन यजते छन्दांसि वै देविका-स्तद्यद्देविकाभ्यो हवींषि निर्वपन्ति च्छन्दसामेव सरसतायै ता वा एता देव्योऽथैष कः प्रजापतिस्तस्माद्देविकास्तानि वै पञ्च हवींषि भवन्ति पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्या अत्र हैके देवीभ्यो हवींषि निर्वपन्ति सर्वं वा अग्निचित्या सर्वेण सर्वमाप्नवामेति तानि वै दश हवींषि भवन्ति दशदशिनी विराट् श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्या अत्र हैके दिशामेवेष्टीः कुर्वन्ति सर्वं वा अग्निचित्या सर्वेण सर्वमाप्नवामेति तानि वै षड्ढवींषि भवन्ति षड् वा ऋतवः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै संस्थितायां चोदवसानीयायां मैत्रावरुण्या पयस्यया यजेत तस्या उक्तं ब्राह्मणं नैतयाऽनिष्ट्वाऽग्निचिन्मैथुनं चरेतेति ॥ ७ ॥

मुखं वा एतत्संवत्सरस्य चतुर्विंशं तस्मादग्निष्टोमो भवत्यग्निष्टोमो हि यज्ञानां

को हवियाँ देते हैं।[1] जो सोमयाग करता है उसके छन्द यातयाम हो जाते हैं। देविका छन्द हैं। जो वे देविकाओं को हवि देते हैं उससे छन्द अयातयाम और पुनर्याम (नवीन तथा ताजे) होते हैं। जो सोमयाग से यजन करता है उसके छन्द रस विरहित हो जाते हैं। देविकायें छन्द हैं अतः छन्दों की ही सरसता के लिये देविकाओं को हवियाँ देते हैं। ये देविकायें हैं। क प्रजापति है। इसलिये देविकायें हैं। पाँच हवियाँ हैं। पङ्क्ति में पाँच पद हैं। यज्ञ पाङ्क्त है। यह यज्ञ की ही प्राप्ति के लिये है। यहाँ कुछ लोग देवियों को हवि देते हैं (वे सोचते हैं कि) अग्निचिति सब कुछ है। सब कुछ से हम सब कुछ प्राप्त करें। वे दश हवियाँ हैं। विराज दश के वर्ग का है। विराज् श्री तथा अन्नाद्य है। इस प्रकार यह श्री तथा अन्नाद्य के रूप में विराज की प्राप्ति के लिये है। यहाँ कुछ लोग दिशाओं की प्रसन्नता के लिये इष्टियाँ करते हैं (वे सोचते हैं कि) 'अग्निचिति सब कुछ है। सब कुछ से हम सब कुछ प्राप्त करें। यहाँ छः हवियाँ होती हैं। वर्ष में छः ऋतुयें हैं। यह संवत्सर की प्राप्ति के लिये है। जब समाप्ति का कृत्य समाप्त हो जाय तो वह मित्र तथा वरुण के लिये पयस्या (दुग्ध पदार्थ) से यजन करे। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है (वे कहते हैं कि) इस इष्टि को बिना किये अग्नि-चयन-कर्ता मैथुन (स्त्री-संग) करे।'

१९.८ चतुर्विंश संवत्सर का मुख (प्रारम्भ) है।[2] अतः यह एक अग्निष्टोम है क्योंकि अग्निष्टोम यज्ञ का मुख है। इस प्रकार वे मुख से (प्रारम्भ में) संवत्सर को

---

१. इन कृत्यों के लिये द्र. शा. श्रौ. सू. ९.२८।

२. द्र. शा. श्रौ. सू. ११.२।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मुखं मुखत एव तत्संवत्सरं प्रीणन्ति तं हैक उक्थं कुर्वन्ति यज्ञस्यैव समारतायैतस्य चतुर्विंशस्तोमो भवति चतुर्विंशतिर्वै संवत्सरस्यार्धमासाः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यैतस्य त्रीणि षष्ठिशतानि स्तोत्रियाणां संपद्यन्ते त्रीणि वै षष्ठिशतानि संवत्सरस्याह्नां संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै तस्य बृहत्पृष्ठं भवति द्वितीयं वा एतदह्नां द्वितीयं बृहत्पृष्ठानां तस्मादस्य बृहत्पृष्ठं भवत्यथ यत्र चतुर्विंशमहरुपयन्त्यवधृतं वा उ तत्र महाव्रतं बृहदु वा आयतनेन महाव्रतस्य पृष्ठं भवति तस्माद्बृहदेवैतस्याह्नः पृष्ठं स्यादिति तस्य संवत्संवत्सरमभिपर्युदितं तस्यैतानि च्छन्दोरूपाणि होताऽजनिष्ट चेतन इत्यष्टर्चमाज्यं गायत्रीमात्रं गायत्रीमात्रो वै स्तोमस्तद्वै शस्त्रं समृद्धं यत्स्तोमेन संपद्यते माधुच्छन्दसः प्रउगः स वै समृद्धस्तस्य रूपेणान्ये प्रउगाः कल्पन्ते समृद्धं मे प्रथमतः कर्म कृतमसदित्या त्वा रथं यथोतय इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदिदं वसो सुतमन्ध इत्यनुचर एष एव नित्य एकाहातानस्तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

कया शुभा सवयसः सनीळा इति मरुत्वतीयमनुत्तमा ते मघवन्नकिर्न्विति नवमी तया परिदधात्युत्तराः पूर्वाः शस्त्वा मारुत्यो हि ता भवन्त्यथैषा निष्केवल्या

प्रसन्न करते हैं । कुछ लोग इसे यज्ञ की समारता (सम्यक् स्थिति) के लिये उक्थ्य करते हैं । यह चतुर्विंश स्तोम का होता है । संवत्सर के अर्धमास चौबीस होते हैं । इस प्रकार इससे वर्ष की प्राप्ति होती है । इसमें तीन सौ साठ स्तोत्रिय हैं ।[1] वर्ष में तीन सौ साठ दिन होते हैं । इस प्रकार ये वर्ष की प्राप्ति के लिये हैं । इसमें पृष्ठ (स्तोत्र) बृहत् साम है । यह दूसरा दिन है । बृहत् पृष्ठों में दूसरा है । इसलिये इसका पृष्ठ बृहत् है । महाव्रत वहाँ स्थित है जहाँ वे चतुर्विंश के पास जाते हैं । बृहत् महाव्रत के पृष्ठ में अपने आयतन में स्थित है । अतः (वे कहते है)—'बृहत् इस (दिन) का पृष्ठ हो ।' इसके आस-पास संवत्सर कहा जाता है । इसके मन्त्रों में निम्नलिखित रूप है । होता अजनिष्ट चेतनः (ऋ० २.५.१ : ज्ञानी होता उत्पन्न हुआ) यह आठ गायत्री मन्त्रों का आज्य है । स्तोम गायत्री छन्द में है । वह शस्त्र समृद्ध (पूर्ण) है जो स्तोम के अनुरूप है । प्रउग मधुच्छन्दा का है । यह समृद्ध है । इसके रूप से अन्य प्रउग बनाये जाते हैं । (यह सोचकर कि) 'मैं प्रारम्भ से ही समृद्ध कर्म करूँ ।' मरुत्वतीय का प्रतिपत् है—आ त्वा रथं यथोतये (ऋ० ८.६८.१ मंगल के लिये रथ की भाँति आए) । 'इदं वसो सुतमन्धः' इत्यादि (ऋ० ८.२.१-३ हे प्रकाशशील ! यह पेय अभिषुत हुआ है) इत्यादि अनुचर है । यह एक दिन का पूर्ण रूप है । इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है ।

१९.९ 'कया शुभा सवयसः सनीलाः' (ऋ० १.१६५.१ समानगृह वाले समान उम्र के किस शुभ वस्त्र सहित) यह मरुत्वतीय है । नवाँ मन्त्र (१.१६५.९) है—अनुत्तमा

---

१. चतुर्विंश स्तोम के नियमानुसार पन्द्रहटचों में प्रत्येक चौबीस बनायी जाती हैं । इस प्रकार १५ × २४ = ३६० ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तस्मिन्वाऽस्ति समान्या मरुतः संमिमिक्षुरिति संवत्तत्संवत्सरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपं तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति बृहद्दिवो निष्केवल्यं बृहद्दिवेनात्र होता रेतः सिञ्चति तददो महाव्रतीयेनाह्ना प्रजनयतीति संवत्सरे संवत्सरे वै रेतः सिक्तं जायते तस्मिन्वाऽस्ति सं ते नवन्त प्रभृतामदेष्विति संवत्तत्संवरमभिवदति तस्याह्नो रूपं तत्सवितुर्वृणीमहेऽद्या नो देव सवितरिति नित्यैव वैश्वदेवस्य प्रतिपच्चानुचरश्च तयोरुक्तं ब्राह्मणं तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महदिति सावित्रं प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वत्विति संवत्तत्संवत्सरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपं ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवेति द्यावापृथिवीयं पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतमिति संवत्तत्संवसरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपं किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्नित्यार्भवं संवत्सर इदमद्या व्यख्यतेति

ते मघवन् नकिर्नु (हे उदार ! आप फेंके नहीं जा सकते ।) उससे वह समाप्त करता है। इसके पहले वह बाद के मन्त्रों को पढ़ता हैं क्योंकि वे मरुत् से संबद्ध है और यह केवल (इन्द्र से संबद्ध) है। इस शस्त्र में 'समान्या मरुतः संमिमिक्षुः' (ऋ. १.१६६.१b : मरुत एक साथ संबद्ध हैं)। इसमें 'सं' है अतः यह संवत्सर को कहता है। यह इस दिन का रूप है (प्रतीक है) । 'तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं' (ऋ० १०.१२०.१ वह लोकों में सर्वोच्च था) यह बृहद्दिव का निष्केवल्य है। यहाँ होता बृहद्दिव से रेतःसिंचन करता है (वह सोचता है कि) वह महाव्रत दिन वहाँ प्रजनन करता है। प्रत्येक वर्ष में रेतःसिंचन उत्पादक होता है। इसमें 'सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु' (ऋ० १०.१२०.२a : एक साथ पानों में आये वे आप का गान करते हैं) यह 'सं' वत् ('सं' से युक्त) मंत्र है। इस प्रकार वह 'संवत्सर' का कथन करता है। यह दिन का रूप है। वैश्वदेव के नित्य (सामान्य) प्रतिपत् तथा अनुचर मन्त्र हैं। 'तत्सवितुर्वृणीमहे' (ऋ० ५.८२.१a : सवितृदेव के (भोजन का) हम चयन करते हैं) तथा 'अद्या नो देव सवितः' (ऋ० ५.८२.४a : हे देव सविता ! आज हम लोगों के लिये)। इसका ब्राह्मण (व्याख्यान) किया जा चुका है। सवित् सूक्त (सावित्र) है—तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महत् (देव सविता का वह वरणीय महत्त्व' ऋ० ४.५३)। इस सूक्त के मन्त्र 'प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु' (ऋ० ४.५३.७a : वह हमारे लिये प्रजायुक्त धन प्रेरित करे) 'सं'वत् ('साथ' युक्त) है। इस प्रकार वह संवत्सर को कहता है। यह इस दिन का रूप है। 'ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवे' (ऋ० १.१६०.१a इत्यादि : समस्त मंगलों के उत्पादक वे दोनों द्यावापृथिवी) यह द्यावा पृथिवी का सूक्त है। (इसका मन्त्र) 'पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम्' (ऋ० १.१६०.५a आप दोनों हमारे लिये प्रशंसनीय ओज को प्रेरित करें) 'सं' वत् है अतः यह संवत्सर को कहता है। यह इस दिन का रूप है। 'किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्' (ऋ० १.१६१.१ इत्यादि : क्यों श्रेष्ठ तथा क्यों छोटा हमारे पास आया है ?) यह ऋभुओं का सूक्त है। संवत्सर इदमद्या व्यख्यत' (ऋ० १.१६१.१३a :

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्प्रत्यक्षं संवत्सरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपं यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशामिति शार्यातं वैश्वदेवमिन्द्रो मित्रो वरुणः संचिकित्रिर इति संवत्तत्संवत्सरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपं वैश्वानराय धिषणामृतावृध इति वैश्वानरीयं धिया रथं न कुलिशः समृण्वतीति संवत्तत्संवत्सरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपं वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधस इति मारुतं गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुव इति संवत्तत्संवत्सरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपं यज्ञेन वर्धत जातवेदसमिति जातवेदसीयं संददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहीति संवत्तत्संवत्सरमभिवदति तदेतस्याह्नो रूपमित्याग्निमारुतसूक्तानीत्येतस्याह्नः सूक्तानि तदग्निष्टोमो वोक्थं वाहः संतिष्ठतेऽग्निष्टोम इति पैङ्ग्यमुक्थमिति कौषीतकम् ॥ ९ ॥

तद्धैतदहरेके छन्दोगाः सर्वस्तोमं कुर्वन्त्यनेनाह्ना षळहमाप्नुवन्षळहेन संवत्सरं ये च संवत्सरे कामाः षळहो वा उ सर्वः संवत्सर इति वदन्तस्ते यदि तथा कुर्युः

इस प्रकार वर्ष आज आपने प्रकट किया है।) इसमें है। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष संवत्सर का कथन करता है। यह इस दिन का रूप (प्रतीक) है। शर्यात का वैश्वदेव सूक्त है : यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम् (ऋ० १०.९२.१: यज्ञ का रथी, प्रजाओं का स्वामी)। इसमें 'इन्द्रों मित्रो वरुणः संचिकित्रिरे (ऋ.१०.९२.४: इन्द्र, मित्र और वरुण साथ विचार किये हैं) यह 'सं'वत् है। इस प्रकार यह संवत्सर का कथन करता है। यह इस दिन का रूप है। वैश्वानर का सूक्त है : वैश्वानराय धिषणामृतावृधे (ऋ. ३.२.१a: ऋत वर्धक वैश्वानर को प्रशंसा) इसके 'धिया रथं न कुलिशः समृण्वति (ऋ० ३.२.१d : चातुर्य से जैसे कुलिश रथ को, (वह) साथ लाता) में 'सं' है। इस प्रकार यह संवत्सर का कथन करता है। यह इस दिन का रूप है। मरुतों का सूक्त है : वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे (ऋ० १.६४.१a : वृष्णि, शर्ध, सुमख, वेधा के लिये) जिसके 'गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः' (ऋ० १.६४.१d मैं सभाओं प्रभावशाली वाणियों की एक साथ प्रशंसा करता हूँ) में 'सं' (साथ) है। इस प्रकार यह संवत्सर का कथन करता है। यह इस का रूप है। जातवेदा का सूक्त है : यज्ञेन वर्धत जातवेदसं (ऋ० २.२.१a यज्ञ से जातवेदा को बढ़ाओ)। इसके 'सन्ददस्वान् रयिमस्मासु दीदिहि (ऋ० २.२.६c : साथ धन देनेवाले (आप) हमारे बीच प्रकाशित हों) मन्त्र में 'सं' (साथ) है। यह संवत्सर का कथन है। इस प्रकार यह उस दिन का रूप है। ये अग्नि-मारुत सूक्त हैं। ये इस दिन के सूक्त हैं। अतः दिन या तो अग्निष्टोम है या उक्थ है। पैङ्ग्य का मत है कि यह अग्निष्टोम है; कौषीतकि का मत है कि यह उक्थ्य है।

१९.१० कुछ सामग इस दिन सभी स्तोमों को करते हैं। उनका कथन है कि 'इस दिन से वे छः दिनों का समय प्राप्त करते है और छः दिन के समय से वर्ष और अर्थ में कामनाओं को। संपूर्ण संवत्सर छः दिन का समय है'। यदि वे यह करें तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

षळहक्लृप्तं शस्त्रं कल्पयीत यत्प्रथमस्याह्न आज्यं तदाज्यं यो द्वितीयस्याह्नः प्रउगः स प्रउगो यत्तृतीयस्याह्नो मरुत्वतीयं तन्मरुत्वतीयं यच्चतुर्थस्याह्नो निष्केवल्यं तन्निष्केवल्यं यत्पञ्चमस्याह्नो वैश्वदेवं तद्वैश्वदेवं यत्षष्ठस्याह्न आग्निमारुतं तदाग्निमारुतं. तत्र सर्वान्पृष्ठस्तोत्रियान्समाहृत्योपरिष्टात्प्रगाथस्य प्रगाथीकृत्य शंसेत्षळहस्याऽऽप्त्यै तद्यथैतेनाह्ना छन्दोगाः षळहमाप्नुवन्ति षळहेन संवत्सरं ये च संवत्सरे कामा एवमेवैतेनाह्ना होता षळहमाप्नोति षळहेन संवत्सरं ये च संवत्सरे कामास्तद्ध स्मैतत्प्रदिश्याह सैषा मुग्धिरेवेति यं कं च च्छन्दोगाः स्तोममुपापद्येरन्न तदाद्रियेत यदेवेदं शस्त्रं प्रागैक्ष्याम तत एव नेयादेते वा उ स्तोमसाहे सूक्ते यत्कयाशुभीयतदिदासीये ताभ्यामेव न निश्च्यवेतेति न निश्च्यवेतेति ॥ १० ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मण एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

हरिः ॐ । देवचक्रं वा एतत्परिप्लवं यत्संवत्सरस्तदमृतत्वं तस्मिन्नेतत्षट्तयमन्नाद्यं ग्राम्याश्च पशव आरण्याश्चौषधयश्च वनस्पतयश्चाप्सुचरं च परिप्लवं च तद्देवाः समारुह्य सर्वांल्लोकाननु परिप्लवन्ते देवलोकं पितृलोकं जीवलोकमिम-

---

वह शस्त्र को छः दिन का करें। प्रथम दिन का आज्य आज्य हो, द्वितीय दिन का प्रउग प्रउग हो, मरूत्वतीय तृतीय दिन का मरुत्वतीय हो, निष्केवल्ल चौथे दिन का निष्केवल्य हो, वैश्वदेव पाँचवें दिन का वैश्वदेव हो, अग्निमारुत छठें दिन का अग्निमारुत हो। तदनन्तर पृष्ठ स्तोत्रों के सभी मंत्रों को एकत्र कर तथा उन्हें प्रगाथ बनाकर छः दिन का समय प्राप्त करने के लिये, प्रगाथ के बाद पाठ करे। जैसे इस दिन से छन्दोग छः दिन का समय और छः दिन के समय से वर्ष तथा वर्ष भर की कामनाओं को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार होता इस दिन से छः दिन का समय तथा छः दिन के समय से वर्ष और वर्ष में कामनाओं को प्राप्त करता है। इसको लक्ष्य कर वह कहता है—यह भ्रान्ति है। जिस किसी स्तोम को छन्दोग ग्रहण करें, वह उसका आदर न करे। जिस शस्त्र का हम यहाँ पूर्व में विचार कर चुके है उससे वह अलग न हो (उसका त्याग न करे)। 'कया शुभा (ऋ. १.१६५.१ इ. किस शुभ) तथा 'तदिदास' (ऋ.१०.१२०.१इ. यह था) ये दो सूक्त स्तोम के शमन कर्त्ता हैं, इस प्रकार वह इन दोनों से च्युत न हो।

शाङ्खायन ब्राह्मण में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

२०.१ हरिः ओम्! संवत्सर देवताओं का घूमता हुआ चक्र है। वह अमृतत्व है। इसमें छः प्रकार का अन्नाद्य, ग्राम्य तथा आरण्य पशु, औषधियाँ (लतायें), वनस्पतियाँ (वृक्ष), जल में होने वाला तथा तैरने वाला (पदार्थ जीव) है। इस पर आरूढ होकर देव सभी लोकों में परिभ्रमण करते हैं—देवलोक, पितृलोक, जीवलोक, जलविरहित अग्निलोक,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मुपोदकमग्निलोकमृतधामानं वायुलोकमपराजितमिन्द्रलोकमधिदिवं वरुणलोकं प्रदिवं मृत्युलोकं रोचनं ब्रह्मणो लोकं नाकं सप्तमं लोकानां तद्यदभिप्लवमुपयन्ति संवत्सरमेव तद्यजमानाः समारोहन्ति तस्मिन्नेतत्षट्तयमन्नाद्यमाप्नुवन्ति ग्राम्यांश्च पशूनारण्यांश्चौषधीश्च वनस्पतींश्चाप्सुचरं च परिप्लवं च द्विर्ज्योतिरुपयन्ति तेन द्वयमन्नाद्यमाप्नुवन्ति ग्राम्यांश्च पशूनारण्यांश्च द्विर्गामुपयन्ति तेन द्वयमन्नाद्यमाप्नुवन्त्योषधीश्च वनस्पतींश्च द्विरायुरुपयन्ति तेन द्वयमन्नाद्यमाप्नुवन्त्यप्सुचरं च परिप्लवं च ॥ १ ॥

ज्योतिः प्रथममहरुपयन्ति तस्य तान्येव च्छन्दोरूपाणि यानि प्रथमस्याह्नः प्र वो देवायाग्नय इत्याज्यं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं माधुच्छन्दसः प्रउगो रथन्तरं वै साम सृज्यमानं माधुच्छन्दसः प्रउगोऽन्वसृज्यत तद्रूपेण कर्म समर्धयत्येतद्वा आर्धुकं कर्म यद्रूपसमृद्धमा त्वा रथं यथोतय इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदिदं

अमृतधामा वायु लोक, अपराजित इन्द्र लोक, आकाश के ऊपर वरुण लोक, आकाश से परे (अत्यन्त ऊपर) मृत्यु लोक, प्रकाश शील ब्रह्म लोक, तथा सप्तम नाक (अत्यन्त यथार्थकीथ) लोक (में देवता भ्रमण करते हैं) । जो वे अभिप्लव को संपादित करते हैं उससे यजमान संवत्सर पर आरूढ़ होते हैं । इससे षड्विध अन्नाद्य, ग्राम्य तथा आरण्य पशुओं, औषधियों, वनस्पतियों, जल में रहनेवालों और तैरने वालों को प्राप्त करते है । वे ज्योति (ष्टोम) को दो बार करते हैं । इससे वे अन्नाद्य, ग्राम्य पशु तथा आरण्य पशु को दुगुना प्राप्त करते हैं । वे दो बार 'गो' को संपन्न करते हैं । इससे वे अन्नाद्य, औषधियों और वनस्पतियों को दुगुना प्राप्त करते हैं । आयुष को वे दो बार संपन्न करते हैं । इससे वे अन्नाद्य, जलचर और पारिप्लव (तैरनेवाले) को दुगुना प्राप्त करते हैं ।

२०.२ प्रथम दिन को वे ज्योतिः के रूप में सम्पन्न करते हैं । जो प्रथम दिन के छन्दोरूप (प्रतीक) हैं वे ही इसके भी है । 'प्र वो देवायाग्नये (ऋ. ३.१३.१ अग्नि देव के लिये आगे) आज्य है जो 'प्र' युक्त है । 'प्र' वत् प्रथम दिन का रूप है । प्रउग मधुच्छन्दा का है । जब रथन्तर साम की सृष्टि हो रही थी तो मधुच्छन्दा का प्रउग इसके बाद बनाया गया । इस प्रकार वह कर्म को उसके रूप से समृद्ध (सफल) करता हैं । जो कर्म अपने रूप से समृद्ध है वह सफलता (ऋद्धि) कारक होता है । मरुत्वतीय का प्रतिपत् है : आ त्वा रथं यथोतये इत्यादि (ऋ. ८.६८.१-३ मङ्गल के लिये आपको रथ के समान) । इदं वसो सुतमन्धः (ऋ. ८.२.१-३ हे प्रकाशशील यह पान अभिषुत हुआ है) यह अनुचर है । यह एक दिन का सामान्य रूप है । इसका ब्राह्मण कहा जा चुका हैं । 'इन्द्रं रथाय प्रवतं कृणोति' (ऋ. ५-३१-१ इन्द्र रथ के लिये आगे मार्ग बनाते हैं) यह 'प्र' युक्त मरुत्वतीय है । जो 'प्र'युक्त है वह प्रथम दिन का रूप है । आ याह्यर्वाङुपबन्धुरेष्ठा' (ऋ. ३.४३.१: अपने रथ पर आरूढ होकर इधर आइये) यह 'आ' युक्त निष्के-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वसो सुतमन्ध इत्यनुचर एष एव नित्य एकाहातानस्तस्योक्तं ब्राह्मणमिन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोतीति मरुत्वतीयं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमा याह्यर्वाङुपबन्धुरेष्ठा इति निष्केवल्यमावदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं तत्सवितुर्वृणीमहेऽद्या नो देवसवितरिति नित्यैव वैश्वदेवस्य प्रतिपच्चानुचरश्च तयोरुक्तं ब्राह्मणं युञ्जते मन उत युञ्जते धिय इति सावित्रं युक्तवद्युक्तवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधेति द्यावापृथिवीयं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमिहेह वो मनसा बन्धुता नर इत्यार्भवमुशिजो जग्मुरभि तानि वेदसेत्यभिवद्राथन्तरं रूपं कथा देवानां कतमस्य यामनीति वैश्वदेवं कतम ऊती अभ्याववर्ततीत्यावदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं वैश्वानराय पृथुपाजसे विप इति वैश्वानरीयं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं प्र त्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिन इति मारुतं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमेति प्रहोता व्रतमस्य माययेति जातवेदसीयं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमिमं लोकं प्रथमेनाह्नाऽऽप्नुवन्त्यग्निं देवं देवतानां नामाधिभूतं वाचमात्मन्दधते ॥ २ ॥

वल्य है। जो 'आ' वत् है वह प्रथम दिन का रूप है। वैश्वदेव के नित्य (सामान्य) प्रतिपत् तथा अनुचर हैं—तत्सवितुर्वृणीमहे(ऋ. ५.८२.१ सवितृ देव के [········] का हम वरण करते हैं) तथा 'अद्या नो देव सवितः'(ऋ. ५.८२.४ हे सवितृ देव ! आज हम लोगों के लिये)। इन दोनों का ब्राह्मण कहा जा चुका है। सवितृ का (सूक्त) है : युञ्जते मन उत युञ्जते धियः (ऋ. ५.८१.१ वे अपने मन को युक्त करते हैं; अपनी बुद्धियों को युक्त करते हैं)। यह 'युक्त' वत् है। 'युक्त' वत् प्रथम दिन का रूप है। प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा (ऋ. १.५९.१ यज्ञ से ऋत को बढ़ाते हुये द्यावा-पृथिवी आगे) यह 'प्र' युक्त द्यावा-पृथिवी का सूक्त है। 'प्र' वत् प्रथम दिन का रूप है। 'इहेह वो मनसा बन्धुता नरः' (ऋ. ३.६०.१ हे वीरो ! यहाँ मन से आप लोगों की बन्धुता है।) यह ऋभुओं का सूक्त है जिसका 'उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा' (ऋ. ३.६०.१ उसमें वे धन सहित कामना करते हुये आये) 'अभि' युक्त यह (पाद) है। यह रथन्तर का रूप है। 'कथा देवानां कतमस्य यामनि (ऋ. १०.६४.१ कैसे देवों में से किस एक की इस सेवा में) यह विश्वदेवों का सूक्त है जिसका 'कतम ऊती अभ्या ववर्तति'(ऋ.१०.६४.१० : सहायता सहित कौन इधर आयेगा) 'आ' वत् है। 'आ'वत् प्रथम दिन का रूप है। वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो' (ऋ. ३.३.१ वृहत् तेज वाले वैश्वानर को गान कर्ता) यह 'प्र'वत् वैश्वानरसूक्त है। 'प्र'वत् प्रथम दिन का रूप है। प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनो' (ऋ. १.८७.१: आगे दवाने वाले, शक्तिशाली तथा दृढ़) यह प्रवत् मारुत (सूक्त) है। प्रवत् प्रथम दिन का रूप है। एति प्रहोता व्रतमस्य मायया (ऋ. १.१४४.१ होता अपनी माया व्रत में आगे जाता है) यह 'प्र' युक्त जातवेदा का सूक्त है। 'प्र'वत् प्रथम दिन का रूप है। देवताओं के अधिभूत अग्नि देव, इस लोक को वे प्रथम दिन से प्राप्त करते हैं। वे अपने में वाणी को रखते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गां द्वितीममहरुपयन्ति तस्य तान्येवच्छन्दोरूपाणि यानि द्वितीयस्याह्नस्त्वं हि क्षैतवद्यश इत्याज्यं त्वं विचर्षणे श्रव इति विवतदस्यान्तरिक्षस्य रूपं विवृतमिव हीदमन्तरिक्षं गार्त्समदः प्रउगो बृहद्वै साम सृज्यमानं गार्त्समदः प्रउगोऽन्वसृज्यत तद्रूपेण कर्म समर्धयत्येतद्वा आर्धुकं कर्म यद्रूपसमृद्धं विश्वानरस्य वस्पतिमिति मरुत्वतीयस्य प्रतिपद्विवती तस्या उक्तं ब्राह्मणमिन्द्र इत्सोमपा एक इत्यनुचर इन्द्रः सुतपा विश्वायुरिति विवांस्तस्योक्तं ब्राह्मणमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इत्युद्वान्ब्राह्मणस्पत्य उत्तिष्ठेत्युद्वदुद्वद्वै द्वितीयमहरिमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोरिति मरुत्वतीयमुद्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणं सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोम इति निष्केवल्यं स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थ इत्युद्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणं विश्वो देवस्य नेतुरिति वैश्वदेवस्य प्रतिपद्विवती तस्या उक्तं ब्राह्मणमा विश्वदेवं सत्पतिमित्यनुचरो विवांस्तस्योक्तं ब्राह्मणं द्वे वैश्वदेवानां प्रतिपदौ द्वावनुचरौ षळृतुः संवत्सरः षड्विधो द्वे द्यावापृथिवी द्वे इमे प्रतिष्ठे षळङ्गोऽयमात्मा षड्विधोऽनु द्वे अहोरात्रे द्वाविमौ प्राणापानौ तन्न

२०.३ द्वितीय दिन के रूप में वे 'गौ' को संपन्न करते हैं। इसके छन्दोरूप वहां हैं जो द्वितीय दिन के। 'त्वं हि क्षैतवद् यशः (ऋ. ६.२.१ आप शासकीय यशवाले हैं) यह आज्य हैं। इस मंत्र का 'त्वं विचर्षणे श्रवो' (ऋ.६.२.१ हे विचर्षणे (ज्ञानी, या क्रियाशील) यश') पद 'वि' युक्त है। यह इस अन्तरिक्ष का रूप है क्योंकि यह अन्तरिक्ष विवृत जैसा है। प्रउग गृत्समद कृत है। जब वृहत्साम का सृजन हो रहा था प्रउग उसके बाद निर्मित हुआ। इस प्रकार वह इस कर्म को इसके रूप से समृद्ध(सफल)करता है। जो अपने रूप से समृद्ध है वह कर्म समृद्धिकारी होता है। मरुत्वतीय का प्रतिपत् है- विश्वानरस्य वस्पतिम्' इत्यादि (ऋ. ८-६८.४-६ सभी मनुष्यों के पति) यह 'वि' युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। अनुचर है-इन्द्र इत्सोमपा एकः' इ. (ऋ० ८.२.४-६ : इन्द्र अकेले सोमपा हैं) इसका इन्द्रः सुतपा विश्वायुः (ऋ. ८ २ ४ सभी आयु के अभिषुत को पीनेवाले इन्द्र)चरण 'वि' युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' (ऋ. १.४०.१, २ ब्रह्मणस्पते ! उठिये) यह 'उत्' युक्त ब्रह्मणस्पति का मंत्र है। 'उत्तिष्ठ' 'उत्' युक्त है। द्वितीय दिन 'उत्' युक्त है। 'इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर् (ऋ. ६.२१.१ इस कवि की ये) यह मरुत्वतीय है जो 'उत्' युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे (ऋ. ६.२३.१ हे इन्द्र ! आप अभिषुत पेय से मिश्रित हैं) यह निष्केवल्य है जिसका स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थ (ऋ. ६.२३.१ स्तोम, स्तुति, सूक्त गान हो रहा है) 'उत्' युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। वैश्वदेव का 'वि' युक्त प्रतिपत् है 'विश्वो देवस्य नेतुः (ऋ. ५.५०.१-३ : नेता देव का प्रत्येक मनुष्य)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'वि' युक्त अनुचर हैं-आ विश्वदेवं सत्पतिम् (ऋ. ५.८२.७-९ : सभी के देव, सज्जन के स्वामी)इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। वैश्वदेव के दो प्रतिपत् तथा दो अनुचर हैं। संवत्सर छः ऋतुओं का और षड्विध

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संवत्सरः संपदो यन्ति नाऽऽत्मसंस्कृतेर्न प्राणसंस्कृतेरभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इति सावित्रमुद्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणं ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवेति द्यावापृथिवीयं विवत्तस्योक्तं ब्राह्मणं ततं मे अपस्तदु तायते पुनरित्यार्भवमुद्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणं देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति वैश्वदेवमुद्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणं पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सह इति वैश्वानरीयं वृष एव वृषा वा इन्द्रो वृषा त्रिष्टुप्तस्माद्वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधस इति मारुतं वृष एव तस्योक्तं ब्राह्मणं यज्ञेन वर्धत जातवेदसमिति जातवेदसीयं समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरमित्युद्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणमन्तरिक्षलोकं द्वितीयेनाह्नाऽऽप्नुवन्तीन्द्रं देवं देवतानामोजोऽधिभूतं प्राणमात्मन्दधते ॥ ३ ॥

आयुस्तृतीयमहरुपयन्ति तस्य तान्येव च्छन्दोरूपाणि यानि तृतीयस्याह्न-

---

हैं। ये द्यावा-पृथिवी दो प्रतिष्ठा हैं। यह आत्मा (शरीर) छः अङ्गों वाला तथा षड्विध हैं। दिन और रात दो हैं। ये प्राण और अपान दो हैं। इस प्रकार वे संवत्सर की पूर्णता से पृथक् नहीं होते न आत्मा (शरीर) की संस्कृति (पूर्णता, संस्कार) से पृथक् होते हैं और न प्राणों की पूर्णता से पृथक् होते हैं। सवितृ का 'उत्' वत् (सूक्त) है : अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु नः (ऋ० ४.५४.१ : हमारे लिये वन्द्य सवितृ देव प्रकट हुये हैं)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। द्यावा-पृथिवी का 'वि' वत् सूक्त है : ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव (ऋ० १.१६०.१ वे दोनों समस्त मंगलों की उत्पादक द्यावापृथिवी)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। ऋभुओं का 'उत्' युक्त सूक्त है : ततं मे अपस्तदु तायते पुनः' (ऋ० १.११०.१ : मेरा कार्य विस्तृत हो चुका है वह पुनः विस्तृत हो रहा है)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका चुका है। विश्वेदेवों का 'उत् युक्त सूक्त है : देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये (ऋ० १०.६६.१ : स्वस्ति के लिये वृहत् प्रशंसावाले देवों का मैं आह्वान करता हूँ)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः' (ऋ० ६।८।१ : तेज, बलवान् तथा अरुषवर्ण वाले की शक्ति) यह 'वल' युक्त (वृषः) वैश्वानर का सूक्त है। इन्द्र वृषा (बलवान्) है। त्रिष्टुप् बलवान् है। अतः यह वृष है। 'वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे (ऋ० १.६४.१ : बलवान् समूह, सुमख वेधा के लिये) यह 'वृष्' युक्त मरुतों का सूक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'यज्ञेन वर्धत जातवेदसम्' (ऋ० २.२.१a यज्ञ से जातवेदा को बढ़ाओ) यह जातवेदा का सूक्त है जिसका 'समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं (ऋ० २.२.१० : समिद्ध किये तथा सुसेवित स्वर्गीय नर) 'उत्' वत् है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। द्वितीय दिन से वे अन्तरिक्ष लोक को प्राप्त करते हैं। इन्द्रदेव, देवताओं के ओज अधिभूत (को प्राप्त करते हैं)। वे अपने में प्राण को रखते हैं।

२०.४ तृतीय दिन को वे आयु के रूप में सम्पन्न करते हैं। उसके वे ही छन्दोरूप हैं जो तृतीय दिन के। इसका आज्य है—त्वमग्ने वसूंरिह (ऋ० १.४५.१ : हे अग्नि !

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्त्वमग्ने वसूंरिहेत्याज्यं स्वयं संभृतं वा एतच्छन्दो यदह्नो रूपेण संपद्यते तान्रोहि-दश्वगिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वहेति त्रय इति तत्तृतीयस्याह्नो रूपमौष्णिहो वैश्वमनसः प्रउगो रथन्तरं वै साम सृज्यमानमौष्णिहो वैश्वमनसः प्रउगोऽन्वसृज्यत तद्रूपेण कर्म समर्धयत्येतद्वा आर्धुकं कर्म यद्रूपसमृद्धं तं तमिद्राधसे मह इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपत्तं तमिति निनृत्तिरन्तस्तृतीयमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ् हि तत इयात्त्रय इन्द्रस्य सोमा इत्यनुचरस्त्रय इति तत्तृतीयस्याह्नो रूपं प्रैतु ब्रह्मण-स्पतिरिति प्रवान्ब्राह्मणस्पत्यः प्र देव्ये तु सूनृतेति निनृत्तिरन्तस्तृतीयमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ्हि सत इयात्तिस्रो मरुत्वतीयानां प्रतिपदस्त्रयोऽनुचरा-स्त्रयो ब्राह्मणस्पत्यास्त्रयो वा इमे लोका इमानेव तं लोकानाप्नुवन्ति तिष्ठा हरीरथ-आयुज्यमानेऽतिमरुत्वतीयं तिष्ठेति स्थितवत्तदन्तरूपमन्तस्तृतीयमहस्तिष्ठतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयादिन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचमिति निष्केवल्यं तस्य

आप वसुओं को यहाँ)। जो छन्द दिन के रूप से समानता (अनुकूलता) रखता है वह स्वयं संभृत (एकत्रित) है। 'तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह (ऋ०१.४५.२ab : हे रोहितवर्णवाले अश्वों वाले ! गायक उन तैंतीस को यहाँ लाइये) इसमें 'त्रय' है। यह तीसरे दिन का रूप है। इसका प्रउग विश्वमनाका उष्णिह है (ऋ० ८.२६.२३-२५; ४.४६.३:५; ८.२५.१-३; २६.४-६; २४.१-३; २५.१०-१२; ६.६१.१०-१२)। जब रथन्तर साम निर्मित हुआ तो इसके बाद विश्वमना के उष्णिह मन्त्र निर्मित हुये। इस प्रकार वह कर्म को उसके रूप से समृद्ध करता है। जो कर्म अपने रूप से समृद्ध होता है वह सफलताकारी होता है। तं तमिद्राधसे महः इत्यादि (ऋ० ८.६८.७-९ : महान् सम्पत्ति के लिये उसे) यह मरुत्वतीय वा प्रतिपत् है। इसमें 'तम्' की पुनरावृत्ति है। तृतीय दिन समाप्ति है। अन्त में पहुँच कर वह दुहराता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जायेगा ? 'त्रय इन्द्रस्य सोमाः' इत्यादि (ऋ० ८.२.७-९ : इन्द्र के लिये तीन सोम (पान)) यह अनुचर है। इसमें 'त्रय' है। यह तृतीय दिन का रूप है। 'प्रैतु ब्रह्मण-स्पतिः' इत्यादि (ऋ० १.४०.३,४ ब्रह्मणस्पति आगे चलें) ये 'प्र'युक्त ब्रह्मणस्पति के मंत्र हैं। 'प्र देव्ये तु सूनृता (ऋ.१.१४०.b : आगे कृपालु देवता चलें) इसमें पुनरावृत्ति है। तृतीय दिन अंत है। अंत में पहुँच कर वह इसे मानों दुहराता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जायेगा। मरुत्वतीय के तीन प्रतिपत् है। तीन अनुचर हैं। तीन ब्राह्मणस्पत्य (प्रगाथ) हैं। ये लोक तीन है। इस प्रकार वे इन तीनों लोकों को प्राप्त करते हैं। 'तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना' (ऋ० ३.३५.१a : अश्वों से जुते रथ पर आरूढ होइये) यह 'तिष्ठ' युक्त अतिमरुत्वतीय सूक्त है। यह अन्त का रूप है। तृतीय दिन अंत है। अंत में पहुँच कर वह रुक जाता है क्यों कि यहाँ से वह किधर जायेगा ? 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्' (ऋ० १.३२.१a : इन्द्र के पराक्रमों का कथन करूँगा) यह निष्केवल्य है। भूत के अनुवाद (कथन) से इसमें अन्त का रूप है। 'अहन्नहिमन्वपस्ततर्द' (ऋ० १.३२.१c

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तदेवान्तरूपं यद्भूतानुवाद्यहन्नहिमन्वपस्ततर्देति यदेतद्भूतमिवाभ्युदुष्य देवः सविता हिरण्ययेति सावित्रं घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मख इति घृतवद्बहुदेवत्यं वै घृतं बहुदेवत्यं तृतीयमहस्तस्माद्घृतवत्घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते इति द्यावापृथिवीयं घृतवत्तस्योक्तं ब्राह्मणं तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनाऽपस इत्यार्भवं तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू इति निनृत्तिरन्तस्तृतीयमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयादा नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वत इति वैश्वदेवमप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिव इति निनृत्तिरन्तस्तृतीयमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयाद्वैश्वानराय धिषणामृतावृध इति वैश्वानरीयं घृतं न पूतमग्नये जनामसीति घृतवत्तस्योक्तं ब्राह्मणमा रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषस इति मारुतं तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यव इति दिव इति तदमुष्य लोकस्य रूपं त्वामग्न ऋतायवः समीधिर इति जातवेदसीयं त्वां त्वमिति

अहि को मारा तथा जलों को भेदा) यह जो हुआ है (भूत) उसके बारे में है। 'उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया' (ऋ० ६.७१.१a : इधर देव सविता हिरण्मय से) यह सवितृ सूक्त है। यह 'घृतेन पाणी अभि प्रष्णुते मखो (ऋ० ६.७१.१c : घृत से दोनों हाथों को वह अभिरंजित करता है,) से 'घृत' वत् है। घृत बहुदेवत्य है। तृतीय सवन में बहुत देवता हैं। इसलिये यह घृत' शब्द युक्त है। द्यावा पृथिवी के लिये 'घृत' वत सूक्त है : घृतेन द्यावा पृथिवी अभीवृते इत्यादि (ऋ० ६.७०.४-६ : घृत से द्यावा पृथिवी आवृत हैं)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस् (ऋ० १.१११.१a : ज्ञानी कार्य कर्ता उन्होंने भलीभाँति आवृत रथ को बनाया) यह ऋभुओं का सूक्त है। इसमें 'तक्षन् हरो इन्द्रवाहा वृषण्वसू' (ऋ० १.१११.१b : उन्होंने इन्द्र को ढोने वाले तथा सम्पत्तिशाली दो अश्वों को बनाया) इसमें आवृति है। तृतीय दिन अंत है। अन्त में पहुँच कर मानों वह इसे दुहराता है क्यों कि यहाँ से वह कहाँ जायेगा ? विश्वेदेवों का सूक्त है—आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वत.' (ऋ० १.८९.१a : हमे चारों ओर से सद्बुद्धियाँ आवें)। इसमें 'अप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे (ऋ० १.८९.१a : सफल रक्षक प्रति दिन) पुनरावृत्ति है। तृतीय दिन अन्त हैं। अन्त में पहुँच कर इसे वह मानों दुहराता है क्योंकि यहाँ से वह कहां जाय ? वैश्वानर का सूक्त है : वैश्वनराय धिषणामृताबृधे (ऋ. ३.२.१a : ऋत के वर्धक वैश्वानर के लिये यह स्तुति)। इसके 'घृतं न पूतमग्नये जनामसि (ऋ० ३.२.१b : अग्नि को पूत घृत की भाँति समर्पित करते हैं) में 'घृत' है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मरुतों का सूक्त है —आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो (ऋ० ५.५७.१a : इन्द्र से युक्त समान अनुभूति वाले रुद्र)। इसके 'तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे (ऋ० ५.५७.१d : पिपासु मनुष्य के लिये आकाश से जल के उत्स की भाँति) में 'दिवः (आकाश से) शब्द है। यह उस लोक का रूप है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सप्रभृति यथा वै सोदर्कमेवं सप्रभृत्यन्तरूपममुं लोकं तृतीयेनाह्नाप्नुवन्त्यादित्यं देवं देवतानां रूपमधिभूतं चक्षुरात्मन्दधते रूपमधिभूतं चक्षुरात्मन्दधते ॥ ४ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

हरिः ॐ । देवा वै मृत्युं पाप्मानमपजिघांसमाना ब्रह्मणः सलोकतां सायुज्यमीप्सन्त एतमभिप्लवं षळहमपश्यंत एतेनाभिप्लवेनाभिप्लुत्य मृत्युं पाप्मानपहत्य ब्रह्मणः सलोकतां सायुज्यमापुस्तथो एवैतद्यजमाना एतेनैवाभिप्लवेनाभिप्लुत्य मृत्युं पाप्मानमपहत्य ब्रह्मणः सलाकतां सायुज्यमाप्नुवन्ति त एतेन पूर्व्येण त्र्यहेनाभिप्लुत्य गवा चतुर्थेऽहन्नयजन्त गमनायैवाऽऽयुः पञ्चममहरुपायन्त्सर्वायुत्वाय ज्योतिः षष्ठमहः पुनः परस्तात्पर्यास्यन्मृत्योरेव पाप्मनो नान्ववाऽयनाय ॥ १ ॥

गां चतुर्थमहरुपयन्ति तस्य तान्येव च्छन्दोरूपाणि यानि चतुर्थस्याह्नो होताऽजनिष्ट चेतन इत्याज्यं जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपं मैधातिथः प्रउगो

जातवेदा का सूक्त है : त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे (ऋ० ५.८.१a : हे अग्ने ! आपको सत्यशीलों ने प्रज्वलित किया है) । यह (प्रत्येक मन्त्र में) उसी शब्द 'त्वाम्' से प्रारम्भ होता है । जैसे उसी अन्त से हो उसी प्रकार उसी (एक ही) से प्रारम्भ अन्त का रूप (प्रतीक) है । उस लोक को तृतीय दिन से प्राप्त करते है—देवों के अधिभूत रूप आदित्य देव को । वे अपने में चक्षु रखते हैं ।

शाङ्खायन ब्राह्मण में बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

२१.१ हरिः ओम् । मृत्यु तथा पाप का नाशकर रहे तथा ब्रह्म की सलोकता और सायुज्य के इच्छुक देवताओं ने इस छः दिन के अभिप्लव (कर्म) को देखा । उन्होंने इस अभिप्लव से चलकर मृत्यु तथा पाप को नष्टकर ब्रह्म की सलोकलता तथा सायुज्य प्राप्त किया । उसी प्रकार यजमान भी इस अभिप्लव से पहुंचकर मृत्यु तथा पाप को नष्ट कर ब्रह्म की सलोकता तथा सायुज्य प्राप्त करते हैं । उन्होंने इन पूर्व के तीन दिनों से पहुँचकर चतुर्थ दिन में गमन के लिये गाय से यजन किया । पूर्ण आयुष्य की प्राप्ति के लिये उन्होंने आयु को सम्पन्न किया और अन्त में छठें दिन पुनः ज्योतिः को सम्पन्न किया जिससे मृत्यु और पाप में न आवें ।

२१.२ वे चतुर्थ दिन के रूप में गो को सम्पन्न करते हैं । इनके छन्दों के रूप वही हैं जो चतुर्थ दिन के । इसका आज्य 'होता अजनिष्ट चेतनः (ऋ० २.५.१ : ज्ञानी होता उत्पन्न हुआ) है । यह 'जात' शब्द युक्त है । चतुर्थ दिन का रूप 'जात' शब्द युक्त है । 'प्रउग' मेधातिथि का है (ऋ० १.२३.१) । जब बृहत्साम निर्मित हो रहा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बृहद् वै सामसृज्यमानं मैधातिथः प्रउगोऽन्वसृज्यत तद्रूपेण कर्म समर्धयत्येतद्वा आर्धुकं कर्म यद्रूपसमृद्धं जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति मरुत्वतीयं जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपमुग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावानिति निष्केवल्यं जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपं तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महदिति सावित्रमजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यमिति जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपं ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवेति द्यावापृथिवीयं सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयत इति जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपमनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्य इत्यार्भवं जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपमग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमेति वैश्वदेवं यज्ञं जनित्वी तन्वी निमामृजुरिति जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपं वैश्वानराय पृथुपाजसे विप इति वैश्वानरीयं तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आचक्र इत्यावदावद्वै चतुर्थस्याह्नः प्रायणीयरूपं पुनः प्रायणीयं हि चतुर्थमहर्जात आपृणो भुवनानि

था मेधातिथि द्वारा प्रउग इसके बाद निर्मित हुआ। इस प्रकार वह कर्म को उसके रूप (प्रतीक) के द्वारा समृद्ध करता है। जो कर्म अपने रूप से समृद्ध है वह समृद्धिकारी होता है। 'जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय (ऋ० १०.७३.१ आप उग्र बलवान् वेग के लिये उत्पन्न हुये हैं) यह 'जात' युक्त मरुत्वतीय है। जो 'जात' युक्त है वह चतुर्थ दिन का रूप है। 'उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान् (ऋ० ७.२०.१ : वह उग्र स्वधावान् वीर्य के लिये उत्पन्न हुआ) यह 'जात' युक्त निष्केवल्य है। जो 'जात' शब्द युक्त है वह चतुर्थ दिन का रूप है। 'तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महत् (ऋ० ४.५३.१, : सूर्य देव का वह वरणीय महत्त्व) यह सूर्य का (सूक्त) है जो 'अजीजनत् सविता सुम्नमुक्थम्' (ऋ० ४.५३.२d सविता ने सुन्दर वचनों वाले सूक्त को उत्पन्न किया) में 'जात' शब्द युक्त है। जो 'जात' युक्त है वह चतुर्थ दिन का रूप है। 'ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशंभुव' (ऋ० १.१६०.१ a : सभी मंगलों के उत्पादक वे दोनों द्यावा पृथिवी) यह द्यावापृथिवी का सूक्त है जो 'सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते (ऋ० १.१६०.१c : सुजन्म वाले उन अभिषुत दोनों के बीच वह जाता है) में 'जात' युक्त हैं। यह चतुर्थ दिन का रूप है। ऋभुओं का जात 'शब्द युक्त सूक्त हैं : अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो (ऋ० ४.३६.१ : विना अश्व, लगाम के उत्पन्न प्रशंसनीय)। जो 'जात' शब्द युक्त है वह चतुर्थ दिन का रूप है। 'अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा (ऋ० १०.६५.१ : अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा) यह विश्वेदेवों का सूक्त है जो 'यज्ञं जनित्री तन्वी निमामृजुः (ऋ० १०.६५ ७ d : यज्ञों को उत्पन्न कर उन्होंने अपने शरीरों को पोंछा) में 'जात' युक्त है। जो 'जात' युक्त है वह चतुर्थ दिन का रूप है। वैश्वानर का सूक्त है : वैश्वानराय पृथुपाजसे विपः (ऋ० ३.३.१a : बृहत् तेज वाले वैश्वानर के लिये गायकगण) इसका 'तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चक्रे, (ऋ० ३.३.२d : उनमें यजमान सहायता के लिये देखता है) 'आ' युक्त है। जो 'आ' युक्त है वह चतुर्थ दिन का प्राय-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रोदसी ३ इति जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपं प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तय इति मारुतं जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपं जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरिति जातवेदसीयं जातवज्जातवद्वै चतुर्थस्याह्नो रूपमन्नं चतुर्थेनाह्नाऽऽप्नुवन्ति चन्द्रमसं देवं देवतानां दिशोऽधिभूतं श्रोत्रमात्मन्दधते ॥ २ ॥

आयुःपञ्चममहरुपयन्ति यस्य तान्येव च्छन्दोरूपाणि यानि पञ्चमस्याह्नोऽग्न ओजिष्ठमा भरेत्याज्यं प्र नो राया परीणसेति रायेति रयिमद्रयिमदिति वा अस्य रूपमध्यासवत्तत्पङ्क्ते रूपं संहार्यः प्रउगो रथन्तरं वै साम सृज्यमानं संहार्यप्रउगोऽन्वसृज्यत तद्रूपेण कर्म समर्धयत्येतद्वा आर्धुकं कर्म यद्रूपसमृद्धं क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रमिति मरुत्वतीयं यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्निति रायेति रयिमद्रयिमदिति वा अस्य रूपमेतायामोपगव्यन्त इन्द्रमिति निष्केवल्यं गव्यन्त

णीय (प्रारम्भिक) का रूप है क्योकि चतुर्थ दिन पुनः प्रायणीय है (ऋ० ३.३.३ d तथा १० b) । जात आपृणो भुवनानि रोदसी ऋ.३.३.१०c : भुवनों और द्यावापृथिवी को भरते हुए उत्पन्न हुआ) यह 'जात' युक्त है । 'जात' युक्त चतुर्थ दिन का रूप है । 'प्र' ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयः (ऋ० १.८५.१a : जो स्त्रियों और धावकों के समान आगे चमकते हैं) यह मरुतों का 'जात' युक्त सूक्त है । 'जात' युक्त चतुर्थ दिन का रूप हैं । जातवेदा का 'जात' युक्त सूक्त है : जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविः (ऋ० ५.११.१a : वह मनुष्य का रक्षक जागरूक उत्पन्न हुआ) । जो 'जात' शब्द युक्त है वह चतुर्थ दिन का रूप है । चतुर्थ दिन के द्वारा अन्न प्राप्त करते हैं, देव चन्द्रमा देवताओं के अधिभूत, दिशाओं (को प्राप्त करते हैं); श्रोत्र को अपने में रखते हैं ।

२१.३ पञ्चम दिन में वे आयु को संपन्न करते हैं । उसके वे ही छन्दोरूप हैं जो पञ्चम दिन के । 'अग्न ओजिष्ठमा भर (ऋ. ५.१०.१a : हे अग्ने ! ओजिष्ठ को लाओ) आज्य हैं । प्र नो राया परीणसा(ऋ.५.१०.१c धान तथा प्रचुरता सहित हमारे लिये आगे) यह 'राया' शब्द से युक्त होने से 'रयि' शब्द युक्त है । 'रयि' युक्त इस दिन का रूप है । इसमें एक अतिरिक्त भी है । इसके (ऋ. ५.१० के) अंतिम मंत्र में एक पद अतिरिक्त है (चौथे मंत्र में भी अतिरिक्त है) । अतः यह अध्यास है । यह पङ्क्ति का रूप है । प्रउग को संग्रहीत करना है (यह शां. श्रौ. सू. ११.८,२,३ में निर्दिष्ट है) । जब रथन्तर साम निर्मित हुआ तो संग्रहीत होने वाला प्रउग इसके वाद में बना । इस प्रकार वह कर्म को अपने रूप (प्रतीक) से समृद्ध करता है । जो कर्म अपने रूप से समृद्ध है वह समृद्धिकारी होता है । क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रम् (ऋ. ५.३०.१a : वह वीर कहाँ है जिसने इन्द्र को देखा है) यह मरुत्वतीय है । 'यो राया वज्री सुतसोममिच्छन् (ऋ. ५.३०.१c: वज्र धारण करने वाला धन सहित अभिषुत सोम को चाहते हुये) यह राया शब्द से युक्त होने से रयि (धन) शब्द युक्त है । 'रयि' शब्द युक्त इसका रूप है । इसका निष्केवल्य है एतायामोप गव्यन्त इन्द्रम् (ऋ. १.३३.१ गायों की कामना करते हुये आओ हम इन्द्र के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपमुदु ष्य देवः सविता हिरण्ययेति सावित्रं घृतेन पाणी अभिप्रष्णुते मख इति घृतवद्घृतमिति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपं घृतवती भुवनानामभिश्रियेति द्यावापृथिवीयं घृतवत्तस्योक्तं ब्राह्मणं ततं मे अपस्तदु तायते पुनरित्यार्भवं स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मनेति घृतवत्तस्योक्तं ब्राह्मणं कथा देवानां कतमस्य यामनीति वैश्वदेवं सहस्रसा मेधसाताविव त्मनेति सहस्रसा इति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपं पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सह इति वैश्वानरीयमपामुपस्थे महिषा अगृभ्णतेति महिषा इति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपं प्र वः स्पळक्रन्तसुविताय दावन इति मारुतं गवामिव श्रियसे श्रृङ्गमुत्तममिति गवामिवेति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपं चित्र इच्छिशोरतरुणस्य वक्षथ इति जातवेदसीयं

पास चले)। यह गव्यन्त (गायों की कामना करते हुये) पशु युक्त हैं। पशु युक्त इसका रूप है। उदुष्य देवः सविता हिरण्यया(ऋ.६.७१.१ इधर देव सविता हिरण्मय से) यह सवितृ का सूक्त है जो 'घृतेन पाणी अभि प्रष्णुते मखः (ऋ. ६.७१.१ घृत से वह यजमान दोनों हाथों को अभिसिंचित करता है) में घृत युक्त है। घृत में यह पशु शब्द युक्त है। 'पशु' शब्द युक्त इसका रूप है। घृतवती भुवनानामभिश्रिया (६.७०.१ घृतवती भुवनों को आवृत करती) यह 'घृत'शब्द युक्त द्यावा पृथिवी का सूक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। ततं मे अपस्तदु तायते पुनः (ऋ. १.११०.१ मेरा कर्म विस्तृत हो चुका है, वह पुन विस्तृत हो रहा है) यह ऋभुओं का सूक्त है। यह 'स्रुचेव घृतं जुहुयाम विद्मना (ऋ. १.११०.६ : जैसे घी स्रुवा से हवन किया जाता है वैसे हम ज्ञानपूर्वक दें) यह 'घृत' शब्द युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'कथा देवानां कतमस्य यामनि (ऋ. १०.६४.१. देवों में किस एक की इस सेवा में किस प्रकार) यह वैश्वदेव सूक्त है। यह 'सहस्रसा मेधसा ताविव त्मना (ऋ. १०.६४.६ आहुतियों की प्राप्ति में सहस्रों के प्राप्ति करनेवाले) स्वयं में 'सहस्रसा' से पशु युक्त है। 'पशु' मत् इसका रूप है। वैश्वानर का सूक्त है पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः (ऋ. ६.८.१a : तेज, बलवान् अरुषवर्ण वाले की शक्ति)। यह 'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत' (ऋ. ६.८.१ महिषों ने उन्हें जलों की गोद में पकड़ा) में 'महिषा' युक्त होने से 'पशु' युक्त है। 'पशु' मत् इसका रूप है। मरुतों का सूक्त है—'प्र वः स्पलक्रन्त्सुविताय दावने (ऋ. ५.५९.१ आपका चर आपके पास कृपा के लिये आया है)। यह 'गवामिव श्रियसे श्रृङ्गमुत्तमम्' (ऋ. ५.५९.३ गायों के श्रृङ्ग, की भाँति उत्तम श्री के लिये) में 'गवामिव' में 'पशु' मत् है। 'पशु' युक्त इसका रूप है। जातवेदा का सूक्त है—चित्र इच्छिशोरतरुणस्य वक्षथो' (ऋ. १०.११५.१ कोमल दुवा की वृद्धि विचित्र है)। यह 'वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य' (ऋ. १०.११५.६ सुन्दर पिता वाले, अत्यन्त बलशाली, शक्तिमान् आपके लिये) में 'वाज' (शक्ति) युक्त है। यह इस दिन का रूप है। इसमें एक अतिरिक्त पद है (यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्येति वाजवत्तदेतस्याह्नो रूपमध्यासवत्तत्पङ्क्ते रूपं पशून्पञ्चमेनाह्नाऽऽप्नुवन्ति रुद्रं देवं देवतानां यशोऽधिभूतं वीर्यमात्मन्दधते ॥ ३ ॥

ज्योतिः षष्ठमहरुपयन्ति तस्य तान्येव च्छन्दोरूपाणि यानि षष्ठस्याह्नः सखायः सं वः सम्यञ्चमित्याज्यं सखाय इति सर्वरूपं सर्वरूपं वै षष्ठमहस्तस्मात्सखाय इति सर्वानिवानुवदति संहार्यप्रउगो बृहद्धै साम सृज्यमानं संहार्यप्रउगोऽन्वसृज्यत तद्रूपेण कर्म समर्धयत्येतद्वा आर्धुकं कर्म यद्रूपसमृद्धं महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा इति मरुत्वतीयमुरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूदिति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयाद्यो जात एव प्रथमो मनस्वानिति निष्केवल्यं तस्य तदेवान्तरूपं यद्भूतानुवादि यो दासं वर्णमधरं गुहाक इति यदेतद्भूतमिवाभि सोदर्कं भवति तद्द्वितीयमन्तरूपं तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महदिति सावित्रं दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिरिति दिव इति तदमुष्यलोकस्य

अतिरिक्त पद अंतिम (९वें) शक्वरी छन्द में है)। यह पङ्क्ति का रूप है। वे पांचवें दिन से पशु को प्राप्त करते हैं; रुद्रदेव देवताओं के अधिभूत यश को। वे अपने में वीर्य को रखते हैं।

२१.४. वे ज्योति को षष्ठ दिन में करते हैं। इसके छन्दों के रूप (प्रतीक) वही हैं जो षष्ठ दिन के। इसका आज्य है–'सखायः सं वः सम्यञ्चम्' (ऋ० ५.७.१a : हे मित्रो! साथ-साथ, संगत)। 'सखायः' सर्वरूप (सभी का प्रतीक) है। षष्ठ दिन सर्वरूप है। इसलिये वह 'सखायः' में सभी को कहता (निर्दिष्ट करता) है। इसका प्रउग संहार्य (इकट्ठा करने योग्य) है (इस संहार्य प्रउग के लिये द्र. शां. श्रौ. सू. ११.९.२,३)। जब वृहत् साम निर्मित हुआ तो यह संहार्य प्रउग इसके बाद में निर्मित हुआ। इस प्रकार वह कर्म को उसके रूप से समृद्ध करता है। जो कार्य रूप से समृद्ध है वह समृद्धिकारी होता है। 'महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा' (ऋ० ६.१९.१a : प्रजाओं पर प्रसृत होने वाले मनुष्यवत् इन्द्र महान् है) यह मरुत्वतीय है। 'उरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्' (ऋ० ६.१९.१d : निर्माताओं द्वारा वह विस्तृत, पृथु तथा सम्यक् निर्मित हुआ) इसमें आवृत्ति है। षष्ठ दिन अंत है। अंत में जाकर वह आवृत्त की तरह करता है क्योंकि यहाँ से वह किधर जायेगा ? इसका निष्केवल्य है : यो जात एव प्रथमो मनस्वान् (ऋ० १.१२.१a : जो मनस्वी प्रथम उत्पन्न होते हो)। इसमें जो हुआ है उसका अनुवाद है अतः यह अंत का रूप है। 'यो दासं वर्णमधरं गुहाकः' (ऋ० २.१२.४c : जिन्होंने दास वर्ण को नीचे गुहा में दबाया) यह वह है जो हो चुका है। इसमें वही अंत है। यह अंत का द्वितीय रूप है। 'तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महत्' (ऋ० ४.५३.१a : सूर्यदेव का वह वरणीय महत्त्व) यह सवितृ सूक्त है। इसमें 'दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः' (ऋ० ४.५३.२a : दिव तथा भुवन के धर्ता प्रजापति) में 'दिन' उस लोक का रूप है। 'घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रूपं घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते इति द्यावापृथिवीयं घृतवत्सर्वदेवत्यं वै घृतं सर्वदेवत्यं वै षष्ठमहस्तस्माद्घृतवत्किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्नित्यार्भवं श्रेष्ठो यविष्ठ इति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ्हि तत इयादबुध्रमुत्य इन्द्रवन्तो अग्नय इति वैश्वदेवं तस्य तदेवान्तरूपं यत्सोदर्कं वैश्वानराय धिषणा मृतावृध इति वैश्वानरीयं घृतं न पूतमग्नये जनामसीति घृतवत्स्योक्तं ब्राह्मणं धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजस इति मारुतं धारावरा इति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ्हि तत इयात्त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिरिति जातवेदसीयं त्वं त्वमिति सप्रभृति यथा वै सोदर्कमेवं सप्रभृत्यन्तं रूपमपः षष्ठेनाह्नाऽऽप्नुवन्ति प्रजापतिं देवं देवतानां तेजोऽधिभूतममृतमात्मन्दधते ॥ ४ ॥

तदाहुः कस्माद्वैश्वदेवान्येवान्वायात्यन्तेनैकदेवत्यानि न द्विदेवत्यानीति नैकदेवत्येन यातयामं भवति न द्विदेवत्येन वैश्वदेवेनैव यातयामं भवति तस्माद्वैश्वदेवान्येवान्वायात्यन्त एतेषामेवाह्नां सबलताया एतेषामभिप्लवानामयातयामतायै

(ऋ० ६.७०.४a : घृत से द्यावापृथिवी व्याप्त हैं) यह 'घृत' शब्द युक्त द्यावापृथिवी का सूक्त है। घृत सर्वदेवत्य है। षष्ठ दिन सर्वदेवत्य है। अतः यह 'घृत' शब्द युक्त है। ऋतुओं का सूक्त है—किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठः न आजगन् (ऋ० १.१६१.१ क्यों सर्वश्रेष्ठ और सबसे छोटा हमारे पास आया है ?)। श्रेष्ठ और यविष्ठ में यहाँ आवृत्ति है। षष्ठ दिन अंत है। अन्त में जाकर वह इसे आवृत्त जैसा करता है क्योंकि यहाँ से वह किधर जायेगा ? विश्वदेवों का सूक्त है—'अबुध्रमुत्य इन्द्रवन्तो अग्नयो' (ऋ० १०.३५.१ : इन्द्र-युक्त ये अग्नियां जागृत हुये हैं)। इसमें वहीं अन्त है यह अन्त का रूप है। वैश्वानर का सूक्त है—वैश्वानराय धिषणामृतावृधे (ऋ० ३.२.१a : ऋत के वर्धक वैश्वानर को यह स्तुति) इसमें 'घृतं न पूतमग्नये जनामसि (ऋ० ३.२.१b : अग्नि के लिये पवित्र घृत की भाँति हम देते हैं) में 'घृतं' शब्द है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो (ऋ० २.३४.१a : धारा (वृष्टि)–संपन्न प्रकृष्ट शक्ति वाले मरुत) यह मरुतों का सूक्त है। इसमें 'धारावरा' में आवृत्ति है। षष्ठ दिन अंत है। अन्त में जाकर वह आवृत्ति की तरह करता है क्योंकि यहाँ से किधर जाय ? 'त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्' (ऋ० २.१.१ हे अग्ने ! तेजस्वी आप किरणों से) यह जातवेदा का सूक्त है। इसमें 'त्वम्' में वही आरम्भ है। जैसे वही अन्त वैसे ही वही (एक ही) आरम्भ, अन्त का रूप (प्रतीक) है। षष्ठ दिन से देवताओं के तेज के अधिभूत प्रजापति, जल को वे प्राप्त करते हैं। वे अमृतत्व को अपने में रखते हैं।

२१.५ वे कहते हैं कि वैश्वदेवों के कर्म क्यों विस्तृत हैं और एक देवता या दो देवता के नहीं ? एक देवता या दो देवता से यातयामता (समाप्ति, बासीपन) नहीं होता अपितु वैश्वदेव से ही (कर्म) यातयाम होता है। इसलिये इन दिनों की सबलता तथा अभिप्लवों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ज्योतिः प्रथममहरुपयन्ति तस्यैवैकाहस्य रूपेणायं ह्येकाह उत्तरेषामह्नां ज्योतिर्गां द्वितीयं गच्छन्ति ह्येनेनाऽऽयुस्तृतीयं यन्ति ह्येनेनाग्निष्टोमौ प्रथमोत्तमे अहनी त्रत्वार्युक्थानि मध्ये ब्रह्म वा अग्निष्टोमः पशव उक्थानि ब्रह्मणैव तत्पशूनुभयतः परिगृह्याऽऽत्मन्दधते तेषां वा एतेषां चतुर्णामुक्थानां सहस्रं स्तोत्रियाः साहस्राः पशवः प्र साहस्रं पोषमाप्नोति य एवं वेद पृष्ठ्यान्तान्वा इतश्चतुरश्चतुरोऽभिप्लवानुपयन्ति पशवो वा अभिप्लवाः श्रीः पृष्ठ्यानि पशुभिरेव तच्छ्रियमुभयतः परिगृह्याऽऽत्मन्दधते पृष्ठ्यारम्भणान्वा ऊर्ध्वं विश्वजितश्चतुरश्चतुरोऽभिप्लवानुपयन्ति श्रीर्वा अभिप्लवाः पशवः पृष्ठ्यानि श्रियैव तत्पशूनुभयतः परिगृह्याऽऽत्मन्दधते ॥ ५ ॥

क्लृप्तो वा अभिप्लवः क्लृप्तच्छन्दा यो वै यज्ञक्रतुः क्लृप्तच्छन्दा भवति सर्वजागतानि वै तस्य निविद्धानानि भवन्ति तृतीयसवने तथा यथायथं निविदो धीयन्ते ता एनान्यथायथं धीयमानाः सर्वेषु च लोकेषु सर्वेषु च कामेषु यथायथं दधति तद्यत्सर्वजागतानि निविद्धानानि भवन्ति तृतीयसवने तेनो यः सर्वजागते तृतीय-

---

की अयातयामता के लिये वैश्वदेव से संबद्ध ही विस्तृत होते हैं। वे प्रथम दिन के रूप में ज्योति को एक दिन के रूप (प्रतीक) से करते हैं क्योंकि एक दिन का कृत्य दूसरे दिनों की ज्योति है। वे गौ को दूसरे दिन के रूप में करते हैं क्योंकि इससे वे गमन करते हैं। आयु को तृतीय दिन करते हैं क्योंकि इससे वे जाते हैं। प्रथम और अंतिम दिन में अग्निष्टोम हैं; मध्य में चार उक्थ्य हैं। अग्निष्टोम ब्रह्म (पवित्र शक्ति तेज) है। उक्थ्य पशु हैं। इस प्रकार ब्रह्म से पशुओं को दोनों ओर से घेरकर वे अपने में रखते हैं। इन चार उक्थ्यों के हजारों स्तोत्र मंत्र हैं। पशु सहस्र से संबद्ध हैं। जो इस प्रकार जानता है वह सहस्रों पुष्टि (समृद्धि) को प्राप्त करता है। अतः वे पृष्ठ्य से समाप्त होने वाले चार अभिप्लवों के समूह को संपादित करते हैं। अभिप्लव पशु हैं। पृष्ठ्य श्री (समृद्धि) हैं। इस प्रकार दोनों ओर से पशुओं द्वारा समृद्धि को घेरकर वे इसे अपने में रखते हैं। विश्वजित् से वे पृष्ठ्य से आरम्भ होने वाले चार अभिप्लवों के समूह को संपादित करते हैं। अभिप्लव श्री हैं; पृष्ठ्य पशु हैं। इस प्रकार श्री से पशुओं को दोनों ओर से परिग्रहण कर वे अपने में रखते हैं।

२१.६ अभिप्लव निश्चित (क्लृप्त) छन्दों वाला निश्चित रूप से निर्दिष्ट (यज्ञ) है। किसी यज्ञ में डाले गये निश्चित छन्दों वाले सभी निविद (मंत्र) तृतीयसवन में जगती में हैं। इस प्रकार से निविद भली-भाँति रखे गये हैं। भली-भाँति रखे गये वे (निविद) उन्हें (यज्ञकर्ताओं) को सभी लोकों तथा सभी कामनाओं में भली-भाँति रखते हैं। क्योंकि सभी जगती में निविद् तृतीय सवन में भली-भाँति रखे गये हैं इसलिये इससे तृतीय सवन में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सवने कामः स उपाप्तो यद्वे वैतास्तन्त्र्यास्त्रिष्टुभोऽहरहः शस्यन्ते तेनो यः सर्वत्रैष्टुभे तृतीयसवने कामः स उपाप्तो यद्वेवैषा तन्त्र्या गायत्र्यहरहः सुरूपकृत्नुः शस्यते तेनो यः सर्वगायत्रे तृतीयसवने कामः स उपाप्तो यद्वेवैष षळहः पुनः पुनरभिप्लवते तस्मादभिप्लवो नामाभिप्लवन्ते ह्येनेन स्वर्गाय लोकाय यजमानाः स्वर्गाय लोकाय यजमानाः ॥ ६ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

हरिः ॐ। प्रथममहरयमेव लोक आयतनेनाग्निर्गायत्री त्रिवृत्स्तोमो रथंतरं साम तन्वस्य निदानं तस्यैतानि च्छन्दोरूपाणि करिष्यत्प्रथमे पदे सदेवं यद्वै भविष्यत्तत्करिष्यदावत्प्रवदेषवदर्पवदक्तवद्युक्तवद्युञ्जानवज्ज्योतिष्मद्रुक्मवदित्युपप्रयन्तो अध्वरमित्याज्यं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं गायत्रं गायत्रप्रातःसवनो ह्येष त्र्यह इति नु व्यूळ्ह उदधृत्यैतत्प्र वो देवायाग्नय इति समूळ्हे तस्योक्तं ब्राह्मणं

जगती (छन्दों) का जो कुछ अभीष्ट है वह प्राप्त होता है। पुनः इसमें प्रतिदिन तन्त्र (आदर्श) से त्रिष्टुभ पढ़े (पाठ किये) जाते हैं। इससे जो सभी त्रिष्टुभ से संबद्ध तृतीय सवन में अभीष्ट है वह प्राप्त होता है। पुनः इसमें प्रतिदिन 'सुरूपकृत्नुः' (ऋ० १.४.१ सुरूप को बनाने वाला) यह गायत्री तन्त्र से पठित होती है इससे सर्वगायत्री तृतीय सवन में जो कामना है वह प्राप्त होती है। जो इससे षड्दिवसीयकर्म में बार-बार जाता है (अभिप्लवते) इससे इसका अभिप्लव नाम है क्योंकि इससे यजमान स्वर्गलोक को जाते हैं।

शाङ्खायन ब्राह्मण में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

बाइसवाँ अध्याय

२२.१ हरिः ओम्। प्रथम दिन आयतन में यह लोक है। अग्नि, गायत्री, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम, तन्व का निदान है। इसके मन्त्रों के ये छन्दोरूप (छन्दों के प्रतीक) हैं—प्रथम पद में देवता सहित् करिष्यत् (भविष्यकाल)—जो होने वाला (भविष्य) है वह करिष्यत् है। 'आ' वत् 'प्र' वत्, 'एष' वत्, 'अर्प' वत्, 'अक्त' वत्, 'युक्त' वत्, 'युञ्जान' वत्, ज्योतिष्मत्, 'रुक्म' वत् ये पद होते हैं। 'उप प्रयन्तो अध्वरम्' (ऋ. १. ७४.१ यज्ञ को (तक) आगे जाते हुये) आज्य है जिसमें 'प्र' पद युक्त है। प्रथम दिन का रूप 'प्र'वत् है। यह गायत्री छन्द है। क्योंकि यह तीन दिनों का समूह प्रातःसवन में गायत्री में है। इसलिये व्यस्त रूप में हैं। उसे लेकर, 'वो देवायाग्नये' (ऋ. ३ १३.१० अग्नि देव के लिये आगे) मिश्रित रूप में प्रयुक्त होता है। (द्र. शां. सू. १०.२.२)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। प्रउग मधुच्छन्दा का है (द्र. शां. श्रौ. सू १०.२.२) इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। आयात्विन्द्रो अवस उप नः (ऋ. ४.२.११ : इन्द्र यहाँ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

माधुच्छन्दसः प्रउगस्तस्योक्तं ब्राह्मणमायात्विन्द्रोऽवस उप न इति मरुत्वतीय-मावदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं स्वर्णरादवसे नो मरुत्वानिति स एवास्मिन्मरुन्यङ्ग आ न इन्द्रो दूरादा न आसादिति निष्केवल्यमावदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं संपातौ निष्केवल्यमरुत्वतीये भवतः प्रथमेऽहन्संपातैर्वै देवाः स्वर्गं लोकं समपतंस्तस्मादेनौ प्रथमौ शस्येते स्वर्ग्यौ तद्यत्संपातौ निष्केवल्यमरुत्वतीये भवतः प्रथमेऽहन्स्वर्गस्यैव लोकस्य समष्ट्यै युञ्जते मन उत युञ्जते धियः प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋता वृधेहे हवो मनसा बन्धुता नर इत्यार्भवं तेन नियच्छति युक्तवन्ति च वै प्रवन्ति च प्रथमेऽहन्सूक्तानि शस्यन्ते तद्यदिहेह व इत्यार्भवं करोति तन्नियुत्या प्रच्युत्यै रूपं हयो न विद्वां अयुजि स्वयं धुरीति वैश्वदेवं युक्तवद्युक्तवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं तस्य द्वे उत्तमे उत्सृजति कुविदेते अवधूते आग्निमारुते शस्येते२ इति तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिः शंसेदेव सूक्तस्याव्यवच्छेदाय न ह वा ऋक्छस्त्रेण यातयामा भवति नानुवचनेन वषट्कारेणैव सा यातयामा भवति समानेऽहन्वैश्वानराय पृथुपाजसे

हमारी सहायता के लिये आवें) यह 'आ' पद युक्त मरुत्वतीय है। 'आ' वत् प्रथम दिन का रूप है। इसमें 'स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्' (ऋ. ४.२१.३c : प्रकाशशील स्थान से मरुतों सहित हमारी रक्षा के लिये) में 'मरुत्' का उल्लेख है। 'आ न इन्द्रो दूरादा न आसात्' (ऋ. ४.२० १a : हे इन्द्र ! इधर हमारे पास दूर से नजदीक से) यह निष्केवल्य है जिसमें 'आ' पद है। 'आ' वत् प्रथम दिन का रूप है। प्रथम दिन निष्केवल्य तथा मरुत्वतीय सतत सूक्त हैं। सतत सूक्तों से देवता साथ-साथ स्वर्ग लोक में गये। इसलिये ये दोनों प्रथम स्वर्ग्य के रूप में पढ़े जाते हैं। क्योंकि प्रथम दिन निष्केवल्य तथा मरुत्वतीय सतत (संपात) सूक्त है अतः ये स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिये (पढ़े जाते) हैं। 'युञ्जते मन उत युञ्जते धियः' (ऋ. ५.८१.१ : वे अपने मन को युक्त करते हैं, अपनी बुद्धि को युक्त करते हैं); 'प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा' (ऋ. १.१५९.१a : यज्ञों से ऋत के वर्धक द्यावा-पृथिवी आगे); 'इहेह वो मनसा बन्धुता नर' (ऋ. ३.६०.१ : हे वीरो। आपकी बन्धुता यहाँ मन से है) (इसमें अन्तिम) ऋभुओं का सूक्त है। इससे वह नियमन करता है। प्रथम दिन 'युक्त' वत् तथा 'प्र' वत् सूक्त पढ़े जाते हैं। जो ऋभुओं के लिये 'इहेह' सूक्त पढ़ता है वह अपतनशीलता के लिये नियमन (रोक) का रूप है। विश्वेदेवों का सूक्त है—हयो न विद्वां अयुजि स्वयं धुरि (ऋ. ५.४६ १a : कुशल अश्व की भाँति उसने अपने को धुरा में जोता है)। यह 'युक्त' शब्द से युक्त है। 'युक्त' वत् प्रथम दिन का रूप है। इसके दो अन्तिम मन्त्रों को वह छोड़ देता है। (वे पूछते हैं—) 'ये दोनों विहित मन्त्र क्या अग्निमारुत में पढ़े जाने चाहिये ?' कौषीतकि का कथन है कि सूक्त के अव्यच्छेद (अभ्रंश) के लिये इनका पाठ होना चाहिये। ऋचा शस्त्र से या अनुवचन (पुनः कथन) से यातयाम नहीं होती। केवल यह वषट्कार से एक दिन (उस

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विप इति वैश्वानरीयं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इति मारुतं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं प्रतव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नय इति जातवेदसीयं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमिमं लोकं प्रथमेनाह्नाऽऽप्नुवन्ति गायत्रीं छन्दस्त्रिवृतं स्तोमं रथन्तरं साम प्राचीं दिशं वसन्तमृतूनां वसून्देवान्देवजातमग्निमधिपतिम् ॥ १ ॥

द्वितीयमहरन्तरिक्षलोक आयतनेनेन्द्रस्त्रिष्टुप्पञ्चदश स्तोमो बृहत्साम तन्वस्य निदानं तस्यैतानि च्छन्दोरूपाणि कुर्वन्मध्यमे पदे सदेवं यद्वैप्रत्यक्षमस्पृष्टं तत्कुर्वद्धतवद्वज्रवद्वृत्रहवद्वृषण्वदुद्वद्विव स्थितं त्वामित्यग्निं दूतं वृणीमह इत्याज्यं होतारं विश्ववेदसमिति विवत्तस्योक्तं ब्राह्मणं गायत्रं गायत्रप्रातःसवनो ह्येष त्र्यह इति नु व्यूल्ह उद्धृत्यैतत्त्वं हि क्षैतवद्यश इति समूल्हे तस्योक्तं ब्राह्मणं गार्त्समदः प्रउगस्तस्योक्तं ब्राह्मणमिन्द्र सोमं सोमपते पिबेममिति मरुत्वतीयं माध्यंदिने सवने वज्रहस्तेति वज्रवत्तदेतस्याह्नो रूपं या त ऊतिरवमा या परमेति निष्केवल्यं

दिन) यातयाम होती है। वैश्वानर का 'प्र' युक्त सूक्त है—वैश्वानराय पृथुपाजसे विपः (ऋ. ३.३.१ वृहत् तेजवाले वैश्वानर को प्रशंसक) । जो 'प्र'युक्त है वह प्रथम दिन का रूप है। मरुतों का 'प्र'युक्त सूक्त है 'प्र शर्धाय मारुताय स्वभानवे (ऋ. ५.५४.१ स्वयं प्रकाशशील मरुतों के गण के लिये) । जो 'प्र'वत् है वह प्रथम दिन का रूप है। जातवेदा का 'प्र'वत् सूक्त है—'प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये'(ऋ. १.१४३.१a : अग्नि के लिये दृढ एवं नवीन स्तुति) । 'प्र'वत् प्रथम दिन का रूप है। प्रथम दिन से वे इस लोक, गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम, प्राचीदिशा, ऋतुओं में वसन्त, देवों, वसुओं, देवों में उत्पन्न अधिपति अग्नि को प्राप्त करते हैं।

२२.२ द्वितीय दिन इसके आयतन में अन्तरिक्ष लोक, इन्द्र, त्रिष्टुभ्, पञ्चदश स्तोम, वृहत् साम, तन्व का आधार। इसके मन्त्रों के ये छन्दोरूप (प्रतीक) हैं—कुर्वन् (वर्तमान काल), मध्यम पद में देवता का उल्लेख है। वर्तमान वह जो प्रत्यक्ष है पर स्पर्श नहीं होता। (ये शब्द इसमें होते हैं—) 'हत'वत्, 'वज्र'वत् 'वृत्रह'वत्, 'वृषण्' वत्, 'उद्' वत्, 'विवत्, स्थित' त्वाम्। 'अग्निं दूतं वृणीमहे'(ऋ. १.१२.१ अग्नि को हम दूत के रूप में वरण करते हैं) यह आज्य है, यह 'होतारं विश्ववेदसम्' (ऋ. १.१२.१)में 'वि' वत् है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। यह गायत्री में है क्योंकि यह तीन दिनों का समूह प्रातःसवन में गायत्री छन्द वाला है और इसलिये व्यस्त रूप में है। उसे लेकर 'त्वं हि क्षैतवद्यशः' (ऋ. १.१२. आप क्षत्र के यशवाले हैं) को एकत्र रखा जाता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। प्रउग गृत्समद का है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमम्' (ऋ. ३.३२.१a : हे सोमपते इन्द्र ! इस सोम का पान करिये) यह मरुत्वतीय है। यह 'माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त' (ऋ. ३.३२.३.c : हे वज्रहस्त !

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न इति वृत्रहवत्तदेतस्याह्नो रूपं तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महदिति सावित्रं त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वनेति तत्प्रत्यक्षमन्तरिक्षस्य रूपं ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवेति द्यावापृथिवीयं विवत्तस्तोक्तं ब्राह्मणं तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनाऽऽपस इत्यार्भवं तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू इति वृषण्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणं यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशामिति शार्यातं वैश्वदेवं वृषाकेतुर्यजतो द्यामशायतेति वृषण्वत्तस्योक्तं ब्राह्मणं पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहो वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधस इति वृषण्वती तयोरुक्तं ब्राह्मणं नू चित्सहोजा अमृतो नितुन्दत इति जातवेदसीयं होता यद्दूतो अभवद्विवस्वत इति विवत्तस्योक्तं ब्राह्मणं तस्य प्रातर्मक्षू धिया वसुर्जगम्यादित्युत्तमा परमे वै तदहरभिवदति परमे वै तदहरभ्यारभ्य वसन्तीति

माध्यन्दिन सवन में) में 'वज्र'वत् है। यह इस दिन का रूप है। 'या त ऊतिरवमा या परमा' (ऋ.६.२५.१a: जो आपकी समीपस्थ और जो दूरस्थ सहायता है) यह निष्केवल्य है। यह 'ताभिरू षु वृत्यहत्येऽवीर्न'(ऋ.६.२५.१c : इनके द्वारा आपने वृत्रहत्या में हमारी सहायता की है।) में 'वृत्रह'युक्त है। यह इस दिन का रूप है। सवितृ का सूक्त है—'तद्देवस्थ सवितुर्वार्यं महत्' (ऋ. ४.५३.१ : सूर्यदेव का वह वरणीय महत्त्व)। इसमें 'त्रिरन्तरिक्षं सविता महत्वना' (ऋ. ४.५३.५a : सवितृ ने अपने महत्त्व से अन्तरिक्ष को तीन बार) है जो स्पष्टतः अन्तरिक्ष का रूप है। द्यावा पृथिवी का सूक्त है—'ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशंभुवा' (ऋ. १.१६०.१ समस्त मङ्गलों के उत्पादक वे दोनों द्यावा-पृथिवी)। यह 'वि' वत् है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। ऋभुओं का सूक्त है—तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस्' (ऋ. १.१११.१a ज्ञानी कर्ता उन्होंने अच्छी प्रकार ढके रथ को छाँट कर सँवारा है)। यह 'तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू (ऋ. १.१११.१b : इन्द्रको ढोनेवाले वसु में वली दो अश्वों को उन्होंने बनाया है।) 'वृषण' वत् है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। शर्यात-कृत विश्वेदेवों का सूक्त है : 'यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्' (ऋ, १०.९२.१ : यज्ञ के रथी प्रजाओं के स्वामी)। यह 'वृषाकेतुर्यजतो द्यामशायत' (ऋ. १०.९२.१d बलिष्ठ एवं पवित्र ध्वज आकाश में पहुँच गया) में 'वृषण्' वत् है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः' (ऋ. ६.८.१a : तेज, बलिष्ठ अरुष वर्ण वाले का बल) तथा 'वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे' (ऋ. १.६४.१a : सुन्दर यज्ञों वाले पवित्र तथा बलवान् समूहों के लिये) ये दो सूक्त 'वृषण्' पद युक्त हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। जातवेदा का सूक्त है—'नू चित सहोजा अमृतो नि तुन्दते' (ऋ. १.५८.१a : अमर, ओजस्वी प्रवेश करता है)। यह 'होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः' (ऋ. १.५८.१b : जो होता विवस्वान् का दूत हुआ) में 'वि' युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। इसका अन्तिम मन्त्र है—'प्रातर्मक्षू धिया वसूर्जगम्यात्' (ऋ. १.५८.९d : प्रातः शीघ्र प्रार्थना मे तेजस्वी आवें)। इस प्रकार वह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ह स्माऽऽह कौषीतकिरन्तरिक्षलोकं द्वितीयेनाह्नाऽऽप्नुवन्ति त्रिष्टुभं छन्दः पञ्चदशं स्तोमं बृहत्साम दक्षिणां दिशं ग्रीष्ममृतूनां मरुतो देवान्देवजातमिन्द्रमधिपतिम् ॥२॥

तृतीयमहरसावेव लोक आयतनेन वरुणो जगती सप्तदश स्तोमो वै रूपं साम तन्वस्य निदानं तस्यैतानि च्छन्दोरूपाणि चक्रवदुत्तमे पदे तदेवं यद्वै भूतानुवादि तच्चक्रवदश्वावद्गोमद्रथवद्गतवत्स्थितवदन्तवत्सोदर्कमनिरुक्तं सप्रभृतीनि युक्ष्वा हि देवहूतमानित्याज्यं तदाहुर्यदन्तस्तृतीयमहरथ कस्माद्युक्तवदाज्यमित्येतेन वा अह्ना देवाः स्वर्गं लोकमायन्युक्ता वै तदायंस्तस्मादिति ब्रूयादश्वां अग्ने रथीरिवेति रथवत्तदेतस्याह्नो रूपं गायत्रं गायत्रप्रातःसवनो ह्येष त्र्यह इति नु व्यूल्ह उद्धृत्यैतत्त्वमग्ने वसूंरिहेति समूल्हे तस्योक्तं ब्राह्मणमौष्णिह आत्रेयः प्रउगो जागतं वै तृतीयमहस्तद्यदौष्णिह आत्रेयस्तृतीयस्याह्नः प्रउगस्तत्प्रातःसवनं जगती भजते ॥ ३ ॥

दूसरे दिन का उल्लेख करता है। कौषीतकि ने कहा है कि 'इस प्रकार वे दूसरे दिन को आरम्भ कर (स्थित) रहते हैं'। दूसरे दिन से वे अन्तरिक्ष लोक, त्रिष्टुभ् छन्द, पञ्चदश स्तोम, वृहत्साम, दक्षिण दिशा, ऋतुओं में ग्रीष्म, मरुद्देवों, और देवों से उत्पन्न अधिपति इन्द्र को प्राप्त करते हैं।

२२.३ तृतीय दिन अपने आयतन में वह लोक, वरुण, जगती, सप्तदश स्तोम, वैरूप साम तन्त्र का आधार है। इसके मन्त्रों में ये रूप (प्रतीक) हैं: अन्तिम पद में देवता के उल्लेख के साथ भूत काल—भूत काल जो हो चुका है उसका उल्लेख करता है—(इसमें ये शब्द रहते हैं—) अश्व, गो, रथ, गत, स्थित, अन्न। वही अंत, निश्चित् देवता के उल्लेख का अभाव, वही (एक ही) आरम्भ। इसका आज्य है—'युक्ष्व हि देवहूतमान्' (ऋ० ८.७५.१a : देवताओं के आह्वान् के लिये उपयुक्तों (अश्वों) को जोतो) वे पूछते हैं कि—'यह देखते हुये कि तृतीय दिन अन्त है तो आज्य 'युक्त' (जोतो) से युक्त क्यों है ?' वह उत्तर दे—इस दिन से देवता स्वर्गलोक को गये। 'युक्त' होकर वे गये। इसलिये ऐसा कहे। 'अश्वां अग्ने रथीरिव'(ऋ.८.७५.१b : हे अग्ने ! रथी की भाँति अश्वों को) में यह 'रथ' युक्त है। यह इस दिन का रूप है। यह गायत्री में है क्योंकि यह तीन दिनों का वर्ग प्रातःसवन में गायत्री वाला है। इसलिये व्यूल्ह (व्युत्क्रम) है। (ऋ० १.४५ शां.श्रौ.सू. १०.४.२)। 'त्वमग्ने वसूंरिह' (हे अग्ने ! तुम वसुओं को यहाँ) को यह संयुक्त रूप में रखा जाता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। अत्रि कृत उष्णिह छन्द का प्रउग है (द्र० शां० श्रौ० सू० १०.४.४ तथा ५)। तृतीय दिन जगती से संबद्ध है। तृतीय दिन का अत्रि कृत उष्णिह छन्द में प्रउग है इस प्रकार प्रातःसवन को जगती प्राप्त करती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्र्यर्यमा मनुषो देवतातेति मरुत्वतीयं त्रीति तत्तृतीयस्याह्नो रूपं यद्द्याव इन्द्र ते शतमिति वैरूपस्य स्तोत्रियः शतं भूमीरुत स्युरितिनिनृत्तिरन्तस्तृतीयमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ्हि तत इयाद्यदिन्द्र यावतस्त्वमित्यनुरूपः शिक्षेयमिन्महयते दिवे दिव इति निनृत्तिरन्तस्तृतीयमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ् हि तत इयादिन्द्र त्रिधा तु शरणमिति त्रिवान्त्सामप्रगाथस्त्रिधा त्विति तत्तृतीयस्याह्नो रूपमहं भुवं वसु नः पूर्व्यस्पतिरितीन्द्रसूक्तमहमहमिति सप्रभृति यथा वै सोदर्कमेवं सप्रभृत्यन्तरूपं यो जात एव प्रथमो मनस्वानित्येतस्मिंस्त्रैष्टुभे निविदं दधाति तदेतदिन्द्र तनूः सूक्तमेतस्मिन्ह गृत्समदो बाभ्रवो निविदं दधदिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगामेत्युप ह वा इन्द्रस्य प्रियं धाम गच्छति जयति परं लोकं य एतस्मिन्सूक्ते निविदं दधाति तस्य तदेवान्तरूपं यद्भूतानुवादि यो दासं वर्णमधरं गुहाकरिति यदेतद् भूतमिवाभिसोदर्कं भवति तद्द्वितीयमन्तरूपम् ॥ ४ ॥

२२.४ 'त्र्ययंमा मनुषो देवताता' (ऋ० ५.२९.१a : मनुष्य की पूजा तीन मित्रों की है) यह मरुत्वतीय है। 'त्रि' शब्द तृतीय दिन का प्रतीक है। 'यद् द्याव इन्द्र ते शतं' इत्यादि (ऋ० ८.७०.५a-६ हे इन्द्र यदि आपके सौ आकाश हों) यह वैरूप का स्तोत्रिय है। इसमें 'शतं भूमीरुत स्युः' (ऋ० ८.७०.५b और सौ भूमियाँ भी हों) यह निनृत्ति (आवृत्ति) है। तृतीय दिन अन्त है। अन्त में जाकर वह निनृत्ति करता है क्योंकि यहाँ से इसे किधर जाना चाहिये? 'यदिन्द्र यावतस्त्वम्' (ऋ० ६.३२.१ : हे इन्द्र आप जितने) यह अनुरूप है। इसके 'शिक्षेयमिन्महयते दिवे दिवे (मैं प्रति दिन महान् की आज्ञा मानूँ) में आवृत्ति है। तृतीय दिन अंत है। अंत में पहुँच कर वह इसे दुहराता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय? 'इन्द्र त्रिधा तु शरणम्' (ऋ० ६.४६.९a : हे इन्द्र ! तीन प्रकार से रक्षा) यह साम का प्रगाथ है। यह 'त्रिधा तु' इससे त्रियुक्त साम प्रगाथ है। यह तृतीय दिन का रूप है। 'अहं भुवः वसु नः पूर्व्यस्पतिः' (ऋ० १०.४८.१a मैं समस्त संपत्ति का प्रथम स्वामी था) यह इन्द्र का सूक्त है। यह 'अहं' अ में एक आरम्भ है। जैसे समान अंत वाला वैसे ही समान आरम्भ वाला भी अंत (समाप्ति) का रूप है। इस त्रिष्टुभ सूक्त 'यो जात एव प्रथमो मनस्वान्' (ऋ० २.१२.१ इत्यादि : जो मनस्वी प्रथम, उत्पन्न होते ही) में वह निविद को रखता है। यह सूक्त इन्द्र का तनू (शरीर) है। (वे कहते हैं) गृत्समद भार्गव इसमें निविद रखकर इन्द्र के प्रिय लोक को गये। जो इस सूक्त में निविद रखता है वह इन्द्र के प्रिय धाम को जाता है वह अन्य लोक को जीतता है। ज़ो हो चुका है उसके उल्लेख में यह अंत के रूप रखता है। 'यो दासं वर्णमधरं गुहाकः' (जिन्होंने दास वर्ण को नीचे गुहा में रखा) जो हो चुका है उसका उल्लेख है। यह उसी अंत वाला है। यह अंत का दूसरा रूप (प्रतीक) है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अभि त्वा देवसवितरित्यभिवाननुचरस्तदाहुर्यदन्तस्तृतीयमहरथ कस्मादभिवाननुचर इत्येतेन वा अह्ना देवाः स्वर्गं लोकमायन्नभिप्रेप्सन्तो वै तदायंस्तस्मादिति ब्रूयादुदुष्य देवः सविता हिरण्यया घृतवती भुवनानामभि श्रियेति घृतवती तयोरुक्तं ब्राह्मणमनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्य इत्यार्भवं रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रज इति त्रिचक्र इति तत्तृतीयस्याह्नो रूपं परावतो ये दिधिषन्त आप्यमिति वैश्वदेवं परावत इत्यन्तो वै परावतोऽन्तस्तृतीयमहरन्ते अन्तं दधात्यर्धर्चोदर्काणि ह वा एतानि सूक्तानि भवन्ति पदोदर्काण्येकान्यर्धपदोदर्काण्येकान्यथैतत्तृतीयपदोदर्कमेव तत्तृतीयस्याह्नो रूपं वैश्वानराय धिषणामृतावृध इति वैश्वानरीयं घृतं न पूतमग्नये जनामसीति घृतवत्तस्योक्तं ब्राह्मणं धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजस इति मारुतं धारावरा इति निनृत्तिरन्तस्तृतीयमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयात्त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिरिति जातवेदसीयं त्वं त्वमिति सप्रभृति यथा

२२.५ 'अभि त्वा देव सवितः' (ऋ० १.२४.३-५ हे देव सविता ! आप के प्रति) यह 'अभि' शब्द युक्त अनुचर है। वे पूछते हैं कि जब तृतीय दिन अन्त है तो अनुचर 'अभि' युक्त क्यों है ? वह कहे—'इस दिन से देवताओं ने स्वर्गलोक को प्राप्त किया, इसकी ओर कामना करते हुये वे गये' अतः (इसमें अभि है)। 'उदुष्य देवः सविता हिरण्यया' (ऋ० ६.७१.१ इधर देव सविता हिरण्मय से) तथा 'घृतवती भुवनानामभिश्रिया (ऋ० ६.७०.१ : विश्व को घृतयुक्त (वह)आवृत कराते हुये) ये दो 'घृत'युक्त तृच है। इन दोनों का ब्राह्मण कहा जा चुका है। ऋभुओं का सूक्त है—अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यः (ऋ० ५.३६.१ : विना अश्वों और लगाम के पैदा हुआ प्रशंसनीय) यहाँ 'रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः' (ऋ० ४.३६.१b : तीन चक्रों वाला रथ अन्तरिक्ष में घूम रहा है) में तीन चक्रों से 'युक्त' का उल्लेख है। यह तीसरे दिन का रूप है। 'परावतो ये दिधिषन्त आप्यम्' (ऋ० १०.६३.१ : जो दूर से मित्रता रखेंगे) यह विश्वेदेवों का सूक्त है। इसमें 'परावतो' अन्त है। तृतीय दिन अंत है। अंत में वह अंत को रखता है। ये सूक्त आधी ऋचा में समाप्त होते हैं। कुछ पदों और कुछ आधे पदों पर समाप्त होते हैं। यह तृतीय दिन का रूप है। 'वैश्वानराय धिषणामृतावृधे' (ऋ० ३.२.१ : ऋत के वर्धक वैश्वानर के लिये स्तुति) वैश्वानर का सूक्त है। यह 'घृतं न पूतमग्नये जनामसि' (ऋ० ३.२.१b : अग्नि के लिए पूत घृत के समान हम देते हैं) में 'घृत' वत् है इसका ब्राह्मण (व्याख्यान)कहा जा चुका है। 'धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो' (ऋ.२.३४.१: वृष्टि करनेवाले तथा उग्र पराक्रम वाले मरुत) यह मरुतों का सूक्त है। यहाँ 'धारावरा' में आवृत्ति है। तृतीय दिन अन्त है। अन्त में जाकर वह मानों आवृत्ति करता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जायें ? 'त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिः'(ऋ० १.३१.१ : हे अग्ने ! आप प्रथम अङ्गिरस ऋषि हैं) यह जातवेदा का सूक्त है। इसमें 'त्वं' 'त्वं' एक ही आरंभ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वै सोदर्कमेवं तं प्रभृत्यन्तरूपममुं लोकं तृतीयेनाह्नाऽऽप्नुवन्ति जगतीं छन्दः सप्तदशं स्तोमं वैरूपं साम प्रतीचीं दिशं वर्षा ऋतूनामादित्यान्देवान्देवजातं वरुणमधिपतिम् ॥ ५ ॥

अन्तस्तृतीयमहस्ते देवा अन्तं गत्वा चतुर्थमहरैच्छंस्तस्मादिच्छध्वं तदिष्ट्वाऽविन्दंस्तस्माद्युक्तवत्तदाहुर्यदन्तस्तृतीयमहरथ कस्माच्चतुर्थेऽहन्यूङ्खयतीति वाच एव तदायतनं यच्चतुर्थमहरन्नं विराळन्नं न्यूङ्खोऽन्नमेव तद्यज्ञे च यजमानेषु च दधात्यथो अवाप्यते वै तृतीयेनाह्ना वाक्तामेवैतच्चतुर्थेऽहन्विभावयति यथायस्तप्तं विनयेदेवं तद्वाचो विभूत्यै तस्यैतानि च्छन्दोरूपाणि सम्राड्वत्स्वराड्वद्विराड्वज्जातवदूतिमद्वीतिमत्परिवदभिवदुपवदित्याग्निं न स्ववृक्तिभिरिति वै मदमाज्यं विमदेन वै देवा असुरान्विमदंस्तद्यद्विमदः शस्यते मध्यतश्च होत्रासु चाङ्गादङ्गादेव तद्यजमानाः पाप्मानं विमदन्त्यग्निर्जातो अथर्वणेति जातवत्तदेतस्याह्नो रूपम् ॥ ६ ॥

ता दश जगत्यः संपद्यन्ते जगत्प्रातःसवनो ह्येष त्र्यहो विंशतिर्गायत्री गायत्री

है। जैसे जो समान अन्त वाला है वैसे ही जो समान आरम्भ वाला है वह अन्त का रूप है। तृतीय दिन से वे उस लोक, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम, वैरूप साम, प्रतीची दिशा, ऋतुओं में वर्षा ऋतु, आदित्यदेवों, देवों में उत्पन्न अधिपति वरुण को प्राप्त करता है।

२२.६ तृतीय दिन अंत है। अन्तिम दिन पर पहुँच कर देवताओं ने चतुर्थ दिन की कामना की। इसलिये इसमें 'इच्छध्वं' है। यजन करके उन्होंने इसे प्राप्त किया, इसीलिये इसमें 'युक्त' पद है। वे पूछते हैं कि जब तृतीय दिन अन्त है तो चतुर्थ दिन को वह 'ओ' उच्चारण से क्यों समाविष्ट करता है। चतुर्थ दिन वाणी का आयतन है। विराज अन्न है। 'ओ' ध्वनि अन्न है। इस प्रकार वह यज्ञ तथा यजमान में अन्न को रखता है। और तृतीय दिन से वाणी प्राप्त की जाती है। इस प्रकार वह चौथे दिन उसे विस्तृत करता है। जैसे तप्त लोहे को विनम्र किया जाता है। यह वाणी के विस्तार के लिये है। इसके मंत्रों में ये रूप (प्रतीक) हैं: सम्राट्, स्वराट्, विराज्, जात, ऊति, वीति, परि, अभि, उप। विमद (ऋषि) कृत आज्य मंत्र है—'अग्नि न स्ववृक्तिभिः' (ऋ० १०.२१.१ : अपनी आहुतियों से अग्नि को)। विमद (कृत सूक्त) से देवताओं ने असुरों को विमद (मदान्वित, बुद्धिहीन) किया। जो विमद का सूक्त मध्य में तथा होत्रकों में दोनों में पढ़ा जाता है इससे यजमान प्रत्येक अङ्ग से पाप को विमद करते हैं। इसके 'अग्निर्जातो अथर्वणा' (ऋ० १०.२१.५ : अथर्वा ने अग्नि को उत्पन्न किया) मंत्र में 'जात' शब्द है। यह इस दिन का रूप है।

२२.७ वे दश जगती छन्द होते हैं क्योंकि प्रातःसवन का तीन दिनों का यह समूह जगती से संबद्ध है। इसमें बीस गायत्री हैं। गायत्री प्रातःसवन का वहन करती है। इस

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रातःसवनं वहति तदु ह प्रातःसवनरूपान्वाय इतीति नु व्यूल्ह उद्धृत्यैतदग्निं नरो दीधितिभिररण्योरिति समूल्हे वैराजमाज्यं वैराजं पृष्ठं तत्सलोम वासिष्ठमाज्यं वासिष्ठं पृष्ठं तत्सलोम हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तमिति जातवत्तदेतस्याह्नो रूपमानुष्टुभः प्रउग आनुष्टुभं वै चतुर्थमहस्तदेनस्वेन च्छन्दसा समर्धयति तं त्वा यज्ञेभिरीमह इति यज्ञवत्या मरुत्वतीयं प्रतिपद्यते पुनरारम्भ्यो वै चतुर्थेऽहन्यज्ञो यज्ञमेव तदारभते श्रुधी हवमिन्द्रमारिषण्य इति मरुत्वतीयं ता वा एतास्त्रिष्टुभो विराड्वर्णास्ता अत्र क्रीयन्त एता ह्यह्नो रूपेण संपन्ना इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोममिति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं तानि वा एतानि विज्ञातत्रैष्टुभानि सवनधरणानि मध्यंदिनान्न च्यवन्ते त्रैष्टुभो वा इन्द्रो मध्यंदिनायतनो वा इन्द्रस्तद्यदेतानि विज्ञातत्रैष्टुभानि सवनधरणान्यपि व्यूल्हच्छदसो मध्यंदिनान्न च्यवन्ते त्रैष्टुभो वा इन्द्रो नेदिन्द्रं स्वादायतनाच्च्यवयानीति जातं यत्त्वा परि देवा

प्रकार वह प्रातःसवन के रूप (प्रतीक) के अनुरूप होता है। इसी प्रकार वह व्यूल्ह (व्युत्क्रम-मिश्रित)रूप में होता है। उसे लेकर 'अग्नि नरो दीधितिभिररण्योः'(ऋ.७.१.१a: काष्ठों से अग्नि को स्तुतियों सहित मनुष्य) एकत्र प्रयुक्त होता है। आज्य विराज छन्द में है। पृष्ठ विराज में हैं। यह अनुरूप है। आज्य वसिष्ठकृत हैं, पृष्ठ वसिष्ठ कृत हैं। यह सलोम (अनुरूप) है। 'हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्' (ऋ. ७.१.१b हस्तों के संचालन से उन्होंने प्रशंसनीय को उत्पन्न किया) में यह 'जात' वत् है। यह इस दिन का रूप है। प्रउग अनुष्टुभ् छन्द में है (द्र. शां. श्रौ. सू. १०.५.१,४)। चतुर्थ दिन अनुष्टुभ् से संबद्ध है। इस प्रकार इसे वह अपने छन्द से समृद्ध करता है। वह 'तं त्वा यज्ञेभिरीमहे' इत्यादि (ऋ. ८.६८.१०-१२ उस आप की यज्ञों से स्तुति करते हैं) इस 'यज्ञ' वत् से मरुत्वतीय को प्रारम्भ करता है। चतुर्थ दिन पुनः यज्ञ का आरम्भ करता है। इस प्रकार वह पुनः यज्ञ का आरम्भ करता है। 'श्रुधी हवमिन्द्र मारिषण्यः' (ऋ. २.११.१ हे इन्द्र! हमारा आह्वान सुनिये। हमें क्षति न पहुँचाइये) यह मरुत्वतीय है। त्रिष्टुभ् मंत्र विराज के वर्ण के हैं (विराज् के रंग है) वे यहाँ प्रयुक्त हैं। क्योंकि वे इस दिन के रूप (प्रतीक) हैं। 'इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम्' (ऋ. ३.५१.७-९ : हे इन्द्र! मरुतों सहित यहाँ सोम पान करिये) यह सामान्य त्रिष्टुभ् में तृच हैं और सवन का धारण करता है। सामान्य त्रिष्टुभ् में सवन के धारक ये मध्यन्दिन सवन से पृथक् नहीं होते। इन्द्र त्रिष्टुभ् से संबद्ध हैं तथा मध्यंदिन सवन उनका आयतन है। अतः सवनों के धारक ये सामान्य त्रिष्टुभ् व्यूल्ह छन्दों में उपन्यस्त होने पर मध्यंदिन सवन से च्युत नहीं होते (क्योंकि वह सोचता है कि) "इन्द्र माध्यन्दिन सवन से संबद्ध हैं मैं इन्द्र को उनके अपने आयतन से च्युत न करूँ।" 'जातं यत् त्वा परिदेवा अभूषन्' (ऋ. ३.५१.८c : उत्पन्न होते ही देवता आपको विभूषित किये) यह 'जात' युक्त है। यह दिन का रूप है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अभूषन्निति जातवत्तदेतस्याह्नो रूपमिमं नु मायिनं हुव इति मरुत्वतीयं गायत्रं गायत्रमध्यंदिनो ह्येष त्र्यहः ॥ ७ ॥

अथात इह न्यूङ्खयेदिहा३ इति स्तोत्रियानुरूपयोश्चैव न्यूङ्खा उक्थमुखीययोश्चातनाऽऽद्रियेताऽऽत्मा वै स्तोत्रियः प्रजानुरूपोऽन्नं विराळन्नं न्यूङ्खोऽन्नमेवाऽऽत्मनि प्रजायां च दधात्यानुष्टुभं न्यूङ्खं न्यूङ्खयेदिति हैक आहुरानुष्टुभं वै चतुर्थमहस्तदेनत्स्वेन च्छदसा समर्धयति वैराजं न्यूङ्खं न्यूङ्खयेदिति सा स्थितिरन्नं विराळन्नं न्यूङ्खोऽन्नमेव तदात्मनि प्रजायां च दधाति मध्यमे पदे न्यूङ्खयेदात्मा वै पूर्वं पदं प्रजोत्तमं मध्यं मध्यमं पदं मध्ये वा इदमात्मनोऽन्नं धीयते तद्यथाऽऽभिग्रंसिमन्नमद्यादेवं तदिन्द्रमिद्देवतातय इत्यष्टेन्द्रः साम्नः प्रगाथ एतेन वै देवाः सर्वा अष्टीराश्नुवत तथो एवैतद्यजमाना एतेनैव सर्वा अष्टीरश्नुवते कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्येति कुहश्रुतीयास्ता वा एता विराजो वाऽनुष्टुभो वा भवन्ति ता अत्र क्रीयन्त एता ह्यन्नोरूपेण संपन्ना युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज इति विज्ञातत्रैष्टुभं सवन-

---

'इमं नु मायिनं हुव' इत्यादि (ऋ. ८.७३.१-३ : इस मायावी की मैं स्तुति करता हूँ) यह मरुत्वतीय है । यह गायत्री छन्द है क्योंकि इस तीन के समूह में मध्यन्दिन सवन में गायत्री छन्द है ।

२२.८ तदनन्तर (वे पूछते हैं कि) वह 'ओ' स्वर को यहाँ या यहाँ उच्चारण करे ? 'ओ'स्वर स्तोत्रिय तथा अनुरूप एवं उक्थों के प्रारम्भ के लिए अभिप्रेत हैं । इसे वह कष्ट न दे । स्तोत्रिय आत्मा(शरीर) है अनुरूप प्रजा है, विराज् अन्न है, न्यूङ्ख (ओ ध्वनि) अन्न है । इस प्रकार वह शरीर तथा प्रजा में अन्न को रखता है । कुछ लोग कहते हैं कि 'वह' अनुष्टुभ् से सबद्ध 'ओ' ध्वनि का उच्चारण करे । चतुर्थ दिन अनुष्टुभ् से संबद्ध है । इस प्रकार इसे वह अपने छन्द से समृद्ध करता है । नियम यह है कि वह विराजसे संबद्ध 'ओ' ध्वनि(न्यूङ्ख) का उच्चारण करे । विराज अन्न है, न्यूङ्ख अन्न है । इस प्रकार वह अपने में तथा प्रजा में अन्न को रखता है । मध्य पद में वह न्यूङ्ख का उचारण करे । प्रथम पद आत्मा (शरीर) है । अन्तिम पद प्रजा है । मध्य पद मध्य है । शरीर के मध्य में अन्न रखा जाता है । यह वैसे ही है जैसे कोई भोजन करते समय ग्रास (छोटे अंश) से निगलता है । 'इन्द्रमिद्देवतातयः' (ऋ. ८.३.५,६ : दैवीपूजा के लिये इन्द्र को) यह सामप्रगाथ इन्द्र की प्राप्ति के लिये है। इससे देवताओं ने सभी कामनाओं को प्राप्त किया । इसी प्रकार यजमान भी इससे सभी कामनाओं को प्राप्त करते हैं । 'कुह श्रुत इन्द्र कस्मिन्नद्य' (ऋ. १०.२२.१ इत्यादि : यशस्वी इन्द्र कहाँ हैं, आज किस में) ये 'कुहश्रुती' (कहाँ प्रशस्त) मंत्र हैं । ये विराज का अनुष्टुभ् हैं । वे यहाँ प्रयुक्त हैं क्योंकि वे दिन के रूप (प्रतीक) से संपन्न (युक्त) हैं । 'युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज' (ऋ. ३.४६.१ योद्धा, वर्षणशील, स्वराज्यसंपन्न आपके) यह सामान्य त्रिष्टुभ् है तथा सवन का धारक है । इसका

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धरणं तस्योक्तं ब्राह्मणं स्वराज इति स्वराड्वत्स्वराड्वदिति वा अस्य रूपं त्यमु वः सत्रासाहमिति निष्केवल्यं विश्वासु गीर्ष्वायतमित्यावदावद्वै चतुर्थस्याह्नः प्रायणीयरूपं पुनः प्रायणीयं हि चतुर्थमहर्गायत्रं गायत्रमध्यंदिनो ह्येष त्र्यहः ॥ ८ ॥

हिरण्यपाणिमूतय इत्यूतिमाननुचर ऊतय इत्यूतिमदूतिमदिति वा अस्य रूपमा देवो यातु सविता सुरत्नः प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्ये प्र शुक्रैतु देवी मनीषेत्येति वा वै प्रेति वा प्रायणीयरूपं तस्मादावन्ति च प्रवन्ति च चतुर्थेऽहन्सूक्तानि शस्यन्ते प्रायणीयरूपेण पुनः प्रायणीयं हि चतुर्थमहर्द्विपदाः शस्यन्ते द्विपादा अभिक्रमितुमर्हत्यभिक्रान्त्यैतद्रूपं तद्यथोपप्रयाय स्वर्गस्य लोकस्य नेदीयस्तायां वसेदेवं तत्प्रसम्राजो असुरस्य प्रशस्तिमिति वैश्वानरीयं सम्राज इति सम्राड्वत्सम्राड्वदिति वा अस्य रूपं क ईं व्यक्ता नरः सनीळा

ब्राह्मण कहा जा चुका है। यह 'स्वराज' में 'स्वराट्' युक्त है। 'स्वराट्' वत् इस दिन का रूप है। 'त्यमु वः सत्रासाहं' इत्यादि (ऋ. ८.९२.७,९ आपमें से सदा सहने वाले उनको) यह निष्केवल्य है। यह 'विश्वासु गीर्ष्वायतम्' (ऋ.८.९२.७b सभी वाणियों में विस्तृत) में 'आ'वत् है। 'आ' वत् चतुर्थ दिन का 'प्रायणीय'(प्रारंभिक) रूप है। चतुर्थ दिन पुनः प्रायणीय है। यह गायत्री में है क्योंकि तीन दिनों का यह समूह मध्यंदिन सवन में गायत्री वाला है।

२२.९ 'हिरण्यपाणिमूतये' (ऋ. १.२२.५-७ मङ्गल के लिये हिरण्यहस्त को) यह 'ऊति' युक्त अनुचर है। 'ऊतये' यह 'ऊति' युक्त है। ऊति' मत् इस (दिन) का रूप है। 'आ देवो यातु सविता सुरत्नः' (ऋ. ७.४५.१ सुन्दर रत्नों वाले सवितादेव इधर आवें) 'प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः'(ऋ.६.५३.१ : द्यावा और पृथिवी यज्ञों और स्तुतियों से आवें); 'प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचयिष्ये' (ऋ.४.३३.१ : ऋभुओं के लिये दूत की भाँति मैं वाणी को आगे प्रेरित करूँ) तथा 'प्र शुक्रैतु देवी मनीषा' (ऋ. ७.३४.१ : तेजस्वी दैवी स्तुति आगे आवें) (ये मंत्र प्रयुक्त होते हैं)।'आ' या 'प्र' प्रायणीय के रूप हैं। इस लिये चतुर्थ दिन 'आ' युक्त या 'प्र' युक्त सूक्त प्रायणीय रूप में कहे जाते हैं क्योंकि चतुर्थ दिन द्वितीय प्रायणीय है। दो पदों के मंत्र(द्विपदा)पढ़े जाते हैं। सभी दो पदों से अभिक्रमण में समर्थ होते हैं। यह अभिक्रमण (आरोहण) का रूप है। यह उसी प्रकार है जैसे कोई आगे चलकर स्वर्गलोक के समीप में बसे। वैश्वानर का सूक्त है 'प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिम्'(ऋ.७.६.१ : सम्राट् असुर की प्रशंसा)यह 'सम्राजो' मे 'सम्राट्' वत् है। 'सम्राट्' वत् इसका रूप है। मरुतों का सूक्त है–'क ईं व्यक्ता नरः सनीळाः'(ऋ.७.५६.१ ये सभी साथ प्रकट हुये मनुष्य कौन हैं ?) इसका ब्राह्मण वही है जो 'प्र शुक्रीय' (ऋ.७.३४) का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इति मारुतं तत्य तद्ब्राह्मणं यत्प्रशुक्रीयस्य हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिमिति जात-वेदसीयं तस्य तद्ब्राह्मणं यन्मरुत्वतीयस्य प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नय इति तिस्रोऽधिका समूल्हा आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयमित्यावदावद्वै चतुर्थस्याह्नः प्रायणीयरूपं पुनः प्रायणीयं चतुर्थमहर्वसुं न चित्रमहसं गृणीष इति जातवेदसीयं घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरयेत्यावदावद्वै चतुर्थस्याह्नः प्रायणीयरूपं पुनः प्रायणीयं हि चतुर्थमहरथोक्थान्युपेत्य सृप्त्या षोळशिनमुपयन्ति षोळशकलं वा इदं सर्वमस्यैत्र सर्वस्याऽऽप्त्या अन्नं चतुर्थेनाह्नाऽऽप्नुवन्त्यानुष्टुभं छन्द एकविंशं स्तोमं वैराजं सामोदीचीं दिशं शरदमृतूनां साध्यांश्चाऽऽप्यांश्च देवान्देवजाते बृहस्पतिं च चन्द्र-मसं चाधिपती बृहस्पतिं च चन्द्रमसं चाधिपती ॥ ९ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

हरिः ओ३म् पशवः पञ्चममहः पङ्क्तिर्वै तन्वस्य निदानं पशवः पङ्क्तिरिति तस्यैतानि च्छन्दोरूपाणि वृषभवद्धेनुमद्दुग्धवद्घृतवन्मद्वद्रयिमद्वाजवदध्यासवदिती-

---

है। जातवेदा का सूक्त है—'हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिम्' (ऋ. २.४.१: आप के लिये मैं प्रकाशवान् महत्त्वशील का आह्वान करता हूँ)। इसका वही ब्राह्मण है जो मरुत्वतीय का है। 'प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः' इत्यादि (ऋ.३.२६.४-६ तीव्र अग्नियाँ शक्ति से आगे जावें) ये तीन अधिक मंत्र मिले हुये (समूल्ह) रूप में हैं। 'आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्' (ऋ.३.२६.५b: इधर हम रक्षा के लिये तेजस्वी उग्र के पास आते हैं) यह 'आ' वत् है। 'आ' वत् चतुर्थदिन का प्रायणीय रूप है। चतुर्थदिन पुनः प्रायणीय का रूप है। जातवेदा का सूक्त है'–वसुं न चित्रमहसं गृणीषे (ऋ. १०.१२२.१: तेजस्वी की भाँति विचित्र शक्ति वाले की मैं स्तुति करता हूँ)। यह 'घृतनिर्णिग् ब्रह्मणे गातुमेरय' (ऋ. १०.१२२.२c: में घृत पुते हुए प्रार्थना के लिये इधर मार्ग दीजिये) में 'आ' युक्त है। 'आ'वत् चतुर्थ दिन का प्रायणीय (प्रारम्भिक) रूप है। चतुर्थ दिन पुनः प्रायणीय है। उक्थों को संम्पन्न कर और आगे चलकर वे षोडशी को संपन्न करते हैं। यह सब कुछ षोडश कलाओं का है। इस प्रकार इससे इस सभी की प्राप्ति होती है। चतुर्थ दिन से वे अन्न, अनुष्टुप् छन्द, एक-विंश स्तोम, वैराज साम, उत्तर दिशा, ऋतुओं में शरद्, साध्य तथा आप्य (आज्य) देवों एवं देवों में उत्पन्न अधिपति बृहस्पति तथा चन्द्रमा को प्राप्त करता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

तेइसवाँ अध्याय

२३.१ हरिः ओम्। पञ्चम दिन पशु है। तन्व का निदान (आधार) पङ्क्ति है। पङ्क्ति पशु है। (ऐसा कहते हैं)। उसके ये छन्दोरूप (छन्दों के प्रतीक) हैं—'वृषभ' वत्, 'दुग्ध' वत्, 'घृत' वत्, 'मद्' वत्, 'रयि' वत्, अध्यास (अतिरिक्ति) युक्त। 'इमम्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ममू षु वो अतिथिमुषर्बुधमित्याज्यं रायः सूनो सहसो मर्त्येष्विति राय इति रयिमद्रयिमदिति वा अस्य रूपमध्यासवत्तत्पङ्क्ते रूपं जागतं जगत्प्रातःसवनो ह्येष त्र्यह इति न व्यूल्ह उद्धृत्यैतदग्निं तं मन्ये यो वसुरिति समूल्हे पाङ्क्तं पङ्क्तिर्वै पञ्चममहर्यदेतदहस्तदेता अस्तं यं यन्ति धेनव इति धेनुमदिति वा अस्य रूपं बार्हतः प्रउगः पशवः पञ्चममहर्वार्हताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै यत्पाञ्चजन्यया विशेति मरुत्वतीयस्य प्रतिपत्पाञ्जन्ययेति तत्पञ्चमस्याह्नो रूपमित्था हि सोम इन्मद इति मद्वत्पाङ्क्तं तस्योक्तं ब्राह्मणमवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिष इति षट्पदाः षड्वा ऋतवः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै तासां गायत्रीशंसं शस्त्रमिति ह स्माऽऽह कौषीतकिस्तद्वा अत्र संपन्नं यद्गायत्रीशंसं तद्यदष्टाभिरष्टाभिरक्षरैः प्रणौति तद्गायत्रीरूपं मरु त्वाँ इन्द्र वृषभो रणायेति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं तस्योक्तं

षु वो अतिथिमुषर्बुधम्' । (ऋ.६.१५.१ : प्रातःकाल जाने वाला आप के इस अतिथि को) यह आज्य है । यहः 'रायः सूनो सहसो मर्त्येषु' (ऋ. ६.१५.३c : मर्त्यों में हे बल (शक्ति) के पुत्रो ! धनों को) में 'रायः' युक्त है अतः 'रयि' मत् है । 'रयि' मत् इस (दिन) का रूप है । इसमें अतिरिक्त (चरण) हैं । यह पङ्क्ति का प्रतीक है । यह जगती में है क्योंकि तीन दिनों का यह वर्ग प्रातःसवन में जगती में है । और इसलिये यह व्यत्यस्त रूप (व्यूल्ह) है । उसे लेकर 'अग्निं तं मन्ये यो वसुः'(ऋ.५.६.१a : जो तेजस्वी है उसे मैं अग्नि समझता हूँ) यह संयुक्त रूप से प्रयुक्त होता है । यह पङ्क्ति में है । पङ्क्ति पांचवाँ दिन है । ये पांचवाँ दिन हैं । 'अस्तं यं यन्ति धेनवः'(ऋ.५.६ १b : जिसके पास गायें घर में जाती हैं) इसमें यह 'धेनु'मत् है । यह इसका रूप है । प्रउग बृहती में है (इसके लिये द्र. शां. श्रौ. सू. १०.६.५,६) । पांचवाँ दिन पशु है । पशु बृहती से संबद्ध हैं । इस प्रकार यह पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं । मरुत्वतीय (ऋ. ८.६३.७-९) का प्रतिपत् 'यत्पाञ्चजन्या विशा' (ऋ. ८.६३.७a : जब पांच जनों के समूह से) में पाञ्चजन्या(पांच मनुष्यों के)शब्द से युक्त है । यह पांचवें दिन का रूप है । 'इत्था हि सोम इन्मदे' (ऋ. १.८०.१a :- इस प्रकार सोम में, मद में) यह पङ्क्ति में है तथा 'मद्' वत् है । इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है । अवितासि सुन्वतो वृक्तवर्हिषः (ऋ. ८.३६.१ : कुश फैलाकर आहुति देनेवाले के आप रक्षक हैं) ये छः पदों के मन्त्र हैं । वर्ष में छः ऋतुयें हैं । इस प्रकार वे वर्ष की प्राप्ति के लिये हैं । कौषीतकि ने कहा है कि वे गायत्री के रूप में पढ़े जाँय । गायत्री के रूप में पाठ संपन्न(पूर्ण)होता है । इसमें आठ-आठ अक्षरों के वर्ग में प्रणव को कहता है यह गायत्री रूप है । 'मरु त्वां इन्द्र वृषभो रणाय' (ऋ. ३.४७.१ मरुतों सहित वर्षणशील इन्द्र आनन्द के लिये) यह सामान्य त्रिष्टुभ् है तथा सवन का धारक (सहायक) है । इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है । यह 'वृषभो रणाय' में 'वृषभ' युक्त है । यह इस दिन का रूप है । 'अयं ह येन वा इदं' इत्यादि (ऋ.८.७६.४-६: वह जिससे यह)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ब्राह्मणं वृषभो रणायेति वृषभवत्तदेतस्याह्नो रूपमयं ह्येन वा इदमिति मरुत्वतीयं गायत्रं गायत्रमध्यंदिनो ह्येष त्र्यहः ॥ १ ॥

महानाम्न्यः पृष्ठं भवन्ति महानाम्नीभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहंस्तं वृत्रं हत्वा यन्तं देवताः प्रत्युपातिष्ठन्त पराञ्च्यो हास्मादग्रेऽपक्रान्ता बिभ्यत्यस्तस्थुस्तं प्रजापतिः पप्रच्छाशको हन्तू३मित्येवाह्येवेति प्रत्युवाचानिरुक्तमनिरुक्त उ वै प्रजापतिस्तत्प्राजापत्यं रूपं तमग्निः पप्रच्छाशको हन्तू३मित्येवाह्यग्न इति प्रत्युवाच तं सो महिमा पप्रच्छाशको हन्तू३मिति स हास्मादग्रेऽपक्रान्तो बिभ्यत्यस्थावेवाहीन्द्रेति प्रत्युवाच तं पूषा पप्रच्छाशको हन्तू३मित्येवाहि पूषन्निति प्रत्युवाच तं विश्वे देवाः पप्रच्छुरशको हन्तू३मित्येवाहि देवा इति प्रत्युवाच तानि वा एतानि पञ्च पदानि पुरीषमिति शस्यन्ते सोऽर्च एव वेला ता वा एताः शक्वर्यः एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुं तद्यदाभिर्वृत्रमशकद्धन्तुं तस्माच्छक्वर्यः शक्तयो हि प्रत्यस्मै पिपीषते यो रयिवो रयिंतमस्त्यमुवो अग्रहणमिति त्रयस्तृचा अस्मा अस्मा इदन्धस इति बृहतीं दशमीं करोत्येवा ह्यसि वीरयुरिति

यह मरुत्वतीय है । यह गायत्री में है क्यों कि तीन दिनों का यह समूह मध्यन्दिन (सवन) में गायत्री वाला है ।

२३.२ महानाम्नियाँ पृष्ठ होती हैं । महानाम्नियों से इन्द्र ने वृत्र का वध किया । वृत्र का वध कर जब वह जाने लगा तो देवता उससे मिले । इससे पहले देवता उससे भाग गये थे । भयभीत स्थित थे । उनसे प्रजापति ने पूछा–'आप मारने में समर्थ हुये ?' उसने विना नाम लिये उत्तर दिया–'हाँ हाँ ।' क्योंकि प्रजापति वह है जिसका नाम निर्दिष्ट नहीं है । (अतः) यह प्रजापति का रूप (प्रतीक) है । उनसे अग्नि ने पूछा—'आप मारने में समर्थ हुये ? उन्होंने उत्तर दिया—'हाँ हे अग्ने !' स्वयं उनके महत्त्व (महिमा) ने उनसे पूछा— 'आप मारने में समर्थ हुये ?' इससे पूर्व वह उससे भाग गयी थी और डर कर खड़ी थी । उनसेउन्होंने उत्तर दिया—'हे इन्द्र ! हाँ ।' उनमें पूषा ने पूछा–'मारने में समर्थ हुये ?' उन्होंने उत्तर दिया—'हे पूषन् ! हाँ ।' उनसे विश्वेदेवों ने पूछा–'मारने में समर्थ हुये ?' 'हे(विश्वे) देवो ! हाँ' उन्होंने उत्तर दिया । ये पांच पद पुरीष के रूप में कहे जाते हैं । यह ऋचा की वेला (सीमा) है । ये शक्वरी (दृढ़) हैं । इनसे वृत्र को मारने शक्ति इन्द्र में आयी । क्योंकि इनसे इन्द्र वृत्र को मारने में समर्थ हुये इसलिये ये शक्वरी है क्योंकि वे शक्ति हैं । 'प्रत्यस्मै पिपीषते' (ऋ.६.४२.१-३ : इस पान करने की इच्छा वाले को), 'यो रयिवो रयिन्तमः'(ऋ.६.४४.१-३ : हे समृद्ध ! जो सबसे समृद्ध है) तथा 'त्य मु वो अप्रहणम्' (ऋ.६.४४.४-६ आपको अहिंसित करने वाला वह) ये तीन तृच हैं । वह 'अस्मा अस्मा इदन्धसः' (ऋ. ६.४२.४ : इसको पेय का) इस बृहती को दसवाँ करता है । पर स्थिति (नियम) यह है कि 'एवा ह्यसि वीरयुः' (ऋ. ८.९२.२८ : आप वीरतायुक्त हैं)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्वेव स्थिता पुरीषस्य समानाभिव्याहारा तथा स स्तोत्रियेण समो वाऽतिशयो वा संपद्यते यदिन्द्र नाहुषीष्वेति साम्नः प्रगाथो यद्वा पञ्च क्षितीनामिति पञ्चेति तत्पञ्चमस्याह्नो रूपमिन्द्रो मदाय वावृध इति मद्वत्पाङ्क्तं तस्योक्तं ब्राह्मणं प्रेदं ब्रह्मवृत्रतूर्येष्वाविथेति षट्पदास्तासामुक्तं ब्राह्मणमभूरेको रयिपते रयीणामिति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं तस्योक्तं ब्राह्मणं रयिपते रयीणामिति रयिमद्रयिमदिति वा अस्य रूपमध्यासवत्तत्पङ्क्ते रूपं तदिन्द्रं वाजयामसीति निष्केवल्यं स वृषा वृषभोऽभुवदिति वृषभवत्तदेतस्याह्नो रूपं गायत्रं गायत्रमध्यंदिनो ह्येष त्र्यहः ॥ २ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यमिति वैश्वामित्रोऽनुचरः पृष्ठ्यानामेव नानात्वाय वाजयन्तः पुरंध्येति वाजवत्तदेतस्याह्नो रूपमु दुष्य देवः सविता दमूना इति सावित्रं वाममद्य सवितर्वाममु श्व इति वाममिति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य

इसमें 'पुरीष' के समान उच्चारण है। इस प्रकार वह 'स्तोत्रिय' के समान या उससे अधिक (श्रेष्ठ) होता है। 'यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ' (ऋ. ६.४६.७-८ : हे इन्द्र ! जो नहुष की प्रजाओं में) यह साम का प्रगाथ है। 'यद्वां पञ्च क्षितीनां' (ऋ. ६.४६.९c : या पाँच समुदाय) 'पञ्च' शब्द से युक्त है। यह पाँचवें दिन का रूप है। 'इन्द्रो मदाय वावृधे (ऋ.१.८१.१ : इन्द्र पीने के लिए बढ़े हैं) यह 'मद्' वत् तथा पङ्क्ति में है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ' (ऋ. ८.३७.१ वृत्र की पराजय में आपने हमारी स्तुतियों को बढ़ाया है) ये छः पदों के मन्त्र हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'अभूरेको रयिपते रयीणाम् (ऋ. ६.३१.१ : हे धनपते । आप अकेले धनों के स्वामी हुये) यह सामान्य त्रिष्टुभ् तथा सवन का धारक है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'रयिपते रयीणाम्' में यह 'रयि' शब्द युक्त है। 'रयि' युक्त इस (दिन) का रूप है। इसमें एक अतिरिक्त (अधिक) पद है। यह पङ्क्ति का रूप है। 'तमिन्द्रं वाजयामसि' (ऋ. ८.९३.७-९ : उस इन्द्र को हम पुष्ट करते हैं) यह निष्केवल्य है। यह 'स वृषा वृषभो भुवत्'(ऋ. ८.९३.७c : वह दृढ वृषभ हो) में 'वृषभ' युक्त है। यह इस दिन का रूप (प्रतीक) है। यह गायत्री में है क्यों कि तीन दिनों का समूह मध्यन्दिन सवन में गायत्री वाला है।

२३.३ 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' इत्यादि (ऋ. ३ ६२.१०-१२ : सवितृ का वह वरणीय) विश्वामित्र कृत अनुचर है। यह पृष्ठ्यों के नानात्व के लिये हैं। 'वाजयन्तः पुरंध्या'(ऋ. ३.६२.११c : अपने विचारों से बल प्रदान करते हुये) यह 'वाज' युक्त। यह इस दिन का रूप है। 'उदु ष्य देवः सविता दमूना'(ऋ.६.७१.४-६ : गृह से ऊपर उठे देव सवितृ) यह सवितृ देव का सूक्त है जो 'वाममद्य सवितर्वाममु श्वो' (ऋ. ६.७१.६a : हे सवितृ ! आज समृद्धि, कल भी समृद्धि) में वाम युक्त होने से 'पशु'युक्त है। 'पशु'युक्त इस दिन का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रूपं मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे इति द्यावापृथिवीयं रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवै-रित्युक्षेति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपमृभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेत्यार्भवं ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरमिति गोमन्तमिति शुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपं कोऽनु वां मित्रावरुणा वृतायन्निति वैश्वदेवं यज्ञायते वा पशुषो न वाजानिति पशुष इति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपमध्याशवत्तत्पङ्क्ते रूपं हविष्पान्तमजरं स्वर्विदीति वैश्वानरीयं पान्तमिति तत्पञ्चमस्याह्नो रूपं वपुर्नु तच्चिकितुषे चिद-स्त्विति मारुतं समानं नाम धेनुपत्यमानमिति धेन्विति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपमग्निर्होता गृहपतिः स राजेति जातवेदसीयमवा नो मघवन्वाजसाताविति वाजवत्तदेतस्याह्नो रूपमध्यासवत्तत्पङ्क्ते रूपमिति नु व्यूल्हेऽथसमूल्हे मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या इति वैश्वानरीयं नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणामिति रयिमद्र-

---

रूप है। 'मही द्यावा पृथिवी इह ज्येष्ठे (ऋ. ४.५६.१-४ : महान् एवं ज्येष्ठ द्यावा पृथिवी यहाँ) यह द्यावा पृथिवी का सूक्त है जो 'रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः' (ऋ. ४.५६,१d दीर्घ मार्ग में ध्वनिकर रहे उक्षा) में उक्षा (वत्स) से युक्त हैं। उक्षा से युक्त होने से 'पशु' युक्त है। 'पशु' मत् इसका रूप है। 'ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छ' (ऋ.४.३४.१ हमें ऋभु, विभ्वा वाज एवं इन्द्र) यह 'ऋभुओं का सूक्त है जो 'ये गोमन्तं वाजयन्तं सुवीरं(ऋ. ४.३४.१० : जो उसे जो गोयुक्त, वल युक्त तथा वीरों से युक्त है) में 'गोमन्त' होने से पशु युक्त है। 'पशु'मत् इसका रूप है। 'को नु वां मित्रावरुणा वृतायन्' (ऋ. ५.४१.१ : हे पवित्र मित्र और वरुण! आप में से कौन) यह वैश्वदेव सूक्त है जो 'यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् (ऋ० ५..४१.१d : पशुओं को देने के निमित्त पवित्र बल को) में 'पशुषः' से 'पशु' मत् है। 'पशु' मत् होना इस दिन का रूप हैं। इसमें एक अतिरिक्त (अध्यास) है। यह पङ्क्ति का रूप है। 'हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि' (ऋ० १०.८८.१ : पृथु हवि, अजर, ज्योति का ज्ञाता) यह वैश्वानरीय सूक्त है। 'पान्त' (पुष्ट, पृथु) पञ्चम दिन का रूप है। 'वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु (ऋ० ६.६६.१ : ज्ञानी के लिये भी यह विचित्र वस्तु हो) यह मरुतों का सूक्त है। यह 'समानं नाम धेनुपत्यमानम्' (ऋ० ६.६६.१d : वह गाय का समान नाम धारण करता है) में 'धेनु' से पशुमत् है। 'पशु' यह इस दिन का रूप है। अग्निर्होता गृहपतिः स राजा (ऋ० ६.१५.१३-१५ : अग्नि होता, गृहपति एवं राजा हैं) यह जातवेदा का सूक्त है जो 'अ वा नो मघवन् वाजसातौ (ऋ.६.१५.१५c : हे मघवन्! वाज (शक्ति) की प्राप्ति में हमारी सहायता करें)में 'वाज' युक्त है। यह इस दिन का रूप है। इसमें जोड़ (अध्यास, अतिरिक्त चरण) है। यह पंक्ति का रूप है। इसलिये यह व्यत्यस्त रूप में है। इस व्यत्यस्त (जोड़) में 'मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्याः' (ऋ० ६.७.१. द्र० शां० श्रौ० सू० १०.६.१८ : आकाश की मूर्धा, पृथ्वीः के दूत को) यह वैश्वानर का सूक्त है। यह 'नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां' (ऋ० ६.७.२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यिमदिति वा अस्य रूपमा रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषस इति मारुतं गोमदश्वावद्रथ-वत्सुवीरमिति गोमदश्वावदिति पशुमत्पशुमदिति वा अस्य रूपमिममू षु वो अतिथिमुषर्बुधमिति जातवेदसीयं तस्योक्तं ब्राह्मणं पशून्पञ्चमेनाह्नाऽऽप्नुवन्ति पङ्क्तिं छन्दस्त्रिणवं स्तोमं शाक्वरं सामावाचीं दिशं हेमन्तमृतूनां मरुतोदेवान्देव-ज्ञातं रुद्रमधिपतिम् ॥ ३ ॥

पशवः पञ्चममहरथ पुरुष एव षष्ठमहः स वै पुरुषः प्रजापतिः पूर्वोऽस्य सर्वस्यातिच्छन्दो वै प्रजापतिस्तत्प्राजापत्यं रूपमसुरीन्द्रं प्रत्युत्क्रमत पर्वन् पर्वन्मुष्कान्कृत्वा तामिन्द्रः प्रतिजिगीषन्पर्वन्पर्वञ्छेपांस्य कुरुतेन्द्र उ वै परुच्छेपः सर्वं वा इन्द्रेण जिगीषितं तां समभवत्तमर्हणादसुरमायया स एताः पुनःपदा अपश्यत्ताभिरङ्गादङ्गात्पर्वणः पर्वणः सर्वस्मात्पाप्मनः संप्रामुच्यत तद्यत्परुच्छेपः शस्यते मध्यतश्च होत्रासु चाङ्गादङ्गादेव तद्यजमानाः पर्वणः पर्वणः

यज्ञों की नाभि, धनों के सदन को) में 'रयि' (धन) युक्त है। 'रयि' युक्त इस दिन का रूप है। 'आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो' (ऋ० ५.५७ १ : इन्द्र सहित रुद्रगण साथ-साथ इधर) यह मरुतों का सूक्त हैं जो 'गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं' (ऋ० ५.५७.७ : गायों, अश्वों, रथों एकं, वीरों से युक्त) में 'गोमदश्वावत्' से पशुमत् है। 'पशु' इस (दिन) का रूप है। 'इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं' (ऋ० ६.१५.१ : उषःकाल में जागने वाला आप का यह अतिथि) यह जातवेदा का सूक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। पञ्चम दिन से वे पशु, पङ्क्ति छन्द, त्रिणव स्तोम, शक्वर साम, इधर (या नीचे) की दिशा, ऋतुओं में हेमन्त, मरुद्देवों, देवों में उत्पन्न अधिदेवता रुद्र को प्राप्त करते हैं।

२३.४ पञ्चम दिन पशु है और षष्ठ दिन पुरुष है। प्रजापति पुरुष है क्योंकि इस सब (विश्व) से वह पूर्व है। प्रजापति सभी छन्दों से परे हैं। यह प्रजापति का रूप (प्रतीक) है। एक असुर स्त्री प्रत्येक जोड़ (पर्व) में मुष्क (अण्डकोष) करके इन्द्र के पास गयी। उसको जीतने के लिये इन्द्र ने प्रत्येक पर्व में शेप (लिंग) कर दिया। इन्द्र वस्तुतः परुच्छेप (पर्व में शेपस् वाले) हैं। इन्द्र सभी को जीतना चाहते हैं। उसके साथ वे संयुक्त हुये। उससे वह असुरमाया से रुष्ट (?) हुये (या वे आकृष्ट हुये)। उन्होंने इन पुनःपदा (मंत्रों) को देखा। इनके द्वारा वे प्रत्येक अङ्गों, प्रत्येक पर्वों और सभी पापों से मुक्त हुये। अतः मध्य में तथा होत्रकों के पाठ में जो परुच्छेप पढ़ा जाता है उससे यजमान सभी पर्वों, सभी अङ्गों से सभी पापों से मुक्त हो जाते है। पहले नित्य (सामान्य) याज्या (आहुतिपरक) मंत्रों को रखकर वे परुच्छेप मंत्रों को याज्या के रूप में प्रयुक्त करते है। इसमें इस दिन उनके साथ वे वषट्कार नहीं करते इससे वे उत्सृष्ट (व्यक्त) रहते हैं। वे जो उन्हें अन्तरित नहीं करते वह इसलिये कि (वे सोचते हैं कि) 'देवताओं का प्रिय तथा यज्ञ का अच्युत अङ्ग मैं पृथक् न करूँ।' पहले नित्य (सामान्य)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सर्वस्मात्पाप्मनः संप्रमुच्यन्ते नित्याः पूर्वा याज्याः कृत्वा पारुच्छेपीभिर्यजन्ति तद्यदाभिस्तदहर्न वषट् कुर्वन्ति तेनोत्सृष्ट्वा यद्वैनानान्तरयन्ति नेदच्युतं यज्ञस्य प्रियं देवानामन्तरयामेति नित्यान्पूर्वानृतुयाजान्कृत्वा गार्त्समदैर्यजन्ति तद्यदेभिस्तदहर्न वषट् कुर्वन्ति तेनोत्सृष्ट्वा यद्वैनान्नान्तरयन्ति नेदच्युतं यज्ञस्य प्रियं देवानामन्तरयामेति तेन तेऽतिच्छन्दसो भवन्ति तथैषां सप्तपदाभिर्वषट्कृतं भवति तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिर्विराळष्टमानि ह वा एतस्य च्छन्दांसि गोपायन्ति योऽसौ तपति तां ते संपदं मोहयन्ति येऽतिच्छन्दोभिर्यजन्ति ॥ ४ ॥

तद्वै खल्वैकाहिकीभिरेव यजेयुर्देवयानस्यैव पथो समुग्धा इति तद्धाप्यणीची मौनो जाबालगृहपतीन्सत्रमासीनानुपास्यद्यपप्रच्छान्नो गाता३परुच्छेपा३इति त उ ह तूष्णीमासुस्तत उ होत्तरार्धात्सदसश्चित्रो गौश्रायणिरभिपरोवाच गौश्रो वानाहैवाह्नो गाम न परुच्छेपाः शस्त्रेणाहन्परुच्छेपोऽह्नायतीष्वैकाहिकीभिरयाक्ष्म तेनो अह्नो नागामेति यथायथं यजेयुर्देवायतनं वै षठमहस्तद्यत्तदर्होतैव वषट्कुर्याद्धोतैनयोर्देवायतनं संपृञ्चीताध्वर्योर्गृहपतेश्चाजि ह वा एते यन्ति स्वर्गे लोके षष्ठेनाह्ना स योऽनवानं समापयति स स्वर्गं लोकमुज्जयति यद्यप्यवान्यात्पुनः पुनः प्रतीसारमुपशिक्षेतैव ॥ ५ ॥

ऋतुयाज (मंत्रों) को प्रयुक्त कर गृत्समद के मंत्रों (ऋ० २.३६,३७ द्र. शां. श्रौ. सू. १०.७.७) से यजन करते हैं। जो इस दिन इनके साथ वषट्कार नहीं करते इससे वे उत्सृष्ट रहते हैं। जो उन्हें त्यक्त नहीं करते वह सोचते हैं कि हम यज्ञ के अच्युत भाग को जो देवताओं का प्रिय है न छोड़े।' इससे वे सामान्य छन्दों से ऊपर हो जाते है। इस प्रकार वे सप्तपदा मंत्रों से वषट्कार करते हैं। इसके विषय में कौषीतकि ने कहा है कि छन्द जिनमें विराज आठवाँ है जो वहाँ तप रहा है उसकी रक्षा करते हैं। जो सामान्य छन्दों से अधिक छन्दों से यजन करते हैं वे उस संपद (मेल) को भ्रमित करते हैं।

२३.५ इसलिये वे एकाह के मंत्रों से यजन करें जिससे देवयान का पथ निर्बाध रहे। इस विषय में अणीची मौन ने यज्ञ कर रहे जाबाल गृहपतियों के पास जाकर पूछा— आप लोग दिन से पृथक् हो गये है या आप परुच्छेप है ? तब वे मौन रहे। तब सदस् (सभा) के उत्तरी अर्ध से चित्र गौश्रायणि या गौश्र ने उत्तर दिया—'वस्तुतः हम लोगों ने दिन का त्याग नहीं किया है। हम परुच्छेप नहीं है। हमारे शस्त्र (यज्ञ) में एकाह में परुच्छेप समाविष्ट है। एकाह मंत्रों से हमने यजन किया है। इसलिये हम दिन से पृथक् नहीं हुये हैं।' एक के बाद एक मंत्रों से यजन करें। छठां दिन देवों का आयतन है। यदि उस दिन केवल होता वषट् करे तो वह अध्वर्यु तथा गृहपति के देवायतन को मिश्रित (संयुक्त) करेगा। छठें दिन से वे स्वर्ग लोक की आजि (दौड़) लगाते हैं। जो विना श्वास लिये इसे पूरा करता है वह स्वर्गलोक को जीतता है। पर यदि वह श्वास खींच लेता है तो वह बार-बार तथा दुवारा इसे पूर्ण पूर्ण करने का प्रयास करे।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अयं जायत मनुषो धरीमणीत्याज्यमयमित्यनिरुक्तमनिरुक्त उ वै प्रजापतिस्तत्प्राजापत्यं रूपमतिच्छन्दसः सप्तपदाः पुनःपदा यदेत्तदहस्तदेता न पदं च पुनः पदं चान्तरेणावान्यादात्मा वै पदं प्राणाः पुनः पदं स योऽत्रावान तं ब्रूयात्प्राणादात्मानमन्तरगान्न जीविष्यति तथा ह स्यात्तस्मान्न पदं च पुनःपदं चान्तरेणावान्यादातिच्छन्दसः प्रउग आतिच्छन्दसं वै षष्ठमहस्तदेनत् स्वेन च्छन्दसा समर्धयति स पूर्व्यो महानामिति मरुत्वतीयस्य प्रतिपत्स इत्यनिरुक्तमनिरुक्त उ वै प्रजापतिस्तत्प्राजापत्यं रूपं यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातय इति पारुच्छेपं तस्योक्तं ब्राह्मणं यः शूरैः स्वः सनितेति शूरैरिति स एवास्मिन्मरुन्यङ्गः स यो वृषा वृष्णेभिः समोका इति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं तस्योक्तं ब्राह्मणं वृषा वृष्णेभिरिति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ्हि तत इयान्मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्व इति मरुत्वतीयं गायत्रं गायत्रमध्यंदिनो ह्येष त्र्यहः ॥ ६ ॥

२३.६ 'अयं जायत मनुषो धरीमणि' (ऋ.१.१२८.१ : यह मनु के शासन में उत्पन्न हुआ है) आज्य है। 'अयं' (यह) में किसी देवता के नाम का उल्लेख नहीं हैं। प्रजापति ऐसे हैं जिनका नाम अनिरुक्त (उल्लेख रहित) है। यह प्रजापति का रूप (प्रतीक) है। वे सामान्य छन्दों से ऊपर, सात पदों के तथा पुनः पदो (दुहराये पदों) वाले हैं। इस प्रकार यह दिन है वे इस प्रकार हैं। वह पद तथा पुनःपद के बीच में सांस न खींचे, पद आत्मा (शरीर) है तथा पुनःपद प्राण (श्वास) हैं। यदि कोई यहाँ श्वास लेता है और उसके बारे कोई कहे कि 'इसने आत्मा (शरीर) को प्राण (श्वास) से पृथक कर दिया है यह नहीं जीवेगा।' तो ऐसा ही होता है। इसलिये वह पद और पुनःपद के मध्य श्वास न खीचे। प्रउग छन्द से परे है। षष्ठ दिन सामान्य छन्द से परे है। इस प्रकार इसे वह उसके अपने छन्द से समृद्ध करता है। 'स पूर्वो महानां' इत्यादि मरुत्वतीय का प्रतिपत् है (ऋ. ८.६३.१-३ : महानो में प्रथम वह)। 'वह' में कोई देवता नाम से अभिहित नहीं (अनिरुक्त) है। प्रजापति 'वह' है जिनका नाम अनिरुक्त है। यह प्रजापति का रूप है। परुच्छेप का सूक्त है यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये (ऋ. १.१२९.१ : हे इन्द्र ! आहुति की प्राप्ति के लिये जिस रथ को आपने)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'यः शूरैः स्वः सनिता' (ऋ. १.१२९.२ : जो वीरों के साथ ज्योति को जीतता है) में 'शूरैः' पद से मरुतों का निर्देश है। 'स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका' (ऋ. १.१००.१ : वृषा वह वृष्ण्यों (दृढ़ों) के साथ एक एक निवास में) यह सामान्य त्रिष्टुभ् में है तथा सवन का सहायक (धरण) है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'वृषा वृष्ण्येभिः' में निनृत्ति (आवृत्ति) है। छठाँ दिन समाप्ति है। अन्त में जाकर मानों इसे वह दुहराता है क्योंकि यहाँ से वह किधर जायेगा ? 'मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः' इत्यादि (ऋ. ८.७६.७-९ हे इन्द्र ! मरुतों से युक्त उदार आप) यह मरुत्वतीय है। यह गायत्री छन्द में है क्योंकि तीन दिनों का यह समूह मध्यन्दिन सवन में गायत्री वाला है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रेवतीर्नः सधमादे रेवाँ इद्रेवतस्तोतेति रैवतस्य योनौ वारवन्तीयमूल्हं भवत्याग्नेयं सामैन्द्रीषु तन्मिथुनं प्रजात्यै रूपं मा चिदन्यद्वि शंसतेति साम्नः प्रगाथः सखायो मा रिषण्यतेति सखाय इति सर्वरूपं सर्वरूपं वै षष्ठमहस्तस्मात्सखाय इति सर्वानिवानुवदत्येन्द्र याह्युप नः परावत इति पारुच्छेपं तस्योक्तं ब्राह्मणं परावत इत्यन्तो वै परावतोऽन्तः षष्ठमहरन्ते अन्तं दधाति प्र घा न्वस्य महतो महानीति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं तस्योक्तं ब्राह्मणं महतो महानीति निनृत्तिरन्तः षठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयादुप नो हरिभिः सुतमिति निष्केवल्यं याहि मदानां पत उप नो हरिभिरिति निनृतिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयाद्गायत्रं गायत्रमध्यंदिनो ह्येष त्र्यहः ॥ ७ ॥

अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमित्यतिच्छन्दसा वैश्वदेवं प्रतिपद्यत

२३.७ रेवतीर्नः सधमादे (ऋ. १.३०.१३-१५ : हम लोगों का पान समृद्ध हो) तथा रेवाँ इद्रेवतः स्तोता (ऋ. ८.२.१३-१५ : समृद्ध का स्तोता समृद्ध) इस प्रकार रेवत की योनि (आधार) पर वारवन्तीय (साम) रखा है। इन्द्र के मंत्रों से ये साम अग्नि को उद्दिष्ट हैं। यह मिथुन, प्रजाति (प्रजनन) का रूप है। साम का प्रगाथ है–मा चिदन्यद्वि शंसत (ऋ. ८.१.१-२ : दूसरे की स्तुति मत करो) 'सखायो मा रिषण्यत' (ऋ. ८.१.१b हे मित्रो ! क्षति के लिये मत आओ) में सखायः यह सबका रूप (प्रतीक) है। छठाँ दिन सर्वरूप है। इसलिये 'सखायः' में वह सभी का अनुवाद(कथन) करता हैं। 'इन्द्र याह्युप नः परावतः' (ऋ.१.१३०.१ : हे इन्द्र ! दूर से हमारे पास आवें) यह परुच्छेप का सूक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका हैं। इसमें 'परावतः' (दूर से) है। 'दूर से' अन्त हैं। छठाँ दिन अंत है। वह अन्त में अन्त को रखता हैं। 'प्र घा न्वस्य महतो महानि' (ऋ.२.१५.१ इस महान् की महत्ता) यह विज्ञात (सामान्य) त्रिष्टुभ् सवन का धारक हैं। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका हैं। 'महतो महानि' (महान् की महत्ता) यह निनृत्ति हैं। छठाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुंच कर वह मानों आवृत्ति (निनृत्ति) करता है क्योंकि यहाँ से उसे कहाँ जाना जाना चाहिये ? 'उप नो हरिभिः सुतम्' इत्यादि (ऋ. ८.९३.३१a-३३ : हरित वर्णों वाले अश्वों द्वारा हमने अभिषुत में) यह निष्केवल्य है। इसमें 'याहि मदानां पते। उप नो हरिभिः (ऋ. ८.९३.३१ : मदों (पानों) के पति ! हमारे पास हरित अश्वों से आवें) में निनृति (आवृत्ति) है। छठाँ दिन अन्त है। अन्त में जाकर वह मानों दुहराता है क्योंकि यहाँ से उसे कहाँ जाना चाहिए ? यह गायत्री में है क्योंकि तीन दिनों का यह समूह मध्यन्दिन सवन में गायत्री छन्द वाला है।

२३.८ अभि त्य देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुं[1] (अथ० ७.१४.१ : सवितृ देव को ऋषि पात्र में) इस मंत्र से, जो कि सामान्य छन्द से ऊपर है, वह वैश्वदेव प्रारम्भ करता

---

१. इस मंत्र के पाठ के लिये द्र. शा. श्रौ. सू. ५.९.७;१०.८.१०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आतिच्छन्दसं वै षष्ठमहस्तत्तृतीयसवनमतिच्छन्दाभ्यश्नुतेऽथो प्राजापत्यं वै षष्ठमहरतिच्छन्दा वै प्रजापतिस्तत्प्राजापत्यं रूपमभिवाननुचरस्तस्योक्तं ब्राह्मणमुदु ष्य देवः सविता सवायेति सावित्रं सविता सवायेति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयात्कतरा पूर्वा कतरा परायोरिति द्यावापृथिवीयं पूर्वापरेति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इत्यात्किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्नित्यार्भवं श्रेष्ठो यविष्ठ इति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयादिदमित्था रौद्रं गूर्तवचा इति वैश्वदेवं क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठा इति स्थितवत्तदन्तरूपमन्तः षष्ठमहस्तिष्ठतीव वा अन्तं गत्वा कद्रयङ्हि तत इयात्तस्य द्वे उत्तमे परिशिष्य ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इत्येतं नाराशंसं समावपत्यात्मा वै सूक्तं प्रजा पशवो नाराशंसं मध्य एव तदात्मन्प्रजां पशूनुभये दधात्यहश्च कृष्णमहरर्जुनं चेति

है। छठाँ दिन सामान्य छन्द से ऊपर के छन्द से संबद्ध हैं। इस प्रकार अतिच्छन्द से तृतीय सवन को प्राप्त करता है। और छठाँ दिन प्रजापति है तथा प्रजापति अतिछन्द हैं। यह प्रजापति का रूप (प्रतीक) है। प्रजापति से संबद्ध अनुचर 'अभि' शब्द वाला है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'उदु ष्य देवः सविता सवाय (ऋ० २.३८.१ : प्रेरणा के लिये ये देव सविता) यह सविता का सूक्त है। इसमें 'सविता सवाय' में निनृत्ति है। छठां दिन अन्त है। अन्त में पहुँच कर वह मानों इसे आवृत्त करता है क्योंकि यहाँ से उसे कहाँ जाना चाहिये ? कतरा पूर्वा कतरापरायोः' इत्यादि (ऋ० १.१८५.१ : इन दोनों में कौन पूर्व और कौन बाद है) यह द्यावा-पृथिवी का सूक्त है। 'पूर्वा' और 'अपरा' में यहाँ आवृत्ति है। छठाँ दिन अन्त है। अन्त पर पहुँच कर इसे वह आवृत्त करता है कि वह यहाँ से कहाँ जाय ? 'किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आ जगन्' (ऋ० १.१६१.१ : क्यों हमारे पास श्रेष्ठ और कनिष्ठ आये हैं) यह ऋभुओं का सूक्त हैं। इसमें श्रेष्ठ और यविष्ठ में निनृत्ति हैं। छठाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुंचकर मानों वह कहता है कि यहाँ से उसे कहाँ जाना चाहिये ? इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा : (ऋ० १०.६१.१ यह रौद्र गूर्त (प्रसन्न) वचन वाला) यह विश्वेदेवों का सूक्त है। यह 'क्राणा यदस्य पितरा मँहनेष्ठाः (ऋ० १०.६१.१c : जब अपने पितरों को उदारता पर दृढता से स्थिर किया) में 'स्थित' वत् है। यह अन्त का रूप (प्रतीक) है ! छठाँ दिन अन्त है। अन्त में जाकर वह मानो एकदम स्थिर हो जाता है क्योंकि यहाँ से उसे कहाँ जाना चाहिये। उसमें से अन्तिम दो मंत्रों को छोड़कर 'ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ताः' (ऋ० १०.६२.१. : जो यज्ञ से, दक्षिणा से युक्त है) इस नाराशंस सूक्त को बीच में रखता है। सूक्त आत्मा है, नाराशंस सूक्त प्रजा और पशु है : इसलिये शरीर के मध्य में प्रजा और पशु को रखता है। 'अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च (ऋ० ६.९.१:

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वैश्वानरीयमहरर्जुनं चेति निनृत्तिरन्तः षष्ठमहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयात्प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टय इति मारुतं तस्य तदेवान्तरूपं यत्सोदर्कमिमं स्तोममर्हते जातवेदस इति जातवेदसीयं तस्य तदेवान्तरूपं यत्सोदर्कं मा रिषाम मा रिषामेति तदन्ततोऽरिष्टयै रूपमपः षष्ठेनाह्नाऽऽप्नुवन्त्यतिच्छन्दसं छन्दस्त्रयस्त्रिंशं स्तोमं सामोर्ध्वां दिशं शिशिरमृतूनां विश्वान्देवान्देवजातं प्रजापतिमधिपतिं प्रजापतिमधिपतिम् ॥ ८ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

हरिः ॐ। अभिजिदभिजिता वै देवा अभ्यजयन्निमांस्त्रींल्लोकांस्तस्मात्सत्र्यावृच्चतुरुदयो भवति विश्वजिता जयन्निमांश्चतस्रो दिशस्तस्मात्स चतुरावृत्त्र्युदयो भवत्यभिजिदभिजिता वै देवा अभ्यजयंस्तदु ह न्विवैव स संजयदजितं पर्यशिष्यत तद्विश्वजिता जयन्विश्वमजैष्मेति वाव विश्वजित् तौ वा एताविन्द्राग्नी

कृष्ण दिन तथा श्वेत दिन) यह वैश्वानर का सूक्त है। इसमें 'अहरर्जुनं च' (और श्वेत दिन) में आवृत्ति है। छठाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर वह मानों इसे दुहराता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाँय? 'प्र यज्वयो मरुतो भ्राजदृष्टयो' (ऋ० ५.५५.१ : पवित्र एवं भ्राज (तीव्र) दृष्टिवाले मरुत आगे) यह मरुतों का सूक्त है। इस सूक्त में (सभी मंत्रों का) अन्तिम (पद) एक है अतः यह अन्त का रूप है। 'स्तोममर्हते जातवेदसे (ऋ० १.९४.१ : यह स्तुति (इसके) पात्र जातवेदा को) यह जातवेदा का सूक्त है। इसका भी अन्तिम पद (केवल अन्तिम दो मंत्रों को छोड़कर) एक है। अतः यह अन्त का प्रतीक है। अन्त में 'मा रिषाम' 'मा रिषाम' (हम क्षति ग्रस्त न हों, हम क्षतिग्रस्त न हों 'अरिष्टि (अक्षति-अहानि) का रूप है। छठें दिन से वे आप, अतिच्छन्द छन्द, त्रयस्त्रिंश स्तोम, रैवत साम, ऊर्ध्व दिशा, ऋतुओं में शिशिर, विश्वेदेवों और देवों में उत्पन्न अधिपति प्रजापति को प्राप्त करते हैं।

शाङ्खायनब्राह्मण में तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

२४.१ हरिः ओम्। अभिजित्। अभिजित् से देवों ने इन तीन लोकों को जीता। इसलिये यह तीन मोड़ों तथा चार अन्तोंवाला है। विश्वजित् से उन्होंने इन चारों दिशाओं को जीता, इसलिये वह चार मोड़ों तथा तीन अन्तों वाला है। अभिजित् (का व्याख्यान हुआ)। अभिजित् से देवों ने जीता। जो बिना जीता बच गया वह इसमें लग गया। इसे विश्वजित् से जीता। विश्वजित् इसलिये कहा गया क्योंकि (वे सोचते हैं कि) हमने विश्व जीत लिया। अभिजित् और विश्वजित् ये दोनों इन्द्र तथा अग्नि हैं। अभिजित्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एव यदभिजिद्विश्वजितावग्निरेवाभिजिदग्निर्हीदं सर्वमभ्यजयदिन्द्रो विश्वजिदिन्द्रो हीदं सर्वं विश्वमजयत्स वा अभिजिदुभयसामा सर्वस्तोमो भवति तस्मादुभयानि सूक्तानि शस्यन्ते बार्हतराथन्तराणि तस्य प्र वो देवायाग्नये यद्वाहिष्ठं तदग्नय इत्येते उभे तदाज्यं प्र व इति तद्राथंतरं रूपं वृहदर्चं विभावसो३ इति बृहद्वार्हतमुभौ माधुच्छन्दसगार्त्समदौ प्रउगौ संप्रवयेद्वायव्यां पुरोरुचं शस्त्वाऽथो उभे वायव्ये तृचे ऐन्द्रवायवीं पुरोरुचं शस्त्वाऽथो उभे ऐन्द्रवायवे तृचे अथ पुरोरुचमथोभे तृचे अथ पुरोरुचमथोभे तृच एवमेव संप्रवयेन्नाऽऽद्रियेत माधुच्छन्दसान्येव पूर्वाणि तृचानि करोति गार्त्समदान्युत्तराणि तदु वा आहुः किं तदुभौ संप्रवयेन्नाऽऽद्रियेत माधुच्छन्दस एव प्रउगे सति गार्त्समदं वैश्वदेवमुपरिष्टान्माधुच्छन्दसस्य वैश्वदेवस्य पर्याहरेत्तद्वा अत्रैकं निरुक्तं बार्हतम् ।। १ ।।

विश्वे देवास आगत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि पीदतेति बर्हिरिति तद्वार्हतं रूपमथ माधुच्छन्दसं सारस्वतं तस्यैवोत्तमया परिदध्यादित्यैकाहिकं प्रातःसवनं स्यादिति सा स्थितिरेकाहो वा अभिजित्प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठित्या

अग्नि हैं क्योंकि अग्नि ने इस सब (विश्व) को जीता । विश्वजित् इन्द्र हैं क्योंकि इन्द्र ने इस सब विश्व को पूर्णतः जीत लिया । अभिजित् में दोनों सोम तथा सभी स्तोम हैं । इसलिये दोनों प्रकार को सूक्त वृहत् तथा रथन्तर से पढ़े जाते हैं । दोनों सूक्त-प्र वा देवायाग्नये (ऋ. ३.१३.१ : देव अग्नि को) तथा यद्वाहिष्ठं तदग्नये (ऋ. ५.२५.७-९ : जो श्रेष्ठ है वह अग्नि को) इसके आज्य हैं । 'प्र वः' यह रथन्तर का (प्रतीक) है । 'बृहदर्च विभावसो (ऋ. ५.२५.b : हे विभावसो ! जोर से गाओ) में 'वृहत्' वृहत्साम का रूप है । मधुच्छन्दा तथा गृत्समद के दोनों प्रउगों को वह बीच में रखे । वायु के पुरोरुच का शंसन कर वह वायु के दो तृचों को रखे । तदनन्तर इन्द्र और वायु के लिये पुरोरुच का शंसन कर इन्द्र और वायु के लिये दो तृचों को रखे । पुरोरुच, तदनन्तर दो तृच, पुरोरुच तदनन्तर दो तृच—इस प्रकार वह बीच-बीच में रखे । इसका वह आदर न करे । वह मधुच्छन्द के तृच को प्रथम तथा गृत्समद के तृच को तदनन्तर रखता है । इसके विषय में वे कहते हैं—क्यों वह दो प्रउगों को जोड़े । इसका वह आदर न करे । मधुच्छन्दा के (ऋ.१.३.७-९; विभिन्न स्थितियों के लिये द्र. शा.श्रौ.सू. ११.१०.३,४) ही प्रउग को मधुच्छन्दा के विश्वेदेव के ऊपर गृत्समद के विश्वेदेव (तृच) पर रखे । यहाँ एक बृहत् (का सूक्त) वर्णित है ।

२४.२ 'विश्वे देवास आ गत श्रृणुता म इमं हवम् । एदं वर्हिर्नि षीदत' इत्यादि (ऋ. २.४१.१३-१५ : हे विश्वेदेवो ! इधर आइये । मेरे आह्वान को सुनिये । इस कुश पर बैठिये) यहाँ 'बर्हि' बृहत् का रूप है । इसके बाद मधुच्छन्दा का सरस्वती सूक्त है (ऋ. १.३.१०-१२) । नियम यह है कि वह इसके अन्तिम मंत्र से समाप्त करे और इसलिये प्रातः सवन एक दिन के रूप का हो । अभिजित् एक दिन का कृत्य है । एकाह(कृत्य) प्रतिष्ठा है ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एवा त्वा रथं यथोतय इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदिदं वसो सुतमन्ध इत्यनुचर एष एव नित्य एकाहातानस्तस्योक्तं ब्राह्मणं जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति गौरिवीतीयं पूर्वं शस्त्वेन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायेत्येतस्मिन्बार्हते पञ्चर्चे निविदं दधातीन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचमिति हैरण्यस्तूपीयं पूर्वं शस्त्वा या त ऊतिरवमा या परमेत्येतस्मिन्बार्हते नवर्चे निविदं दधात्येवं नु यदि रथन्तरं पृष्ठं भवति यद्यु बृहद् बार्हते पूर्वे शस्त्वैकाहिकयोर्निविदौ दध्यादित्येकसूक्ते निष्केवल्यमरुत्वतीये स्यातामिति सा स्थितिः पिबा सोममभि यमुग्र तर्दस्तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा इत्युभे अभिवती तदभिजितो रूपमथ नित्यमेवैकाहिकं तृतीयसवनं स्यादिति सा स्थितिरेकाहो वा अभिजित्प्रतिष्ठा वा एवाहः प्रतिष्ठित्या एव ॥ २ ॥

स्वर्भानुर्हासुर आदित्यं तमसाविध्यत्तस्यात्रयस्तमोपजिघांसन्त एतं सप्तदशस्तोमं त्र्यहं पुरस्ताद्विषुवत उपायंस्तस्य पुरस्तात्तमोऽपजघ्नुस्ततपुरस्तादसीददेतमेव

अतः यह प्रतिष्ठा के लिये है। मरुत्वतीय का प्रतिपत् है–'आ त्वा रथं यथोतये'(ऋ.८.६८.१-३ : रथ की भाँति आपको मंगल के लिये)। 'इदं वसो सुतमन्ध' (ऋ. ८.२.१-३ : हे तेजस्वी ! यह पेय अभिपुत है) यह अनुचर है। यह एक दिन का सामान्य रूप है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय' (ऋ.१०.७३.१ प्रेरणायुक्त बल के लिये उग्र आप उत्पन्न हुए हैं) गौरवीति के इस सूक्त का प्रथम पाठ कर 'इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदाय' (ऋ. ६.४० : हे इन्द्र पीजिये। आपके आनन्द के लिये अभिषुत हुआ है) इस पञ्चर्च वृहती सूक्त में निविद को भीतर रखे। 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम्' (ऋ.१.३२.१ : इन्द्र के पराक्रमों का वर्णन करता हूँ) इस हिरण्यस्तूप के सूक्त का प्रथम पाठ कर 'या ते ऊतिरवमा या परमा' (ऋ. ६.२५.१a : जो आपका समीपस्थ और जो दूरस्थ मङ्गल) इस वृहती के नौ ऋचाओं वाले सूक्त में निविद को रखता है। इस प्रकार अगर पृष्ठ है तो रथन्तर होता है। 'पर यदि यह बृहत् है तो प्रथमतः दो बृहती (ऐसा कुछ लोग कहते हैं) मंत्रों का पाठ कर एकाह कृत्य से इन दोनों मंत्रों के बीच वह निविद रखे'। नियम यह है कि निष्केवल्य तथा मरुत्वतीय एक-एक सूक्त के हों। पिबा सोममभि यमुग्र तर्दः (ऋ. ६.१७.१ : हे उग्र ! सोम पीजिये जिसकी ओर आप झुके हैं) तथा 'तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा (ऋ. ६.१८.१ : उसकी स्तुति करो जो बल से अभिभूत करता हैं) ये 'अभि'युक्त दोनों सूक्त हैं। यह अभिजित् का रूप है। नियम यह है कि सामान्य एकाह कृत्य के बाद तृतीय सवन हो। अभिजित् एकाह (एक दिन का कृत्य) है। एकाह प्रतिष्ठा है। यह प्रतिष्ठ लिये है।

२४.३ असुर स्वर्भानु ने तमस् से आदित्य को विद्ध किया। अत्रि (गोत्र के ऋषि) उस तम को नष्ट करने की इच्छा से विषुवत् से पूर्व इस तीन दिनों के समूह को जिसमें सप्तदश स्तोम है सम्पन्न किया। इसके सामने उन्होंने तम को नष्ट किया। वह पीछे स्थित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्र्यहमुपरिष्टाद्विषुवत उपायंस्तस्य परस्तात्तमोपजघ्नुस्तद्य एवं विद्वांस एतं सप्तदश-स्तोमं त्र्यहमुभयतो विषुवन्तमुपायन्त्युभाभ्यामेव ते लोकाभ्यां यजमानाः पाप्मान-मपघ्नते तान्वै स्वरसामान इत्याचक्षत एतैर्ह वा अत्रय आदित्यं तमसोऽपस्पृण्वत तद्यदपस्पृण्वत तस्मात्स्वरसामानस्तदेतदृचाऽभ्युदितम् ॥ ३ ॥

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य १ न्ये अशक्नुवन्निति स्वरसामानो ह वा एतेनाभ्युक्ताः कद्वन्ति मरुत्वतीयानि भवन्ति कद्वन्तो निष्केवल्येषु प्रगाथाः को वै प्रजापतिः प्रजापतिः स्वरसामान आनुष्टुभानि निविद्धानानि भवन्त्यापो वा अनुष्टुबापः स्वरसामानोऽद्भिर्हीदं सर्वमनुस्तब्धमु-भयतो ह्यमुमादित्यमापोऽवस्ताच्चोपरिष्टाच्च तदेतदृचाऽभ्युदितम् ॥ ४ ॥

या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आप इत्या यज्ञैर्देव मर्त्य इति प्रथमस्य स्वरसाम्न आज्यमावद्राथन्तरं बृहद्वयो हि भानव इति द्वितीयस्य बृहद्बा-र्हतमग्न ओजिष्ठमा भरेति तृतीयस्यावद्राथन्तरं माधुच्छन्दसः प्रथमस्य स्वरसाम्नः

हुआ। विषुवन्त के बाद(भी)उन्होने उसी तीन दिन के कृत्य को सम्पन्न किया। उन्होंने तम (अन्धकार) को उसके पीछे नष्ट किया। जो यजमान लोग इस प्रकार जानकर विषुवन्त के दोनों ओर सप्तदश स्तोम वाले इस तीन दिनों के कृत्य को सम्पन्न करते हैं निश्चय ही वे पाप को दोनों लोकों से नष्ट करते हैं। इसे वे स्वरसाम कहते हैं। इससे अत्रियों ने सूर्य को अन्धकार से मुक्त किया। उन्होंने जो मुक्त किया इससे ये स्वरसाम हैं। यह एक ऋचा में भी कहा गया है।

२४.४ जिस सूर्य को असुर स्वर्भानु ने तमस् से विद्ध किया अत्रियों ने उसे जाना और लोग इसमें समर्थ नहीं हुये। इससे स्वरसामों का उल्लेख है। मरुत्वतीय में 'कत्' शब्द है तथा निष्केवल्य के प्रगाथों में 'कत्' शब्द हैं। 'कः' प्रजापति हैं। स्वरसाम प्रजापति हैं। इसमें अनुष्टुभ् निविद प्रविष्ट है। अनुष्टुभ् जल हैं। स्वरसाम जल है क्योंकि यह समस्त जलों से घिरा है। उस सूर्य के दोनों ओर ऊपर-नीचे जल हैं। यह एक ऋचा में भी कहा है।

२४.५ या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः (ऋ. ३.२२.३cd : सूर्य के साम्राज्य में जो जल ऊपर और नीचे स्थित हैं)। 'आ यज्ञैर्देव मर्त्य' इत्यादि (ऋ.५.१७.१-४ : हे देव ! मरणधर्मा लोग यज्ञों से)यह प्रथम स्वरसाम(दिन)का आज्य है। यह 'आ'वत् है तथा रथन्तर से संवद्ध है। 'बृहद्वयो हि भानवे' इत्यादि (ऋ. ५.१६.१-४ भानु में बृहत् शक्ति) द्वितीय का (आज्य) है। यह 'बृहत्' शब्द युक्त है तथा बृहत् से संबद्ध है। 'अग्न ओजिष्ठमा भर' (ऋ. ५.१.१ : हे अग्ने। इधर अत्यन्त ओजस्वी को ले आइये) यह तृतीय का आज्य है। यह 'आ'वत् है तथा रथन्तर से संबद्ध है। प्रथम स्वर साम का प्रउग मधुच्छन्दा कृत है, द्वितीय का गृत्समद का है और तृतीय का उष्णिह.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रउगो गात्संमदो द्वितीयस्यौष्णिहू आत्रेयस्तृतीयस्य तेषामुक्तं ब्राह्मणमन्वायत्ता मरुत्वतीयानां प्रतिपदनुचरा अन्वायत्ता ब्राह्मणस्पत्यास्त्र्यहरूपेण तेषामुक्तं ब्राह्मणं क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रमिति प्रथमस्य स्वरसाम्नो मरुत्वतीयं क्वेति कद्वत्कया शुभा सवयसः सनीळा इति द्वितीयस्य कयेति कद्वद् गायत्साम नभन्यं यथा वेरिति तृतीयस्य ता कर्माषतरास्मा इति कर्मेति कद्वत्को वै प्रजापतिः प्रजापतिः स्वरसामानो यज्जायथा अपूर्व्येत्येतस्मिन्नु हैके बृहती तृतीये स्तोत्रियेऽन्वहं स्वराण्यन्वायातयन्ति ते यदि तथा कुर्युरेतावेव स्तोत्रियानुरूपावेषा धाय्या कं नव्यो अतसीनामिति कद्वान्प्रगाथस्तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ रथन्तरस्य योनिर्यमिन्द्र दधिषे त्वमिति द्वृचोऽनैकपातितायै नेदसौ बृहत्येकाकिनीव शस्त्वासदितीन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूमेति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं

छन्दों में अत्रिका है। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मरुत्वतीय का प्रतिपत् एवं अनुचर, ब्रह्मणस्पति के मंत्र तृतीय दिन के रूप के अनुरूप हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रम्' (ऋ.५.३०.१ : वह वीर कहाँ है जिसने इन्द्र को देखा है) यह प्रथम स्वरसाम का मरुत्वतीय है। यह 'क्व' (कहाँ) में 'कत्' (कौन) युक्त है। 'कया शुभा सवयसः सनीळाः' (ऋ. १.१६५.१ : किस क्रम से समान वय और समान गृहवाले) यह द्वितीय का मरुत्वतीय है जो 'कया' में कद्वत् है। गायत्साम नभन्यं यथा वेः (ऋ. १.१७३.१ : वह पक्षी से प्रसृत हो रहे की भाँति साम को गाये) यह तृतीय का मरुत्वतीय है। 'ता कर्माषतरास्मै' (ऋ. १.१७३.४ : वे कर्म उसे अत्यन्त अभीष्ट हैं) में 'कर्म' में कद्वत् है। प्रजापति 'कः' हैं। स्वरसाम प्रजापति हैं। 'यज्जायथा अपूर्व्य' (ऋ. ८.८९.५-७ : हे अपूर्व ! जब आप उत्पन्न हुये) इस स्तोत्रिय में जिसका कि तृतीय मंत्र बृहती में है कुछ लोग प्रतिदिन स्वर को प्रयुक्त करते हैं। यदि वे ऐसा करते हैं तो स्तोत्रिय, अनुचर तथा धाय्य (बीच में रखे मंत्र) एक हों। कं नव्यो अतसीनां (ऋ. ८.३.१३ : प्रशंसकों में से कौन नवीन) यह 'कत्' युक्त प्रगाथ है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

२४.६ तदनन्तर रथन्तर की योनि (आधार)का पाठ होता है। 'यमिन्द्र दधिषे त्वम्' इत्यादि (ऋ. ८.९७.२ और ३ : हे इन्द्र ! जिसे आप धारण करते हैं' इत्यादि) ये दो ऋचायें पृथक्ता दूर करने के लिये हैं (ये वृहती छन्द हैं तथा स्तोत्रिय के बृहती के अनुरूप हैं। द्र.शा.श्रौ सू. ११.१२.४)। (वह सोचता है कि) 'वह बृहती अकेले न पठित हो। 'इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम' इत्यादि (ऋ. ६.४४.१०-१२ : हे उदार इन्द्र ! हम आपकी ओर उन्मुख हुये हैं) यह सामान्य (विज्ञात) त्रिष्टुभ् है जो सवन का धारक (सहायक) है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तस्योक्तं ब्राह्मणं यस्ते साधिष्ठोऽवस इत्यानुष्टुभं निष्केवल्यमिन्द्र क्रतुष्टमा भरेत्यावद्राथन्तरं कदू न्वस्याकृतमिति कद्वान्प्रगाथस्तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अथ बृहतो योनिः स्वरन्ति त्वा सुते नर इति द्वृचोऽनैकपातितायै नेदसौ बृहत्यैकाकिनीव शस्त्वासदित्यध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं तस्योक्तं ब्राह्मणं गायन्ति त्वा गायत्रिण इत्यानुष्टुभं निष्केवल्यमुद्वंशमिव येमिर इत्युद्वद्बार्हतमिमा उ त्वा पुरूवसो३ इति प्रगाथः पावकवर्णाः कवर्णा इति कद्वांस्तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

अथ रथन्तस्य योनिरथ बृहतो दाना मृगो न वारण इति द्वृचोऽनैकपातितायै नेदसौ बृहत्येकाकिनीवशस्त्वासदितीदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिति विज्ञातत्रैष्टुभं सवनधरणं तस्योक्तं ब्राह्मणमिन्द्रं विश्वा अबीवृधन्नित्यानुष्टुभं निष्केवल्यं त्वामभि

इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'यस्ते साधिष्ठोऽवसे' इत्यादि (ऋ. ५.३५.१-७ : सहायता के लिये जो आपका अत्यन्त समर्थ (साधिष्ठ) यह अनुष्टुभ् में निष्केवल्य है (इसके विकल्प के लिये द्र.शां.श्रौ.सू. ११.११.१२; १२.५.७; ६) यह 'इन्द्र क्रतुष्टमा भर' (ऋ. ५.३५.१b : हे इन्द्र ! आप यहाँ क्रतु को धारण करें) यह 'आ'वत् है तथा रथन्तर से संबद्ध हैं : 'कदू न्वस्याकृतम्' इत्यादि (ऋ. ८.६६.९-१० : उन्होंने क्या नहीं किया) यह 'कत्' युक्त प्रगाथ है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

२४.७ तदनन्तर वृहत् की योनि पठित होती है। 'स्वरन्ति त्वा सुते नरो' इत्यादि (ऋ. ८.३३.२-३ : अभिषुत होने पर मनुष्य आपको बुलाते हैं) ये दो ऋचायें पृथक्ता दूर करने के लिये हैं। यह इसलिये कही जाती है कि वृहती अकेले की तरह पढ़ी जाय। 'अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानां' इत्यादि (ऋ. ६.४४.१३-१५ : हे वीर अध्वर्यो ! महान् के लिये अभिषुतों के प्रति) यह सामान्य त्रिष्टुभ् (त्रिच्) है जो सवन का धारक है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'गायन्ति त्वा गायत्रिणो' (ऋ. १.१०.१ इ. : गाने वाले आपका गान करते हैं) यह अनुष्टुप् छन्द में निष्केवल्य है। यह 'उद्वंशमिव येमिरे (ऋ. १.१०.१d : वंश (बाँस) से आपको ऊपर उठाया) में यह 'उत्'वत् है और बृहत् से संबद्ध है। इमा उ त्वा पुरूवसो इ (ऋ. ८.३.३ : हे पुरूवसो ! आपको ये (स्तुतियाँ) यह प्रगाथ है तथा 'पावकवर्णाः' (३c) में 'क' वर्ण हैं। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

२४.८ तदनन्तर रथन्तर की योनि एवं तदनन्तर वृहत् की योनि का पाठ होता है। 'दाना मृगो न वारणः'(ऋ.८.३३.८-९ : वन्य हाथी की भाँति विचरण करते हुए) ये दो ऋचायें पार्थक्य दूर करने के लिये हैं। (ये यह सोचकर पठित होती हैं कि) वृहती अकेले की भाँति न पठित हों। 'इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानं'(ऋ ६.४४.१६-१८ : इन्द्र के पान से युक्त यह पात्र) यह सामान्य त्रिष्टुभ् तृच है जो सवन का धारक है। इसका ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। 'इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् (ऋ. १.११.१ इन्द्र को सभी ने बढ़ाया)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्र णोनुम इत्यभिवद्राथन्तरं रूपं तदाहुर्नानुष्टुप्सु निविदं दध्यान्मोहयति वल्म-च्छन्दसो मध्यंदिनमानुष्टुभानि पूर्वाणि शस्त्वा कामस्योपाप्त्यै त्रैष्टुभेषु निविदं दधाति तथा यथायथं निविद्धीयते सैनान्यथायथं धीयमाना: सर्वेषु च लोकेषु सर्वेषु च कामेषु यथायथं दधात्यर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेति प्रथमेऽहन्नावति राथन्तरेऽ-पादित उदु नश्चित्रतम इति द्वितीय उद्वति बार्हते सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीरिति तृतीये गतवत्यन्तरूपे यदि स्वराणि पृष्ठ्यानि भवन्ति बृहद्रथंतरे एव तर्हि सामगा: पवमानेषु कुर्वन्ति यद्य् बृहद्रथंतरे पृष्ठे स्यातां स्वराणि त्वेव तर्हि सामगा: पवमानेषु कुर्वन्ति स्वराणि त्वेव पृष्ठ्यानि स्युरिति ह स्माऽऽह कौषीतकि: स्वरसामानो ह्येते पृष्ठ्यैर्वै देवा: स्वर्गं लोकमस्पृक्षंस्तद्यत्स्वराणि पृष्ठ्यानि भवन्ति स्वर्गस्यैव लोकस्य स्पृष्ट्यै ॥ ८ ॥

पृष्ठ्यस्य पळहस्य समूल्हस्य या: पूर्वस्य त्र्यहस्य वैश्वदैवानां प्रतिपदस्ता: प्रतिपदो यान्युत्तरस्य त्र्यहस्य तृतीयसवनानि तानि तृतीयसवनानि सानुचराणि

यह अनुष्टुभ् में निष्केवल्य है। यह 'त्वामभि प्र णोनुम' में 'अभि' युक्त है तथा रथन्तर का रूप है। (इस विषय में वे) कहते हैं 'वह अनुष्टुप् सूक्तों में निविद को न रखे। वह मध्यन्दित (कृत्य) में छन्दों की व्यवस्था को मुग्ध (अस्त व्यस्त) करता है।' कामनाओं की प्राप्ति के लिये अनुष्टुभों का पूर्ण रूप से पाठ कर वह त्रिष्टुभ् सूक्तों में एक निविद को रखता है। इस प्रकार यथाक्रम में निविद विन्यस्त होता है। यह यथाक्रम में रखा जाता हुआ उन्हें यथाक्रम में सभी लोकों तथा सभी कामनाओं में स्थापित करता है। प्रथम दिन वह रथन्तर से सम्बद्ध 'अर्वाग् रथं विश्ववारं त उग्र' (ऋ० ६.३७.१ : हे उग्र! सभी कामनाओं को देने वाला आप का रथ आगे) इस 'आ' युक्त सूक्त में निविद को रखता है। दूसरे दिन वह 'उत्' युक्त तथा वृहत् से सम्बद्ध इस सूक्त-अपादित उदु नश्चित्रतमो (ऋ० ६.३८.१ : चित्रतम ने हमारे लिये वह पान किया है) में निविद को विन्यस्त करता है तृतीय दिन 'गत' युक्त तथा अन्त के रूप 'सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वी:' (ऋ० ६ ३४.१ : हे इन्द्र! पूर्व से आप में स्तुतियाँ गयी हैं) इस सूक्त में वह निविद को रखता है। यदि पृष्ठ्य स्वर होते हैं तो सामगान कर्ता पवमानों में वृहत् तथा रथन्तर का प्रयोग करते हैं परन्तु यदि पृष्ठ्य बृहत् तथा रथन्तर में हैं तो सामग (लोग) पवमान में स्वरों का ही प्रयोग करते हैं। कौषीतकि का मत है कि पृष्ठ्य केवल स्वर ही हों क्यों कि वे स्वरसाम हैं। पृष्ठों से देवताओं ने स्वर्गलोक का स्पर्श किया। स्वर्ग लोक के स्पर्श के लिये स्वर पृष्ठ होते हैं।

२४.९ समूल्ह (संयुक्त रूप) पृष्ठ षडह के प्रथम तीन दिनों के वैश्वदेव के (सूक्त) ही प्रतिपत् (प्रयुक्त होते) हैं। अनुचरों सहित तृतीय सवन वे ही हैं जो द्वितीय (उत्तर)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तद्यानि तत्र वैश्वदेवानि भवन्ति तान्युद्धृत्यान्यानि प्राजापत्यान्यनिरुक्तानि परोक्ष-वैश्वदेवान्यवधीयन्ते प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धस्तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा कदित्था नॄः पात्रं देवयतामिति प्रति नाभानेदिष्ठस्तद्वै खलु प्रत्यक्षं वैश्वदेवान्ये-वावधीयेरन्नग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमेति प्रथमेऽहन्द्यां स्कभित्वीति कद्वद्देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति द्वितीये ज्योतिष्कृत इति कद्वदुषासानक्ता बृहती सुपेससेति तृतीये नक्तेति कद्वत्को वै प्रजापतिः प्रजापतिः स्वरसामानस्तेऽग्निष्टोमा वोक्थ्याहः संतिष्ठतेऽग्निष्टोमा इति पैङ्ग्यं ब्रह्मवर्चसिनो भवन्ति योऽग्निष्टोमानु-पयन्त्युक्थ्याः स्युरिति ह स्माऽऽह कौषीतकिः स वै यज्ञक्रतुः समृद्धो य उक्थ्यः पञ्चदश ह्यस्य स्तोत्राणि भवन्ति पञ्चदश शस्त्राणि तानि त्रिंशत्स्तुतशस्त्राणि स विराजमभिसंपद्यते श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै श्रियो विराजो-ऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै ॥ ९ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

तीन दिनों के तृतीय सवन हैं। इनमें वैश्वदेव सूक्त हटा लिये जाते हैं और उनके स्थानपर अन्य परोक्ष वैश्वदेव (ऋ० १.१२२; ५.४४; १.१२१ या अन्तिम के स्थान पर १०.६१) जो अनिरुक्त देवतावाले हैं तथा प्रजापति से सम्बद्ध हैं, रखे जाते हैं (जिनके प्रतीक ये है—) प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धस् (ऋ० १.१२२.१ : हे शीघ्र मन्युवालो ! यह पान आप का); तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा (ऋ० ५.४४.१ : उसको, जो प्राचीन, पूर्वकालीन, सर्वकालीन); कदित्था नॄः पात्रं देवयतां (ऋ० १.१२१.१ उन पवित्रों का कौन पात्र); यह नाभानेदिष्ठ (ऋ० १०.६५) के स्थान पर है। परन्तु प्रत्यक्ष वैश्वदेव का प्रयोग होना चाहिये—अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा (१०.६५) यह प्रथम प्रयुक्त हो जो 'द्यां स्कभित्वी' (ऋ० १०.६५.७c : आकाश को स्थिर किया) में 'कद्' वत् हैं। देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये' (ऋ० १०.६६.१ : बृहत् प्रशंसावाले देवों को मैं स्वस्ति के लिए आह्वान करता हूँ) यह द्वितीय दिन कहे। यह 'ज्योतिष्कृतः' (ज्योति निर्माता) में 'कद्' वत् है। तृतीय दिन 'उषासानक्ता बृहती सुपेशसा (ऋ० १०.३६.१ बृहत् तथा सुन्दर रूप वाली उषा एवं रात) कहे यह 'नक्ता' में कद्वत् है। कः प्रजापति है। स्वरसाम प्रजापति हैं। वे अग्निष्टोम या उक्थ्य हैं। पैङ्ग्य का कथन है कि अग्निष्टोम। जो 'अग्निष्टोम करते हैं वे ब्रह्मवर्चस्वी होते हैं। कौषीतकि का कथन है कि 'वे उक्थ्य हों'। 'उक्थ्य' यज्ञक्रतु समृद्ध (सफल) होता है। इसके पन्द्रह स्तोत्र तथा पन्द्रह शस्त्र होते हैं। ये तीस (स्तोत्र) तथा शस्त्र होते है। ये विराज हो जाते हैं। विराज श्री तथा अन्नाद्य (भोज्यान्न) है। यह श्री तथा अन्नाद्य के रूप विराज की प्राप्ति के लिये है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हरिः ॐ । आपस्तपोऽतप्यन्त तास्तपस्तप्त्वा गर्भमदधत तत एष आदित्योऽजायत षष्ठे मासि तस्मात्सत्रिणः षष्ठे मासि दिवाकीर्त्यमुपयन्ति स षण्मासानुदङ्ङेति षळावृत्तांस्तस्मात्सत्रिणः षळेवोर्ध्वान्मासो यन्ति षळावृत्तानन्तरेणो ह वा एतमशनाया च पुनर्मृत्युश्चापाशनायां च पुनर्मृत्युं च जयन्ति ये वैषुवतमहरुपयन्ति तस्यैतानि च्छन्दोरूपाणि सूर्यवद्भानुमज्ज्योतिष्मद्रुक्मवद्रुचितवद्धर्यतवदिति समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदित्याज्यं समुद्राद्ध्येषोऽद्भ्य उदैतीन्द्र एकं सूर्य एकं जजानेति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं ताः संशस्ता एकविंशतिरनुष्टुभः संपद्यन्त एकविंशो वा एष य एष तपति तदेनं स्वेन रूपेण समर्धयति त्रैष्टुभः प्रउगो विषुवान्वा एषोऽह्नां विषुवांश्छन्दसां त्रिष्टुप्तदेनं स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ॥ १ ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधास इति वायव्यमवासयन्नुषसं सूर्येणेति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपमत एवोत्तरं तृचमैन्द्रवायवं यावत्तरस्तन्वो यावदोज इति यावन्न-

---

२५.१ हरिः ओम् । जलों ने तप किया । तप करके उन्होंने गर्भ धारण किया । तदनन्तर छठें महीने में ये सूर्य उत्पन्न हुये । इस लिये छठें महीने सत्री (सत्र याग करने वाले) दिवाकीर्त्य को करते हैं । वे छः महीने उत्तर जाते हैं फिर छः महीने पीछे चलते हैं । इसलिये सत्रयाग करने वाले छः महीने आगे जाते हैं तदनन्तर छः महीने उलटा चलते हैं । इसके विना भूख तथा पुनर्मृत्यु हैं । जो विषुवन्त दिन को संपन्न करते हैं वे भूख और पुनर्मृत्यु को जीत लेते हैं । इसके छन्दों (मन्त्रों) के ये रूप (प्रतीक) हैं— 'सूर्यं' वत्, 'भानु' मत्, 'ज्योतिष्' मत्, 'रुक्म' वत्, 'रुचित' वत् 'हर्यत' वत् । समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारत्' (ऋ० ४ ५८.१ : समुद्र से मधुर ऊर्मि उठी है) यह आज्य है क्योंकि वह समुद्र से, जल से उठता है । यह 'इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान' (ऋ० ४.५८. ४c : इन्द्र ने एक को, सूर्य ने एक को उत्पन्न किया) में 'सूर्य' युक्त है । यह इस दिन का रूप है । वे एक साथ पढ़े जाने पर इक्कीस अनुष्टुभ् होते हैं । यह जो तप रहा है एकविंश (इक्कीसवाँ) है । इस प्रकार वह इसे अपने रूप (प्रतीक) से समृद्ध करता है । प्रउग त्रिष्टुभ् में है (द्र० शां० श्रौ० ११.१३.१२) । यह दिनों का विषुवान् (मध्य) है । त्रिष्टुभ् छन्दों का मध्य (विषुवान्) है । इस प्रकार इसे वह उसके अपने छन्द से समृद्ध करता है ।

२५.२ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः (ऋ० ७.९१.१-३ : जो नमः से वर्धित हुये वे क्या महान् नहीं थे) यह वायु की तृचा है जो अवासयन्नुषसं सूर्येण (ऋ० ७.९१.१d : उन्होंने सूर्य के साथ उषा को तेजस्वी बनाया) में 'सूर्य' वत् है । यह इस दिन का रूप है । इसके बाद की तृचा इन्द्र और वायु को कही गयी है (ऋ० ७.९१.४-६) : यावत्तरस्तन्वो यावदोजः (ऋ० ७.९१.४ : शरीर का जितना बल, जितना ओज) यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रश्चक्षसा दीध्याना इत्येतेन रूपेणोद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकमिति मैत्रावरुणं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वानिति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपमा गोमता नासत्या रथेनेत्याश्विनं तस्योर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेदिति भानुमती तृतीया तदेतस्याह्नो रूपमा नो देव शवसा याहि शुष्मिन्नित्यैन्द्रं तनूषु शूराः सूर्यस्य साताविति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्येति वैश्वदेवं विरश्मिभिः ससृजे सूर्यो गा इति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपमुत स्या नः सरस्वती जुषाणेति सारस्वतं द्वारा वृतस्य सुभगे व्याव-रित्येतेन रूपेणैष वा उ सूर्यवांस्त्रैष्टुभस्तृचक्लृप्तो वासिष्ठः प्रउगः प्रजापतिर्वै वसिष्ठः प्रजापतावेव तत्सर्वान्कामानृध्नुवन्ति ॥ २ ॥

तदाहुर्न त्रैष्टुभं प्रातःसवनं स्यान्मोहयति क्लृप्तच्छन्दसो यज्ञमुखमैकाहिकमेव स्याज्ज्योतिर्वा एकाहो ज्योतिरेष य एष तपति ज्योतिषैव तज्ज्योतिः समर्धयति

'यावन्नरः चक्षसा दीध्याना : (ऋ० ७.९१.४b : मनुष्य जितना आँख से देख सकते हैं) में इस दिन के रूप से युक्त है। उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं (ऋ० ७.६१.१-४ : हे वरुण ! आप दोनों की सुन्दर आँख) यह मित्र और वरुण की तृचा है। यह 'देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् (ऋ० ७.६१.१b : सूर्य पवित्रों को बढ़ाते हुये जाते हैं) में 'सूर्य' से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। आ गोमता नासत्या रथेन (ऋ० ७.७२.१-३ : हे नासत्यों ! इधर पशु-युक्त रथ से) यह नासत्यों की तृचा है। इसमें 'ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेत्' (ऋ० ७.७२.४c : सूर्य देव ने भानु (तेज) को ऊपर उठाया) यह तीसरा मन्त्र है जो 'भानु' मत् है। यह इस दिन का रूप है। आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् (ऋ० ७.३०.१-३ : हे बलवान् देव ! आप शक्ति से इधर हमारे पास आवें) यह इन्द्र के लिये तृचा है। यह 'तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ' (ऋ० ७.३०.२b : शूरगण शरीरों में लिये सूर्य की प्राप्ति के लिये) में 'सूर्य' से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। 'प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य' इत्यादि (ऋ० ७.३६.१-३ : ऋत के सदन से स्तुति आगे जावे) यह विश्वेदेवों की तृचा है जो 'विरश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः (ऋ० ७.३६.१b : सूर्य ने अपनी किरणों से गायों को बनाया) में 'सूर्य' वत् है। यह इस दिन का रूप है। 'उत स्यां नः सरस्वती जुषाणा' इत्यादि (ऋ० ७.९५.४-६ : आनन्दरूप सरस्वती हमारे लिये) यह सरस्वती की तृचा है जो 'द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः (ऋ० ७.९५.६b : हे सुभगे ! आपने ऋत के द्वारों को खोला है) इस रूप (प्रतीक) से युक्त है। यह त्रिष्टुभ् की तृचा में रचा (व्यवस्थित किया) वसिष्ठ का प्रउग है और 'सूर्य' युक्त है। वसिष्ठ प्रजापति है। निश्चय ही प्रजापति में वे अपनी सभी कामनाओं को समृद्ध (सफल) करते हैं।

२५.३. वे कहते हैं—'प्रातःसवन त्रिष्टुभ में नहीं होना चाहिये। उसके अपने छन्दों से वह यज्ञ के आरम्भ को (मुख को) अव्यवस्थित (मुग्ध) करता है। यह एक दिन वाला ही हो'। एकाह (कर्म) ज्योति है। जो यहाँ तपता है वह ज्योति है। इस प्रकार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तस्य प्र वो देवायाग्नये त्वं हि क्षैतवद्यश इत्येते उभे तदाज्यं ताः शंसस्ता एकविंशतिरनुष्टुभो भवन्ति तासामुक्तं ब्राह्मणं माधुच्छन्दसः प्रउगस्तस्योक्तं ब्राह्मणमा त्वा रथं यथोतय इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदिदं वसो सुतमन्ध इत्यनुचर एष एव नित्य एकाहातानस्तस्योक्तं ब्राह्मणं कया शुभा सवयसः सनीळा इति मरुत्वतीयं शुभाभा इत्येतेन रूपेण त्यं सुमेषं महया स्वर्विदमिति जागतमधारयो दिव्या सूर्यं दृश इति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेत्येतस्मि-स्त्रैष्टुभे निविदं दधात्यपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुरित्येतेन रूपेण ता वा उभय्य-स्त्रिष्टुब्जगत्यः शस्यन्ते त्रिष्टुब्जगत्योर्ह वा एष आहित आदित्यः प्रतिष्ठितस्तपति तदेनं प्रत्यक्षमाप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

बृहदेतस्याह्नः पृष्ठे स्यादिति हैक आहुर्बार्हतो वा एष य एष तपति बृहदेतत्त-पतीति वदन्तोऽथो अपृष्ठं वा एतद्यन्महादिवाकीर्त्यमथैते एव प्रत्यक्षे पृष्ठे यद्-

---

वे ज्योति को ज्योति से समृद्ध करते हैं। 'प्र वो देवायाग्नये' (ऋ० ३.१३.१ अग्निदेव के लिये आगे) तथा 'त्वं हि क्षैतवद्यशः' (ऋ० ६.२.१ आप को शासक का यश है) ये दोनों याज्य हैं। ये मंत्र एक साथ पढ़े जाने पर इक्कीस अनुष्टुभ् होते हैं। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मधुच्छन्दा का प्रउग है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मरुत्वतीय का प्रतिपत् है—आ त्वा रथं यथोतये (ऋ० ८.६८.१-३ : रथ के समान आपकी रक्षा के लिये)। 'इदं वसो सुतमन्धः' (ऋ० ८.२.१-३ : हे वसु! यह पेय अभिषुत हुआ है) यह अनुचर है। यह एक दिन का सामान्य रूप है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'कया शुभा सवयसः सनीळाः (ऋ०१.१६५.१ : समान वय तथा नीडवाले किस सज्जासे) यह मरुत्वतीय है जो 'शुभा' से इस दिन के रूप से युक्त है। 'त्यं सुमेषं महया स्वर्विदं (ऋ० १.५२.१ : वह मेड़ा जो प्रशंसित प्रकाश को जोतता है) यह जगती छन्द में है तथा 'अधारयो दिव्या सूर्यं दृशे' (ऋ० १.५२.८d आपने सूर्य को आकाश में देखने के लिये धारण किया है) में 'सूर्य' वत् है। यह इस दिन का रूप है। 'जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय (ऋ० १०.७३.१ : उग्र आप वेगवान बल के लिये उत्पन्न हुये हैं) इस त्रिष्टुभ् सूक्त में वह निविद को रखता है। 'अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुः (ऋ० १०.७३.११c : अन्धकार को दूर करो, हमारी दृष्टि को पूर्णतः पूरा करो) में इस (दिन) के रूप से युक्त है। त्रिष्टुभ् तथा जगती ये दो पढ़े जाते हैं क्योंकि त्रिष्टुभ् और जगती पर स्थित होकर सूर्य यहाँ तपता है। इस प्रकार उसे वे प्रत्यक्ष प्राप्त करते हैं।

२५.४. कुछ लोगों का कहना है कि इस दिन का पृष्ठ वृहत् होना चाहिये' उनका कहना है कि 'जो यहाँ तप रहा है वह बृहत् से संबद्ध है। वृहत् तपता है। तथा यह महादिवाकीर्त्य पृष्ठ नहीं है। ये दानों वृहत् तथा रथन्तर प्रत्यक्ष पृष्ठ है। इसलिये केवल वृहत् ही इस दिन का पृष्ठ होना चाहिये। यदि वे 'सूर्य' वत् प्रगाथ पर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बृहद्रथंतरे तस्माद्बृहदेवैतस्याह्नः पृष्ठं स्यादिति यद्यु सूर्यवति प्रगाथे बृहत्कुर्युः सूर्यवतश्च प्रगाथानेतस्यैवाह्नो रूपेणेन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेदेत्युक्थमुखीया स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्यायेति सूर्यवती तदेतस्याह्नो रूपं महादिवाकीर्त्यमेवैतस्याह्नः पृष्ठं स्यादिति सा स्थितिरेतद्वै प्रत्यक्षं साम यन्महादिवाकीर्त्यं तदेनं स्वेन साम्ना समर्धयन्ति तद्धैके त्रिष्टुप्सु कुर्वन्ति त्रैष्टुभो वा एष य एष तपति तदेनं स्वेन च्छन्दसा समर्धयन्ति बृहतीषु स्यादिति हैक आहुर्बार्हतो वा एष य एष तपति तदेनं स्वेन च्छन्दसा समर्धयन्ति जगतीषु स्यादिति त्वेव स्थितं जागतो वा एष य एष तपति तदेनं स्वेन च्छन्दसा समर्धयन्ति ॥ ४ ॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्विति स्तोत्रियस्तृचो विश्वभ्राड्भ्राजो महि सूर्यो दृश इति विवान्भ्राजिष्मान्सूर्यवांस्तदेतस्याह्नो रूपं वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिव इत्यनुरूपो विवान्सूर्यवाञ्जागत उ वै समानं छन्दो विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षस

बृहत् को करते हैं तो सूर्ययुक्त प्रगाथ इस दिन के रूप (प्रतीक) से युक्त है। 'इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद (ऋ० १०.१११.३ : इन्द्र को इसके सुनने का ज्ञान है) यह उक्थ (कृत्य) का मुख (आरम्भ) है। यह 'स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय (ऋ० १०.१११.३c : वह सूर्य के लिये जयिष्णु पथ का निर्माता है) में 'सूर्य' युक्त है। यह इस दिन का रूप है। सिद्धान्त है कि 'महादिवाकीर्त्य ही एकमात्र इस दिन का पृष्ठ होना चाहिये। महादिवाकीर्त्य स्पष्ट (प्रत्यक्ष) ही साम है। इस प्रकार इसके अपने साम से वे इसे समृद्ध करते हैं। कुछ तो त्रिष्टुभ् मंत्रों से इसे करते हैं (इस विकल्प के लिये द्र० शां० श्रौ० सू० ११.१३.२३) : जो यह तप रहा है वह त्रिष्टुभ् से संबद्ध है। इस प्रकार उसे वे उसके अपने छन्दों से समृद्ध करते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि 'इसे बृहती छन्दों पर करना चाहिये'। वह जो यहाँ तप रहा है वह बृहती से संबद्ध है। इस प्रकार उसके अपने छन्दों से उसे समृद्ध करते हैं। पर सिद्धान्त यह है कि 'यह जगती छन्दों पर करना चाहिये'। यह जो तप रहा है वह जगती से संबद्ध है। इस प्रकार उसे अपने छन्दों से समृद्ध करते हैं।

२५.५ 'विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मधु' इत्यादि (ऋ० १०.१७०.१-३ प्रकाशशील (वे) बृहत् सोमनिर्मितः मधु को पिवें) यह स्तोत्रिय तृचा है 'जो विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृशे' (ऋ० १०.१७०.३c : सर्वत्र प्रकाशशील, तेजस्वी, महान् सूर्य देखने के लिये) में 'वि' युक्त, 'भ्राजिष्' युक्त, तथा 'सूर्य' युक्त है यह इस दिन का रूप है। 'वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो' इत्यादि (ऋ० १०.१३८.३-५ : आकाश के मध्य में सूर्य ने रथ को मुक्त कर दिया) यह अनुरूप तृचा है। यह 'वि' तथा 'सूर्य' से युक्त है। जगती समान छन्द है किन्तु नियम यह है कि सूर्य के लिये तृचा (ऋ० १०.३७.७-९) 'विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः (७a) इत्यादि (सभी समान मन तथा एक दृष्टि वाले आप को स्नेह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इति त्वेव स्थितः सौर्यः सूर्यस्य ज्योग्जीवाः प्रतिपश्येम सूर्येत्येतेन रूपेण वण्महाँ असि सूर्येति सूर्यवान्त्सामप्रगाथस्तदेतस्याह्नो रूपमथ बृहद्रथंन्तरयोर्योनी शंसतीन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेदेत्युक्थमुखीया स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्यायेति सूर्यवती तदेतस्याह्नो रूपं शं नो भव चक्षसा शं नो अह्नेति त्वेव स्थिता सौरी सूर्यस्य तत्सूर्यं द्रविणं धेहि चित्रमित्येतेन रूपेण य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिति त्रैष्टुभं दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षेत्येतेन रूपेणैवं नु यदि महादिवाकीर्त्यं पृष्ठं भवति यद्यु वै बृहत्स्वयोनौ कुर्युर्बृहत आतानं शस्त्वा रथंतरस्य योनिं शंसतीन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेदेत्युक्थमुखीया स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्यायेति सूर्यवती तदेतस्याह्नो रूपम् ॥ ५ ॥

द्यौर्न य इन्द्राभिभूमार्य इति त्रैष्टुभमिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य साताविति सूर्यवत-

---

करते हैं) हो जो 'ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य' (ऋ० १०.३७.७d : हे सूर्य ! हम दीर्घजीवी देखें) इस (सूर्य के) रूप (प्रतीक) से युक्त है । 'सूर्य' युक्त साम का प्रगाथ है—वण्महाँ असि सूर्य (ऋ० ८.१०१.११ : सूर्य ! आप निश्चित रूप से महान् हैं) । यह इस दिन का रूप है । यहाँ वह बृहत् तथा रथन्तर की योनि (मूलाधार) का पाठ करता है । 'इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद' (ऋ० १०.१११.३a : इसके सुनने का इन्द्र को ज्ञान है) यह उक्थ का मुख (प्रारम्भ) है । यह 'स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय (ऋ० १०.१११.३b : वह सूर्य के लिये जिष्णु पथिकृत् है) में 'सूर्य' शब्द से युक्त है । यह इस दिन का रूप (प्रतीक) है पर नियम यह है सूर्य का मन्त्र 'शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना (ऋ० १०.३७.१० : अपनी आँखों से हमारे लिये मंगलकारक हों, अपने दिन से हमारे लिये मंगलकारक हों) हो जो 'तत्सूर्य द्रविडं धेहि चित्रं' (ऋ० १०.३७.१०d : हे सूर्य ! चित्र (विविध प्रकार के) धन दें) में 'सूर्य' के रूप से युक्त है । 'य एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम्' (ऋ० ६.२२.१ : प्रजाओं द्वारा जो अकेले ही हव्य है) यह त्रिष्टुभ् मंत्रों का सूक्त है जो 'दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा' (ऋ० ६.२२.८b : आपने दिव्य अन्तरिक्ष को उद्दीपित किया) इस रूप (प्रतीक) से युक्त है । इस प्रकार यदि वे महादिवाकीर्त्य को पृष्ठ बनाते हैं पर यदि वे बृहत् को अपनी योनि (आधार) पर करते हैं (तो) वह बृहत् का विस्तार (आतान) पाठ कर रथन्तर की योनि का पाठ करता है। इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद (ऋ० १०.१११.३ : इन्द्र को इसके सुनने के लिये ज्ञान है) यह उक्थ का मुख है । यह 'स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय' (ऋ० १०.१११.३d : वह सूर्य के लिये जिष्णु पथिकृत् है) में 'सूर्य' वत् है । यह इस दिन का रूप (प्रतीक) है ।

२५.६ 'द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्' (ऋ० ६.२०.१ : जैसे आकाश पृथ्वी का अभिभव करता है वैसे ही हे इन्द्र ! हमारे शत्रु) यह त्रिष्टुभ् में (सूक्त) है जो 'इन्द्रः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देतस्याह्नो रूपं न चेत्स्वयोनौ श्रायन्त इव सूर्यमिति सूर्यवांस्तोत्रियस्तदेतस्याह्नो रूपं यद् द्याव इन्द्र ते शतमित्यनुरूपः सहस्रं सूर्या इति सूर्यवांस्तदेतस्याह्नो रूपं यः सत्राहा विचर्षणिरिति सामप्रगाथस्तनूष्वप्सु सूर्य इति सूर्यवांस्तदेतस्याह्नो रूपमथ बृहद्रथन्तरयोर्योनिं शंसतीन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेदेत्युक्थमुखीया तस्या उक्तं ब्राह्मणं य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिति त्रैष्टुभं तस्योक्तं ब्राह्मणमेवं नु यदि बृहत्स्वयोनौ वा स्वयोनौ वा कुर्युरनुभयसामानं चेत्कुर्युः समानमोक्थमुखीयाया उद्धरेद्बृहद्रथन्तरयोर्योनी तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा इति त्रैष्टुभं गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनामित्येतेन रूपेण समानमुत्तरमभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिति जागतमादित्सूर्यं दिव्या रोहयो दृश इति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं ता वा उभय्यस्त्रिष्टुब्जगत्यः

कुत्साय सूर्यस्य सातौ (ऋ० ६.२०.५d : सूर्य की जय में कुत्स के लिये इन्द्र) में 'सूर्य' शब्द वाला है। यह इस दिन का रूप है। 'श्रायन्त इव सूर्यं' इत्यादि (ऋ० ८.९९.३-४ : सूर्य की ओर मानो मुड़ते हुये) यह 'सूर्य' शब्द युक्त स्तोत्रिय है। यह इस दिन का रूप है। 'यद् द्याव इन्द्र ते शतम्' इत्यादि (ऋ० ८.७०.५-६ : हे इन्द्र ! यदि सौ आकाश आप के हों) यह अनुरूप है जो 'सहस्रं सूर्याः' (ऋ० ८.७०.५c हजारों सूर्य) में 'सूर्य' शब्द से युक्त है। यही इस दिन का रूप है। 'यः सत्राहा विचर्षणिः' इत्यादि (ऋ० ६.४६.३-४ : जो चलने वाला सदैव मारता है) यह सामप्रगाथ है जो 'तनूष्वप्सु सूर्ये' (ऋ० ६.४६.४d : जो शरीरों में, जलों में, सूर्य में) में 'सूर्य' शब्द युक्त है। यह इस दिन का रूप है। तदनन्तर वह बृहत् तथा रथन्तर के आधार (योनि) का पाठ करता है। 'इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद' (ऋ० १०.१११.३ : इन्द्र को इसके सुनने का ज्ञान है) यह उक्थ का मुख (प्रारम्भ) है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'य एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम्' (ऋ० ६.२२.१ : जो मनुष्यों द्वारा अकेले हव्य है) यह त्रिष्टुभ् सूक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। अब यदि वे बृहत् को अपनी योनि या अन्य योनि में करें (तो) यदि वे विना दो सामों के करते हैं तो यह उक्थ के प्रारम्भ तक समान होता है। वह बृहत् तथा रथन्तर की योनि को उद्धृत करें (निकाल ले)। 'तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा' (ऋ० ६.१८.१a : जो बल से अभिभव करता है उसकी स्तुति करो) यह त्रिष्टुभ् में सूक्त है। यह 'गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनां' (ऋ० ६।१८।१d : मनुष्यों के वृषभ को स्तुतियों से बढ़ाओ) में रूप (प्रतीक) से युक्त है। बाद वाला वही है। 'अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम्' (ऋ० १.५१.१a : बहुत प्रशंसित प्रशंसनीय भेड़ा (मेष)), यह जगती में सूक्त है। यह 'आदित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे' (ऋ० १.५१.४d : देखने के लिये आप आकाश में सूर्य पर आरूढ़ हुये) में 'सूर्य' शब्द से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। त्रिष्टुभ् और जगती दोनों पढ़े जाते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शस्यन्ते त्रिष्टुब्जगत्योर्ह वा एष आहित आदित्यः प्रतिष्ठितस्तपति तदेनं प्रत्यक्षं स्पृशन्ति ॥ ६ ॥

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी ३ इति तस्य नव शस्त्वाहूय निविदं दधात्याविष्कृधि हरये सूर्यायेति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं सर्वहरेश्चतस्रोऽभ्युदैत्या सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषीत्येकविंशतिर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोरित्येतेन रूपेण ताः पञ्चविंशतिर्विश्वजिते धनजिते स्वर्जित इति षड्जगत्य इन्द्राय सोमं यजताय हर्यतमित्येतेन रूपेण ता एकत्रिंशत्तासु जगतीषु दूरोहणं रोहति जगतो वा एष य एष तपति यजमाना दूरोहण एतमेव तद्यजमाना रोहन्ति पच्छः प्रथमं रोहति तदिमं लोकमाप्नोत्यर्धर्चशो द्वितीयं तदन्तरिक्षलोकमाप्नोति त्रिपच्छस्तृतीयं तदमुं लोकमाप्नोति केवलीं स आवेशस्त्रिपच्छोऽर्धर्चशः पच्छस्तदस्मिल्लौंके प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठायामप्रच्युत्यां सैषा दूरोहणीया शंसस्ताः सप्त

त्रिष्टुभ् और जगती में भली भाँति प्रतिष्ठित यह सूर्य तप रहा है। इस प्रकार इसे वे प्रत्यक्षतः स्पर्श करते हैं।

२५.७. 'प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी' इत्यादि (ऋ० १०.९६.१ : मैं महान् सत्र में आप दोनों हरितवर्ण वालों की स्तुति करूँगा) इस सूक्त के नौ मन्त्रों का पाठ कर तथा आह्वानकर वह एक निविद को बीच में रखता है। यह 'आविष्कृधि हरये सूर्याय' (ऋ० १०.९६.११d : तेजस्वी (हरि) सूर्य के लिये आविष्कृत (प्रकट) करो) में 'सूर्य' शब्द से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। तदनन्तर वह 'सर्वहरि' सूक्त के चार मंत्रों का पाठ करता है।' (निविद के बाद ऋ० १०.९६.१०-१३)। 'आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी (ऋ० ४.१६.१ : सत्य मघवा (उदार) सोम उच्छिष्ट वाले इधर आवें) यह इक्कीस मन्त्रों का सूक्त है जिसमें 'महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः' (ऋ० ४.१६.४c : प्रातःकाल किस समय महान् ज्योति को चमकाया) में इस दिन का यह रूप है। ये पच्चीस हो जाती हैं। 'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते' (विश्वजित् के लिये, धन जीतने वाले के लिये, प्रकाश जीतने वाले के लिये—ऋ० २.२१.१–६) ये छः जगती मन्त्र हैं। इसके 'इन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम्' (ऋ० २.२१.१d : यजन करने योग्य इन्द्र के लिये आह्लादक सोम) में इस दिन का रूप है। ये इकतीस हो जाती हैं। वह जगती में दुरोहण (कठिन आरोहण) संपादित करता। जो यहाँ तप रहा है वह जगती से संबद्ध है। यजमान दुरोहण हैं। इस प्रकार यजमान उस पर आरोहण करता है। पदों से वह प्रथमतः आरूढ होता है। इस प्रकार वे इस लोक को प्राप्त करते हैं। आधी ऋचाओं से द्वितीय आरोहण करता है। इससे वे अन्तरिक्ष लोक को प्राप्त करते हैं। त्रिपदाओं से तृतीय बार करते हैं इससे उस लोक को प्राप्त करते हैं। आवेश (प्रवेश) केवली (एक) से होता है तदनन्तर त्रिपदा से, आधी ऋचाओं से और एक पदों से। इस प्रकार वह इस लोक में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संपद्यन्ते ता अष्टत्रिंशदेष प्रपूर्वीरवतस्य चम्रिष इति जागतं षळृचमिन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्य इति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं ताश्चतुश्चत्वारिंशत्पतङ्गमक्तमसुरस्य माययेति तिस्रस्तां द्योतमानां स्वयं मनीषामित्येतेन रूपेण ताः सप्तचत्वारिंशदुरुं नो लोकमनुनेषि विद्वानिति त्रिःशस्तया परिधानीयया स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्तीत्येतेन रूपेण ताः पञ्चाशत्पूर्वा एकपञ्चाशत्ता एकशतमृचो भवन्ति शतायुर्वै पुरुषः शतपर्वा शतवीर्यः शतेन्द्रिय उप यैकशततमी स यजमानलोकस्तदत्रैव यजमानान्संस्कुर्वन्ति तदत्रैव यजमानान्त्संकृत्याऽऽदौ महाव्रतीयेनाह्ना प्रजनयतीति पैङ्गी संपत् ॥ ७ ॥

अथ कौषीतकी समानमोक्थमुखीयाया ऋतुर्जनित्रीयमुद्धृत्य बृहद्रथन्तरे तस्यैवैकादश स्वयोनौ नवान्यत्र तद्रूपा मिनं तदपा एक ईयत इत्येतेन रूपेणैन्द्र याहि

अप्रच्यावुक प्रतिष्ठा (आधार) पर स्थित होता है। यह दुरोहण (कठिन आरोहण) मंत्र एक साथ पठित होने पर सात होते हैं। ये कुल अड़तीस हैं। एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषो (ऋ० १.५६.१ : उसको पूर्ण आहुति के लिये) ये जगती छन्द में छः मंत्र है। यह 'इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः (ऋ० १.५६.४b : यह इन्द्र को सिक्त करता है जैसे सूर्य उषा को) में 'सूर्य' शब्द से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। ये चौवालिस होती हैं। 'पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया (ऋ० १०.१७७.१ असुर की माया से लिपा पक्षी) ये तीन मंत्र हैं जो 'तां द्योतमानां स्वयं मनीषाम् (ऋ० १०.१७७.३ : यह प्रकाशशील सूर्य सदृश प्रार्थना) में इस दिन के रूप से युक्त है। ये संतालिस हैं। परिधानीय (अन्तिम) मंत्र 'उरुं नो लोकमनुर्नेषि विद्वान् (ऋ० ६.४७.८ हे विद्वन् ! हमें विस्तृत लोक को ले चलिये) जो 'स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति (ऋ० ६.४७.८b : स्वर्ग, ज्योति, अभय, मङ्गल) में इस दिन के रूप से युक्त है, तीन बार आवृत होने पर ये पचास होते हैं। पूर्व के इक्यावन है। ये कुल एक सौ एक मंत्र होते हैं। पुरुष शतायु, शतपर्वा (सौ पर्व (रूपों) वाला), शतवीर्य, शतेन्द्रिय (सौ इन्द्रियों (शक्तियों) वाला) है। एक सौ एकवां मंत्र यजमान का लोक है। इस प्रकार यहाँ वे यजमानों को संस्कृत करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भ में यहाँ यजमानों को संस्कृत (तैयार) कर वह उन्हें महाव्रत दिन से प्रजनित (आरब्ध) करता है। यह पैङ्ग निर्दिष्ट संपत् है।

२५.८ तदनन्तर कौषीतकि की गणना है। उक्थ के प्रारम्भ तक यह समान (एक ही) है। यदि बृहत् और रथन्तर को हटाया जाय तो ऋतु (जुः?) जनित्रीय का प्रयोग होता है। यदि बृहत् संपन्न किया जाता है तो इसके ग्यारह मंत्र उसकी अपनी योनि में प्रयुक्त होते हैं अन्यथा 'तद्रूपामिनन्तदपा एक ईयते' (ऋग्वेद २.१३.३b : अब रूप को देते हुये, अब कर्मों को (करते हुये) वह जाता है) इस (उस दिन के) रूप वाले मंत्र सहित नव मत्रों को प्रयुक्त करे। 'एन्द्र याहि हरिभिः (ऋ० ८.३४.१-१५ : हे इन्द्र ! अश्वों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हरिभिरिति पञ्चदश सरूपैरा सु नो गहीत्येतेन रूपेण बरोरेकादश शस्त्वा सर्वहरेर्वा निविदं मध्य एकशतस्यैकपञ्चाशतं शस्त्वा द्वे बरोरभ्युदैति सर्वहरेर्वाऽऽसत्यो यातु मघवां ऋजीषीत्येकविंशतिस्तास्त्रयोविंशतिर्विश्वजित इति षट् ता एकयानत्रिंशद्-दूरोहणीयाः सप्त ताः षट्त्रिंशदभूरेको रयिपते रयीणामिति त्रैष्टुभं पञ्चर्चं दश प्रपित्वे अध सूर्यस्येति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं ता एकचत्वारिंशत्त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति तिस्रः सूर्य इव ज्योतिषाऽपस्ततानेत्येतेन रूपेण ताश्चतुश्चत्वारिंशत्प-तङ्गस्तिस्रस्ताः सप्तचत्वारिंशदुरुं नो लोकमनुनेषि विद्वानिति त्रिःशस्तया परिधा-नीयया ताः पञ्चाशत्पूर्वा एकपञ्चाशत्ता एकशतमृचो भवन्ति तासामुक्तं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

तत्सवितुर्वृणीमहेऽद्या नो देव सवितररिति नित्यैव वैश्वदेवस्य प्रतिपच्चानुचरश्च

सहित आवो) ये पन्द्रह मंत्र 'सरूपैरा सु नो गहि (ऋ० ८.३४.१२a : सुन्दर रूप वालों सहित आप आवें) में इस दिन के रूप से युक्त हैं। बरु या सर्वहरि (ऋ० १०.९६) के ग्यारह मंत्रों का पाठकर वह एक सौ एक मंत्रों के मध्य एक निविद का पाठ करता है। इक्यावन मंत्रों का पाठ कर वह बरु या सर्वहरि के दो अवशिष्ट मंत्रों का पाठ करता है। 'आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी' (ऋ० ४.१६.१ : सोम के किट्ट (उच्छिष्ट) वाले सत्य मघवा (उदार) आवें) ये इक्कीस मंत्र हैं। ये तेइस हो जाती है। 'विश्वजितः' इत्यादि (ऋ० २.२१) ये छः मंत्र है। ये उन्तीस बनाती हैं। दुरोहणीया मंत्र सात है। ये छत्तीस बनाती हैं। 'अभूरेको रयिपते रयीणाम्' (ऋ० ६.३१.१ : आप अकेले धनों के स्वामी हैं) यह पाँच त्रिष्टुभ् छन्दों में पाँच मंत्रों का सूक्त है। यह 'दश प्रपित्वे अव सूर्यस्य' (ऋ० ६.३१.३c : सूर्य के उदय होने पर आपने नष्ट किया) में 'सूर्य' युक्त है। यह इस दिन का रूप है। ये इकतालिस बनाते हैं। 'त्यमू षु वाजिनं देवजूतं' (ऋ० १०. १७८.१ : देवताओं द्वारा गतिमान् यह बलवान्) यह तीन मंत्रों का सूक्त है जो 'सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान' (ऋ० १० १७८.३b : जैसे ज्योति से सूर्य वैसे इसने जलों को विस्तृत किया) में इस दिन के रूप से युक्त है। ये चौवालिस बनाते हैं। पतङ्ग (ऋ० १०.१७७) सूक्त तीन मंत्रों का है। ये सैतालिस बनाते हैं। उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्' (ऋ. ६.४७.८ : हे विद्वन् ! हमें विस्तृत लोकों में ले चलिये) इस परिधानीय मंत्र को तीन बार पढ़ने से ये पच्चास बनते हैं। पूर्व के इक्यावन हैं। ये सब एक सौ एक होते हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

२५.९ 'तत्सवितुर्वृणीमहे' (ऋ० ५.८२.१ : सूर्य देव के उस का हम चयन करते हैं) तथा 'अद्या नो देव सवितः' (ऋ० ५.८२.४ : हे देव सवितृ ! आज हमारे लिये) ये वैश्वदेव के सामान्य प्रतिपत् तथा अनुचर हैं। इन दोनों का ब्राह्मण कहा जा चुका है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तयोरुक्तं ब्राह्मणं युञ्जते मन उत युञ्जते धिय[इति]सावित्रमुत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसीति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवेति द्यावापृथिवीयं देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिरिति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्नित्यार्भवं यदा व्याऽऽख्यच्चमसां चतुरः कृतानित्यवाऽऽख्यादित्येतेन रूपेण देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति वैश्वदेवं ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुरिति सूर्यवज्ज्योतिष्मत्तदेतस्याह्नो रूपं वैश्वानराय धिषणामृतावृध इति वैश्वानरीयं रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामिति रुचितवद्भानुमज्ज्योतिष्मत्तदेतस्याह्नो रूपं प्र यज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टय इति मारुतं विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मय इति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युत इति जातवेदसीयं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनमित्येतेन रूपेणेत्याग्निमारुतसूक्तानीत्येतस्याह्नः सूक्तानि तदग्नि-

---

युञ्जते मन उत युञ्जते धियः (ऋ० ९.८१.१ : वे अपने मन को, अपनी बुद्धियों को जोतते हैं) यह सवितृ का सूक्त जो 'उत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि (ऋ० ५.८१.४b : आप सूर्य की रश्मियों से चमकते हैं) में 'सूर्य' शब्द से युक्त है। यह इस दिन का रूप हैं। 'ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशंभुवा' (ऋ० १.१६०.१a : वे दोनों सर्वविधमंगलकारी द्यावा-पृथिवी) यह द्यावा-पृथिवी का सूक्त है जो 'देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः' (ऋ० १.१६०.१d : शुचि (प्रकाशमान) देव सूर्य धर्म से देवियों के बीच) में 'सूर्य' युक्त हैं। यह इस दिन का रूप है। 'किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् (ऋ० १.१६१.१ : क्यों श्रेष्ठ और यविष्ठ हमारे पास आये हैं) यह ऋभुओं का सूक्त है जो 'यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतान् (ऋ० १.१६१.४c : किस समय उन्होंने चार चमसों को जिन्हें उन्होंने बनाया था पृथक् किया) में 'पृथक् किया' (अवाख्यत्) में इस दिन के रूप (प्रतीक) से युक्त है। 'देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये' (ऋ० १०.६६.१ : मंगल के लिये महान् यश वाले देवताओं का आह्वान् करता हूँ) यह विश्वेदेवों का सूक्त है जो 'ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः'(ऋ०१०.६६.२b : जिन्होंने सूर्य की ज्योति का भाग प्राप्त किया) में 'सूर्य' तथा 'ज्योति' शब्द से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। 'वैश्वानराय धिषणामृतावृधे' (ऋ० ३.२.१a : ऋत की वृद्धि करने वाले वैश्वानर के लिये स्तुति) यह वैश्वानर का सूक्त है जो 'रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महाम्'(ऋ०३.२.३c : चमक तथा प्रकाश से महत्ता में चमकते हुये) में 'रुचित', 'भानु' एवं 'ज्योतिष' शब्द से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। 'प्र यज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयः (ऋ० ५.५५.१ तीव्र दृष्टिवाले यज्वा मरुत आगे) यह मरुतों का सूक्त है जो 'विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः (ऋ० ५.५५.३c : सूर्य की प्रकाशमान किरणें) में 'सूर्य' शब्द से युक्त है। यह इस दिन का रूप है। 'वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते' (ऋ० १.१४०.१a : वेदि पर बैठे, प्रिय गृह वाले सुन्दर प्रकाश वाले के लिये) यह जातवेदा का सूक्त है जो 'ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्' (ऋ० १.१४०.१d : अन्ध-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ष्टोमः संतिष्ठते ज्योतिर्वा अग्निष्टोमो ज्योतिरेष य एष तपति ज्योतिषैव तज्ज्योतिः समर्धयन्ति तेऽमृतत्वमाप्नुवन्ति ये वैषुवतमहरुपयन्ति ॥ ९ ॥

पुराऽऽदित्यस्यास्तमयादेतदहः संस्थापयिषेयुः स प्रातरनुवाकमेतदहर्दिवाकीर्त्यं भवति स प्रातरनुवाकेन सपत्नीसंयाजेनैतेनाह्ना पुरादित्यस्यास्तमयात्समीप्सेयुरग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमित्येतया तदहर्होता प्रातरनुवाकं प्रतिपद्यत आपिमित्यापो रेवत्यै रूपेण दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्येति सूर्यवती तदेतस्याह्नो रूपं तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिः प्रजापतिर्वै प्रातरनुवाको न तमसा एतद्यथायथमेव तमुपाकुर्यात्तत्तस्य समृद्धं तथा यथायथमुपांश्वन्तर्यामौ हूयेते तदु तयोः समृद्धमिति वासिष्ठमाप्री सूक्तं संरश्मिभिस्ततनः सूर्यस्येति सूर्यवत्तदेतस्याह्नो रूपं शुक्ल एतस्याह्नः पिङ्गाक्षो होता स्यादिति हैक आहुरमुं वा एतेनाह्नेप्सन्ति योऽसौ तपति तद्यथा श्रेयांसमाहरन्नुपेयादेवं तद्यथोपपादमिति त्वेव स्थितं शस्त्रेणैवैत-

---

कार को नष्ट करने वाले शुचिवर्ण के ज्योतिरथ) में इस (दिन) के रूप से युक्त है। ये अग्निमारुत (शस्त्र के) सूक्त हैं। ये इस दिन के सूक्त हैं। यह अग्निष्टोम है। अग्निष्टोम ज्योति है। जो यहाँ तप रहा है वह ज्योति है। इस प्रकार वे ज्योति से ज्योति को समृद्ध करते हैं। जो विषुवन्त दिन को संपन्न करते हैं वे अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।

२५.१० सूर्य के अस्त से पूर्व वे इस दिन (के कृत्य) को पूर्ण करें। दिन का प्रातरनुवाक दिन में ही कहा जाय। इस दिन से (के द्वारा) वे प्रातरनुवाक तथा (देवताओं सहित) पत्नी संयाजों को सूर्यास्त से पूर्व समाप्त (पूर्ण) करने की कामना करें। इस दिन होता 'अग्नि मन्ये पितरमग्निमापिं' इत्यादि (ऋ० १०.७.३-५ : अग्नि को मैं पिता, अग्नि को मैं मित्र मानता हूँ) प्रातरनुवाक को प्रारम्भ करता है। इसके 'आपिं' में आपो रेवतीः (आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः इत्यादि ऋ० १०.३०.१२) मंत्र का रूप है। यह 'दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य' (ऋ० १०.७.३d : आकाश में सूर्य का शुक्र तथा यजनीय) में 'सूर्य' शब्द युक्त है। यह इस दिन का रूप है। इस विषय में कोषीतकि का कहना है कि प्रातरनुवाक प्रजापति है तथा तम से संबद्ध नहीं है। अतः इसे वह यथाक्रम में करे। यहीं इसकी समृद्धि है। इसी प्रकार उपांशु तथा अन्तर्यामीय (चमस) भी यथाक्रम हुत होते हैं। यही उन दोनों की समृद्धि है। आप्री सूक्त (ऋ० ७.२) वसिष्ठ कृत है जिसके 'सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य' (ऋ० ७.२.१d : सूर्य की किरणों से अपने को फैलाओ) में 'सूर्य' शब्द है। यह इस दिन का रूप है। कुछ लोगों का कहना है कि इस दिन का होता रक्त आखों वाला श्वेत होना चाहिये। इस दिन से वे उसे प्राप्त करना चाहते हैं जो वहाँ तप रहा है। यह वैसे ही है जैसे कोई अपने से बड़े के पास कुछ (उपहार) लेकर जाय। पर नियम यह है कि यह यथावत् हो। वह केवल शस्त्र से ही इस दिन के रूप

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्याह्नो रूपमुपेप्सेत्सौर्यः पशुरुपालम्भ्यः सवनीयस्य स उपांशु भवति स यस्तं निर्ब्रूयाद्यस्तं तत्र ब्रूयाद् दुश्चर्मा किलासीभविष्यसीति तथा ह स्यात्ते वा एते चत्वार एव पशव उपांशु भवन्ति सौर्यः सावित्रः प्राजापत्यो वाग्देवत्य इत्यथान्ये निरुक्ता अथ त्रीन्स्वरसाम्न आवृत्तानुपयन्ति तेषामुक्तं ब्राह्मणम् ॥ १० ॥

त्रयोदशं वा एतं मासमाप्नुवन्ति यद्विश्वजितमुपयन्त्येतावान्वै संवत्सरो यदेष त्रयोदशो मासस्तदत्रैव सर्वः संवत्सर आप्तो भवति तमाहुरेकाहः षळह इति यद्ध्यन्वहं षळहे क्रियत एकाहे तद्विश्वजिति क्रियते तद्वा इदं बहुविश्वरूपं विश्वजिति क्रियते यत्सर्वाणि पृष्ठानि सर्वे स्तोमा उच्चावचाः समवधीयन्ते वैराजमेवास्य प्रत्यक्षं पृष्ठं भवति मध्यंदिने पवमाने रथंतरं बृहत्तृतीये पवमाने क्रियते शाक्वरं मैत्रावरुणस्य वै रूपं ब्राह्मणाच्छंसिनो रैवतमच्छावाकस्य त एतं त्रयोदशमधिचरं मासमाप्नुवन्त्येतद्धि त्रयोदशं पृष्ठ्यान्युपयन्ति तस्याग्नि नरो दीधितिभिररण्योरिति वैराजमाज्यं तस्योक्तं ब्राह्मणं माधुच्छन्दसः प्रउगस्तस्योक्तं ब्राह्मणमा त्वा रथं यथोतय इति मरुत्वतोयस्य प्रतिपदिदं वसो सुत मन्ध इत्यनु-

---

(प्रतीक) की कामना करे। सवनीय के (पशु के अतिरिक्त) सूर्य के पशु का वह दे। यह उपांशु (मन्दस्वर में) होता हैं। यदि कोई उच्चस्वर से कहता है (पाठ करता है) और कोई उससे कहता है कि 'यह दुश्चर्मा (चर्मरोगी) तथा किलासी (कुष्ठी) होगा' तो ऐसा होता है। चार ही पशु उपांशु दिये जाते हैं—सूर्य के लिये, सवितृ के लिये, प्रजापति के लिये और उसके लिये जिसका देवता वाक् है। अन्य निरुक्त (स्पष्ट उच्चारण) से दिये जाते हैं। तदनन्तर वे तीन स्वरसाम दिनों को आवृत्त क्रम में करते हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है!

२५.११ जो विश्वजित् करते हैं वे तेरहवें मास को प्राप्त करते हैं। तेरहवाँ मास उतना ही बड़ा है जितना यह वर्ष। इस प्रकार यहाँ (इसमें) सम्पूर्ण संवत्सर प्राप्त होता है। इसके विषय में वे वे कहते हैं कि 'षडह (छः दिनों का कृत्य) एकाह (एक दिन का कृत्य) है। क्योंकि छः दिनों के कृत्य (षडह) में जो प्रतिदिन किया जाता है वह एक दिन के कृत्य (एकाह) विश्वजित् में किया जाता है। विश्वजित् में बहुत तथा नानाविध रूपों का किया जाता है। इसमें सभी पृष्ठ्य तथा सभी विविध स्तोम एक साथ रखे जाते हैं। वैराज ही इसका प्रत्यक्ष पृष्ठ है। माध्यन्दिन पवमान में रथन्तर, तृतीय पवमान में वृहत् किया जाता है, मैत्रावरुण का शाक्वर, ब्राह्मणाच्छंशी का वैरूप और आच्छावाक का रैवत। वे इस तेरहवें अधिक संख्या वाले (अधिचर) मास को प्राप्त करते हैं क्यों कि पृष्ठ के रूप में जिसे वे करते हैं वह तेरहवाँ है। इसका वैराज छन्द में आज्य है—तस्याग्नि नरो दीधितिभिररण्योः (ऋ० ७.१.१ : स्तुतिपूर्वक मनुष्य अरणियों से अग्नि को)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। प्रउग मधुच्छन्दा का है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मरुत्वतीय का प्रतिपत् है—आ त्वा रथं यथोतये (ऋ० ८.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चर एष एव एकाहातानस्तस्योक्तं ब्राह्मणं कया शुभा सवयस्यः सनीळा इति मरुत्वतीयं वद्वत्कया शुभीयं को वै प्रजापतिर्विश्वजिद्यामेवामुं वैराजस्य स्तोत्रियानुरूपौ तौ स्तोत्रियानुरूपौ तयोस्तथैव न्यूङ्खयति यथादश्चतुर्थेऽहन्न हि वैराजं तत्स्थानमन्यूङ्खनायैषा धाय्यैषो धाय्यैषोष्टेन्द्रः प्रगाथोऽथ बृहद्रथंतरयोर्योनी शंसति तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति निष्केवल्यं यज्ञो वै भुवनेषु ज्येष्ठो यज्ञ उ वै प्रजापतिर्विश्वजिदथ यदि षष्ठस्याह्नस्तृतीयसवनं तत्तृतीयसवनं प्राजापत्यं वै षष्ठमहः प्रजापतिर्विश्वजिदैकाहिकी प्रतिपदेकाहो वै विश्वजित्प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठित्या एवाभिवाननुचरस्तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥ ११ ॥

तदाहुरथ कस्माद्विश्वजिति सर्वपृष्ठ एकाहे तृतीयसवने शिल्पानि शस्यन्ते कस्मादग्निष्टोमे माध्यंदिन इति ये वा इमेऽवाञ्चः प्राणास्तानि शिल्पानि पुरुषो वै यज्ञस्तस्य य ऊर्ध्वाः प्राणास्तत्प्रातः सवनमात्मा मध्यंदिनो येऽवाञ्चस्तत्तृतीयसवनं

६८.१-३ : आपको रथ के समान सहायता के लिये)। 'इदं वसो सुतमन्धः (ऋ० ८.२. १-३ हे प्रकाशशील । यह पेय पीसा गया (सुत) है)—यह अनुचर है। यह एक दिन का सामान्य रूप है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। 'कया शुभा सवयसः सनीळाः' (ऋ० १.१६५.१ : एक नीड तथा एक वय वाले किस विन्यास से) यह मरुत्वतीय है। यह कयाशुभीय सूक्त 'क' युक्त है। विश्वजित् प्रजापति क है। वैराज के प्रतिपत् तथा अनुचर ही प्रतिपत् तथा अनुचर है। जैसे उस चतुर्थ दिन के कृत्य में वैसे ही उनमें वह एक आवृत्त 'ओ' को बीच में रखता है। क्योंकि जैसा कि वैराज में है वैसे यह अन्यूङ्ख ('ओ' को न रखने) का स्थान नहीं है। तदनन्तर धाय्या (बीच में रखा मंत्र) तदनन्तर प्रगाथ है जिसमें इन्द्र की प्राप्ति है। तदनन्तर वह बृहत् तथा रथन्तर की योनिका शंसन (पाठ) करता है। 'तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्' (ऋ० १०.१२०.१ वह भुवनों में ज्येष्ठ था) यह निष्केवल्य है। यज्ञ भुवनों में ज्येष्ठ है। विश्वजित् प्रजापति यज्ञ हैं। तदनन्तर छठें दिन का तृतीय सवन यदि तृतीय सवन है तो यह इसलिये कि छठां दिन प्रजापति से संबद्ध है। विश्वजित् प्रजापति है। प्रतिपत् एकाह की है। विश्वजित एकाह (कृत्य) है। एकाह प्रतिष्ठा है। अनुचर 'अभि' शब्द से युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

२५.१२ वे कहते हैं कि 'क्यों विश्वजित् में तृतीय सवन के अवसर पर एकाह के रूप में सभी स्तोत्रों के सहित शिल्पों का पाठ होता है ? अग्निष्टोम की भाँति क्यों इसमें मध्यन्दिन सवन में ? ये अवाक् (नीचे के) प्राण शिल्प है। पुरुष यज्ञ है। प्रातः सवन ऊर्ध्व प्राण हैं। मध्यन्दिन आत्मा (शरीर) है। तृतीय सवन नीचे के (प्राण) हैं। वे शिल्प हैं। इसलिये तृतीय सवन शिल्पों का अनुष्ठान होता है क्योंकि यह उनका आयतन है। पुनः क्यों संवत्सर पर चलने वाले अग्निष्टोम विश्वजित् सत्र में मध्यन्दिन सवन में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तानि शिल्पानि तस्मात्तृतीयसवने शिल्पानि क्रियन्त एतद्ध्येषामायतनमथ कस्मादग्निष्टोमे सात्रिके साँवत्सरिके विश्वजिति माध्यंदिने शिल्पानि शस्यन्त आत्मा वै पृष्ठ्यानि प्राणाः शिल्पानि न वाऽन्तरेणाऽऽत्मानं प्राणाः ख्यायन्ते न प्राणानन्तरेणाऽऽत्मानो एतन्नाना तस्मादग्निष्टोम एवापि विश्वजिति माध्यंदिने शिल्पानि शस्यन्ते नेत्प्राणेभ्य आत्मानमपादधानीत्यथो प्रजापतिर्वै विश्वजित्सर्वं वै प्रजापतिर्विश्वजित्तस्मात्सर्वाणि पृष्ठ्यानि क्रियन्ते सर्वाणि शिल्पानि सर्वं वै प्रजापतिर्विश्वजित्तत्सर्वेण सर्वमाप्नोति य एवं वेद ॥ १२ ॥

तत्राऽऽग्निमारुते रौद्रीं शस्त्वा होतैवयामरुतं पङ्क्तिशंसं शंसति पाङ्क्तो वै यज्ञो यज्ञस्यैवाऽऽप्त्यै नेदच्छावाकस्य शिल्पमन्तर्यामित्यथो रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानामतिच्छन्दाश्छन्दसां विश्वजिदेकाहानां तदेनं स्वेन च्छन्दसा समर्धयति तिसृष्वस्य न्यूङ्खयेन्न्यूङ्खयितुं चेन्द्रियेत सर्वास्वेव न्यूङ्खयेदन्नं वै न्यूङ्खोऽन्नं प्राणाः प्राणाः शिल्पानि प्राणेष्वेव तत्प्राणं दधात्यथो विश्वजिता वै प्रजापतिः सर्वाः प्रजा अजनयत्सर्वमुदजयत्तस्माद्विश्वजितेतद्वा एष जायते विश्वजिता यो यजते

शिल्पों का शसन होता है ? पृष्ठ्य आत्मा (शरीर) हैं; शिल्प प्राण (श्वासवायु) हैं। शरीर के विना प्राणों का कथन (ज्ञान) नहीं होता और न तो प्राणों के विना आत्मा (शरीर) का ज्ञान होता है। निश्चय ही ये दोनों पृथक् नहीं हो सकते। इसलिये अग्नि-ष्टोम में मध्यन्दिन सवन में शिल्पों का पाठ होता है। क्यों कि वह सोचता है कि 'मैं प्राणों को शरीर से पृथक् न करूँ।' और विश्वजित् प्रजापति हैं। विश्वजित् प्रजापति के रूप में सब कुछ है। इसलिये सभी शिल्प किये जाते हैं। विश्वजित् प्रजापति के रूप में सब कुछ है। जो इस प्रकार जानता है वह सब कुछ से (सर्वेण) सब कुछ (सर्वं) प्राप्त करता है।

२५.१३ अग्नि मारुत (शस्त्र) में होता रौद्री (रुद्र मंत्र) का पाठ कर एवयामरुत सूक्त (ऋ० ५.८७) का पाठ करता है जो पङ्क्ति छन्द में है। यज्ञ पञ्चधा (पाङ्क्त) है। यह यज्ञ की प्राप्ति के लिये है और अर्थात् इससे वह यज्ञ प्राप्त करता है। (वह सोचता है कि) 'मैं अच्छावाक के शिल्प को बाधा न करूँ।' और रुद्र देवों में ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ है छन्दों में अतिच्छन्द तथा एकाहों (एक दिन के अनुष्ठानों) में विश्वजित् है। इस प्रकार इसे वह उसके अपने रूपों (प्रतीकों) से समृद्ध करता है। इसके तीन मंत्रों पर वह 'ओ' को दुहराये। यदि वह सभी पर 'ओ' को दुहराना चाहता है तो वैसा ही करे। 'ओ' की आवृत्ति (न्यूङ्ख) अन्न है। अन्न प्राण हैं; प्राण शिल्प है। इस प्रकार वह प्राणों में प्राणों को रखता है। और विश्वजित् से प्रजापति ने सभी प्रजाओं की सृष्टि की तथा सभी को जय किया। इसलिये यह विश्वजित् है। जो विश्वजित् से यजन करता है वह विश्वजित् होता है। इसलिये 'ओ' को आवृत्त करता है। जब वह प्रथम बार चलना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तस्मान्यूङ्खयति न्यूङ्खमानक इव वै प्रथमं चिचरिषश्चरति तदेनममृताच्छन्दसोऽमृतत्वाय प्रजनयति तेऽमृतत्वमाप्नुवन्ति ये विश्वजितमुपयन्ति ॥ १३ ॥

स सर्वस्तोमः सर्वपृष्ठोऽग्निष्टोमः संतिष्ठते यः सात्रिकः सांवत्सरिको विश्वजित्प्रतिष्ठा वा अग्निष्टोमः प्रतिष्ठित्या एवैकाह उ चेद्विश्वजिद्रात्रिसत्रस्य वा विषुवानतिरात्र एव स्यात्स कृत्स्नो विश्वजिद्योऽतिरात्रोर्ध्वं वै विश्वजितोह्ना क्रियतेऽर्धं रात्र्या सर्वपराजिदु हैव स योऽन्यत्र सर्ववेदसाद्वा सत्राद्वा क्रियते सर्वज्यानिर्हैव सा योऽन्यत्र विश्वजितः सर्वं ददाति विश्वजिच्चेत्सर्वमेव सर्वमु चेद्विश्वजिदेव यो ह वै न सर्वं ददाति सर्वं ददानीति ब्रुवन्गर्तंपत्यमेव तद्धीयते प्र वा मीयते इति ह स्माऽऽह सहस्रं वैनमवरुन्ध इति ह स्माऽऽह कौषीतकिः सर्वं वै तद्यत्सहस्रं सर्वं विश्वजित्तत्सर्वेण सर्वमाप्नवानीति ॥ १४ ॥

वत्सछवीं परिदधीत रिरिचान इव वा एतस्या आत्मा भवति यः सर्वं ददाति वत्सं वै पशवो वाञ्छन्ति पुनर्मा पशवो वाञ्छानित्युदुम्बरे वसेदूर्गवान्नाद्यमुदुम्बर

चाहता है तो मानो लड़खड़ाते चलता है। इस प्रकार उसे वह अमृत छन्द से अमृतत्व के लिये उत्पन्न करता है। जो विश्वजित् करते हैं वे अमृतत्व (अमरत्व) प्राप्त करते हैं।

२५.१४ वर्ष भर चलने वाला विश्वजित् सत्र सभी स्तोमों तथा पृष्ठों से युक्त अग्निष्टोम है। अग्निष्टोम प्रतिष्ठा है। निश्चय ही यह प्रतिष्ठा के लिये है। यदि विश्वजित् एक दिन का (कृत्य) हो या रात्रि सत्र का मध्यदिन हो तो यह अतिरात्र हो। अतिरात्र संपूर्ण विश्वजित् है। विश्वजित् का आधा दिन में किया जाता है और आधा रात्रि में। जिसमें सभी संपत्ति देदी जाती है या जो सत्र हैं ऐसे विश्वजित् से पृथक् जो किया जाता है वह समस्त विनाश का कारण है। विना विश्वजित् के यदि मनुष्य सब कुछ देता है तो यह समस्त की हानि है। यदि विश्वजित् है तो वह समस्त दान करदे यदि वह सब कुछ देता है तो यह विश्वजित् होना चाहिये। 'यदि कोई मनुष्य यह कहकर कि 'मैं सब कुछ दे दूं' सब कुछ नहीं दे देता तो अपने लिये पतन का गर्त तैयार करता है। वह नाश को प्राप्त करता है। ऐसा (उन्होंने) कहा है। कौषीतकि का कथन है कि 'या एक सहस्र इसे पूरा बनाता है। सहस्र सब कुछ है। विश्वजित् सब कुछ है। मैं सर्व से सर्व को प्राप्त करूँ' (यह सोचकर वह सहस्र देता है।)

२५.१५ वह वत्स के चमड़े को चारों ओर रखे। जो सभी कुछ दे देता है उसका आत्मा (शरीर) रिक्त (नंगा) जैसा हो जाता है। (वह यह सोचकर चारो ओर रखता है कि) 'पशु वत्स की कामना करते है। मेरी पुनः पशु वाञ्छा करें।' वह उदुम्बर (गूलर) काष्ठ पर रहे। उदुम्बर बल तथा अन्नाद्य है। यह ऊर्ज और अन्नाद्य की प्राप्ति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऊर्जोन्नाद्यस्योपाप्त्यै नैषादे वसेदेतद्वा अवराध्यमन्नाद्यं यन्नैषादाऽवराद्ध्र्यस्यान्नाद्यस्योपाप्त्यै वैश्ये वसेद्वैश्यो वै पुष्यतीव यद्वैश्येऽन्नाद्यं तस्योपाप्त्यै क्षत्रिये वसेदेतद्वै परार्ध्यमन्नाद्यं यत्क्षत्रियः परादर्ध्यस्यान्नाद्यस्योपाप्त्यै ब्राह्मणे समानगोत्रे वसेद्यत्समाने गोत्रेऽन्नाद्यं तस्योपाप्त्यै संवत्सरं चरेदधः संवेश्य फालकृष्टाश्यप्रतिगृह्णन्नान्यं याचन्निदं धत्तमनुवसानं तत्तेनानुवरते द्वादशरात्रं चरित्वाथान्यस्यै बुभूषायै स्यादिति ह स्माऽऽह कौषीतकिर्द्वादश वै मासाः संवत्सरः सा संवत्सरस्य प्रतिमेति प्राजापत्यान्यनिरुक्तानि होत्राणामाज्यानि भवन्ति तस्य ता नः शक्तं पार्थिवस्य युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं ता हि शश्वन्त ईळते तमीळिष्व यो अर्चिषेति वा स्तोत्रियाः षष्ठस्याह्नः स्तोत्रियाननुरूपान्कुर्वीरन्प्राजापत्यं वै षष्ठमहः प्रजापतिर्विश्वजिदितरे पञ्च तदुक्थं पर्यासैः परिदधति प्रतिष्ठा वै पर्यासाः प्रतिष्ठित्या एव प्रतिष्ठित्या एव ॥ १५ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

के लिये है। वह नैषाद के साथ वसे निषाद अन्नाद्य का अवराध्यं (निम्नतम) है। यह अन्नाद्य की न्यूनतम मात्रा प्राप्ति के लिये है। वह एक वैश्य के साथ वसे। वैश्य समृद्धि प्राप्त करता है। यह जो वैश्य के पास अन्नाद्य है उसकी प्राप्ति के लिये है। वह क्षत्रिय के पास बसे। क्षत्रिय अन्नाद्य का परार्ध्य (सर्वाधिक्य) है। यह अन्नाद्य के परार्ध्य की प्राप्ति के लिये है। वह समान गोत्र के ब्राह्मण के साथ बसे। यह जो समान गोत्र में अन्नाद्य है उसकी प्राप्ति के लिये है। एक वर्ष तक वह जमीन पर रहते हुये, केवल अफालकृष्ट फलों को ग्रहण करते हुये, भोजन की याचना न करते हुये तथा जो वस्त्र मिल जाय उसे धारण करते हुये रहे। कौषीतकि का कथन है कि 'बारह रात्रियों तक ऐसा रहते हुये वह अन्य कामना में संलग्न हो। (क्यों कि) वर्ष में बारह मास हैं। यह वर्ष की प्रतिमा है।' होत्रकों के आज्य शस्त्र किसी देवता को निर्दिष्ट नहीं है। (इसलिये) प्राजापत्य हैं। इसके स्तोत्रिय हैं—'ता नः शक्तं पार्थिवस्य' इत्यादि (ऋ० ५.६८.३-५ : आप दोनों पार्थिव (लोक) की सहायता), 'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं' इत्यादि (ऋ० १.६.१-३ वे अरुष वर्ण के छोटे को जोतते हैं), और 'ता हि शश्वन्त ईळते' इत्यादि (ऋ० ७.९४.५-७ : वे सदैव प्रार्थना करते हैं) या 'तमीळिष्व यो अर्चिषा' इत्यादि (ऋ० ६.६०.१०-१२ : उसकी स्तुति करो जो तेजसे)। छठें दिन स्तोत्रियों को अनुरूप (मंत्र) बनावें। छठां दिन प्रजापति से संबद्ध है। विश्वजित् प्रजापति है। अन्य पाँच उसके उक्थ हैं। वह समाप्ति के मंत्र समूह से समाप्त करता है। पर्यास (समाप्ति के मंत्र) प्रतिष्ठा है। यह प्रतिष्ठा के लिये है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

हरिः ॐ। द्वात्रिंशी प्रथमो मासो द्वात्रिंश्युत्तमो द्वात्रिंशदक्षराऽनुष्टुब्वागनुष्टुभ-द्वाचा प्रयन्ति वाचमनूतिष्ठन्तेऽष्टाविंशिनावभितो विषुवन्तं मासावष्टाविंशत्यक्ष-रोष्णिगौष्णिह्यो ग्रीवा अथैतच्छिरो यज्ञस्य यद्विषुवान्ग्रीवा एव तत्कल्पयित्वा तासु शिरः प्रतिदधति तदाहुः कतरेषामेषोऽह्नामवरेषां परेषामिति नावरेषां न परेषा-मित्याहुरुभयेषां वा एषोऽह्नामुभयानि वै तस्यैतान्यहानि तदाहुः कति षळहः संवत्सर इति षष्टिः षळहाः षळहशस्तदेतदव्यवलम्बि संवत्सराग्रनं तद्य एवं संवत्सरस्याहानि युञ्जन्ति त एतान्कामानृध्नुवन्ति ये संवत्सरेऽथ योऽ(ये)तो-ऽन्यथा संवत्सरस्याहानि युञ्जन्ति न ते तान्कामानृध्नुवन्ति ये संवत्सरेऽथ हैक ऊर्ध्वानेव मासानुपयन्त्यूर्ध्वान्यिहान्यूर्ध्वं वा उभयं संवत्सरं रोहाम इति मासा एवाऽऽवर्तेरन्नहानीत्येके य एष पृष्ठ्यः षळहः पुनः परस्तात्पर्येति तेन मासा आवृत्ता इति वदन्तस्तदाहुर्विदूररूपं वा एतद्यत्त्रिवृच्च त्रयस्त्रिंशश्च स्तोमौ तद्यथा गिरिशिखराद्गर्तमभिप्रस्कन्देदेवं तत्स्तोमक्रुन्तत्रं तस्मादेवाहानि वर्तेरन्नो मासा-स्तोमकृन्तत्रताया इति ॥ १ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

२६.१ हरिः ओम्। प्रथम मास बत्तीस (दिनों) का है और अन्तिम बत्तीस का; अनुष्टुभ् में बत्तीस अक्षर हैं; अनुष्टुभ् वाक् हैं; इस प्रकार वे वाणी से प्रारम्भ करते और वाणी में समाप्त करते हैं, विषुवन्त दिन के दोनों ओर दो महीने अट्ठाइस (दिन) के हैं। उष्णिह् में अट्ठाइस अक्षर हैं। ग्रीवा उष्णिह् से संबद्ध है। विषुवन्त यज्ञ का शिर है। इस प्रकार ग्रीवा का निर्माण कर वे इस पर शिर रखते हैं। वे पूछते हैं कि 'दोनों दिनों में कौन शिर है पहले वाला या बाद वाला ?' वे कहते हैं—'न तो पहले का न बाद का।' दोनों दिनों का शिर है। दोनों दिन इसके हैं। वे पूछते हैं—'वर्ष में छः दिन के कितने समूह हैं ?' साठ छः दिन के समूह हैं। इस प्रकार छः दिनों के समूह से वर्ष का क्रम अक्षुण्ण है। जो वर्ष के दिनों को इस प्रकार युक्त करते है वे वर्ष में निहित कामनाओं को प्राप्त करते हैं। जो इससे भिन्न प्रकार से युक्त करते हैं वे उन कामनाओं को नहीं प्राप्त करते जो वर्ष में निहित हैं। कुछ लोग ऊर्ध्व (आगे) के क्रम में मासों और दिनों को अनुष्ठित करते हैं और कहते हैं कि 'हम दोनों प्रकार से ऊर्ध्वक्रम से वर्षभर आरोहण कर रहे हैं।' कुछ लोगों का कहना है कि केवलमास ही व्युत्क्रम (उलटे) क्रम में हो, दिन नहीं। मासों को उलटा इसलिये है कि उससे पृष्ठ्य षडह घूम कर फिर पीछे से आ जाता है।' दूसरे लोगों का कहना है कि 'यह त्रिवृत् तथा त्रयस्त्रिंश स्तोम दूरस्थ रूप में हैं। यह उस प्रकार है जैसे कोई पर्वत शिखर से किसी गर्त में गिरे। यह स्तोमों का विच्छेद करना है। इसलिये स्तोमों का विच्छेद रोकने के लिये केवल दिन ही व्युत्क्रम में हो, मास नहीं।'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथातो गो आयुषोर्मीमांसा विकृते गोआयुषी उपेयुरहोरात्रे वै गो आयुषी विकृते वा इमे अहोरात्रे अन्योन्यस्मिन्नथो द्यावापृथिवी वै गोआयुषी विकृते वा इमे द्यावापृथिवी अन्योन्यस्मिन्नथो प्राणापानौ वै गोआयुषी विकृतौ वा इमौ प्राणापानावन्योन्यस्मिन्प्रत्यतिष्ठतस्ते हैक ऊर्ध्वे उपयन्त्यूर्ध्वे उपेतव्ये गोआयुषी इत्यन्वाभिप्लविकाः स्तोमा आवर्तन्ते दशरात्रमनुपृष्ठ्यस्तोमा इति वदन्तस्तदाहुर्य-देवेदं द्वितीयमर्हयच्च तृतीयमेते वा उ गोआयुषी ॥ २ ॥

अथ कश्चिच्छस्त्रे वाऽनुवचने वा प्रमत्त उपहन्याद्विचिकित्सा वा स्यादुपहतम-बुद्धमतिक्रान्तं मन्यमानो मनसा वृत्तान्तमीक्षमाणो विनिवृत्त्योपहतमनुपहतं कृत्वा-ऽऽनन्तर्यात्प्रयोगः स्याद्वृत्तान्तादिति मीमांसन्तेऽथ ह स्माऽऽह पैङ्ग्यो नानन्तर्यात्प्र-योगः स्यादतिरिक्तो वा एष मन्त्रः स्याद्यो वचना[द्]द्विरुच्येत तस्मान्नाऽऽनन्तर्या-त्प्रयोगः स्यादिति ह स्माऽऽह पैङ्ग्योऽथ ह स्माऽऽ[ह]कौषीतकिः परिमितफलानि वा एतानि कर्माणि येषु परिमितो मन्त्रगणः प्रयुज्यतेऽथापरिमितफलानि येष्व-परिमितो मन्त्रगणः प्रयुज्यते मनो वा एतद्यदपरिमितं प्रजापतिर्वै मनो यज्ञ उ वै

२६.२ तदनन्तर गो तथा आयुष् की मीमांसा है।[1] वे गो तथा आयु को विकृत (व्युत्क्रम) में करें। गो तथा आयुष् दिन तथा रात्रि हैं। दिन तथा रात्रि दोनों एक दूसरे में (दूसरे की ओर) विकृत (व्युत्कृत) हैं। और द्यावा तथा पृथिवी गो एवं आयुष् हैं। द्यावा-पृथिवी दोनों एक दूसरे में विकृत हैं। और प्राण तथा अपान गो एवं आयुष् हैं। ये प्राण तथा अपान एक दूसरे में विकृत रूप से प्रतिष्ठित हैं। कुछ लोग इसे ऊर्ध्व (सीधे, आगे) के क्रय में संपन्न करते हैं। उनका कथन है कि 'गो तथा आयुष् ऊर्ध्वक्रम में करना चाहिये। आभिप्लव स्तोम विकृत है तथा दशरात्र काल में पृष्ठ्य स्तोम (भी विकृत हैं)।' वे कहते हैं कि गो तथा आयुष् द्वितीय तथा तृतीय दिन हैं।

२६.३ अब वे इस प्रश्न की मीमांसा करते हैं—'यह मानकर कि कोई प्रमादवश शस्त्र या पाठ (अनुवचन) में त्रुटि करता है या यदि सन्देह है; (तो) यह सोचकर कि त्रुटि अज्ञानवश हो गयी है मन से प्रमाद का स्थान (वृत्तान्त) विचारकर पीछे जाकर त्रुटि का मार्जन कर उस (त्रुटि) स्थान से तत्काल आगे बढे ?' इस विषय में पैङ्ग्य का कथन है कि 'जब विहित नहीं है तो किसी मन्त्र का दुबारा पाठ अतिरिक्त (अधिक) होगा अतः वह तत्काल आगे न बढ़े।' ऐसा पैङ्ग्य का मत था। कौषीतकि का कथन है कि 'वे कर्म जिनमें मन्त्र परिमित हैं, परिमित फल वाले हैं। वे कर्म जिनमें अपरिमित मन्त्र प्रयुक्त

---

१. गो तथा आयुष् दिन सत्र के अन्तिम मास के अन्तिम दश दिनों से पहले हैं। साधारण अभिप्लव षडह के वे दूसरे तथा तीसरे दिन भी होते हैं (द्र० शां० ब्रा० २० तथा २१)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रजापतिः स्वयं वैतद्यज्ञो यज्ञस्य जुषते यन्मनो मनसस्तस्मादानन्तर्यात्प्रयोगः स्यादिति ह स्माऽऽह पैङ्ग्योऽथ ह स्माऽऽह कौषीतकिर्मितं ह वै मितेन यजत्यमितममितेनापरिमितस्यावरुद्ध्या अनुल्बणममेतदिति ह स्माऽऽहकौषीतकिर्नाऽऽहुतिं जुहुयात्तथा ह यजमानः स्वर्गाल्लोँकान्सर्वान्कामान्सर्वा इष्टीः सर्वं चाऽमृतत्वमाप्नोति सर्वेषां च भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति यश्चैवं क्रियते ॥ ३ ॥

अथ यद्यूर्ध्वं परिधानात्प्रणववषट्कारयोर्वोर्ध्वं याज्यापुरोनुवाक्ययोर्बुध्येतातिक्रान्तमुल्वणमेतस्यां वेलायां भवतीति ह स्माऽऽह प्रागहिस्तस्मान्नैतस्यां वेलायामतिक्रान्तमुल्बणं सदस्यो बोधयेतेति ह स्माऽऽहपैंग्यः स्थाणुं वर्छति गर्ते वा पतति धीयते वा प्र वा मीयत इति ह स्माऽऽह यद्यतिक्रान्तमुल्वणं सदस्यो बोधयेत कृतस्यानावृत्तिरिति ह स्माऽऽहाऽऽरुणिर्गुणलोप इति श्वेतकेतुस्तस्मान्नातिक्रान्तमुल्बणं सदस्यो बोधयेतेति ह स्माऽऽह पैंग्योंऽहो वा एतद्यज्ञस्य यद्यतिक्रान्तमुल्बणं सदस्यो बोधयेतेति हैक आहुस्तस्मान्नातिक्रान्तमुल्बणं सदस्यो बोधयेतेति ह स्माऽऽह पैंग्यः ॥ ४ ॥

होते हैं अपरिमित फल वाले हैं। यह मन अपरिमित है। मन प्रजापति है। प्रजापति यज्ञ हैं। यह यज्ञ स्वयं यज्ञ में आनन्दित (जुषते) होता है जैसे मन मन में। इसलिये वह तत्काल आगे बढ़े (कार्य प्रारम्भ करे)।' ऐसा कौषीतकि कहते थे। 'परिमित से वह परिमित का यजन करता है (या जय करता है) और अपरिमित से अपरिमित का। यह अपरिमित की प्राप्ति के लिये है। इसमें कोई त्रुटि नहीं है' ऐसा कौषीतकि का कथन है। 'वह आहुति का होम न करे।' जिसके लिये ऐसा किया जाता है वह यजमान स्वर्ग लोक, सभी कामनाओं, सभी इष्टियों (प्राप्तियों), सभी अमृतत्व, सभी प्राणियों में श्रेष्ठता, स्वराज्य, और आधिपत्य प्राप्त करता है।

२६.४ 'यदि याज्या या पुरोनुवाक्या मंत्रों के समापन या प्रणव या वषट्कार के बाद कोई त्रुटि ज्ञात होती है तो उस समय तक त्रुटि बीत गई रहती है' ऐसा प्राघि (प्रागहि) का कहना है। पैङ्ग्य का कथन है कि 'इसीलिये उस समय सदस्य उस बीती हुई त्रुटि का उल्लेख न करे।' उनका कहना है कि 'वह (ऐसा करने वाला) स्तम्भ पर धक्का मारता है या गर्त में गिरता है या उसमें रखा जाता है या नष्ट हो जाता है।' ऐसा पैङ्ग्य का कथन है। आरुणि का कहना है कि यदि सदस्य (सदस् का पुरोहित) किसी बीती त्रुटि का उल्लेख करता है तो जो किया जा चुका है उसकी आवृत्ति नहीं होनी चाहिये। श्वेतकेतु ने कहा है कि 'गुणलोप' (गौण वस्तु की हानि) है। 'इसलिये सदस्य बीती हुई त्रुटि न करे' ऐसा पैङ्ग्य कहते हैं। 'यदि सदस्य यज्ञ की बीती त्रुटि का बोध कराता तो यह यज्ञ का दुःख (दोष) है।' अतः सदस्य बीती हुई त्रुटि का उल्लेख न करे' ऐसा पैङ्ग्य का कथन है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ ह स्माऽऽह दैवोदासिः प्रदर्शनो नैमिषीयाणां सत्रमुपगम्योपास्यद्य विचिकित्सां पप्रच्छ यद्यतिन्क्रान्तमुल्वणं सदस्यो बोधयेतर्त्विजां वाऽन्यतमो बुध्येत कथं वोऽनुल्बणं स्यादिति त उ ह तूष्णीमासुस्तेषामलीकयुर्वाचस्पतो ब्रह्मा स होवाच नाहमेतद्वेद हन्त पूर्वेषामाचार्यं स्थविरं जातूकर्ण्यं पृच्छानीति तं ह पप्रच्छ यद्यतिक्रान्तमुल्बणं कर्ता वा स्वयं बुध्येतान्यो वा बोधयेत कथं तदुल्बण-मनुल्बणं भवेत्पुनर्वचनेन वा मन्त्रस्य होमेन वेति पुनर्वाच्यो मन्त्र इति ह स्माऽऽह जातूकर्ण्यस्तमृलीकयुः पुनः पप्रच्छ शस्त्रं वा अनुवचनं वा निगदं वा याज्यां वा यद्वाऽन्यत्सर्वं तत्पुनर्ब्रूयादिति यावन्मात्रमुल्बणं तावद् ब्रूयादृचं वाऽर्धर्चं वा पादं वा पदं वा वर्णं वेति ह स्माऽऽह जातूकर्णो(र्ण्यो)ऽथ ह स्माऽऽह कौषीतकिर्न मन्त्रं पुनर्ब्रूयान्नाऽऽहुतिं जुहुयादनुल्बणमेतदिति ह स्माऽऽह कौषीतकिर्यद्धि होतारो यज्ञस्य किंचित्तदुल्बणमबुध्यमानाः कुर्वन्ति सर्वं तदग्निर्दैवो होता अनुल्बणं करोति तदेत-दृचाऽभ्युदितम् ॥ ५ ॥

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजातीति ॥

२६.५ और वे (संभवतः पैङ्ग्य) कहते हैं। दैवोदासि प्रतर्दन ने नैमिषीयों (ऋषियों) के सत्र में जाकर और विनम्रता से उपस्थित होकर अपना सन्देह पूछा—'यदि सदस्य की गई त्रुटि का ज्ञान करावे या ऋत्विजों में से कोई एक इस त्रुटि को जाने तो आप लोग इस त्रुटि को कैसे दूर करेंगे ?' वे चुप रहे। अलीकयु वाचस्पत उनके ब्रह्मा (नामक ऋत्विज) थे। उन्होंने कहा 'मैं नहीं जानता। किन्तु पूर्व के स्थविर आचार्य जातूकर्ण्य से पूछूंगा।' उनसे उन्होंने पूछा—यदि की गई पिछली त्रुटि का स्वयं कर्ता को ज्ञान हो जाय या कोई बोध करावे तो कैसे उस दोष (त्रुटि-उल्वण) को अनुल्वण (अदोष, त्रुटिरहित) किया जाय। मन्त्रों की पुनरावृत्ति से अथवा होम से ?' जातूकर्ण्य ने कहा—'मन्त्रों का पुनः पाठ करना चाहिये।' उनसे अलीकयु ने पुनः पूछा—क्या वह पूर्ण शस्त्रों या अनुवचनों या निगदों या याज्यामन्त्रों या अन्य कुछ पाठ करे ?' जातूकर्ण्य ने उत्तर दिया—'जितनी त्रुटि हुई है चाहे एक मंत्र की, अधर्च की, या पाद की या पद की या वर्ण की, उतना ही पाठ करना चाहिये।' कौषीतकि ने कहा है—वह न तो मन्त्र का पुनः पाठ करे और न आहुति ही दे। कोई त्रुटि नहीं हुई है क्योंकि यज्ञ में होता न जानकर (अर्थात् अज्ञानवश) जो कुछ त्रुटि करते हैं उसे दैवी होता अग्नि ठीक (अनुल्वण) कर देते हैं। यह ऋचा में भी कहा गया है :—

२६.६. यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद् विजानन् यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥

(ऋ० १०.२.५)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यज्ञाऽऽह संस्थिते यज्ञेऽयाड्यज्ञं जातवेदा इत्ययाक्षीदिमं यज्ञं जातवेदा इति तदाहान्तरः पूर्वो अस्मन्निषद्येति यदाहाग्निर्हि दैवो होता मानुषाद्धोतुः पूर्वो निषद्य यजत इति तदाहाऽऽशिषमेवोत्तरेणार्धर्चेन वदति पूर्वया चर्चा ॥ ६ ॥

षष्ठे वा अहन्देवाः स्तोमांश्च मासांश्चाऽऽप्नुवंस्तानाप्तान्स्तोमानेतानेव पृष्ठ्यस्तोमान्द्वन्द्वं समास्यन्कुतो ह्यन्यं स्तोममाहरिष्यन्नथैतौत्रिवृत्पञ्चदशौ स्तोमौ सप्तममहर्वहतश्चतुर्विंशस्तोमो भूत्वाऽथैतौ सप्तदशत्रिणवौ स्तोमावष्टममहर्वहतश्चतुश्चत्वारिंशस्तोमो भूत्वाऽथैतावेकविंशत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ नवममहर्वहोऽष्टाचत्वारिंशस्तोमो भूत्वा तेषां गायत्र्या प्रथमो मितस्त्रिष्टुभा द्वितीयो जगत्या तृतीयस्तद्यच्छन्दोभिर्मितास्तस्माच्छन्दोमा अथ याः षट्स्तोत्रिया अष्टाचत्वारिंशं स्तोममतियन्ति तास्ता ऋतव इत्याहुः षल्तवस्ताभिर्दशममहस्तायते ॥ ७ ॥

अन्तो वै षष्ठमहरथ पुनस्ततिरेव सप्तममहस्तस्मात्ततवन्ति सप्तमेऽहं(हन्)

[मानसिक दारिद्रय, बुद्धि की दीनता से मनुष्य जिसे यज्ञ का नहीं समझते उसे होता, यज्ञ के ज्ञाता, ज्ञानी, श्रेष्ठ यजन कर्ता ऋतुओं के अनुसार देवताओं को देते हैं]

जब यज्ञ पूर्ण हो जाता है तब भी वह कहता है—जातवेदा (अग्नि) ने यज्ञ का यजन किया, जातवेदा ने यज्ञ का यजन किया, इस विषय में वह कहता है कि 'दैवी होता अग्नि हमसे पूर्व बैठकर मानवीय होताओं के पूर्व बैठकर यजन करता है।' (ये पङ्क्तियां शा० श्रौ० सू० १.१५.१७ में है) निश्चय ही वह प्रथम अर्धर्च या द्वितीय अर्धर्च से आशिष देता है।

२६.७ छठें दिन देवों ने स्तोमों तथा मासों को प्राप्त किया। इन स्तोमों को प्राप्त कर उन्होंने इन पृष्ठ्य स्तोमों को जोड़े में संकुचित कर व्यवस्थित किया क्योंकि अन्य स्तोमों को कहाँ से ले आते ? त्रिवृत् तथा पञ्चदश स्तोम चतुर्विंश स्तोम बनकर सातवें दिन की सहायता (वहन) करते हैं। सप्तदश तथा त्रिणव स्तोम चतुश्चत्वारिंश (चौवालिस) स्तोम बनकर आठवें दिन वाले होते हैं—आठवें दिन का वहन करते हैं। एकविंश तथा त्रयस्त्रिंश स्तोम अष्टाचत्वारिंश (अड़तालिस) स्तोम बनकर नवें दिन का वहन करते हैं। इनमें प्रथम गायत्री से, द्वितीय त्रिष्टुभ् से तथा तृतीय जगती (छन्दों) से मित (मापित) हैं। चूँकि ये छन्दों से मित हैं मतः छन्दोम हैं। छः स्तोत्रिय मन्त्र जो अष्टाचत्वारिंश से ऊपर (अधिक) हैं उन्हें वे छः ऋतु कहते हैं। ऋतुयें छः हैं। इनसे दशवें दिन को वे संपन्न करते हैं।

२६.८ छठां दिन अन्त है। सातवाँ दिन पुनः विस्तार है। इसलिये सातवें दिन 'तत' (विस्तार) युक्त तथा प्रायणीय (प्रारम्भ) रूप में सूक्त पढे जाते हैं क्योंकि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सूक्तानि शस्यन्ते प्रायणीयरूपेण पुनः प्रायणीयं हि सप्तममहः प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वमित्याज्यं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामिति वायव्यं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमत एवोत्तरं तृचमैन्द्रवायवं ते सत्येन मनसा दीध्याना इति स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्तीति युक्तवद्युक्तवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमुद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकमिति मैत्रावरुणं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वानिति ततवत्ततवद्वै सप्तमस्याह्नो रूपमागोमता नासत्या रथेनाऽऽनो देव शवसा याहि शुष्मिन्प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषेत्येति वा वै प्रेति वा प्रायणीयरूपं तस्मादावन्ति च प्रवति च सप्तमेऽहन्त्सूक्तानि शस्यन्ते प्रायणीयरूपेण पुनः प्रायणीयं हि सप्तममहस्त-दाहुर्यत्कि च च्छन्दः प्रातःसवने युज्येतार्धर्चश एव तस्य शस्त्रं गायत्र्यै रूपेणाथो प्रातःसवनरूपेणेति तदु ह स्माऽऽह कौषीतकिर्न त्रिष्टुब्जगत्यावेतत्स्थानेऽर्धर्चशः

सातवाँ दिन द्वितीय पुनःप्रायणीय (प्रारम्भ) है। इसका 'प्र' युक्त आज्य मन्त्र है—'प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वम्' (ऋ० ७.४.१ : शुक्र (श्वेत)भानु(तेज) के लिये आप) जो 'प्र' युक्त है वह प्रथम दिन का रूप है। 'प्र' युक्त वायु के लिये तृच है। प्रवीरया शुचयो दद्रिरे वाम्' इत्यादि (ऋ० ७.९०.१-३ वीरता से शुचि आप के लिये दिये जाते हैं)। 'प्र' वत् प्रथम दिन का रूप है। आगे की तृचा 'ते सत्येन मनसा दीध्यानाः' इत्यादि (ऋ० ७.९०.४-६ : सत्य मन से ध्यान करते हुये वे) मित्र और वायु को है; यह 'स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति (ऋ० ७.९०.५b : अपने क्रतु (ज्ञान) से युक्त वे वहन करते हैं) में 'युक्त' शब्द से युक्त है। जो 'युक्त' शब्द वाला है वह प्रथम दिन का रूप है। 'उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकम्' इत्यादि (ऋ० ७.६१.१-३ : हे वरुण ! आप दोनों के सुन्दर आखों के पास) यह मित्र और वरुण की तृचा है। यह 'देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् (ऋ० ७.६१-१b : पवित्रात्मा (देवयु) को विस्तृत करते हुये सूर्य चलते हैं) में 'तत' युक्त है। जो 'तत' (विस्तृत) शब्द से युक्त है वह सातवें दिन का रूप है। 'आ गोमता नासत्या रथेन (ऋ० ७.७२.१-३ गौओं (पशुओं) से युक्त रथ से हे नासत्यो ! इधर) 'आ नो देवो शवसा याहि शुष्मिन् (ऋ० ७.३०.१-३ : हे प्रेरक देवों। इधर हमारे पास शक्ति से आवें); 'प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्' (ऋ. ७.४३.१-३ : आप लोगों की यज्ञों में पवित्रों ने स्तुति की है); 'प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा'(ऋ० ७.९५.१-३ आगे वह पालक धाराओं सहित आयी है)—ये अन्य तृचायें हैं। प्रायणीय दिन के रूप (प्रतीक) 'आ' या 'प्र' (इधर, आगे) हैं। इसलिये सातवें दिन प्रायणीय दिन के रूपों से युक्त 'आ' वत् या 'प्र' वत् सूक्त पढें जाते हैं क्योंकि सातवाँ दिन एक दूसरा प्रायणीय (दिन) है। कहते हैं कि 'प्रातः सवन में जो कोई भी छन्द प्रयुक्त हो वह गायत्री के रूप (प्रतीक) सहित और प्रातः सवन के रूप से आधा ऋचा का ही पाठ होता है। किन्तु इस विषय में कौषीतकि ने कहा है—त्रिष्टुभ् और जगती अर्धर्च के रूप में पाठ योग्य नहीं है। यदि उनका प्रातः-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शस्याय यद्यपि प्रातःसवने युज्येयातां पच्छ एवैनयोः शस्त्रमिति सा स्थितिर्बृहत्पृष्ठं राथन्तरं शस्त्रं तन्मिथुनं प्रजात्यै रूपमन्वायत्ता मरुत्वतीयानां प्रतिपदनुचरा अन्वायत्ता ब्राह्मणस्पत्यास्त्र्यहरूपेण तेषामुक्तं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

कथा शुभा सवयसः सनीळा इति मरुत्वतीयं तदेतत्संज्ञा श्रीसूक्तमेतेन हेन्द्रश्च मरुतश्च समजानतामभिसंजानते ह वा अस्मै स्वाश्रैष्ठ्याय य एवं वेद कया मती कुत एतास एत इत्यावद्राथन्तरं त्यं सुमेषं महया स्वर्विदमिति जागतमैन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिरित्यावद्राथन्तरं तदाहुर्यद्रथन्तरं पृष्ठं सप्तमस्याह्न आयतनेनाथ कस्मादन्वहं बृहत्क्रियत इति तानि वा एतानि महांस्तोमान्यहानि भवन्ति तस्मादन्वहं बृहत्क्रियत एतेषामेवाह्नां सबलताया एतेषां स्तोमानामसमल्लतायै(?) बृहत आतानं शस्त्वा रथंतरस्य योनिं शंसति नाऽऽहैव नः पिता योऽन्यवादं सैवासीदिति ह स्माऽऽह कौषीतकिर्यत्र तु क चैते सामनी समानेऽहन्संनिवपनेयातामन्वेव(?)तत्रेतरस्येतरस्य वा योनिमनुशंसेद्यद्यु कण्व रथन्तरं कुर्युर्नास्य योनिमनुशंसेन्न ह्यन्येषां

सवन में प्रयोग भी हो तो 'पद' के रूप में ही। यही नियम है। पृष्ठ बृहत् है तथा शस्त्र रथन्तर से सम्बद्ध है। यह एक मिथुन, प्रजनन का रूप है। मरुत्वतीय के स्तोत्रिय और अनुचर तथा ब्रह्मणस्पति के प्रगाथ तृतीय दिन के कृत्य के अन्वायत्त (अनुरूप) हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

२६.९ कया शुभा सवयसः सनीळाः (ऋ० १.१६५.१ : एक वय तथा नीड वाले किस विन्यास से) मरुत्वतीय है। यह श्रीसूक्त कहा जाता है। इससे इन्द्र तथा मरुत् सौमनस्य में आये। जो मनुष्य ऐसा जानता है उसकी श्रेष्ठता सभी मानते हैं। इनमें 'कया मती कुत एतास एते (ऋ० १.१६५.१c : किस मति से कब वे इधर आये) है जो रथन्तर से सम्बद्ध है। 'त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं (ऋ० १.५२.१ : स्वः के ज्ञाता उस भेड़े की मैं स्तुति करता हूँ) जगती छन्द में और 'इन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः (ऋ० १.५२.१d : रक्षा के लिये सुन्दर उपहारों के द्वारा इधर मैं इन्द्र की ओर मुड़ता हूँ) में 'आ' वत् तथा रथन्तर से संबद्ध है। वे कहते हैं कि 'यह देखते हुये कि सामान्यतः रथन्तर सातवें दिन का पृष्ठ है क्यों वृहत् को प्रतिदिन किया जाता है।' ये दिन महान् स्तोमों वाले हैं। इसलिये इन दिनों की सबलता (समानवल) के लिये तथा स्तोमों की असमानता के लिये वृहत् किया जाता है। वृहत् का आतान (विस्तार) पाठ कर वह रथन्तर की योनि का पाठ करता है। कौषीतकि का कहना है कि 'हमारे पिता ने किसी का पाठ नहीं बताया है। जो अन्य का प्रचलन है वही है (पाठान्तर के अनुसार हमारे पिता ने किसी का पाठ नहीं बताया है प्रत्येक अकेले हैं)। 'परन्तु जब साम एक ही दिन पड़ते हैं तो वह इतरेतर (एक या दूसरे) की योनि का पाठ करे। किन्तु जब वे कण्व रथन्तर का प्रयोग करें तो वे योनि का पाठ न करे क्योंकि अन्य पृष्ठों की योनि का पाठ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पृष्ठाद्यानां योनिः शस्या भवतीति ह स्माऽऽह कौषीतकिस्तमु ष्टु हि यो अभि-भूत्योजा अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिति[त्रै]ष्टुभजागते सूक्ते उभे अभिवती तद्राथंतरं रूपं द्वे द्वे सूक्ते निष्केवल्यमरुत्वतीययोः शस्येते प्रथमे छन्दोमे द्विपाद्य जमानः प्रतिष्ठित्यै तानि चत्वारि संपद्यन्ते पशवो वै छन्दोमाश्चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यै ॥ ९ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यमिति सावित्रं धियो यो नः प्रचोदयादिति प्रवत्प्रवद्वै प्रथम-स्याह्नो रूपं प्रेतां यज्ञस्य शंभुवेति द्यावापृथिवीयं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमयं देवाय जन्मन इत्यार्भवं स्तोमो विप्रेभिरासयेत्यावदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमृजुनीती नो वरुण इति पञ्चर्चं वैश्वदेवं नीतवन्नीतवद्वै सप्तमस्याह्नो रूपमायाहि वनसा सहेति द्विपद्वा आवदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमोमासश्चर्षणीधृत इति वैश्वदेवं विश्वेदेवास आगतेत्यावदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं गायत्रं गायत्रतृतीयसवनो ह्येष त्र्यहो वैश्वानरो

नहीं करना चाहिये' ऐसा कौषीतकि ने कहा है। 'तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा' (ऋ० ६.१८.१ : जो अभिभव करने के ओज वाला है उसकी स्तुति करो) तथा 'अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम् (ऋ० १.५१.१ अत्यन्त आहूत, प्रशंसनीय इस मेष को) ये त्रिष्टुभ् तथा जगती में सूक्त हैं तथा दोनों 'अभि' शब्द से युक्त है। यह रथन्तर का रूप है। प्रथम छन्दोम में मरुत्वतीय के दो-दो सूक्त पढ़े जाते हैं। यजमान दो पैरों वाला है। यह प्रतिष्ठा के लिये है। ये चार बनते हैं। छन्दोम पशु हैं। पशु चतुष्टय हैं तथा चार पैरों वाले हैं। ये पशु की प्राप्ति के लिये हैं।

२६.१० तत्सवितुर्वरेण्यं (ऋ० ३.६२.१०.१२ : सवितृ का वह वरणीय) यह सवितृ की तृचा है जो 'धियो यो नः प्रचोदयात्' (ऋ७ ३.६२.१०c : जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करे) में 'प्र' युक्त है। 'प्र' वत् प्रथम दिन का रूप है। 'प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा' (ऋ० २.४१.१९-२१ : यज्ञ के मङ्गल के लिये वे दोनों आवें) यह द्यावा-पृथिवी के लिये 'प्र' वत् तृचा है। 'प्र' वत् प्रथम दिन का रूप है। अयं देवाय जन्मने (ऋ० १.२०.१-३ : यह दैवी जन्म के लिये) यह ऋभुओं की तृचा है जो 'स्तोमो विप्रेभि-रासया' (ऋ० १.२०.१b : ऋषियों द्वारा अपने मुखों से स्तुति) में 'आ' वत् है। आवत् प्रथम दिन का रूप है। ऋजुनीती नो वरुण (ऋ० १.९०.१-५ : हे वरुण ! हमारे लिये ऋजु नेतृत्व) यह विश्वे देवों का पाँच ऋचाओं का मन्त्र है जो 'नीत' शब्द युक्त है। 'नीत' वत् सातवें दिन का रूप है। आ याहि वनसा सह (ऋ० १०.१७२.१ : अपने सौन्दर्य सहित आओ) यह दो पदों वाला सूक्त है। यह 'आ' शब्द युक्त है। जो 'आ' शब्द से युक्त है वह प्रथम दिन का रूप है। 'ओमासश्चर्षणीधृतः' (ऋ० १.३.७-९ : प्रजाओं के धारक भयङ्कर) यह विश्वेदेवों का सूक्त है। विश्वे देवास आ गता' (हे विश्वे देवों ! इधर आइये) में यह 'आ' वत् है। 'आ' वत् प्रथम दिन का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न ऊतय इति वैश्वानरीयमा प्र यातु परावत इत्यावदावद्वै प्रथमस्याह्नो रूपं प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषमिति मारुतं प्रवत्प्रवद्वै प्रथमस्याह्नो रूपमर्चन्तस्त्वा हवामह इति जातवेदसीय त्वया यज्ञं वितन्वत इति ततवत्ततवद्वै सप्तमस्याह्नो रूपं गायत्रं गायत्रतृतीयसवनो ह्येष त्र्यह इत्याग्निमारुतसूक्तानीत्येतस्याह्नः सूक्तानि तदुक्थं संतिष्ठते तस्य साऽऽप्तिर्या प्रथमस्याह्नः ॥ १० ॥

अयं लोकः प्रथमश्छन्दोमोऽन्तरिक्षलोको द्वितीयोऽसौ लोक उत्तमस्तस्मान्मह-द्वन्ति मध्यमेऽहन्सूक्तानि शस्यन्ते महद्धीदमन्तरिक्षमथो अभ्यारब्धवन्ति स्युः परमे वै तदहरभिवदति परमे वै तदहरभ्याऽऽरभ्य वसन्तीति ह स्माऽऽह कौषीतकिरग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा इत्याज्यं यदा महः संवरणाद् व्यस्थादिति महद्वत्सदभ्यारब्ध-वत्कुविदङ्ग नमसा ये वृधास इति वायव्यं महद्वद्वृद्धवन्महद्ध्येतदहरत एवोत्तरं

रूप है। यह गायत्री में है क्योंकि यह तीन दिन का समूह तृतीय सवन में गायत्री छन्दों वाला है। 'वैश्वानरो न ऊतये (अथर्व० ६.३५.१a; द्र० शां०श्रौ०सू० २.५.३; १०.९. १७ : हमारे मङ्गल के लिए वैश्वानर) यह वैश्वानर सूक्त है। यह 'आ प्र यातु परावतः' (अथ० ६.३५.१b : दूर से इधर आवें) में 'आ'वत् है। 'आ'वत् प्रथम दिन का रूप है। 'प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषम्' (ऋ. ८.७.१-१५ या १-९ : आप को त्रिष्टुभ् अन्न) यह मरुतों का 'आ' वत् सूक्त है। जो 'आ' वत् है वह प्रथम दिन का रूप है। 'अर्चन्तस्त्वा हवामहे' (ऋ० ५.१३.१ : हम अर्चन करते हुये आप का आह्वान करते हैं) यह जातवेदा का सूक्त है जो 'त्वया यज्ञं वितन्वते (ऋ० ५.१३.४c : आप से यज्ञ का विस्तार विस्तार करते हैं) में 'तत' वत् ('विस्तार' युक्त) है। 'तत' वत् सप्तम दिन का रूप है। यह गायत्री में है क्योंकि यह तीन दिनों का समूह तृतीय सवन में गायत्री छन्द वाला है। ये अग्नि मारुत के सूक्त हैं। ये इस दिन के सूक्त हैं। यह उक्थ्य है। जो प्रथम दिन की प्राप्ति (उपलब्धि) है वही इसकी प्राप्ति है।

२६.११ प्रथम छन्दोम यह लोक है द्वितीय अन्तरिक्षलोक है और अन्तिम वह लोक है। इसलिये मध्यदिन में 'महत् शब्द' युक्त सूक्त पढ़े जाते हैं क्योंकि अन्तरिक्ष महत् है। कौषीतकि का कथन है कि—'ये अभ्यारब्ध' (प्रारम्भ किया हुआ) शब्द से युक्त हों। (इससे वह निश्चय ही दूसरे दिन का निर्देश करता है इससे वे दूसरे दिन को आरम्भ कर निवास करते हैं।' अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषाः (ऋ० ७.३.१a लपटों के साथ अग्निदेव आप को) यह आज्य है जो 'यदा महः संवरणाद् व्यवस्थात्' (ऋ० ७.३.१d : जब वे महान् आवरण से उठे हैं) में 'महत्' वत् है तथा 'अभ्यारब्ध' वत् की धारणा से भी युक्त है। 'कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः' इत्यादि (ऋ० ७.९१.१-१ : जो नमस्कार से बढ़ाये गये क्या वे नहीं थे) यह वायु के लिये तृचा है जो 'महत्'शब्द से युक्त है। 'वृद्ध' वत् 'महत्' वत् है। यह दिन 'महत्' वत् है। इसके बाद की तृचा 'यावत्तर-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तृचमैन्द्रवायवं यावत्तरस्तन्वो यावदोज इति यावन्नरश्चक्षसा दीध्याना इत्यभ्यारब्धवत्प्रति वां सूर उदिते सूक्तैरिति मैत्रावरुणं मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षमिति महद्वत्सदभ्यारब्धवदप स्वसुरुषसो नग्जिहीत इत्याश्विनमश्वा मघा गोमघा वां हुवमेति महद्वत्सदभ्यारब्धवदयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व इत्यैन्द्रं ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाण इत्यभ्यारब्धवत्प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्तेति वैश्वदेवं प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेत्विभ्यारब्धवदुत स्या नः सरस्वती जुषाणेति सारस्वतं वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजानिति वृद्धवन्महद्वन्महद्वद्ध्येतदहा राथंतरं पृष्ठं बार्हतं शस्त्रं तन्मिथुनं प्रजात्यै रूपम् ॥ ११ ॥

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणि प्रा इति त्रैष्टुभानां प्रथमं मरुत्वतीयानां महद्वन्महद्वद्ध्येतदहरिमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोरिति द्वितीयं हव्यं वीर हव्या हवन्त इति

स्तन्वो यावदोजः (ऋ० ७.९१.४-६ : जितना शारीरिक बल जितना ओज) इन्द्र और वायु के लिये है। 'यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः (ऋ० ७.९१.४b : जितना मनुष्य आँख से ध्यान कर सकते हैं) में यह 'आरब्ध' वत् है। प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः (ऋ० ७.६५.१-३ सूर्योदय के समय आप दोनों को सूक्तों से) यह मित्रावरुण के लिये तृचा है जो 'मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्' (ऋ० ७.६५.१b : मैं पवित्र बल वाले मित्र और वरुण का आह्वान करता हूँ) में 'महत्' वत् तथा अभ्यारब्ध वत् के अर्थवाला है। 'अप स्वसुरुषसो नग् जिहीते (ऋ० ७.७१.१-३ अपनी बहन उषा से रात्रि लौटती है) यह अश्विनों की तृचा है जो 'अश्वा मघा गोमघा वां हुवेम' (ऋ० ७.७१.१c : अश्व तथा गो से युक्त हम आप की स्तुति करें) में महत् वत् तथा सदभ्यारब्धवत् है। अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वः (ऋ० ७.२९.१.३ : हे इन्द्र ! यह सोम आपके लिये अभिषुत किया गया है) यह इन्द्र की तृचा है जो 'ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणः' (ऋ० ७.२९.२a : हे ब्रह्मन् ! हे वीर ! स्तुति में आनन्दित होते हुये) में आरब्धवत् (की धारणा से) युक्त है। प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त (ऋ० ७.४२.१-३ : ब्रह्म अङ्गिरस आगे आवें) यह विश्वे देवों की तृचा है जो 'प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु' (ऋ० ७.४२.१b : मेघ गर्जन की ध्वनि वाले की ध्वनि ज्ञान युक्त को) में 'आरब्ध' वत् (के अर्थ से युक्त) है। 'उत स्या नः सरस्वती जुषाणा' इत्यादि (ऋ. ७.९५.४-६ : आनन्दित होती हुई सरस्वती हमारे लिये) यह सरस्वती की तृचा है जो 'वर्धं शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्' (७.९५.५c : हे सुन्दरि ! बढ़ाओ। स्तुति करने वाले के लिये बल दो) में 'वृद्ध' वत् (में) 'महत्' वत् है क्योंकि यह दिन महद् वत् है। पृष्ठ रथन्तर से सम्बद्ध है; शस्त्र वृहत् से। यह मिथुन (द्वन्द्व) और प्रजनन का रूप है।

२६.१२ महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणि प्रा : (ऋ० ६.१९.१-३ : पौरुष युक्त महान् इन्द्र ! प्रजाओं में व्याप्त) यह मरुत्वतीयों को प्रथम त्रिष्टुभ् में है और 'महद्' वत् है क्योंकि यह दिन 'महद्'वत् है। 'इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोः' (ऋ० ६.२१.१ : ये आप

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महद्वत्सदभ्यारब्धत्क स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रमिति तृतीयं सुखं रथमीयमानं हरिभ्यामिति महद्वत्सदभ्यारब्धवन्महश्चित् त्वमिन्द्र यत एतानिति चतुर्थं महश्चिदसि त्यजसो वरूतेति महद्वत्सदभ्यारब्धवत्तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसेति जागतं पञ्चमं यदैत् कृण्वानो महिमानमिन्द्रियमिति महद्वत्सदभ्यारब्धवत्त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा इति त्रैष्टुभानां प्रथमं निष्केवल्यानां महद्वन्महद्वयद्धयेतदहस्त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैरिति द्वितीयं महद्वत्सदभ्यारब्धवदपूर्व्या पुरुतमान्यस्मा इति तृतीयं महे वीराय तवसे तुरायेति महद्वत्सदभ्यारब्धवत्तां सुते कीर्ति मघवन्महित्वेति चतुर्थं महद्वत्सदभ्यारब्धवदिमां ते धियं प्र भरे महो महीमिति जागतं पञ्चमं महद्वत्सदभ्यारब्धवत्पञ्च पञ्च सूक्तानि निष्केवल्यमरुत्वतीययोः शस्यन्ते मध्यमे छन्दोमे पशवो वै छन्दोमाः पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै ॥ १२ ॥

अधिकतम कवि के) यह दूसरा है जो 'हव्यं वीर हव्या हवन्ते (ऋ० ६.२१.१b : हे वीर हव्य आप को बुलाते है) में 'महत्' वत् 'आरब्ध' वत् से युक्त है। 'क्व स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं इत्यादि (ऋ० ५.३०.१-१२ : यह वीर कहाँ है जिसने इन्द्र को देखा है) यह तीसरा है जो 'सुखरथमीयमानं हरिभ्याम्' (ऋ० ५.३०.१b : सुन्दर रथपर अश्वों द्वारा ले जाये जा रहे) में 'महत्' वत् तथा अभ्यारब्ध वत् से युक्त है 'महश्चित् त्वमिन्द्र यत एतान् (१.१६९.१ हे इन्द्र ! महान् से भी जो आप के पास आते हैं) यह चौथा है जो 'महश्चिदसि त्यजसो वरूता (ऋ० १.१६९.१b : महान् आपत्ति से भी आप रक्षक है) में महद् वत् तथा अभ्यारब्धवत् है। 'तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा (ऋ० १०.११३.१ : समान मन वाले द्यावापृथिवी उसे) यह जगती छन्द में पाचवाँ है जो 'यदैत् कृण्वानो महिमानमिन्द्रियम्' (ऋ० १०.११३.१c : महत्ता और शक्ति (इन्द्रियम्) को प्रकट करते हुये किस समय वह गया) में महद्वत् तथा अभ्यारब्धवत् है। त्वं महां तुभ्यं ह इन्द्र क्षा (ऋ० ५.१७.१ : हे इन्द्र ! आप महान् हैं। आपको पृथिवी) निष्केवल्यों में यह प्रथम त्रिष्टुभ् में है जो 'महत्' शब्द से युक्त है क्योंकि यह दिन महद् वत् है। त्वं महां इन्द्र यो ह शुष्मैः (ऋ० १.६३.१ : हे इन्द्र ! आप महान् हैं जिन्होंने अपने बल से) यह महद्वत् तथा अभ्यारब्ध वत् दूसरा है। अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मा (ऋ० ६.३२.१ : उसके लिये बहुत से नवीन) यह तीसरा है जो 'महे वीराय तवसे तुराय' (ऋ० ६.३२.१b : महान् वीर बलवान् त्वरायुक्त के लिये) में महद् वत तथा सदभ्यारब्धवत् है। तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा (ऋ० ५०.५४.१ : हे मघवन् (उदार)! महत्ता से आप को वह कीर्ति) यह चतुर्थ है जो महद् वत् तथा सदभ्यारब्धवत् है। 'इमां ते धियं प्र भरे महो महीम्' (ऋ० १०.१०२.१ : यदं महतो प्रार्थना मैं आप के प्रति करता हूँ) यह पाचवाँ जगती छन्द में है तथा 'महान्' शब्द से युक्त आरब्धवत् (प्रारम्भ की भावना से युक्त) है। मध्यम छन्दोम में निष्केवल्य तथा मरुत्वतीय के पाँच-पाँच सूक्त पढ़े जाते हैं। छन्दोम पशु हैं। पशु पाङ्क्त (पाँच से सम्बद्ध) है। यह पशुओं की प्राप्तिके लिये ही है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हिरण्यपाणिमूतय इति सावित्रमपान्नपातमवस इत्यभ्यारब्धवन्मही द्यौः पृथिवी च न इति द्यावापृथिवीयं महद्वन्महद्वद्ध्येतदहर्युवाना पितरा पुनरित्यार्भव-मिन्द्रेण च मरुत्वतादित्येभिश्च राजभिरित्यभ्यारब्धवद्देवानामिदवो महदिति नवर्चं वैश्वदेवं वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यमिति महद्वत्सदभ्यारब्धवदिमा नु कं भुवना सीषधामेति द्विपदा इन्द्रश्च विश्वे च देवा इत्यभ्यारब्धवद्विश्वेदेवा ऋतावृध इति वैश्वदेवं वृद्धवन्महद्वन्महद्वद्ध्येतदहर्गायत्रं गायत्रतृतीयसवनो ह्येष त्र्यहो वैश्वा-नरो अजीजनदिति वैश्वानरीयं क्षमया वृधान ओजसेति वृद्धन्महद्वन्महद्वद्ध्येतदहः कद्ध नूनं कधप्रिय इति मारुतमभ्यारब्धवद्दूतं वो विश्ववेदसमिति जातवेदसीय-मग्ने मृळ महाँ असीति वाऽष्टर्चमष्टमस्याह्नः पूर्वं तु स्थितं महाँ आ रोधनं दिव

२६.१३ हिरण्यपाणिमूतये इत्यादि (ऋ० १.२२.५-८ मङ्गल के लिये हिरण्यपाणि को) यह सवितृ का सूक्त है जो 'अपां नपातमवसे' (ऋ० १.२२.६ रक्षा के लिये जलों के पुत्र को) में आरब्धवत् (की धारणा से युक्त) है । 'मही द्यौः पृथिवी च नः' इत्यादि (ऋ० १.२२.१३-१५ हमारे लिये महान् दोनों आकाश और पृथिवी) यह द्यावा-पृथिवी का सूक्त है जो महत् शब्द से युक्त है क्योंकि यह दिन महद् वत् है । युवाना पितरा पुनः (ऋ.१-२०.४-६ : पुनः जवान पितर) यह ऋभुओं का मंत्र है जो 'इन्द्रेण च मरुत्वता आदित्येभिश्च राजभिः (ऋ० १.२०.५bc : इन्द्र सहित मरुत् सहित राजा आदित्यों सहित) में आरब्धवत् है । 'देवानामिदवो महत्' (ऋ.८.८३.१ : देवों की महती सहायता) यह विश्वेदेवों का नौ ऋचाओं का सूक्त है जो 'वामं नो अस्त्वर्यमन् वामं वरुण शंस्यम्' (ऋ० ८.८३.४ : हे अर्यमन् ? हमारा मङ्गल हो । देवरूप ! हमारा प्रशंनोय मङ्गल हो) में महद्वत् तथा सदभ्यारब्धवत् है । इमा नु कं भुवना सीषधाम (ऋ० १०.१५७.१ : इन भुवनों के हम अधिपति हो) यह द्विपदा सूक्त है जो 'इन्द्रश्च विश्वे च देवाः (ऋ० १०.१५७.१b : इन्द्र और विश्वेदेव) में आरब्धवत् है । विश्वेदेवा ऋतावृधः' इत्यादि (ऋ० ६.५२.१०-१२ : ऋत की वृद्धि करने वाले सभी देव) यह विश्वेदेवों का सूक्त है जो ऋद्धवत् (में) महद्वत् है क्योंकि यह दिन महद्वत् है) यह गायत्री में है क्योंकि यह तीन दिनों का समूह (त्र्यहः) तृतीय सवन में गायत्री छन्द वाला है । वैश्वानरो अजीजनत् (यह मंत्र पूर्ण रूप से शां० श्रौ० सू० १०.१०.८ में प्रदत्त है । यह वैश्वानरों का सूक्त है जो क्षमया वृधान ओजसा (बल से पृथिवी पर बढ़े हुये) में वृद्धवत् तथा महत् वत् हैं । यह दिन 'महत्' शब्द युक्त है । कद्ध नूनं कधप्रियः (ऋ.१.३८.१ : कौन अब कब प्रिय)[1] यह मरुतों का सूक्त है । जो आरब्ध वत् है । 'दूतं वो विश्ववेदसम्'(ऋ. ४.८.१ : आपका सर्वज्ञानी दूत) यह जातवेदा का सूक्त है । या 'अग्ने मृळ महाँ असि' (ऋ. ४.९.१ : हे अग्नि ! आप महान् हैं । दयालु हों) यह आठ ऋचाओं का मंत्र आठवें दिन के लिये है । पर नियम यह है कि पहला ही हो (शां.श्रौ.सू. ६.४.१ में इस विकल्प का उल्लेख नहीं

१. यह मंत्रांश ऋ. ८.७.३१a में प्राप्त है पर वहाँ सूक्त के प्रारम्भ में नहीं है ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इति महद्वन्महद्वध्येतदहर्गायत्रं गायत्रतृतीयसवनो ह्येष त्र्यह इत्याग्निमारुतसूक्तानि इत्येतस्याह्नः सूक्तानि तदुक्थं संतिष्ठते तस्य साऽऽप्तिर्या द्वितीयस्याह्नः॥१३॥

अन्तो गतिर्नवममहरसौ द्यौरसौ लोकस्तस्माद्गतवन्ति नवमेऽहन्सूक्तानि शस्यन्तेऽगन्म महा नमसा यविष्ठं सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्न इत्येते उभे तदाज्यमगन्मेति गतवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहरैतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयादस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना इति स्थितवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहस्तिष्ठतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयादगन्म महा नमसा यविष्ठमित्येतदेव तृचमाज्यं स्यादिति ह स्माऽऽह पैङ्ग्योऽगन्मेति गतवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहरैतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयादष्टाचत्वारिंशं स्तोमं किं तृचं व्यश्नुवीतेति ह स्माऽऽह कौषीतकिः सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्न इत्येतदुपसंशेत्तस्य तदेवान्तरूपं यद्भूतानुवादि प्राञ्चं यज्ञं चकृम दिवः शशासुरिति यदेतद्भूतमिवाभ्यत्रन्वाभिस्तोमो न व्याप्त इति ह स्माऽऽह पैङ्ग्यो यदृग्भिरेव स्तोमो न व्याप्त इत्यक्षरैर्ह वा ऋक्स्तोमं

है। यह 'महाँ आरोधनं दिवः' (ऋ. ४.८.४ : आकाश का वह महान् आरोधन) में महत् शब्द युक्त है क्योंकि यह दिन महत् वत् हैं। यह गायत्री में है क्योंकि यह तीन दिन का समूह तृतीय सवन में गायत्री छन्द वाला है। ये अग्निमारुत के सूक्त हैं। ये इस दिन के सूक्त हैं। यह उक्थ्य है। जो द्वितीय दिन की प्राप्ति है वही इसकी भी प्राप्ति है।

२६.१४ गति अन्त है। इस प्रकार वह द्यौः, वह लोक और नवाँ दिन (अन्त हैं)। इसलिए नवें दिन 'गत' शब्द युक्त सूक्त पढ़े जाते हैं। 'अगन्म महा नमसा यविष्ठं' इत्यादि (ऋ.७.१२.१-३ : हम यविष्ठ के पास महान् नमस्कार के साथ गये हैं) तथा 'सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने(ऋ.३.१.१ : हे अग्नि मुझ बलवान् को सोम का)ये दोनों आज्य मंत्र हैं। यह 'अगन्म' में 'गत' शब्द युक्त है। यह अंत का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में जाकर मानों वह लौटता है कि यहाँ से कहाँ जाऊँगा ? 'अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमानाः' (ऋ.३.१.७: यहाँ पुष्ट हो रही गाये स्थित थी) में यह 'स्थित' शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप हैं। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँच कर वह स्थित हो जाता है क्योंकि यहाँ से वह कहां जाय ? पैङ्ग्य का मत है कि 'अगन्म महा तमसा यविष्ठं' (ऋ. ७.१२.१-३ : उत्तम स्तुति सहित हम सबसे युवा के प्रति गये हैं) यह तृचा ही केवल याज्य हैं। यह 'अगन्म' में 'गत' वत् हैं। यह अन्त का रूप है। नवां दिन अन्त है। अन्त में पहुँच कर मानों वह लौटता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय ? कौषीतकि का कहना है कि 'एक तृचा अष्टाचत्वारिंश स्तोम कैसे हो सकती है ?' 'सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने' (ऋ. ३.१.१ हे अग्ने ! मुझे बलवान् को सोम का) को भी वह पढ़े। इसमें जो भूतानुवाद (व्यतीत का कथन) है वह अन्त का रूप है। 'प्राञ्चं यज्ञं चक्रिम (ऋ० ३.१.२a : हमने यज्ञ को आगे लाया)

---

१. यहाँ ऋ० का प्रचलित पाठ 'विद्वान्' है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

व्यश्नुतेऽक्षरैर्हं निविद्वा पुरोरुग्वर्चं व्याप्तो ह वा उ तत्र स्तोमो भवति यत्र निविद्वा पुरोरुग्वा शस्यते तस्माद्वद एव तृचमाज्यं स्यादिति यददः पैङ्गस्य वचंस उभे इति त्वेव स्थितमेतेन ह विश्वामित्रश्च वसिष्ठश्च समजानतामभिसंजानते ह वा अस्मै स्वाश्रैष्ठ्याय य एवं वेद तस्मादुभे एव स्यातां वासिष्ठं पूर्वं वैश्वामित्र-मुत्तरम् ॥ १४ ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप न इति वायव्यं चैन्द्रवायवं चाऽऽगतेति गतवदत्त-दन्तरूपमन्तो नवममहरैतीव वा अन्तं गत्वा कद्रयङ्हि तत इयात्प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थादिति स्थितवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहस्तिष्ठतीव वा अन्तं गत्वा कद्रयङ्हि तत इयाद् दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यामिति मैत्रावरुणं क्षयन्तेति क्षितवत्तदन्तरूमन्तो नवममहः क्षियतीव वा अन्तं गत्वा कद्रयङ्हि तत इयादा विश्ववाराश्विना गतं न इत्याश्विनं प्रतत्स्थानमवाचि वां पृथिव्यामिति स्थितवत्त-

---

तथा 'दिवः शशासुः' (ऋ० १.१.२c : उन्होंने आकाश से जाना) यह हुये (बीते) हुये के जैसा है। पैङ्ग्य का कहना है कि 'यहाँ स्तोम को व्याप्त नहीं करना चाहिये क्योंकि केवल ऋचाओं से स्तोम व्याप्त नहीं होगा। मंत्र अक्षरों के द्वारा स्तोम बनाने हैं और निविद या पुरोरुच मंत्र बनाते हैं। अतः स्तोम वहाँ व्याप्त होता है जहाँ या तो निविद या पुरोरुच का पाठ होता है। अतः एकमात्र वह तृच ही आज्य होनी चाहिये।' 'अदः' (वह) पैङ्ग्य के वचनानुसार है। परन्तु नियम 'दोनों' हैं। इससे विश्वामित्र तथा वसिष्ठ एकता को प्राप्त हुये। जो ऐसा जानता है उसकी श्रेष्ठता के लिये वे एकता प्रदान करते हैं। इसलिये दोनों आज्य होने चाहिये—पहले वसिष्ठ का तदनन्तर विश्वामित्र का।

२६.१५ आ वायो भूष सुचिषा उप नः (ऋ० ७.९२.१ : हे वायु! हमारे पास शुचि के पीने वाले आवो) यह तृचा वायु तथा इन्द्र एवं वायु के लिए है जो 'आगंत इस शब्द से गतवत् है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर मानो वह लौटता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जायेगा ? 'प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् (ऋ० ७.९२.२ : जीवन्त सोता यज्ञों में स्थित हुआ) में यह स्थित शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर मानों वह स्थित हो जाता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय ? दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्याम् (ऋ० ७.६४.१-३ : अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर आकाश (दिवि) रहने वाले) यह मित्रावरुण की तृचा है जो 'क्षयन्ता' में 'क्षित' वत् है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर मानों वह निवास करता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जायेगा ? 'आ विश्ववाराश्विना गतं नः' (ऋ० ७.७०.१-३ : हे अश्विनो ! हमारे पास सभी वरदानों सहित आवें) यह अश्विनों की तृचा है। यह 'प्र तत् स्थानमवाचि पृथिव्याम्' (ऋ० ७.७०.१b : पृथिवी पर आप लोगों के स्थित होने का वह स्थान बताया गया है) में 'स्थित' शब्द से युक्त है। यह अन्त का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दन्तरूपमन्तो नवममहस्तिष्ठतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयादिन्द्रं नरो नेमधिता हवन्त इत्यैन्द्रं यत्पार्या युनजते धियस्ता इति पार्याः परार्ध्यास्तदन्तरूपमन्तो नवममहरन्ते अन्तं दधात्यूर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेदिति वैश्वदेवमश्रेदिति श्रितवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहः श्रियतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयात्प्रक्षोदसा धायसा सस्र एषेति सारस्वतं प्रबावधानेति निनृत्तिरन्तो नवममहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्र्यङ्हि तत इयादेते वा उ त्रैष्टुभास्तृचक्लृप्ता वासिष्ठाः प्रउगाः प्रजापतिर्वै वसिष्ठः स तन्ता यज्ञस्य स पुनस्ततावयातयामा भवति प्रजापतावेव तत्सर्वान्कामानृध्नुवन्ति बृहत्पृष्ठं राथंतरं शस्त्रं तन्मिथुनं प्रजात्यै रूपम् ॥ १५ ॥

त्र्यर्यमा मनुषो देवतातेति त्रैष्टुभानां प्रथमं मरुत्वतीयानां त्रीति तत्तृतीयस्याह्नो रूपमिन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोतीति द्वितीयं यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्त-

---

रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में जाकर मानों वह रुक जाता है क्योंकि वह वहाँ से कहाँ जाय? 'इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते' (ऋ० ७.२७.१-३ : युद्ध में संलग्न व्यक्ति इन्द्र का आह्वान करते हैं) यह इन्द्र के लिये सूक्त है। 'यत्पार्या युनजते धियस्ताः' (ऋ० ७.२७.१b : वह हमारी प्रार्थनाओं को प्रभावशाली बनावे) में पर्या (प्रभावशाली) परार्ध्या (सर्वोच्च) को सूचित करता है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में वह अन्त को रखता है। 'ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्' (ऋ० ७.३९.१-३ ऊर्ध्व अग्नि ने वसु (तेजस्वी) की कृपा प्राप्त की है) यह विश्वेदेवों की तृचा है जो 'अश्रेत्' में 'श्रित' (स्थापित) शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में जाकर मानों वह स्थित हो जाता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय? 'प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा' (ऋ० ७.९५.१-३ : प्रेमपूर्ण धारा सहित वह आगे आयी है) यह सरस्वती की तृचा है। इसमें 'प्र बावधाना' (ऋ० ७.९५.१c वेगपूर्वक आगे आती हुयी) में आवृत्ति है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर मानो वह दुहराता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय? ये वसिष्ठ के तृच में निर्मित त्रिष्टुभ् प्रउग है। वसिष्ठ प्रजापति हैं। वे यज्ञ के विस्तारक हैं। ये यज्ञ के आवृत्त विस्तार पुनर्नवीन किये गये हैं। इस प्रकार वे प्रजापति में सभी कामनाओं को प्राप्त करते हैं। पृष्ठ बृहत् है; शस्त्र रथन्तर से संबद्ध है। यह मिथुन (द्वन्द्व) है; प्रजाति (प्रजनन) का रूप है।

२६.१६ 'त्र्यर्यमा मनुषो देवताता' (ऋ० ५.२९.१ तीन मित्रता मनुष्य की पूज्य है) यह 'त्रि' शब्द युक्त त्रिष्टुभ् में प्रथम मरुत्वतीय है। यह तृतीय दिन का रूप है। इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति (ऋ० ५.३१.१ : इन्द्र रथ के लिये मार्ग प्रशस्त करते हैं) यह द्वितीय है जो 'यमध्यस्थान् मघवा वाजयन्तम्' (ऋ० ५.३१.१b : जिस बलशाली घर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

. मित्यधस्थादिति स्थितवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहस्तिष्ठतीव वा अन्तं गत्वा कद्रयङ्हि तत इयात्तिष्ठा हरी रथ आयुज्यमानेति तृतीयं तिष्ठेति स्थितवत्तदन्त-रूपमन्तो नवममहस्तिष्ठतीव वा अन्तं गत्वा कद्रयङ्हि तत इयाद् गायत्साम नभन्यं यथा वेरिति चतुर्थं सामेति तदमुष्य लोकस्य रूपं प्रमन्दिने पितुमदर्चता वच इति जागतं पञ्चमं तस्य तदेवान्तरूपं यत्सोदर्कमा सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषीति त्रैष्टुभानां प्रथमं निष्केवल्यानामव स्य शूरेति निनृत्तिरन्तो नवममहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयादस्मा इदु प्र तवसे तुरायेति द्वितीयमस्मा अस्मा इति सप्रभृति यथा वै सोदर्कमेवं सप्रभृत्यन्तरूपं द्यौर्न य इन्द्राभिभूमार्य इति तृतीयं द्यौरिति तदमुष्य लोकस्य रूपं तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरिति चतुर्थं परमं पराचैरिति निनृत्तिरन्तो नवममहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयादहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिर्विश्वजिते धनजिते स्वर्जित इति द्वे जागते अहमहमिति

में मघवा स्थित हुये) में 'अध्यस्थात्' में 'स्थित' शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप है। नवां दिन अन्त है। अन्त में जाकर मानों वह स्थित हो जाता है कि वह यहाँ से कहाँ जाय ? 'तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना' (ऋ० ३.३५.१ रथ में जोते जा रहे अश्वों पर स्थित होइये) यह तृतीय है जो 'तिष्ठ' में स्थित शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर वह स्थित जैसा हो जाता है क्योंकि वह यहाँ से कहाँ जाय ? गायत् साम नभन्यं यथा वेः (ऋ० १.१७३.१ वह साम का गान करे मानों वह पक्षी से निकल रहा हो) यह चतुर्थ है। 'साम' शब्द उस लोक का रूप है। 'प्र मन्दिने पितुर्मदर्चता वचः' (ऋ० १.१०१.१ : आप भोज्यान्न से पूर्ण गान प्रसन्न (मन्दिने) के लिये) करें) यह जगती छन्द में पाँचवाँ है। क्योंकि इसके मंत्रों में अन्तिम पद एक ही (समान) है अतः यह अन्त का रूप है। निष्केवल्यों में प्रथम त्रिष्टुभ् छन्द में यह है— आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी (ऋ० ४.१६.१ : सत्य, मघवा (उदार) ऋजीषी (सोम-मदवाले) आवें) अ व स्य शूर (ऋ० ४.१६.२a : हे शूर : ढीला करो) में निनृत्ति (आवृत्ति) है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर मानों वह आवृत्ति करता है। क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय ? 'अस्मा इदु प्र तवसे तुराय' (ऋ० १.६६.१ : उस बलशाली एवं तेज के लिये) यह द्वितीय है। यह 'अस्मा अस्मा' में एक ही प्रारम्भ वाला है। जैसे समान अन्त वाला वैसे समान प्रारम्भ वाला भी अन्त का रूप है। 'द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्य (ऋ० ६.२०.१ : जैसे आकाश पृथ्वी को व्याप्त (अभिभू) कर लेता है वैसे ही हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को) यह तृतीय है। 'द्यौः' शब्द उस लोक का रूप (प्रतीक) है। 'तत् त इन्द्रियं परमं पराचैः (ऋ० १.१०८.१ : आप की वह सर्वोच्च शक्ति ऊँची है) यह चतुर्थ है इसमें परमं पराचैः (सर्वोच्च ऊँचा) में निनृत्ति है ! नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँचकर मानों वह आवृत्त करता है क्योंकि यहाँ से उसे कहाँ जाना चाहिये ? अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः (ऋ० १०.४८.१ मैं धनका पूर्व (प्रथम) स्वामी थका)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सप्रभृति यथा वै सोदर्कमेवं सप्रभृत्यन्तरूपं जित इति निनृत्तिरन्तो नवममहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयात्पञ्च पञ्च सूक्तानि मरुत्वतीये शस्यन्त उत्तमे छन्दोमे पशवो वै छन्दोमाः पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै षळन्ततो निष्केवल्ये षड्वा ऋतवः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै ॥ १६ ॥

अभि त्वा देव सवितरिति सावित्रमभीत्येव वा असौ लोकस्तदमुष्य लोकस्य रूपं प्र वां महि द्यवी अभीति द्यावापृथिवीयं महिद्यवी अभीति निनृत्तिरन्तो नवममहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयादिन्द्र इषे ददातु न इत्येका तेनो रत्नानि धत्तनेति द्वे इत्यार्भवमेकमेकं सुशस्तिभिरित्येकमेकमिति निनृत्तिरन्तो नवममहर्नीव वा अन्तं गत्वा नृत्यति कद्रयङ्हि तत इयादथ वैश्वदेवं मनुः सर्वं आयुर्वै मनुरायुरेव तद्यज्ञे च यजमानेषु च दधात्यत्रैव द्विपदास्तासामुक्तं ब्राह्मणं

तथा 'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते' (ऋ.२.२१.१ : विश्व(समस्त) के जेता के लिये धन-जेता के लिये तथा स्वः जेता के लिये) ये दो सूक्त जगती में हैं। 'अहम्' तथा 'अहम्' में एक ही आरम्भ है। जैसे समान अन्त वाला वैसे ही समान प्रारम्भ वाला भी अन्त का रूप है। 'जिते' 'जिते' में आवृत्ति है, नवाँ दिन अन्त है। अन्त में जाकर मानों वह आवृत्त करता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय? मरुत्वतीय के अन्तिम छन्दोम में पांच-पांच सूक्त पढ़े जाते हैं। छन्दोम पशु हैं। पशु पाङ्क्त (पांच से संबद्ध) हैं। निश्चय ही ये पशु की प्राप्ति के लिये हैं (इससे पशुओं की प्राप्ति होती है)। अन्त में निष्केवल्य में छः (पढ़े जाते हैं)। वर्ष में छः ऋतुएँ है। निश्चय ही ये पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं।

२६.१७ 'अभि त्वा देव सवितः' (ऋ० १.२४.३-५ : हे देव सविता ! आपके प्रति) यह सवितृ की तृचा है। मानों वह लोक इसकी ओर हो गया हो। यह उस लोक का रूप (प्रतीक) है। 'प्र वां महि द्यवी अभि' (ऋ० ४.५६.५-७ : आप दोनों आकाश-पृथ्वी के प्रति शक्तिपूर्वक) इसमें 'महि द्यवी अभि' में आवृत्ति है। नवाँ दिन अन्त है। मानों वह अन्त में पहुंच कर आवृत्त करता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय? 'इन्द्र इषे ददातु नः' (ऋ० ८.९८.३४ इन्द्र हमें अन्न के लिये दें) यह एक मंत्र है तथा 'ते नो रत्नानि धत्तन' (ऋ.१.२०.७-८ आप लोग हमें धन दें) ये दो मंत्र हैं। ये ऋभुओं के लिये तृचा (तीन मंत्र) है। 'एकमेकं सुशस्तिभिः' (ऋ.१.२०.७c : सुन्दर निर्देश से प्रत्येक) में 'एकमेकं' में आवृत्ति है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँच कर मानों वह आवृत्त करता है (नृत्यति) क्यों कि यहाँ से वह कहा जाय? तदनन्तर सम्पूर्ण मनु-सूक्तों (ऋ० ८.२७-३१) का वैश्वदेव है (शां० श्रौ० सू० में ऋ० ८.२८.४ मन्त्र छोड़ दिया गया है)। मनु आयु है। इस प्रकार वह यज्ञ तथा यजमानों में आयु रखता है। यहाँ द्विपदा छन्द है। इसका ब्राह्मण (व्याख्यान) हो चुका है। 'विश्वे देवास आगत' इत्यादि (ऋ०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विश्वे देवास आगतेति वैश्वदेवमागतेति गतवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहरैतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयाद्गायत्रं गायत्रतृतीयसवनो ह्येष त्र्यहो दिवि पृष्ठो अरोचतेति वैश्वानरीयं दिवीति तदमुष्य लोकस्य रूपं मरुतो यस्य हि क्षय इति मारुतं क्षय इति क्षितवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहः क्षियतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयादग्निर्होता पुरोहित इति जातवेदसीयं क्षयं पावक शोचिष इति क्षितवत्तदन्तरूपमन्तो नवममहः क्षियतीव वा अन्तं गत्वा कद्र्यङ्हि तत इयाद्गायत्रं गायत्रतृतीयसवनो ह्येष त्र्यह इत्याग्निमारुतसूक्तानीत्येतस्याह्नः सूक्तानि तदुक्थं संतिष्ठते तस्य साऽऽप्तिर्या तृतीयस्याह्नोऽन्वहं द्विपदाः शस्यन्ते सर्वेषु च्छन्दोमेषु पशवो वै च्छन्दोमा यजमानच्छन्दसं द्विपदा अधिष्ठायामेव तत्पशूनां यजमानान् दधात्यधीव वै पशून्पुरुषस्तिष्ठति पुरुषस्तिष्ठति ॥ १७ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

२.४१.१३-१५ हे विश्वे देव इधर आवें) यह विश्वेदेवों की तृचा है यह 'आगत' में 'गत' शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में जाकर मानों वह लौट आता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय ? यह गायत्री छन्द में है क्योंकि तीन दिनों के इस समूह में तृतीय सवन गायत्री छन्द वाला है। 'दिवि पृष्टो अरोचत' (शां०श्रौ०सू० १०.११.९ में प्रदत्त मन्त्र : आकाश में स्थित वह चमका) यह वैश्वानर को है। दिवि (आकाश में) उस लोक का रूप है। 'मरुतो यस्य हि क्षये' (ऋ० १.८६.१ : हे मरुतो ! जिसके निवास में) यह क्षये (निवास में) निवास शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँच कर मानों वह निवास करता है क्यों कि यहाँ से वह कहाँ जाय ? 'अग्निर्होता पुरोहितः (ऋ० ३.११.१ : अग्नि होता पुरोहित हैं) यह जात वेदा का सूक्त है जो 'क्षयं पावकशोचिषः' (ऋ. ३.११.७c : पवित्र तेज वाले हे (अग्ने) ! निवास) में 'क्षयं' इस शब्द से क्षित (निवास) शब्द युक्त है। यह अन्त का रूप है। नवाँ दिन अन्त है। अन्त में पहुँच कर मानों वह निवास करता है क्योंकि यहाँ से वह कहाँ जाय। यह गायत्री छन्द में है क्योंकि तीन दिनों का यह समूह तृतीय सवन में गायत्री छन्द वाला है। ये अग्नि मारुत के सूक्त हैं। ये इस दिन के सूक्त हैं। यह उक्थ है। जो तृतीय दिन की प्राप्ति है वही इसकी प्राप्ति है। प्रतिदिन प्रत्येक छन्दोमों में द्विपदा मन्त्रों का पाठ होता है। छन्दोम पशु हैं। दो पदों के छन्द यजमान के छन्द हैं। इस प्रकार वह यजमानों को पशुओं के स्वामित्व रखता है। पुरुष मानों पशुओं के ऊपर (स्वामी होकर) स्थित होता है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ॐ यद्दिव्युपरि तद्दशममहरिति ह स्माऽऽह कौषीतकिस्तस्मात्तदविवाक्यं भवति न हि तदद्धा वेद कश्चन नेदविद्वान्निर्ब्रवाणीति मितमेतद्देवकर्म यद्दशममहरनुष्टुबेव स यो व्याह सोऽतिरेचयतीश्वरो विवक्तारं भ्रेषोऽन्वेतोस्तदु वा आहुर्व्येव ब्रूयान्नन्दति ह वै यज्ञो विदुषा गच्छताऽयं मे समृद्धं भविष्यत्ययं मे तत्समर्धयिष्यतीति यदि कश्चित्प्रमत्त उपहन्याद्यस्तदधीयात्स तं देशं पार्श्वतः स्वाध्यायमधीयीतापि वा गृहपतिर्वर्त्विजां वैकः पर्यवसर्पेत्स तं देशं पार्श्वतः स्वाध्यायं शंसेद्यदि तथा न मन्येत संप्रत्येव विब्रूयादुत्सृज्यते दशमेऽहन्यनुष्टुब्वागनुष्टुप्सैषा वाक्प्रतदोहुषी क्रूरवैव भवति तस्मादुत्सृज्यते नेद्वाचमासीदामेत्यथो सर्वाण्येवैतच्छन्दांस्यनुष्टुभमभिसंपादयति तदेनान्वाहैवाभिमृशे शूद्रान्नो एनान्प्रससृक्षाणि नो त्वेवाऽन्यत्र यामक पुंश्चल्या अयनं मे अस्तीत्यनुष्टुब्भ्येषा दशमेऽहन्परिगीता तदाहुर्नानुष्टुभ आयतनं रिञ्च्याद्विराजस्तत्रानुब्रूयात्समानं वा ए तच्छन्दो यद्विराड्वाऽनुष्टुप् च न ह्येकेनाक्षरेणान्यच्छन्दो भवति नो द्वाभ्यामिति तयोर्वा एतयो-

---

सत्ताइसवाँ अध्याय

२७.१ ओम् । कौषीतकि की कहना है कि 'जो दसवाँ दिन है वह आकाश में जो ऊपर है वह है । इसलिये यह वह है जो विवेचित नहीं हो सकता क्योंकि कोई भी उसे स्पष्ट नहीं जानता । (वे सोचते हैं कि) 'मैं न जानकर इसका निर्वचन न करूँ ।' दसवां दिन एक सीमित देवकर्म है । यह अनुष्टुप् में है । जो इसका कथन करता है वह अधिक करता है । जो इसका व्याख्यान करता है वह स्खलित (भ्रष्ट) होता है । इसके विषय में वे कहते हैं 'वह व्याख्यान करे । विद्वान् के आने पर यज्ञ आनन्दित होता है । जो मझमें असमृद्ध (असफल) होता है उसे वह समृद्ध करेगा ।' यदि कोई असावधानी से कोई गलती कर दे तो जो उसे जान वह पार्श्व में उसे स्वाध्याय पाठ करे । या गृहपति या ऋत्विजों में से कोई आगे आकर पार्श्व से उसका स्वाध्याय पाठ करे । यदि वह वैसा न माने (इसे उचित न समझे) तो तुरन्त व्याख्यान करे । अनुष्टुप् दसवें दिन उत्सृष्ट किया जाता है । अनुष्टुप् वाक् है । अब वाणी के उन्मुक्त होने पर यह वैसा है जैसा क्रूर वस्तु का वह वहन कर रहा हो (अथवा यह वाणी व्रत दोहुषी और क्रूर स्वर वाली है(?) । इसलिये यह उन्मुक्त की जाती है (क्योंकि वे सोचते हैं कि) 'हम इस वाणी के साथ न रहें ।' अब यहाँ सभी छन्द अनुष्टुभ् में बदल दिये जाते हैं । इस विषय में कहा है

नाहैवाभिमृशे शूद्रां नो एनां प्र ससृक्षाणि । नो त्वेवाऽन्यत्र यामकपुंश्चल्या अयनं मेऽस्तीति (उसे शूद्रा होने से मैं नहीं स्पर्श करूँगा फिर भी उसे छोड़ूंगा नहीं । अन्यत्र मैं नहीं जाऊँगा । पुंश्चली के पास मेरा निवास है) क्योंकि यह अनुष्टुप् दशवें दिन गायी गई है (अतः) वे कहते हैं 'वह अनुष्टुप् का आयतन न छोड़े । यहाँ वह विराज मन्त्रों को पढ़े । विराज और अनुष्टुप् समान छन्द हैं क्योंकि एक अक्षर से या दो अक्षर से छन्द नहीं पृथक्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्तृचयोः षळक्षराण्यभ्युद्यन्त्यग्निष्टोमसाम्नः स्तोत्रियानुरूपयोः षट् तानि द्वादशाक्षराणि होता प्रातरनुवाके संपादयन्नाऽऽद्रियेतात्रैव संपन्नमुष्णिगुदेतीति मेनिमहे गायत्री वा तां प्रातरनुवाके संपादयेन्नाऽऽद्रियेतात्रैव संपन्नम् ॥ १ ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैरित्याज्यं तदेतत्सृष्टं दशमायाह्ने न संपादयेन्नाऽऽद्रियेतात्रैव संपन्नं माधुच्छन्दसः प्रउगस्तस्योक्तं ब्राह्मणं त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म इत्यतिच्छन्दसा मरुत्वतीयं प्रतिपद्यते सा संपन्ना चतुःषष्ट्यक्षरा ते द्वे अनुष्टुभौ संपद्येते बृहदिन्द्राय गायत प्र व इन्द्राय बृहत इति सूक्तात्पूर्वौ द्वौ प्रगाथौ पिन्वन्त्यपीयया संशंसतीति तत्संपन्नं जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेत्यैकाहिकं मरुत्वतीयं प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठित्या एव कया नश्चित्र आभुवत्कया त्वं ऊत्येति वामदेव्यस्य योनौ रथन्तरमूलं भवत्याग्नेयं सामैन्द्रीषु तन्मिथुनं प्रजात्यै रूपं यावन्तः प्रगाथास्तावन्त्यौष्णिहानि तृचानि धाय्यामन्या द्विपदा भजते सप्तदशीमन्या

होता (नहीं बदलता) । इन दो तृचाओं के छः अक्षर अधिक हैं तथा छः अग्निष्टोम साम स्तोत्रिय और अनुरूप के हैं । इन बारह अक्षरों को होता प्रातः अनुवाक में संपन्न करे । इस विषय में वह इसका आदर न करे । हम लोगों का मत है कि 'यहाँ एक ऊष्णिक् या गायत्री है । इसे वह प्रातः अनुवाक में करे ।' इसके बारे में वह ध्यान न दे । यह यहीं संपन्न होता है ।

२७.२ 'अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः' (ऋ. ४.४०.१ हे अग्ने ! यह आज स्तुतियों सहित अश्व की भाँति) यह आज्य है । क्योंकि यह दशम दिन के लिये निर्मित हो रहा है अतः वह संपन्न न करे । इसके बारे में वह ध्यान न दे यह संपन्न होता है । प्रउग मधुच्छन्दा कृत है । इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है । 'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मः' (ऋ० २.२२.१ : तीन पात्रों में बलवान् महिष यव मिश्रित) इस अतिच्छन्द (मंत्र) से वह मरुत्वतीय प्रारम्भ करता है । यह संपन्न होने पर चौसठ अक्षरों की होती है । ये दो अनुष्टुभ् होते हैं । 'बृहदिन्द्राय गायत' (ऋ.८.८९.१-२ : इन्द्र को जोर से गावो) तथा 'प्र व इन्द्राय बृहते' (ऋ० ८.८९.२-३; महान् इन्द्र के लिये आंगे) इन दो प्रगाथों को वह 'पिबन्त्यपो' (ऋ० १.६४.६ : जल पी रहे) के साथ सूक्त (ऋ० १०.७३) से पहले पढ़ता है । इस प्रकार यह सम्पन्न होता है । जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय (ऋ० १०.७३. १ : उग्र ! त्वरा युक्त बल के लिये उत्पन्न हुये हैं) यह एक दिन (के कृत्य) का मरुत्वतीय है । एक दिन का कृत्य प्रतिष्ठा है । यह प्रतिष्ठिति के लिये है । 'कया नश्चित्र आ भुवत् (ऋ० ४.३१.१-३ : वह चमकीला किससे आया है) और 'कया त्वं न ऊत्या' (ऋ० ८.९३.१९-२१ : किस ऊति (सहायता) से आप हमारे पास) वामदेव्य की योनि में रथन्तर रखा है । साम अग्नि के लिये है और इन्द्र के मन्त्रों से सम्पन्न किया जाता है । यह द्वन्द्व है तथा प्रजनन का रूप है । जितने प्रगाथ है उतने ही उष्णिक् की तृचायें हैं ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सूक्तस्य तत्संपन्नमिन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचमित्यैकाहिकं निष्केवल्यं प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठा दशममहः प्रतिष्ठानीयं वै छन्दो द्विपदे प्रतिष्ठित्या एवाभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमित्यतिच्छन्दसा वैश्वदेवं प्रतिपद्यते सा संपन्ना चतुःषष्ट्यक्षरा ते द्वे अनुष्टुभौ संपद्येते अभि वाननुचरस्तस्योक्तं ब्राह्मणं तत्र पुरस्तादानोभद्रीयस्य प्रशुक्रीयं शंसति प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठा दशममहः प्रतिष्ठानीयं वै छन्दो द्विपदाः प्रतिष्ठित्या एव विराड्सु वामदेव्यमग्निष्टोमसाम भवति श्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्या अथो शान्तिर्वै भेषजं वामदेव्यं शान्तिरेवैषा भेषजमन्ततो यज्ञे क्रियते ॥ २ ॥

अथ यत्समूह्ळस्यातिरिक्तोक्थमुपयन्ति तेनातिरिक्तोक्थमाप्नुवन्त्यथैष दशमस्याह्नो दोहो यथा सहस्रं च पञ्चदश चानुष्टुभः स्युस्तथैतदहः संपादयेत्पञ्चदशोद्धृत्य शतस्य शतस्य चतस्रश्चतस्र उद्धरति ताः पञ्चपञ्चाशदुद्धृता अथेतरे द्वात्रिंशद्-

---

एक द्विपदा मंत्र धाय्या (बीच में रखा मंत्र) है और दूसरा सूक्त का सत्रहवाँ मन्त्र है। इस प्रकार यह सम्पन्न (पूर्ण) होता है। 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्' (ऋ० १.३२.१ : इन्द्र के पराक्रमों का कथन करूँगा) यह एक दिन का निष्केवल्य है। एकाह प्रतिष्ठा है। दसवाँ दिन प्रतिष्ठा है। द्विपदा के दो मन्त्र (ऋ० ७.३४.४; ८.२९.४) वे छन्द हैं जिन पर प्रतिष्ठा (आधार) प्राप्त किया जाता है। निश्चय ही ये प्रतिष्ठा के लिये हैं। 'अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्' (पीछे २३.७ में उद्धृत; अथर्व० ७.१४.१; तै० सं० १.२.६.१, वाज० सं० ४.२५ : कवि स्रुवा में सूर्य देव को) इस अतिच्छन्द मन्त्र से वह वैश्वदेव आरम्भ करता हैं। यह चौसठ अक्षरों के योग को बनाता है। ये दो अनुष्टुभ् होते हैं। अनुचर 'अभि' शब्द से युक्त है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। तदनन्तर 'आ नो भद्रा' (ऋ० १.८९.१ हमारे लिये समृद्धि) इस सूक्त से पहले 'प्रशुक्रीय' (ऋ० ७.३४) सूक्त का पाठ करता हैं। एकाह प्रतिष्ठा है। दसवाँ दिन प्रतिष्ठा है। द्विपदा मन्त्रों पर प्रतिष्ठा प्राप्त की जाती है। निश्चय ही ये प्रतिष्ठा के लिए हैं। वामदेव्य का अग्निष्टोम साम विराज मंत्रों (ऋ० ७.१.१-६) पर संपन्न किया जाता है। विराज श्री तथा अन्नाद्य है। निश्चय ही ये श्री तथा अद्याद्य के रूप में विराज की प्राप्ति के लिये हैं। और वामदेव्य (मन्त्र) शान्ति और भैषज्य है। यह यज्ञ के अन्त में शान्ति और भैषज किया जाता है।

२७.३ जो अतिरिक्त गान (उक्थ) सम्मिलित (समूल्ह) रूप में करते हैं इससे वे अतिरिक्त उक्थ प्राप्त करते हैं (द्र० शां० श्रौ० सू० १०.१३.२१-२५)। यह दसवें दिन का दोह (दुग्ध निकालना) है। वह दिन को ऐसा अवश्य करे जिससे उसमें १०१५ अनुष्टुप् हों। पन्द्रह को निकाल कर फिर प्रत्येक सौ में से ४ निकाले। इस प्रकार (४ × १० + १५) पचपन बाहर ले लिये गये। फिर बाकी का ३२ का ३० समूह बनाता हैं। अब

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

द्वात्रिंशद्वर्गा अथैषा स्तोमाक्षराऽनुष्टुबष्टाक्षरा गायत्री चतुर्विंशस्तोम इत्येषा स्तोमाक्षरा अनुष्टुब्द्वात्रिंशी भवत्यथैषा पद्याऽनुष्टुब्गायत्र्यै चोष्णिहश्च षट् पदानि विराजस्त्रीणि तानि नव बृहत्यै चत्वारि तानि त्रयोदश पङ्क्तेः पञ्च तान्यष्टादश त्रिष्टुभश्चत्वारि तानि द्वाविंशतिर्जगत्यै चातिच्छन्दसश्चाष्टौ तानि त्रिंशद्द्विपदायै द्वे तानि द्वात्रिंशदित्येषा पद्याऽनुष्टुब्द्वात्रिंशी भवत्यथैषा देवव्याऽनुष्टुबष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशाऽऽदित्या इन्द्रो द्वात्रिंशदित्येषा देवव्याऽनुष्टुब्द्वात्रिंशी भवत्यथ याः पञ्चपञ्चाशदुद्धृताश्च तुश्चत्वारिंशत्ताः पङ्क्तयस्ततो याश्चत्वारिंशत्तदूधोऽथ याश्चतस्रोऽतियन्ति ते स्तनाः सैषा स्तोमाक्षरा अनुष्टुबेतेनोधसैतैः स्तनैरेतमिन्द्रस्याऽऽत्मानं व्रत्यमहरभिक्षरत्येतस्या उ एव व्यक्षरेण च्छन्दोमाः स्तोमतश्च शस्त्रतश्च वर्धन्ते य उ वै वेद तन्मयः संभवति य एवं विदस्याऽऽयुषः पुरस्तादेतमिन्द्रस्याऽऽत्मानं व्रत्यमहरभिसंभवति तमेषा स्तोमाक्षराऽनुष्टुबेतेनोधसैतैः स्तनैः सर्वैं रसैः सर्वैः कामैः सर्वेणान्नाद्येन सर्वेणामृतत्वेनाभिक्षरति य एवं संपन्नं दशममहः शंसति तस्मादेवं संपन्नं दशममहः शंसेदिति ॥ ३ ॥

अथ यद्व्यूळ्हस्यातिरिक्तोक्थमुपयन्ति मन एव तत्प्रीणन्ति तत्सर्वयज्ञैरनु-

---

यह स्तोमों और अक्षरों का अनुष्टुभ् हुआ। गायत्री अष्टाक्षरा है। स्तोम चौबीस पर्व (चतुर्विंश) हैं। इस प्रकार स्तोम तथा अक्षरों का अनुष्टुभ् बत्तीस अंगों वाला है। ये पदों के अनुष्टुभ् है। गायत्री और उष्णिह् में छः पद हैं। विराज में तीन हैं। ये नौ होते हैं। चार बृहती में हैं। ये तेरह बनते हैं। पङ्क्ति में पाँच है। ये अठारह बनाते हैं। त्रिष्टुभ् में चार है। ये बाइस बनाते हैं। जगती तथा अतिच्छन्दस् में आठ हैं। ये तीस होते हैं। द्विपदा में दो है। ये बत्तीस बनाते हैं। इस प्रकार यह पदों का अनुष्टुभ् बत्तीस अंगों का होता है। देवताओं का अनुष्टुभ् है—आठ वसुओं, ग्यारह रुद्रों, द्वादश आदित्यों तथा बत्तीसवाँ इन्द्र। इस प्रकार देवताओं का अनुष्टुभ् बत्तीस भागों का होता है। पचपन उद्धृत किये गये जो हैं वे ४४ पङ्क्ति हैं। इसमें चालिस ऊध (थन) तथा चार स्तन (चूचुक) हैं। इस प्रकार वह स्तोमों का अनुष्टुभ् और इस थन तथा चूचुकों से व्रत के दिन इन्द्र के ऊपर अभिक्षरण करता है। इसके ऊपर अभिक्षरण से छन्दोम स्तोमों और शस्त्रों दोनों से वृद्धि करते हैं। जो इसे जानता है वह उस रूप का (तन्मय) हो जाता है। जो अपने आयु के (मृत्यु के) पहले इसे जानता है वह इन्द्र के इस शरीर, व्रतदिन का स्वामी हो जाता है। जो इस प्रकार बने दसवें दिन के कृत्य का शंसन करता है उसे यह स्तोम और अक्षरों का अनुष्टुभ् इन ऊधसो (थनों), चूचुकों, सभी रसों, कामनाओं, सभी अन्नाद्यों एवं सभी अमृतत्व से अभिक्षरण करता है। इसलिये इस प्रकार बने दसवें दिन (के कृत्य) का पाठ करे।

२७.४ जो व्यूल्ह (व्यत्यास) रूप का अतिरिक्त उक्थ सम्पन्न करते हैं उससे मन का प्रसादन करते हैं। उसका सभी यज्ञों से अनुशंसन (पाठ) करते हैं क्योंकि यह मनकी मात्रा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शंसन्त्येषां हि मनसो मात्रा संस्थिते दशमेऽहनि पुरा पत्नीसंयाजेभ्य एतस्मिन्काले संप्रसर्पन्त्ययज्ञिया वै पत्न्यो बहिर्वेदिर्हि ता इति वदन्तः संस्थितेषु पत्नीसंयाजेष्विति त्वेव स्थितमत्राल्पको भ्रातृव्यलोकः परिशिष्टो भवतीति ते संप्रसृप्य सार्पराज्य ऋक्षु स्तुवत इयं वै सार्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञ्यथो वाग्वै सार्पराज्ञी वाग्घि सर्पतो राज्ञ्यथो गौर्वै सार्पराज्ञी सर्पतो राज्ञ्यायं गौः पृश्निरक्रमीदित्येतं तृचं नान्तरियात्स्तोत्रियस्यानन्तरित्या अस्मासु नृम्णं धा इत्यन्नं वै नृम्णमन्नमेव तद्यज्ञे च यजमानेषु च दधाति वातापेर्हवनश्रुत इतीन्द्र उ वै वातापिः स हि वातमात्मा शरीराण्यर्हन्प्रतिपरैत्यध्वर्युः सोऽनिरुक्ते गार्हपत्ये प्राजापत्ये द्वे आहुती जुहोति प्रजापतिर्वै गार्हपत्य आहुतिसंस्थे उ वै स्तुतशस्त्रे समाप्तं स्तोत्रं समाप्तं शस्त्रं समाप्तं ब्रह्मवद्यमित्यथो अन्ये वाऽपि कामं यजेयुरथ भक्षयेयुरयं वै वेनः प्रजापतेः प्रत्यक्षं तन्वस्ता होता वदेत् ॥ ४ ॥

अन्नादी चान्नपत्नी चेयं वा अन्नाद्यसावन्नपत्नी भद्रा च कल्याणी च भद्रा-

---

(मान-सीमा) है। दसवें दिन की समाप्ति पर (देवताओं सहित) पत्नियों के संयाजों (आहुतियों) से पूर्व वे यह कहते हुये संसर्पण करते (आगे बढ़ते) हैं कि "पत्नियाँ अयज्ञिय हैं क्योंकि वे वेदि से बाहर हैं।' किन्तु नियम यह हैं कि वे ऐसा तब करें जब पत्नियों का संयाज पूरा हो चुका हो। (यह सोचते हुये कि) 'यहाँ भ्रातृव्यों (द्वेषियों) को अल्प स्थान हैं', वे साथ-साथ आगे बढ़ते हैं। सर्पराज्ञी मन्त्रों का पाठ करें। यह (पृथ्वी) सर्पराज्ञी है क्योंकि जो कुछ सर्पण करता है (सरकता है) उसकी वह राज्ञी है। सर्पराज्ञी वाक् है क्योंकि जो कुछ सर्पण करता है उसकी वाणी राज्ञी है। गौ सर्पराज्ञी है क्योंकि जो सर्पण करता हैं गौ उसकी रानी है। स्तोत्रिय के आनन्तर्य के लिये 'आयं गौः पृश्निरक्रमीद्' (ऋ० १०.१८९.१-३ : पृश्नि (रंगीन) वृषभ आया है) इस तृचा को वह न छोड़े। (वह कहता है–) 'हममें' नृम्ण (पौरुष) रखें। नृम्ण अन्न है। इस प्रकार वह यज्ञ तथा यजमानों में अन्न रखता है। 'वातापेर्हवन श्रुतः' (तै.आ.३.३.१; शा.श्रौ.सू.१०.१७.६ : आह्वान के श्रोता हे प्राण के प्राप्तकर्ता) इन्द्र ही वात (प्राण) के प्राप्तकर्ता हैं क्योंकि वात को प्राप्त कर वे ही शरीरों को ढूढते हुये चलते हैं। अब अध्वर्यु गार्हपत्य में विना (देवता के) उल्लेख के दो आहुतियों का हवन करता है। गार्हपत्य प्रजापति है। स्तोत्र और और शस्त्र आहुतियों में समाप्त होते हैं। स्तोम पूर्ण हो गया। शस्त्र पूर्ण हो गया। ब्रह्म का व्याख्यान सम्पूर्ण हो गया। और यदि वे चाहें तो यजन करें और भोजन करें। यहाँ वेन है (ऋ १०.१२३ वेन सूक्त है)। ये प्रजापति के प्रत्यक्ष शरीर हैं। इन्हें होता कहे (पढ़े)।

२७.५ अन्न खाने वाला तथा अन्न की पत्नी (द्र० शां० श्रौ० १०.१९.१) (यह एक रूप है)। अन्न का आदी (भक्षक) यह (पृथ्वी) है। अन्न की पत्नी वह (आकाश) है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्सोमः कल्याणी तत्पशवोऽनिलया चापभया चानिलया तद्वायुर्न ह्येष इलयत्यपभया तन्मृत्युर्न ह्येष विभेत्यनाप्ता चानाप्या चेयं वै पृथिव्यनाप्ताऽसौ द्यौरनाप्या नाधृष्टा चानाधृष्या चायं वा अग्निरनाधृष्टोऽसावादित्योऽनाधृष्योऽपूर्वा च भ्रातृव्या चापूर्वा तन्मनो भ्रातृव्या तत्संवत्सरोऽथासावावेव गृहपतिर्योऽसौ तपत्येष हि गृहाणां पतिस्तस्यर्तव एव गृहा एष पतिरेष उ एव देवोऽपहतपाप्मोदग्रवत्यध्वर्युरपिदधति सदसो द्वारावेवं शालायाः ॥ ५ ॥

औदुम्बरीमन्वारभन्त ऊर्वा अन्नाद्यमुदुम्बर ऊर्जोऽन्नाद्यस्योपाप्त्या उत्तमौ पाणी होता कुर्वीतोत्तमोऽसानीत्युत्तमो हैव भवति वाग्यताः संमील्याऽऽसत आनक्षत्राणां दर्शनाद्वाचं ह वा एतदाप्याययन्ति यद्वाचंयमा आसत आपीनां वाचमभ्यासिक्तामन्तत ऋध्नवामेति मार्जालीयन्यन्तेन नक्षत्रेषु चक्षुर्विसृजन्ते ज्योतिर्वै नक्षत्राणि ज्योतिरेव तदात्मन्धत्ते ते परया द्वारा हविर्धाने प्रप्रद्यन्ते अथाध्वर्युरुत्तरस्य हविर्धानस्य कूबरीमभिपद्याऽऽह सत्रस्यर्द्धिं गायति

भद्रा और कल्याणी (यह दूसरा रूप है) सोम भद्र है और पशु कल्याणी हैं। अनिलया (विना घर या विश्राम का) तथा अपभया (भयरहित) (यह तीसरा रूप है)। वायु अनिलय हैं। क्योंकि वे कभी रुकते नहीं। मृत्यु अपभय (भय रहित) है क्योंकि वह डरती नहीं। अप्राप्त तथा अप्राप्य (यह चौथा रूप है)। यह पृथ्वी अनाप्त है और वह आकाश अनाप्य है। अनाधृष्ट (अनाक्रान्त) तथा अनाधृष्य (यह पाँचवा रूप है)। यहाँ अग्नि अनाधृष्ट है और वहाँ वह आकाश अनाधृष्य है। अपूर्वा और अभ्रातृव्या (द्वेषिरहित) (यहाँ छठाँ रूप है) मन अपूर्व है और संवत्सर अभ्रातृव्य है। वे जो वहाँ तप रहे हैं वे वहाँ गृहपति हैं। ये गृहों के पति हैं। ऋतुएँ ही उनके गृह हैं। ये स्वामी हैं। ये देव अपहतपाप्मा (निष्पाप) हैं। ऊध्वर्यु उत्तर दिशा को दौड़ता है। वे सदस् और शाला के द्वारों को बन्द कर देते हैं।

२७.६ उदुम्बर की शाखा को पकड़ते हैं। उदुम्बर ऊर्ग (बल) तथा अन्नाद्य है। यह बल और अन्न की प्राप्ति के लिये हैं। होता दोनों हाथों को ऊपर करे (और यह कामना करे कि) 'मैं' सर्वोच्च (उत्तम) होऊँ। वह उत्तम होता है। नक्षत्र-दर्शन तक वे आखों को बन्द कर मौन बैठे रहते हैं। वे जो मौन होकर बैठते हैं उससे (वे यह सोचकर) वाणी को बलवती (पुष्ट) बनाते हैं कि 'प्राप्त की गई और अभ्यासिक्त (वर्षाई गई) वाणी को हम प्राप्त करें।' नक्षत्रों के निकल जाने पर मार्जालीय के पास वे आखों को खोलते हैं। नक्षत्र ज्योति है। इस प्रकार वे अपने में ज्योति को रखते हैं। पश्चिमी द्वार से वे दोनों हविर्धानों (हविर्धारकों) में प्रवेश करते हैं। तब ऊध्वर्यु उत्तरी हविर्धारक के कूबरी (पोल-Pole) के पास पहुँच कर कहता है—'तुम सत्र की समृद्धि का गान करो'। वह सत्र की ऋद्धि का गान करता है। इस प्रकार वे सत्र की ऋद्धि को प्राप्त करते हैं। सभी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गायति सत्रस्यर्द्धि तत्सत्रस्यर्द्धिमाप्नुवन्ति सर्वे साम्नो निधनमुपयन्ति प्रतिष्ठा वै निधनं प्रतिष्ठित्या एव त उत्तरस्य हविर्धानस्याधोक्षं सर्पन्त्यैन्द्रीमतिच्छन्दसं जपन्तोऽतिच्छन्दसैव तदधोक्षं यजमाना: पाप्मानमपघ्नते ते नु वा उ वयमुत्तरेणैव परीम इति ह स्माऽऽह कौषीतकिर्यज्ञस्यानुसंचरं सप्तऋषिभ्योऽनन्तर्हिता इति तेऽग्रेण हविर्धाने समुपविश्य कामान्ध्यायन्ते यत्कामा भवन्त्ययं न: काम: समृध्यतामिति स उ हैभ्य: काम: समृध्यते ये वहुकामा भवन्ति भूर्भुव: स्वरित्येतास्ते व्याहृतीर्जपेयुस्ते प्राञ्च उदञ्च उत्क्रम्य वाचं विद्दयन्ते नेद्वाक्पराच्यसदिति सुब्रह्मण्यायै वाचं विसृजन्ते ब्रह्म वै सुब्रह्मण्या ब्रह्मणैव तद्वाचं विसृजन्ते त आग्नीध्रीये सह राज्ञा संविशन्ते तद्यथा राजानं वा राजमात्रं वा श्रान्तं वेश्म प्रपादयेयुरेवमेवैतत्सोमं राजानमहरहर्हविर्धानाभ्यामुपावहृत्याग्नीध्रं प्रपादयन्ति त आग्नीध्रीये सह राज्ञा संविशन्ते ॥ ६ ॥

अथ यत्समूल्हं दशरात्रमुपयन्ति सर्वेषामेव कामानामाप्त्या अथ यद्व्यूल्हमुपयन्ति सर्वेषामेव च्छदसामाप्त्या अथ यद्व्यूल्हसमूल्हा उपयन्ति दशरात्रस्यैव

साम का अन्त (निधन) संपन्न करते हैं। निधन प्रतिष्ठा है। निश्चय ही यह प्रतिष्ठा के लिये है। वे उत्तरी हविर्धान के अक्ष के नीचे इन्द्र के लिये एक अतिच्छन्दस् मन्त्र (ऋ० १.१३२.२) का पाठ करते हुए सरकते हैं। निश्चय ही इस अतिच्छन्दस् मन्त्र से यजमान अक्ष के नीचे पाप को नष्ट करते हैं। कौषीतकि का कहना है कि 'यज्ञ के मार्ग का अनुसरण करते हुये सप्तर्षियों से अन्तर्हित न होकर हम उत्तर की ओर उनके चारों ओर चलें।' हविर्धारकों के सामने बैठकर वे अपनी कामनाओं का ध्यान करते हैं। 'वे जिस कामना को करते हैं वह कामना हमारे लिये पूर्ण हो।' उनकी यह कामना पूर्ण होती है। जो वहुत सी कामनाओ वाले हों वे 'भू: भुव: और स्व:' इन व्याहृतियों का जप करें।' पूर्व और उत्तर में जाकर वे वाणी के आह्वान की स्पर्धा करते हैं। वे सोचते हैं कि 'वाणी पराङ्मुख न हो, वे सुब्रह्मण्या की वाणी को छोड़ते हैं (शां. श्रौ. सू. १०.२१.१. में सुब्रह्मण्याप्रतीकम् अभिव्याहृत्य है; द्र० जैमिनीय श्रौ० सू० ३; ऐ० ब्रा० ५.८)। सुब्रह्मण्या ब्रह्म है। इस प्रकार वे ब्रह्म से वाणी का उच्चारण करते हैं। वे राजा के सहित अग्नीध्रीय के पास जाते हैं। यह वैसे ही है जैसे राजा या अमात्य को श्रान्त (जीर्ण) गृह में ले जाया जाय। सोम राजा को प्रतिदिन हविर्धान से नीचे उतारकर अग्नीध्र वेदि पर ले जाते हैं। आग्नीध्रीय पर वे राजा के साथ बैठते हैं।

२७.७ जो दशरात्र को समूल्ह (सम्मिलित) रूप में करते हैं वह सभी कामनाओं की प्राप्ति के लिये है। उसे जो व्यत्यस्त (व्यूल्ह) रूप में करते हैं वह सभी छन्दों की प्राप्ति के लिये हैं। जो इसे व्यत्यस्त और सम्मिलित दोनों रूपों में करते हैं वह दशरात्र के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नानात्वाय समूल्ह उ हैवाग्र आस तानि च्छन्दांस्यन्योन्यस्य स्थानमभिदध्युः सर्वाणि प्रथमानि स्याम सर्वाणि मध्यमानि सर्वाण्युत्तमान्यथो सर्वाण्येवैतच्छन्दांसि सर्वसवनभाञ्जि करोति गायत्रप्रातःसवनः प्रथमस्त्र्यहस्त्रिष्टुभ्मध्यंदिनो जगत्तृतीयसवनो जगत्प्रातःसवनो द्वितीयस्त्र्यहो गायत्रमध्यंदिनस्त्रिष्टुप्तृतीयसवनस्त्रिष्टुप्प्रातःसवनस्तृतीयस्त्र्यहो जगन्मध्यंदिनो गायत्रतृतीयसवनो गायत्रप्रातः सवनं दशममहस्तत्समाना छन्दसः समानं छन्द उपसंगच्छन्तेऽथ यद्दशममहरनुष्टुभमभिसंपादयन्ति वाग्वा एतदहर्वागनुष्टुब्वाच्येव तद्वाचं प्रतिष्ठापयन्ति तेऽमृत्वमाप्नुवन्ति ये दशममहरुपयन्ति ये दशममहरुपयन्ति ॥ ७ ॥

इति शाङ्खायने ब्राह्मणे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

ॐ प्रजापतिर्ह यज्ञं ससृजे तेन ह सृष्टेन देवा ईजिरे तेन हेष्ट्वा सर्वान्कामानापुस्तस्य हेतरार्ध्यमुपनिदधुर्य एते प्रैषाश्च निगदाश्चाथेतरेण यज्ञेन ऋषय ईजिरे ते हविर्जज्ञुरसर्वेण ह वै यज्ञेन यजामहे न वै सर्वान्कामानाप्नुम इति ते ह श्रेमुस्त

नानात्व की प्राप्ति के लिये है। प्रारम्भ में केवल सम्मिलित (समूल्ह) रूप ही था। छन्द (यह सोचते हुये) एक दूसरे का स्थान चाहने लगे कि हम सभी प्रथम हों, सभी मध्य में हों और सभी अन्त में हों। और वह इस प्रकार सभी छन्दों को सभी सवनों का भागी बनाता है। तीन दिनों का प्रथम समूह (त्र्यह), प्रातःसवन में गायत्री छन्द वाला, मध्याह्न सवन में त्रिष्टुभ् छन्द वाला तथा तृतीय सवन में जगती छन्द वाला है। तान दिनों का द्वितीय समूहः प्रातःसवन में जगती छन्द वाला, मध्याह्न सवन में गायत्री छन्द वाला तथा तृतीय सवन में त्रिष्टुभ् छन्द वाला है। तीन दिनों का तृतीय समूह प्रातः सवन में त्रिष्टुभ् छन्द वाला, मध्याह्न सवन में जगती छन्द वाला तथा तृतीय सवन में गायत्री छन्द वाला है। दसवाँ दिन प्रातःसवन में गायत्री छन्द वाला है। इस प्रकार समान छन्द से से समान छन्द में जाते हैं। और जो दसवें दिन को अनुष्टुभ् छन्दों में परिवर्तित करते हैं (तो) यह दिन वाक् है और अनुष्टुभ् वाक् है। इस प्रकार निश्चय ही वे वाक् को वाक् में प्रतिष्ठापित करते हैं। जो दसवें दिन (के कृत्य) को संपादित करते हैं वे अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।

शाङ्खायन ब्राह्मण में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

अट्ठाइसवाँ अध्याय

२८.१ ॐ। प्रजापति ने यज्ञ की सृष्टि की। जब वह निर्मित हुआ तो इससे देवताओं ने यजन किया। इससे यजन कर उन्होंने सभी कामनाओं को प्राप्त किया। इसके अर्धभाग प्रैषों और निगदों को जमा कर दिया। ऋषियों ने दूसरे अर्ध भाग से यजन किया। उन्होंने अनुभव किया 'हम अपूर्ण यज्ञ से यजन कर रहें हैं। हम सभी कामनाओं को नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एतान्प्रैषांश्च निगदांश्च ददृशुस्तेन ह सप्रैषेण सनिगदेनेष्ट्वा सर्वान्कामानापुरेते ह ते ह वा उ प्रैषाश्च निगदाश्च यदृग्भिर्यज्ञस्यानाप्तं तदेभिः सर्वमाप्स्याम इति ताने-तान्प्रैषानुप्रैषान्विश्वामित्रो ददर्शाथो पुरोळाशप्रैषानथेतर ऋषय इतरांस्तदाहुः कस्मान्मैत्रावरुण एव सर्वेभ्यः प्रेष्यतीत्येता ह वै देवताः प्रैषाणामाजिमीयुस्ता-न्मित्रावरुणा उज्जिग्यतुस्तस्मान्मैत्रावरुण एव सर्वेभ्यः प्रेष्यति स वै तिष्ठन्प्रेष्यति तिष्ठन्वै वीर्यवत्तमस्तिष्ठन्वा उ श्रितवदनुत्तमो वीर्यवतीमाश्रितां देवेषु वाचमुद्या-समिति ॥ १ ॥

ॐ वक्र इव प्रणतोऽनुब्रूयात्तथा ह वर्षुकः पर्जन्यो भवतीति ह स्माऽऽह कौषी-तकिस्तद्ध स्म वै पुराऽसुररक्षांसि हवींषि विबध्नते तत एता वामदेवोऽभिरूपा अपश्यदग्निर्होता नो अध्वर इति ताभिर्होग्निं परिणिन्युस्ततो वैतानि रक्षांसि नाष्ट्रा अपजघ्निरे जुषस्व सप्रथस्तममिति जुष्टवतीमभिरूपामन्वाह जुष्टवतीमभि-रूपां देवेषु वाचमुद्यासमितीमं नो यज्ञममृतेषु धेहीति विश्वामित्रस्तोकानेवैताभि-

---

प्राप्त करते हैं।' उन्होंने श्रम किया। उन्होंने प्रैषों और निगदों को देखा (प्राप्त किया)। प्रैषों और निगदों से युक्त यज्ञ से यजन कर उन्होंने सभी कामनाओं को प्राप्त किया (उन्होंने सोचा कि) ये प्रैष और निगद वे हैं जो ऋचाओं से यज्ञ का प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये उनके द्वारा हम पूर्ण (सर्व) को प्राप्त करेंगे। इन प्रैषों तथा अनुप्रैषों को विश्वामित्र ने देखा और पुरोडाश प्रैषों को भी (उन्होंने देखा)। अन्य ऋषियों ने अन्यों का (साक्षात्कार किया)। इसके विषय में वे कहते हैं कि क्यों अकेले मैत्रावरुण ही सभी के लिये आदेश देते हैं ? प्रैषों के विषय में सभी देवताओं ने दौड़ (आजि) लगाई। मित्र और वरुण ने इसको जीता। इसलिये केवल मैत्रावरुण ही सभी को प्रेषित करते हैं। (वे यह सोचकर) खड़े होकर प्रेषण करते हैं कि 'खड़ा रहना वीर्यवत्ता' (बलशालिता) है, खड़े होकर बोलना अच्छी तरह सुना जाता है। मैं पूर्ण वीर्यवती तथा देवताओं में आश्रित वाणी को बोलूं।'

२८.२ थोड़ा झुके हुये की भाँति प्रणत होकर बोले। कौषीतकि का कहना हैं कि 'इस प्रकार पर्जन्य वर्षणकारी होता है।' पहले असुरों और राक्षसों ने हवियों में बाधा डाली तब वामदेव ने इन अभिरूप मंत्रों 'अग्निर्होता नो अध्वरे' (ऋ० ४.१५.१-३ : होता अग्नि हमारे यज्ञ में) को देखा। इनसे उन्होंने अग्नि का परिणयन (चतुर्दिक् ले जाना) किया। इससे विघातक राक्षसों को उन्होंने नष्ट किया। वह यह सोचकर कि 'मैं देवताओं के लिये 'जुष्ट' पदवाली अभिरूप वाणी को कहूँ 'जुषस्व सप्रथस्तमम्' (ऋ० १.७५.१ : हमारे अति विस्तृत को स्वीकार करें) इस 'जुष्ट'वती तथा अभिरूप मंत्र को कहता है। 'इमं नो यज्ञममृतेषु धेहि (ऋ० ३.२१.१ : इस यज्ञ को देवताओं में हमारे लिये विन्यस्त करें) इस मंत्र से विश्वामित्र स्तोक (विन्दु) को अग्नि को स्वादित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रग्नये स्वदयत्येता ह वा उ तेषां पुरोनुवाक्या एता याज्यास्तस्मादभिरूपा भवन्ति वैश्वामित्रीं पुरोळाशः स्विष्टकृतः पुरोनुवाक्यामन्वाह तस्या उक्तं ब्राह्मणं वैश्वामित्रीरनुसवनं पुरोडाशानां पुरोनुवाक्ये अन्वाह विश्वामित्रो हैतान्पुरोळाशः प्रैषां ददर्श सलोमतायै माधुच्छन्दस्यावभिरूपे द्विदेवत्यानां प्रथमस्य पुरोनुवाक्ये अन्वाह मधुच्छन्दा हैतान् द्विदेवत्यः प्रैषान् ददर्श सलोमतायै गार्त्समदीं च मैधातिथीं चोत्तरयोरभिरूपे अन्वाह मैधातिथीः प्रातः सवन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह मैधातिथिर्ह प्रातः सवन इन्द्राय सोमं प्रोवाच ता आवत्यो हरिवत्यो भवन्ति पुरोनुवाक्यारूपेण ता वा ऐन्द्र्यो भवन्त्यैन्द्रो हि यज्ञक्रतुस्ता वै गायत्र्यो भवन्ति गायत्रं प्रातःसवनं ता वै नवान्वाह नव न्वा अत्र चमसानुन्नयन्ति ॥ २ ॥

षळु हैके प्रातःसवन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाहुः स्वयमच्छावाकः सप्तमीं सप्तसप्तोत्तरयोः सवनयोः सप्त वै प्राञ्च आसीना वषट्कुर्वन्तीति वदन्तस्तदु वा आहुर्यथा सूक्तमेवानुब्रूयाद्धोतुर्ह्येवैताः पुरोनुवाक्या भवन्ति होतुर्ह्येवैतांश्चमसाननुचमसमुन्नयन्ति तस्माद्यथासूक्तमेवानुब्रूयादथ होत्राः संयजन्ति तासामुक्तं ब्राह्मणं

(स्वीकार) कराते हैं। ये उनके पुरोनुवाक्या हैं। ये उनके याज्या हैं। इसलिये ये अभिरूप हैं। पुरोडाश (मात्र) में वह विश्वामित्र के एक मंत्र को (ऋ० ३.२८.१) स्विष्टकृत आहुति के लिये पुरोनुवाक्या (आह्वानकारी) मंत्र के रूप में प्रयुक्त करता है। इसका ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है। पुरोडाश के पुरोनुवाक्या के रूप में प्रत्येक सवन में वह विश्वामित्र के मंत्रों का पाठ करता है। विश्वामित्र ने पुरोडाशों के लिये इन प्रैषों को देखा (साक्षात्कार किया)। इस प्रकार वे सलोमता (अनुरक्तता) के लिये हैं। दो देवताओं के लिये में से प्रथम के लिये वह मधुच्छन्दा के दो अनुरूप मंत्रों का (ऋ० १.२.१,४) पुरोनुवाक्या के रूप में पाठ करता है। मधुच्छन्दा ने इन दो देवताओं लिये इन प्रैषों को देखा। इस प्रकार वे सलोमता के लिये हैं। गृत्समद के एक (ऋ.२.४१.४) तथा मेधातिथि के एक (ऋ० १.२२.१) अभिरूप मन्त्रों को वह द्वितीय दो के लिये पढ़ता है। मेधातिथि के मंत्रों को वह प्रातःसवन में भरे जा रहे (चषकों) के लिये पढ़ता है। मेधातिथि ने प्रातः सवन में इन्द्र के लिये सोम घोषित किया। ये मंत्र पुरोनुवाक्या के रूप (प्रतीक) में 'अभि' शब्द युक्त और 'हरि' शब्द युक्त होते हैं वे इन्द्र को कहो गयी हैं क्योंकि यज्ञ क्रतु इन्द्र का है। ये गायत्री छन्द हैं। प्रातःसवन गायत्री में है। वह नौ मंत्रों का पाठ करता है। वे नौ चषकों को भरते हैं।

२८.३ भरे जा रहे (चषकों) के लिये कुछ लोग छः को कहते हैं। अच्छावाक् सातवां है। द्वितीय तथा तृतीय सवन में प्रत्येक में सात यह कहते हुये कि 'पूर्वाभिमुख बैठे सात वषट्कार करते हैं।' इसके विषय में वे कहते हैं 'सूक्तों के अनुसार वह पाठ करे क्यों कि ये होता के पुरोनुवाक्या मन्त्र हैं (और) होता के इन चमसों के लिये चमसों से चमसों को भरते हैं। इसलिये वह सूक्त के अनुसार ही पाठ करे।' तदनन्तर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मित्रं वयं हवामह इति मैत्रावरुण्या मैत्रावरुणः स्वया देवतया यज्ञमुखस्यानवराध्यां इन्द्र त्वा वृषभं वयमित्यैन्द्रया ब्राह्मणाच्छंस्यैन्द्रो हि यज्ञक्रतुर्मरुतो यस्य हि क्षय इति मारुत्या पोता यत्र ह तदिन्द्रं मरुतः पुपुवुस्तदेनानिन्द्रः सोमपीथेऽन्वाभेजे तस्मात्स मारुत्या पोता प्रथमतश्चान्ततश्च यजत्यग्ने पत्नीरिहावहेत्याग्निपात्नीवत्या त्वष्टृमत्या नेष्टा प्रथमतश्चान्ततश्च यजत्यग्निर्वै देवानां पात्नीवतो नेष्टर्त्विजां तस्मात्स आग्निपात्नीवत्या त्वष्टृमत्या नेष्टा प्रथमतश्चान्ततश्च यजत्युक्षान्नाय दशान्नायेत्याग्नेय्याऽग्नीध्रोऽग्नीह्र स समिन्धे तस्मात्स आग्नेय्याग्नीध्रः प्रथमतश्चान्ततश्च यजत्यनुवषट्कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथेळाथ होतृचमसस्तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ यत्र ह तन्नाभानेदिष्ठो मानवोऽङ्गिरःसूपहवमीशे स एतामच्छावाकीयां होत्रां ददर्श स वा इलायामुपहूतायामाजगाम तस्मात्तन्न प्रवृणुते स वा एतस्मात्

होत्रक एक साथ यजन करते हैं । इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है । मैत्रावरुण मित्र तथा अरुण के लिये 'मित्रं वयं हवामहे' (ऋ० १.२३.४ : मित्र का हम आह्वान करते हैं) मन्त्र का पाठ करता है । यह इसलिये करता है कि यज्ञ का आरम्भ उसके अपने देवता से हो । ब्राह्मणाच्छंशिन् 'इन्द्र त्वा वृषभं वयं' (ऋ० ३.४०.१ : हे वृषभ (वर्षणकारी) इन्द्र ! आपको हम) इस मन्त्र को इन्द्र के लिये प्रयुक्त करता है । क्योंकि यज्ञ इन्द्र से संबद्ध है । पोता 'मरुतो यस्य हि क्षये' (ऋ० १.८६.१ : हे मरुतो ! जिसके घर में) इस मन्त्र को मरुतों के लिये प्रयुक्त करता है । जब मरुतों ने इन्द्रको शुद्ध किया तो इन्द्र ने उन्हें यज्ञ में भाग दिया । इसलिये आरम्भ और अन्त में पोता इस मरुत मन्त्र से मरुतों का यजन करता है । नेष्टा प्रथम तथा अन्त में 'अग्ने पत्नीरिहावह' (ऋ० १.२२.९ : हे अग्नि ! पत्नियों को यहाँ लावें) इस 'अग्नि तथा पत्नी' एवं 'त्वष्टृ' से युक्त मन्त्र से यजन करता है । अग्नि ऐसे देवताओं में एक हैं जो 'पत्नियों सहित' इस शब्द से युक्त हैं और ऋत्विकों में नेष्टा ऐसे से सम्बद्ध है । इसलिये इस 'पत्नियों सहित अग्नि' तथा 'त्वष्टा' शब्द से युक्त मन्त्र से नेष्टा प्रारम्भ तथा अन्त में यजन करता है । अग्नीध्र अग्नि के लिये 'उक्षान्नाय वशान्नाय' (ऋ० ८.४३.११ : वृषभ के अन्न तथा वशा (गौ) के अन्न वाले के लिये) इस मन्त्र का प्रयोग करता है । वह अग्नियों को समिन्वित करता है । इसलिये अग्नीध्र प्रारम्भ तथा अन्त में इस अग्नि-मन्त्र से यजन करता है । आहुतियों की शान्ति तथा प्रतिष्ठा के लिये वे द्वितीय वषट्कार को दुहराते हैं । तदनन्तर इळा (यज्ञान्न) तथा होतृचमस है । इसका ब्राह्मण (व्याख्यान) कहा जा चुका है ।

२८.४ जब नाभानेदिष्ठ मानव ने आङ्गिरसों से उपहव (निमंत्रण) चाहा तो उन्होंने होता के इस अच्छावाक के कृत्य को देखा । व तब आया जब इला (यज्ञान्न) उपहूत हो चुकी थी । इसलिये कोई उसे चुना नहीं । वह इस पूर्वीय मध्यवर्ती प्रदेश

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पूर्वस्मादवान्तरदेशादाजगाम तस्मादेतस्यां दिश्यासीनोऽच्छावाक उपहवमिच्छते तदाहुः कस्मादच्छावाकाय पुरोळाशबृगलं परिहरन्तीत्यलीकयुर्वाचस्पतो नैमिषीयाणां दीक्षोपसत्सु ब्रह्मा स सह प्रसूतेऽच्छावाकीयां चकार ते होचुरस्मै वा इमं पुरा ब्रह्मभागं परिहराम कस्मा एनं परिहरामेति ते होचुरस्मा एवैनं परिहरतेति तत्तस्मै पर्यहरन्स एष ब्रह्मभाग एवाथो इळाभाजो वा इतरे चमसास्तस्मादच्छावाकाय पुरोळाशबृगलं परिहरन्ति चमसस्यैवापरीळतायै ॥ ४ ॥

अथैनमध्वर्युराहाच्छावाक वदस्व यत्ते वाद्यमित्यच्छावाकोपहवमिच्छस्वेत्येवैनं तदाहाच्छा वो अग्निमवस इत्याग्नेयीरन्वाहाऽऽग्नेयं प्रातः सवनं ता वा अनुष्टुभो भवन्ति गायत्री वै सा याऽनुष्टुब्गायत्रमग्नेश्छन्दस्ता वै तिस्रो भवन्ति त्रिवृद्वा अग्निरङ्गारार्चिर्धूम इत्युत्तमायै तृतीये वचने प्रणवेन निगदमुपसंदधाति यजमानहोतरध्वर्यो अग्नीद्ब्रह्मन्पोतर्नेष्टरुतोपवक्तरिति प्रशास्ता वा उपवक्ताऽपिबत्सचाभ्युदितमुपवक्ता जनानामितीषेषयध्वमूर्जाऽर्जयध्वमित्यन्नं वा इषमन्नमूर्जमन्नेन

से आया। इसलिये इस प्रदेश में अवस्थित अच्छावाक आह्वान की कामना करता है। वे कहते हैं 'अच्छावाक के लिये क्यों वे पुरोडाश का एक अंश रखते हैं ?' अलीकयु वाचस्पत नैमिषीयों के दीक्षा और उपसदों में ब्रह्मा थे। सवन के समाप्त होने पर उन्होंने अच्छावाक (कृत्य) को सम्पन्न किया। उन्होंने कहा—'अब से हमने ब्रह्मा का भाग उनके लिये रखा क्योंकि किसके लिये हम इसे रखें।' तदनन्तर उन्होंने कहा—आप लोग उसके लिये इसे रखें। उन्होंने उसके लिये उसे रखा। यह ब्रह्मा का अंश है। और अन्य चमस यज्ञान्न में भागी होते हैं। अतः वे चमसों को यज्ञान्न न पाने के लिये वे पुरोडाश का टुकड़ा (अंश) रखते हैं।

२८.५ तदनन्तर अध्वर्यु उससे कहता है—'हे अच्छावाक ! तुम्हें जो कहना हो उसे कहो।' इससे निश्चय ही वह उससे कहता है—हे अच्छावाक ! निमन्त्रण की आकांक्षा करो।' 'अच्छा वो अग्निमवसे' (ऋ० ५.२५.१ : हे अग्नि ! इधर हमारी सहायता के लिये) अग्नि को उद्दिष्ट इन मन्त्रों का पाठ करता है। प्रातःसवन अग्नि से सम्बद्ध है। ये अनुष्टुभ् मन्त्र हैं। अनुष्टुभ् गायत्री है। अग्नि का छन्द गायत्री है। वे तीन हैं। अग्नि त्रिवृत् है—अङ्गार, लपट और धूम। तृतीय वचन (कथन, पाठ) में अन्तिम मन्त्र के प्रणव से निगद को संयुक्त करता है—'हे यजमान ! हे होता ! हे अवर्ध्यु ! हे अग्नीध्र ! हे ब्रह्मन् ! हे पोता !, हे नेष्टा !, और आप उपवक्ता ! भी।' उपवक्ता प्रशास्ता है ! यह ऋचा 'उपवक्ता जनानाम्' (ऋ० ४.९.५b : मनुष्यों के उपवक्ता) में कहा गया है। (वह कहता है)—'इषेषयध्वमूर्जोर्जयध्वम्' (शां०श्रौ०सू० ७.६.३ : शक्ति से शक्ति सम्पन्न तथा बल से बलसंपन्न हों)। अन्न इष है। अन्न ऊर्ज है। अन्न से आप संयुक्त हों।' यह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समुक्षध्वमित्येवैनं तदाहनि वो जामयो जिहतान्यजामय इति यच्च जामिर्यच्चा-जामिस्तद्वो निजिहतामित्येवैनं तदाह तदेतदृचाऽभ्युदितम् ॥ ५ ॥

जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रूनिति नि सपत्ना यामनि बाधितास इति निहता वः सपत्नाः समरण इत्येवैनं तदाह जेषथाभीत्वरीं जेषथाऽभीत्वर्या इति सेना वा अभीत्वरी सेनया सेनां जयतेत्येवैनं तदाह श्रवद्व इन्द्रः श्रृणवद्वो अग्निरिति श्रृणोतु न इन्द्रः श्रृणोत्वग्निरित्याशिषमेव तद्वदते प्रस्थायेन्द्राग्निभ्यां सोमं वोचतोपो अस्मान्ब्राह्मणान्ब्राह्मणा ह्वयध्वमिति सर्वेष्वेवैतदुपहवमिच्छत उपहवमयं ब्राह्मण इच्छतेऽच्छावाको वेत्यध्वर्युराह तं होतरुपह्वयस्वेति तं होतोपह्वयते स हि तेषां श्रेष्ठी भजतेऽयं वै श्रेष्ठ्युपह्वयते स उपहूत इति ह स्माऽऽह ॥ ६ ॥

प्रत्यस्मै पिपीषत इत्यच्छावाक उन्नीयमानायान्वाह ता वै चतस्रो भवन्ति

वह कहता है। (वह कहता हैं) 'नि वो जामयो जिहतां न्यजामयः' (शा० श्रौ० सू० ७.६.३ : आपको जामि (संबन्धी) और अजामि (असंबन्धी) समर्पित हों) इस प्रकार वह उनसे कहता है—'जो कुछ सम्बन्धी हैं और जो कुछ असम्बन्धी हैं वे आपको समर्पित हों (आप के अनुकूल हों)'। यह एक ऋचा में भी कहा गया है 'जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्' (ऋ० ४.४.५d : सम्बन्धी और असम्बन्धी शत्रुओं को नष्ट करो)।

२८.६ 'जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्' (ऋ० ४.४.५d : सम्बन्धी या असम्बन्धी सभी शत्रुओं का दमन करो)। 'नि सपत्ना यामनि बाधितासः' (शा० श्रौ० सू० ७.६.३ : मार्ग में दबाये गये शत्रु) ऐसा वह कहता है। इस प्रकार वह उनसे कहता है कि 'आपके शत्रु युद्ध में विजित हुये'। 'जेषथाभीत्वरीं जेषथाभीत्वर्याः' (शां०श्रौ०सू० ७.६.३ : आक्रमण कर रहे को जीतो, आक्रमण कर रहे का जोतो) (यह वह कहता है)। आक्रमण सेना कर रही है। इस प्रकार वह उससे कहता है—सेना के द्वारा सेना को जीतो।' 'श्रवद्व इन्द्रः श्रृणवद्वो अग्निः (शां० श्रौ० सू० ७.६.३ : आप की इन्द्र सुने, आपकी अग्नि सुनें) यह कहता है। इस प्रकार वह इस आशिष का कथन करता है। 'प्रस्थायेन्द्राग्निभ्यां सोमं वोचतोपो अस्मान् ब्राह्मणान् ब्राह्मणा ह्वयध्वम्' (शां० श्रौ० सू० ७.६.३ : हे ब्राह्मणो! खड़ा होकर इन्द्र तथा अग्नि को सोम का कथन करें और हम ब्राह्मणों का आह्वान करें) इस प्रकार वह सभी से आह्वान (उपहव) की कामना करता है। अध्वर्यु कहता है—'हे अच्छावाक! यह ब्राह्मण निमंत्रण चाहता है। हे होता! आप उन्हें निमंत्रित करें।' उसे होता आहूत करता है क्योंकि वह उनमें श्रेष्ठ अंशभागी है। (कौषीतकि का) कथन है कि 'उनका प्रमुख जिसे आहूत करे वह आहूत है।'

२८.७ 'प्रत्यस्मै पिपीषते' (ऋ० ६.४२.१ : उनके प्रति पान की इच्छा करता है) अच्छावाक भरे जा रहे (चषकों) के लिये पाठ करता है। वे चार हैं। यह समस्त (विश्व)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चतुष्टयं वा इदं सर्वमस्यैव सर्वमस्याऽऽप्त्यै ता वा अनुष्टुभो भवन्ति संशंसायै बृहत्युत्तमा भवति श्रीर्वै बृहती श्रियामेव तदन्ततः प्रतितिष्ठति प्रातर्याविभिरागत-मित्यैन्द्राग्न्या यजत्यैन्द्राग्नं ह्यस्योक्थं भवति गायत्र्या गायत्रं प्रातःसवनमनुवषट्-करोत्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अनवानं प्रातःसवने यजेयुरिति ह स्माऽऽह पैङ्ग्यः क्षिप्रं देवेभ्यो हविः प्रदास्याम इत्यर्धर्चश इति कौषीतकिरेतद्वै छन्दसां पर्व यदर्धर्चः पर्वश एव तद्देवेभ्यो हविः प्रयच्छन्ति ॥ ७ ॥

अथात ऋतुप्रैषाणामेव मीमांसा कण्वो हैतानृतुप्रैषान्ददर्श मेधातिथिर्याज्याः काण्वो ह वै मेधातिथिस्तेन तौ मृत्युं पाप्मानमपजिघ्नाते स य इच्छेन्मृत्युं पाप्मा-नमपहन्यामित्येताभिर्यजेत् ॥ ८ ॥

पुरुषो वै यज्ञस्तस्य वागेवाऽऽज्यं सा वा एकैव भवति तस्मादेकदेवत्यमाज्यं शंसति प्राणाः प्रउगन्ते वा इमे बहवः प्राणास्तस्माद्बह्व्यो देवताः प्रउगे शस्यन्ते बाहू मैत्रावरुणश्चाच्छावाकश्च तौ वै द्विगुणौ भवतस्तस्मात्तौ प्रातःसवने द्विदेवत्याः शंसत इयमेव वेना सेवनी मध्यं ब्राह्मणाच्छंसी तस्माद्ब्राह्मणाच्छंसी प्रातःसवन

चतुर्विध हैं। निश्चय यह समस्त (विश्व) की प्राप्ति के लिये है। साथ पाठ के लिये वे अनुष्टुभ् मंत्र हैं। अन्तिम बृहती है। बृहती श्री है। इस प्रकार अन्त में वह श्री (समृद्धि) में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। क्योंकि उसका उक्थ इन्द्र और अग्नि को कहा गया है अतः 'प्रातर्याविभिरागतम्' (ऋ० ८.३८.७ : प्रातः चलने वालों के साथ आवें) इस इन्द्र तथा अग्नि को कहे मंत्र से यजन करता है। यह गायत्री में है। प्रातःसवन गायत्री से संबद्ध है। वह आहुति की शान्ति तथा प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट्कार करता है। पैङ्ग्य ने यह सोचकर कि 'हम देवताओं को क्षिप्रता से दें' कहा है कि प्रातः सवन में विना श्वास लिये यजन (याज्या मंत्र का पाठ) करे। कौषीतकि का कहना हैं अर्धर्च से (आधी ऋचा पर श्वास ले)। अर्धर्च छन्द का पर्व (जोड़-गांठ) है। इस प्रकार वह पर्व से देवताओं को हवि देता है।

२८.८ इसके बाद ऋतुओं (के यज्ञों) के प्रैषों का विवेचन आता है। कण्व ने ऋतुओ के इन प्रैषों को देखा और मेधातिथि ने याज्या मंत्रों को (देखा)। मेधातिथि कण्व के वंशज (काण्व) हैं। इनसे उन दोनों ने पाप और मृत्यु को नष्ट किया। जो यह कामना करे कि 'मै मृत्यु, पाप को दूर करूँ' वह इनसे यजन करे।

२८.९ यज्ञ पुरुष है। आज्य उसकी वाक् (वाणी) है। वाक् एक ही (अकेली) है। इसलिये वह आज्य को केवल एक देवता के साथ ही पढ़ता है। प्रउग प्राण (श्वास) है। प्राण बहुत से हैं। इस लिये प्रउग के समय बहुत देवता कहें (पढ़े) जाते हैं। मैत्रावरुण तथा अच्छावाक दो बाहें हैं। ये द्विगुण हैं। इसलिये वे प्रातःसवन में दो देवताओं वाले मंत्रों का पाठ करते हैं। 'ब्राह्मणाच्छंसी' नाभि के जोड़ की भाँति मध्य है। इसलिये

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एकदेवत्याः शंसत्यात्मा मध्यंदिनः स वा एक एव भवति तस्मान्मध्यंदिने होत्रा शंसिन एकदेवत्याः शंसति होता च निष्केवल्यमुरू मैत्रावरुणश्चाच्छावाकश्च तौ वै द्विगुणौ भवतस्तस्मात्तौ तृतीयसवने द्विदैवत्याः शंसत इदमेव शिश्नं मध्यं ब्राह्मणाच्छंसी तस्माद्द्विरूपं जायते स्त्री च पुमांश्च तस्माद्ब्राह्मणाच्छंसी तृतीय-सवने द्विदेवत्याः शंसति ब्राह्मणाच्छंसी भूयिष्ठाः शंसत्यात्मा वै ब्राह्मणाच्छंसी तस्मादिदमात्मनो मध्यं स्थविष्ठम् ॥ ९ ॥

अथ यदावन्तः स्तोत्रियानुरूपा भवन्ति तत्प्रथमस्याह्नो रूपं वैश्वामित्रौ मैत्रावरुणस्य चाच्छावाकस्य च स्तोत्रियौ भवतो वासिष्ठौ नवर्चौ पर्यासावन्तावे-वैतत्सदृशौ कुर्वतः स्तोत्रियाञ्च्छस्त्वा श्वः स्तोत्रियाननुरूपान्कुर्वन्त्यहीनरूपताया अहीनसंतत्या अहरेव तदह्नोऽनुरूपं कुर्वन्त्यहर्वाह्नोऽनुरूपं तदाहुः कस्मात्स्तुतमनु-शस्यते कस्मात्स्तोममतिशंसंतीति न ह वै तत्स्तुतं भवति यन्नानुशस्यते न स स्तोमो देवान्गछति यो नातिशस्यते तस्मात्स्तुतमनुशस्यते तस्मास्तोममतिशंसन्ति

प्रातःसवन में ब्राह्मणाच्छंशी एक देवता के मंत्रों का पाठ करता है। मध्यंदिन सवन आत्मा (शरीर) है। यह एक है। इसलिये मध्यन्दिन सवन में होत्रा के पाठकर्ता (होत्राशंसिनः) एक देवता के मंत्रों का पाठ करते हैं तथा होता स्वयं निष्केवल्य का पाठ करता है। मैत्रावरुण तथा अच्छावाक दोनों ऊरु हैं। ये द्विगुण हैं। अतः वे तृतीय सवन में एक देवता के मंत्रों का पाठ करते हैं। ब्राह्मणाच्छंसी यह मध्य का शिश्न (लिङ्ग) है। यहाँ से पुरुष तथा स्त्री दो रूप उत्पन्न होते हैं। इसलिये तृतीय सवन में ब्राह्मणाच्छंसी दो देवताओं के मन्त्रों का पाठ करता है। ब्राह्मणाच्छंसी अधिकांश (मंत्रों) का पाठ करता है। बाह्मणाच्छंसी आत्मा (शरीर) है। इसलिये शरीर का यह मध्यभाग स्थविष्ठ (सबसे मोटा) है।

२८.१० जो स्तोत्रिय और अनुरूप 'आ' पद युक्त हैं वह प्रथम दिन का रूप है। मैत्रावरुण तथा अच्छावाक के स्तोत्रिय विश्वामित्र के हैं (ऋ० ३.६२.१६-१८; ३.१२. १-३; द्र० शां० श्रौ० सू० १२.१.३,५) और नव मन्त्रों वाले दो समाप्ति (पर्यास) वसिष्ठ के हैं (ऋ० ७ ६६.७-९ तथा ७.९४.७-९; द्र०शा०श्रौ०सू० १२.२.४,८)। इस प्रकार ये दोनों, दोनों को समान बनाते हैं। स्तोत्रियों का पाठ करके वे दूसरे दिन के स्तोत्रियों को अनुरूप बनाते हैं'। यह अहीनरूपता की प्राप्ति तथा अहीन के सातत्य के लिये हैं। इस प्रकार वे दिनको दिन के अनुरूप (समान) बनाते हैं। दिन वस्तुतः दिन के अनुरूप हैं। वे कहते हैं—'क्यों स्तुत की अनुशंसा (स्तोत्र के बाद पाठ) किया जाता है? क्यों वे स्तोम के बाहर पाठ करते हैं।' वस्तुतः वह स्तुत नहीं है जो बाद में पाठ वाला नही है। वह स्तोम देवताओं को नहीं जाता जो अधिक (बाहर) पाठ वाला नहीं है। इसलिये स्तोम के बाद पाठ किया जाता है। इसलिये स्तोम के बाहर (अधिक) पाठ किया

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चतुराहावानि शस्त्राणि पशवो वा उक्थानि चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्या ऐकाहिका उक्थयाज्याः प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठित्या एवानुवषट्कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥१०॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ॐ अथ यत्र ह तत्सर्वचरौ देवा यज्ञमतन्वत तान्हार्बुदः काद्रवेयो माध्यंदिन उपोदासृप्योवाचैका वै वेयं होत्रानुक्रियते ग्रावस्तोत्रिया तां वोऽहं करवाण्युपमाह्वयध्वमिति ते ह तथेत्यूचुस्तं होपजुह्विरे स एता ग्रावस्तोत्रिया अभिरूपा अपश्यत्प्रैते वदन्तु प्रवयं वदामेति प्रवदत्सु प्रहिते वदन्त्यथ यत्र बृहद् बृहदिति बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेति तत्र वि षू मुञ्चा सुषुवूषो मनीषामिति विमुञ्च सुता वै चतुर्दश भवन्ति दश वा अङ्गुलयश्चत्वारो ग्रावाण एतदेव तदभिसंपद्यन्ते ता वै जगत्यो भवन्ति जागता वै ग्रावाणोऽथ यत्त्रिष्टुभा परिदधाति तेनो माध्यंदिने त्रिष्टुबुपाप्ता स वै तिष्ठन्नभिष्टौति तिष्ठन्तीव वै ग्रावाणः स वा उष्णीष्यपि नद्धाक्षोऽभितुष्टाव

जाता है। शस्त्रों में चार आहाव (आह्वान) हैं। उक्थ पशु हैं। पशु चतुर्गुण और चतुष्पाद हैं। इस प्रकार वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। उक्थों के याज्या मन्त्र एक दिन के कृत्य के हैं। एकाह (कृत्य) प्रतिष्ठा है। इस प्रकार यह प्रतिष्ठा के लिये है। वे आहुति की शान्ति और आहुति की प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट्कार करते हैं।

शाङ्खायन ब्राह्मण में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

२९.१ जब देवताओं ने सर्वचरु में यज्ञ किया तो माध्यन्दिन सवन में काद्रवेय अर्बुद उनके पास आया और कहा—'एक होता ग्रावस्तुत का कार्य आप लोगों के लिये नहीं हो रहा है। उसे मैं आप लोगों के लिये करूँगा। आप हमें आहूत करें।' उन्होंने कहा 'ऐसा ही हो।' उन्होंने उसे आहूत किया। उसने ग्रावस्तुत के इन अभिरूप मन्त्रों को देखा—'प्रैते वदन्तु' 'प्रवयं वदामि' (वे बुलावें, हम बुलावें) क्योंकि वे वास्तव में बुलाते हैं। वे जब 'बृहद् बृहद्' 'बृहद् वदन्ति मन्दिरेण मन्दिना' (ऋ० १०.९४.४ : वे मदकारी (पान के बल) से जोर से कहते हैं) कहते हैं। वह बृहद् शब्द युक्त है; और जब वे मुक्त करते हैं तो—वि षू मुञ्चा सुषुवूषो मनीषाम् (ऋ० १०.९४.१४c : जो अभिषुत हुआ उसकी मनीषा (बुद्धि) को छोड़ो) को कहते हैं। ये चौदह हैं। अङ्गुलियाँ दश हैं। ग्रावा चार हैं। वे इस संख्या के (चौदह) होते हैं। ये जगती छन्द में हैं। ग्रावा जगती से संबद्ध हैं। और जो वह त्रिष्टुभ् (ऋ० १०.९४.१४) से समाप्त करता है उससे मध्यन्दिन सवन में त्रिष्टुभ् प्राप्त होता है। वह खड़ा होकर स्तुति करता है। ग्रावा मानों स्थिर है। वह उष्णीष (पगड़ी) पहन कर तथा बँधी आखों से

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तस्माद्वा अप्येतर्ह्युष्णीष्येव ग्राव्णोऽभिष्टौत्यथो खल्वाहुश्चक्षुरियाय स सर्प आस तदृत्विजो विषमपीयाय स एताः पावमानीर्विपापवदनीरभितुष्टाव तद्यत्पावमानी-र्विषापवदनीरभिष्टौति यज्ञस्यैव शान्त्यै यजमानानां च भिषज्यायै ॥ १ ॥

अथ स्तुते पवमाने दधिघर्मेण चरन्त्यत्र कालो हि भवत्यथो सवनस्यैव सरस-ताया अथ हविष्पङ्क्त्या चरन्ति तस्या उक्तं ब्राह्मणं वासिष्ठीर्मध्यंदिन उन्नीय-मानेभ्योऽन्वाह वसिष्ठो ह मध्यंदिन इन्द्राय सोमं प्रोवाच तावा आवत्यो हरि-वत्यो भवन्ति पुरोनुवाक्यारूपेण ता वा ऐन्द्रयस्त्रिष्टुभो भवन्त्यैन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यं दिनं सवनं ता वै दशान्वाह दशान्वा अत्र चमसानुन्नयन्त्यथ होत्राः संयजन्ति तासामुक्तं ब्राह्मणमैन्द्रीभिस्त्रिष्टुब्भिर्मध्यंदिने प्रस्थितानां यजन्त्यैन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनमनुवषट्कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथेळाथ होतृचमसस्तस्योक्तं ब्राह्मणं हुतेषु दाक्षिणेषु दक्षिणा नीयन्ते तासामुक्तं ब्राह्मणं वैश्वामित्रीं मरुत्वतीयग्रहस्य पुरोनुवाक्यामन्वाह तस्या उक्तं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

स्तुति करता है। इस लिये इस समय (ऋत्विक्) पगड़ी पहन कर ग्रावों की स्तुति करता है। और वे कहते हैं 'चक्षु आया'; वह सर्प था। इस प्रकार ऋत्विजों के पास विष आया। उसने (सोम से) संबद्ध पावनकारी तथा विष दूर करने वाले इन मंत्रों का स्तुति में प्रयोग किया (द्रा० शां० श्रौ० सू० ७.१५.१५)। जो वह पावनकारी तथा विष दूर करने वाले सोम से संबद्ध मंत्रों का प्रयोग करता है वह यज्ञ की शान्ति तथा यजमानों की भिषज्या (चिकित्सा) के लिये है।

२९.२ पावन स्तुति हो जाने पर (पवमान के गान हो जाने पर) वे दुग्ध के पात्र से कार्य करते हैं क्योंकि इसका यह समय है। यह सवन की सरसता के लिये है। तदनन्तर पाँच हविष के यज्ञ को करते हैं। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मध्यन्दिन सवन में भरे जा रहे चमसों के लिये वह वसिष्ठ कृत मंत्रों (ऋ० ७.२१ द्र० शां० श्रौ० सू० ७.१७.८) का पाठ करता है। वसिष्ठ ने ही मध्यंदिन सवन में इन्द्र के लिये सोम को कहा। वे दो मंत्र पुरोनुवाक्या रूप में 'आ' शब्द युक्त तथा 'हरि' शब्द युक्त हैं। वे त्रिष्टुभ् मन्त्र हैं क्योंकि मध्यन्दिन सवन इन्द्र तथा त्रिष्टुभ् से संबद्ध है। वह दश पाठ करता है; दस चमस यहाँ भरे जाते हैं। अनन्तर होत्रा के साथ-साथ यजन करते हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। मध्यन्दिन सवन में प्रस्थितों के लिये वे त्रिष्टुभ् मंत्रों से इन्द्र का यजन करते हैं क्योंकि मध्यन्दिन सवन इन्द्र तथा त्रिष्टुभ् से संबद्ध है। वे आहुतियों को शान्ति तथा प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट्कार करते हैं। तदन्तर इला (यज्ञान्न) तथा होतृ चमस है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। दक्षिणा आहुतियों के हवन करने पर दक्षिणा ग्रहण की जाती हैं। उनका ब्राह्मण कहा जा चुका है (द्र० शां० श्रौ० सू० ७.१६)। वह विश्वामित्र कृत एक मंत्र (ऋ० ३.५१.७; द्र० शां० श्रौ० सू० ७.१८) का पाठ करता है। यह मरुतों के चमस के लिये पुरोनुवाक्या के मंत्र के रूप में होता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वामदेव्यं मैत्रावरुणस्य पृष्ठं भवति शान्तिर्वै भेषजं वामदेव्यं शान्तिरेवैषा भेषजं यज्ञे क्रियते नौधसं ब्राह्मणाच्छंसिनस्तद्वै निधनवद्भवति प्रतिष्ठा वै निधनं प्रतिष्ठित्या एव कालेयमच्छावाकस्य तद्वा ऐळं बृहतीषु कुर्वन्ति पशवो वा इळा पशवो बृहतीर्बार्हताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्या अथैतान्त्सामप्रगाथांछंसन्ति तथैषां होतुर्न्यायादनितं भवति पञ्चर्चे मैत्रावरुणस्य चाच्छावाकस्य चोक्थमुखे भवत एकादशर्चौ पर्यासावन्तावेवैतत्सदृशौ कुर्वतो विश्वामित्रस्य च वामदेवस्य च मैत्रावरुणः शंसति वामदेवो ह्यस्य पर्यासो भवति विश्वामित्रस्य च वसिष्ठस्य च ब्राह्मणाच्छंसी वासिष्ठो ह्यस्य पर्यासो भवति भरद्वाजस्य च विश्वामित्रस्य चाच्छावाको वैश्वामित्रो ह्यस्य पर्यासो भवति ते वै चतुर्णामृषीणां शंसन्त्याचतुरं वै द्वन्द्वं मिथुनं प्रजननं प्रजात्यै वैश्वामित्रे मैत्रावरुणस्य च ब्राह्मणाच्छंसिनश्चोक्थमुखे भवतः पर्यासोऽच्छावाकस्य वाग्वै विश्वामित्रो वाचैव तत्सर्वतो यज्ञं तन्वत इत्येतद्ब्राह्मणं प्रायणीयोदयनीययोरैकाह्यं च भवति ॥ ३ ॥

वामदेव्यं मैत्रावरुणस्याहरहः पृष्ठं भवति शान्तिर्वै भेषजं वामदेव्यं शान्तिरेवैषा भेषजमहरहर्यज्ञे क्रियतेऽथैतान्कद्वतः प्रगाथानहरहः शंसन्ति को वै प्रजा-

---

२९.३ मैत्रावरुण का पृष्ठ्य वामदेव्य है। वामदेव्य शान्ति और भेषज है। इस प्रकार यज्ञ में शान्ति और भेषज किया जाता है। ब्राह्मणाच्छंशी नौधस है। वह निघन (अन्त) की भाँति होता है। निघन (अंत) प्रतिष्ठा है। यह प्रतिष्ठा के लिये है। कालेय अच्छावाक का है। उसे बृहती छन्दों पर ऐळ के रूप में करते हैं। इला पशु है। पशु बृहती से संबद्ध है। इस प्रकार यह पशुओं की प्राप्ति के लिये है। वे सामों के प्रगाथों का गान करते हैं। इस प्रकार वे होता के न्याय (नियम) से पृथक् नहीं होते। मैत्रावरुण तथा अच्छावाक के उक्थ का प्रारम्भ पाँच मन्त्रों का है और समाप्ति ग्यारह मन्त्रों का है। इस प्रकार वे दोनों छोरों को समान करते हैं। मैत्रावरुण विश्वामित्र (ऋ० ३.४८) तथा वामदेव (ऋ० ४.१९) के मंत्रों का पाठ करता है क्योंकि वामदेव का पृष्ठ (समाप्ति) होता है। ब्राह्मणाच्छंशी विश्वामित्र (ऋ० ३.३४) तथा वसिष्ठ (ऋ० ७.२३) के मन्त्रों का पाठ करता है क्योंकि समाप्ति वसिष्ठ का है। अच्छावाक भारद्वाज (ऋ० ६.३०) तथा विश्वामित्र (ऋ० ३.३६) के मंत्रों का पाठ करता है क्योंकि इसकी समाप्ति विश्वामित्र की है। वे चार ऋषियों के मंत्रों का पाठ करते हैं। द्वन्द्व, मिथुन और प्रजनन चार (कोटि) तक है। यह प्रजनन के लिये है। मैत्रावरुण और ब्राह्मणाच्छंसी के उक्थ के प्रारम्भ विश्वामित्र कृत हैं और अच्छावाक की समाप्ति भी वही है। विश्वामित्र वाक् है। इस प्रकार वाक् से चारों ओर वे यज्ञ को विस्तृत करते हैं। यह प्रायणीय (प्रारम्भिक) तथा उदयनीय (समाप्ति) के कृत्यों तथा एकाह के रूप का ब्राह्मण (व्याख्यान) है।

२९.४ मैत्रावण का पृष्ठ प्रतिदिन वामदेव का है। वामदेव्य शान्ति एवं भैषज है। इस प्रकार प्रतिदिन यज्ञ में शान्ति तथा भेषज किया जाता है। तदनन्तर वे प्रतिदिन 'कत्' वत् ('कौन' युक्त) प्रगाथों का शंसन करते हैं। 'कः' (कौन ?) प्रजापति हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पतिः प्रजापतावेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्त्यथो अशान्तानि वा एते अहीन-सूक्तान्यन्यान्यन्यान्युपयुञ्जाना यन्ति तान्येवैतैः कद्वद्भिः प्रगाथैरहरहः शमयन्तो यन्त्यथैतास्तन्त्र्यास्त्रिष्टुभ उक्थ्यप्रतिपदोऽहरहः शस्यन्ते बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्येऽहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्त्यप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानिति सौकीर्ती मैत्रावरुणोऽपनुत्तवतीं पाप्मन एवापनुत्यै यदार्षये सूक्ते तदार्षये उक्थमुखीये इतरयोर्ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्म्युरुं नो लोकमनुनेषि विद्वानित्युक्थमुखीये ब्रह्मवत्युरुवत्यौ ब्रह्मणि चैव तदुरुगाये चाहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ॥ ४ ॥

अथैतानि शिल्पानि मध्यमे त्र्यहे शस्यन्ते शिल्पवान्ह्येष मध्यमस्त्र्यहो भवति विराजश्च वै मध्यमश्चतुर्थेऽहन्वैराजं हि चतुर्थमहः पङ्क्तयश्च महापङ्क्तयश्च पञ्चमेऽहन्पाङ्क्तं हि पञ्चममहरतिच्छन्दसः षष्ठेऽहन्नातिच्छन्दसं हि षष्ठमहरथो अपृष्ठं वा एतद्यदन्यत्र बृहत्यै क्रियते च्यवन्त उ वाऽत्र बृहत्यै पृष्ठानि शिल्पेष्वेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्त्यथो अन्तरिक्षं वा एष मध्यमस्त्र्यहो नाऽऽरम्भणं वा

इस प्रकार प्रतिदिन प्रजापति में प्रतिष्ठा प्राप्त कर वे चलते हैं। और वे अहीन (नामक) विविध प्रकारके अशान्त सूक्तों का प्रयोग करते हैं। वे निश्चयही कद्वत् (कौन युक्त) प्रगाथों (द्र०शां०श्रौ०सू० ७.२२.३) से उन्हें प्रतिदिन शान्त करते हैं। फिर उक्थ के प्रतिपत् के रूप में ये नियमित (तन्त्र्य) त्रिष्टुभ् प्रतिदिन पढ़े जाते हें। त्रिष्टुभ् बल तथा वीर्य है। इस प्रकार प्रतिदिन वे बल तथा वीर्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहते हैं। मैत्रावरुण सुकीर्ति के 'अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रान्' (ऋ० १०.१३१.१ : हे इन्द्र ! हमारे सभी शत्रुओं को दूर करो), इस अपनुत्तवती (दूर करो) मंत्र का पाठ करता है। यह पाप को ही दूर करने के लिये है। दो सूक्तों के ऋषियों के ही समान दूसरे दो ऋषियों के दो उक्थमुख (उक्थ का प्रारम्भ) भी है। ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्यि (ऋ० ३.३५.४ : स्तुति से युक्त उनको मैं स्तुति से संयुक्त करता हूँ) तथा 'उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्' (ऋ० ६.४७.८ हे विद्वन् ! हमें विस्तृत लोक को ले चलो) ये ब्रह्म शब्द युक्त तथा 'उरु' शब्द युक्त उक्थ के प्रारम्भ हैं। इस प्रकार प्रतिदिन वे ब्रह्म तथा उरुगाय (विस्तृत गमन वाले) में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुये चलते हैं।

२९.५ तदनन्तर मध्य तीन दिनों में शिल्पों का पाठ होता है (शिल्पों के कृत्य के लिये द्र० शां० श्रौ० सू० १२.३.१५) क्योंकि तीन दिनों का मध्य वाला समूह शिल्पों का है। विराज तथा विमद के मंत्र (ऋ० ७.३१.१०-१२)। चतुर्थ दिन पढ़े जाते हैं क्योंकि चतुर्थ दिन विराज से संबद्ध है। पांचवें दिन पङ्क्ति तथा बृहत् पंक्ति मंत्रों का प्रयोग होता है क्योंकि पञ्चम दिन पङ्क्ति से संबद्ध है। छठें दिन अतिच्छन्दस् (द्र० शां० श्रौ० सू० १२.३.१२;४.१६.५.१५) मंत्रों का प्रयोग होता है क्योंकि छठाँ दिन अतिच्छन्दस् से संबद्ध है। और जो बृहती के बिना किया जाता है वह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इदमन्तरिक्षमप्रतिष्ठानं शिल्पेष्वेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति तानि वै तृचानि भवन्ति त्रिवृद्वै शिल्पं नृत्यं गीतं वादितमिति तेष्वेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति मा चिदन्यद्विशंसत मा भेम मा श्रमिष्मेति मैधातिथं मैत्रावरुणस्य दशमेऽहन्पृष्ठं भवति न हि तस्य प्राग्दशमादह्नो बृहतीषु पृष्ठं भवत्येकस्था वै श्रीः श्रीर्वै बृहती श्रियामेव तदन्ततः प्रतितिष्ठति द्विपदाः शस्त्वैकाहिकानि शंसन्ति प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठा दशममहः प्रतिष्ठानीयं वै छन्दो द्विपदाः प्रतिष्ठित्या एव ॥ ५ ॥

नौधसं ब्राह्मणाच्छंसिनस्तस्योक्तं ब्राह्मणं गायत्रीषु ब्रह्मणाच्छंसिने प्रणयन्ति षष्ठेऽहन्रैवतस्यैवाह्नो रूपेणाहीनरूपताया अहीनसंतत्या अहीनान्सर्वान्कामानाप्नुम इति न ह्यत्र किं चन हीयत ऊदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येत्यहरहः पर्यास ऋतवो वा उदुब्रह्मीयमृतुष्वेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ता वै षड्भवन्ति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव तदहरहः प्रतितिष्ठिन्तो यन्ति ॥ ६ ॥

पृष्ठ नहीं है। यहाँ पृष्ठ बृहती से गिर (पृथक् हो) जाते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन वे शिल्पों पर प्रतिष्ठित होकर चलते हैं। वे तृच हैं; शिल्प भी त्रिवृत् है—नृत्य, गीत और वाद्य। इस प्रकार अनुदिन वे इनमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। मित्रावरुण का पृष्ठ है—मा चिदन्यद् वि शंसत (ऋ० ८.१.१७२ : अन्य की प्रशंसा न करो); 'मा भेम मा श्रमिष्म' (ऋ० ८.४.७ : हम भीत और परेशान न हों)। यह दसवें दिन मेधातिथि कृत है क्योंकि उनका पृष्ठ दसवें दिन से पूर्व बृहती पर नहीं होता। श्रीः एकस्थ (एकान्त) है। बृहती श्री है। इस प्रकार अन्त में वह श्री में प्रतिष्टित होता है। द्विपदा मंत्रों (द्र० शां० श्रौ० सू० १२.३.२३;४.२४;५.२३) का पाठ कर वे एकाह के सूक्त का पाठ करते हैं। एकाह प्रतिष्ठा है। दसवाँ दिन प्रतिष्ठा है। द्विपदा मंत्र प्रतिष्ठा प्राप्त करने योग्य हैं। इस प्रकार वे प्रतिष्ठा के लिये हैं।

२९.६ नौधस ब्राह्मणाच्छंशी का पृष्ठ है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। छठें दिन इस दिन रैवत के रूप (प्रतीक) से वे गायत्री मंत्रों में ब्राह्मणाच्छंशी को आगे करते हैं।[1] यह अहीनों के रूप तथा सातत्य प्राप्ति के लिये है क्योंकि वे सोचते हैं कि 'अहीन (अन्यून) हम सभी कामनाओं को प्राप्त करें' क्योंकि यहाँ कुछ भी कम नहीं होता, उन्होंने उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्य (ऋ० ७.२३.१ : प्रतिष्ठा की कामना से स्तुतियाँ की हैं) यह प्रतिदिन समाप्ति है। 'उदु ब्रह्मीय' सूक्त ऋतुयें हैं। इस प्रकार प्रतिदिन वे ऋतुओं में प्रतिष्ठा प्राप्त करते चलते हैं। ये छः (मंत्र) हैं; ऋतुयें छः हैं। इस प्रकार प्रतिदिन वे ऋतुओं में प्रतिष्ठा प्राप्त करते चलते हैं।

---

१. ऋ० १.४.१-६; रैवत (भी गायत्री में है)—ऋ० १.३०.१३-१५; ८.२.१३-१५।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कालेयमच्छावाकस्य तस्योक्तं ब्राह्मणं षट्पदास्वच्छावाकाय प्रणयन्ति षष्ठेऽहन्षष्ठस्यैवाह्नो रूपेणाभितष्टेव दीधया मनीषामित्यहरहः पर्यासः प्रजापतिर्वा अभितष्टीयं प्रजापतावेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति तदनिरुक्तं भवत्यनिरुक्त उ वै प्रजापतिः प्रजापतावेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति सा वा अत्रैकैव निरुक्तैक उ वै प्रजापतिः प्रजापतावेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति तेषामेतान्यच्युतानि भवन्ति पृष्ठं मैत्रावरुणस्य पर्यासावितरयोस्तेष्वेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ॥ ७ ॥

दशर्चं भवति दशेमे प्राणाः प्राणानेव तद्यज्ञे च यजमानेषु च दधाति द्विषूक्ता होत्राणां मध्यंदिनाद्युक्तस्यैव होतुः प्रत्युद्यमाया अथो संवत्सरो वै होता ऋतवो होत्राशंसिनस्तद्यद् द्वन्द्वं समस्ता ऋतव आख्यायन्ते ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति तस्माद्द्विषूक्ताहोत्राणां मध्यंदिना अथो आत्मा वै होताऽङ्गानि होत्राशंसिनस्तद्यद्द्विगुणान्यङ्गानि भवन्ति तस्माद्द्विषूक्ताहोत्राणां मध्यंदिनाः स्तोमातिशंसं प्रातः सवनेषु शस्त्वाऽहीनसूक्तानि मध्यंदिनेषु शंसन्ति चतुर्विंशेऽभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रतीयेऽहन्नहीनो ह्येतान्यहान्यहीनसूक्तानि शस्त्वैकाहिकानि शंसन्ति

२९.७ कालेय अच्छावाक का (पृष्ठ) है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। छठें दिन वे छठें दिन के रूप (प्रतीक) से षट्पदा मंत्रों (ऋ० ८.९९.१,२; ८.६६ ७,८; शां० श्रौ० सू० १२.५.४) पर अच्छावाक को आगे करते हैं। 'अभि तष्टेव दीधया मनीषाम्' इत्यादि (ऋ० ३.३८ १-३ : बढ़ई की भाँति विचारपूर्वक एक स्तुति को) यह प्रतिदिन पर्यास (समाप्ति) है। अभितष्टीयम् सूक्त प्रजापति हैं। इस प्रकार वे प्रतिदिन प्रजापति में प्रतिष्ठा प्राप्त करते चलते हैं। वह सूक्त अनिरुक्त (विना निर्णीत देवता वाला) है। प्रजापति वे हैं जिनका नाम अनिरुक्त है। इस प्रकार वे प्रतिदिन प्रजापति में प्रतिष्ठा प्राप्त करते चलते हैं। केवल एक मंत्र में (ऋ० ३.३८.१०) देवता निरुक्त हैं। प्रजापति एक हैं। इस प्रकार प्रतिदिन वे प्रजापति में प्रतिष्ठित होते हैं। उनके ये अच्युत (अपरिवर्तनीय) होते हैं—मैत्रावरुण का पृष्ठ और अन्य दो के अन्त। इस प्रकार वे प्रतिदिन उनमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं।

१९.८ यह दश ऋचाओं का है। ये प्राण दश हैं। इस प्रकार वह यज्ञ तथा यजमानों में इन प्राणों को स्थापित करता है। होत्रकों का मध्य दिन (कृत्य) दो सूक्तों का है। यह होता के दो उक्थों के समतुल्यता के लिये है। और होता संवत्सर है। होत्राशंसी ऋतु हैं। और जो ऋतुयें द्वन्द्व (जोड़े) में एकत्र होकर ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त कही जाती हैं इसलिये होत्रकों के मध्य दिन कृत्य दो सूक्तों के हैं। और होता आत्मा (शरीर) है। होत्राशंसी अङ्ग हैं। अङ्ग जोड़े (द्वन्द्व) में हैं अतः होत्रकों के मध्यन्दिन (कृत्य) दो सूक्तों के हैं। प्रातः सवन में स्तोमों का अतिशंस (अधिकपाठ) पाठ कर चतुर्विंश, अभिजित्, विषुवन्त, विश्वजित् और महाव्रत दिनों पर मध्यन्दिन सवन में वे अहीन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पराञ्चीनि वा एतान्यहान्यनभ्यावर्तीनि भवन्ति तद्यदहीनसूक्तानि शस्त्वैकाहिकानि शंसन्ति प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठित्या एव पञ्च पञ्च सूक्तानि मैत्रावरुणः शंसति सर्वेषु च्छन्दोमेषु पशवो वै च्छन्दोमाः पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै चत्वारि चत्वारि ब्राह्मणाच्छंसो चाच्छावाकश्च पशवो वै च्छन्दोमाश्चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यै पञ्चाहावानि शस्त्राणि पशवो वा उक्थानि पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्या ऐकाहिका उक्थयाज्याः प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठित्या एवानुवषट्कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥ ८॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

ॐ वसूनां वै प्रातःसवनं रुद्राणां माध्यंदिनं सवनमादित्यानां तृतीयसवनं तद्यदादित्यग्रहेण तृतीयसवनं प्रतिपद्यते स्वयैव तद्देवतया प्रतिपद्यतेऽथोऽधीतरसं वा एतत्सवनं यत्तृतीयसवनमथैष सरसो ग्रहो यदादित्यग्रहस्तेनैव तत्तृतीयसवनं सरसं करोति त्रिष्टुभमादित्यग्रहस्य पुरोनुवाक्यामन्वाह तस्या उक्तं ब्राह्मणमथ

सूक्तों का पाठ करते हैं क्योंकि ये दिन अहीन (अन्यून) हैं। इन दिनों में अहीन सूक्तों का पाठ कर वे एकाह के (सूक्तों का) पाठ करते हैं। ये दिन पराङ्मुख होते हैं और लौटते नहीं। जो अहीन सूक्तों का पाठ कर एकाह का पाठ करते हैं (तो) एकाह (कृत्य) प्रतिष्ठा हैं। अतः ये प्रतिष्ठा के लिये हैं। समस्त छन्दोमों में मैत्रावरुण पाँच सूक्तों का पाठ करता है (द्र० शां० श्रौ० सू० १२.३.१७-१९)। छन्दोम पशु हैं। पशु पञ्चविध हैं। इस प्रकार वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। ब्राह्मणाच्छंसी तथा अच्छावाक चार का (पाठ करते हैं)। छन्दोम पशु हैं। पशु चतुष्टय हैं और चतुष्पाद हैं। ये पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। शस्त्रों में पाँच आहाव (आह्वान) हैं। उक्थ पशु हैं। पशु पञ्च से संबद्ध है। इस प्रकार वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। उक्थों के याज्या मंत्र एकाह (कृत्य) के हैं। एकाह प्रतिष्ठा है। इस प्रकार वे प्रतिष्ठा के लिये हैं। वे द्वितीय वषट्कार कहते हैं। यह आहुतियों को शान्ति और आहुतियों की प्रतिष्ठा के लिये है।

शाङ्खायन ब्राह्मण में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

३०.१ प्रातःसवन वसुओं का; मध्यन्दिन सवन रुद्रों का तथा तृतीय सवन आदित्यों का है। जो तृतीय सवन को आदित्य ग्रह (चमस) से प्रारम्भ करता है वह इसके अपने देवता से प्रारम्भ करता है। और तृतीय सवन अधीतरस (निर्गत रस) वाला सवन है। आदित्य ग्रह सरस ग्रह है। इस प्रकार इससे वह तृतीय सवन को रस युक्त (सरस) करता है। आदित्यग्रह के लिये वह एक त्रिष्टुभ को पुरोनुवाक्या के रूप में पढ़ता है। इसका

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्तुते पवमाने पशुना चरन्त्यत्र कालो हि भवत्यथो सवनस्यैव सरताया अथ हविष्पङ्क्त्या चरन्ति तस्या उक्तं ब्राह्मणं वामदेव्यास्तृतीयसवन उन्नीयमाने-भ्योऽन्वाह वामदेवो हि तृतीयसवन इन्द्राय सोमं प्रोवाच ता वा आवत्यो हरिवत्यो भवन्ति पुरोनुवाक्यारूपेण ता वा ऐन्द्रार्भव्यस्त्रिष्टुभो भवन्तीन्द्रमेव तदर्धभाजं सवनस्य करोति ता वै नवान्वाह दश न्वा अत्र चमसानुन्नयन्ति यथाऽनुप्रायणं तथोदयनमथ होत्राः संयजन्ति तासामुक्तं ब्राह्मणमन्धस्वत्यो मद्वत्यः पीतवत्यो जगत्यो याज्या जागतं हि तृतीयसवनं मद्वत्यो मद्वद्धि तृतीयसवनमनुवषट्-कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथेळाथ होतृचमसस्तस्योक्तं ब्राह्मणमौपासनांस्तृतीयसवन उपास्यन्ति तेषामुक्तं ब्राह्मणमथ सावित्रग्रहेण चरन्ति तस्योक्तं ब्राह्मणं त्रिष्टुभं सावित्रग्रहस्य पुरोनुवाक्यामन्वाह तस्या उक्तं ब्राह्मणमथ यदुक्थे अन्तरेणाग्नीत्पात्नीवतस्य यजति तेन तौ होतारमनुसमश्नुवाते ॥ १ ॥

ब्राह्मण कहा जा चुका है। पवमान गान हो जाने पर वह पशु से कार्य करता है क्योंकि यह इसका समय है और यह सवन की सरसता के लिये है। फिर वह पाँच हविष् (यज्ञ) को करता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। तृतीय सवन में भरे जा रहे चमसों के लिये वह वामदेव कृत मंत्रों (ऋ० ४.३५ द्र० शां० श्रौ० सू० ८.२.३) का पाठ करता है क्योंकि तृतीय सवन में वामदेव ने इन्द्र के लिये सोम की घोषणा की। वे पुरोनुवाक्या के रूप (प्रतीक) के साथ 'आ' तथा 'हरि' शब्द युक्त हैं। वे इन्द्र तथा ऋभुओं को कहे गये त्रिष्टुभ् हैं। इस प्रकार वह सवन में इन्द्र को आधे का भागी करता है। वह नौ का पाठ करता है। दश चमसों को वे यहाँ भरते हैं। जैसा प्रायणीय (प्रारम्भ) है वैसा ही अन्त (उदयन) है। होत्रक साथ-साथ यजन करते हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। याज्या मंत्र जगती छन्द में हैं (द्र० शां० श्रौ० सू० ८.२.५) और 'अन्धस्वत्यः' 'मद्वत्यः' और पीतवत्यः (अन्धस्, मद्, और पीत शब्दों से युक्त) हैं। क्योंकि तृतीय सवन जगती से संबद्ध है। ये मद्वत्यः हैं क्योंकि तृतीय सवन 'मद्' वत है। आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट्कार करते हैं। इसके बाद इला तथा तदनन्तर होतृ चमस है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। तदनन्तर वे (पितरों को) तृतीय सवन में पुरोडाश देते हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। तदनन्तर सविता के ग्रह (चमस) से चलते हैं। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। सवितृग्रह के लिये वह एक-एक त्रिष्टुभ् को पुरोनुवाक्या के रूप में कहता है[1]। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। फिर जो दो उक्थों के बीच अग्नीध् पत्नियों के ग्रह के लिये यजन करता है। याज्या को कहता है इससे दोनों होता के पास पहुँचते है।

---

१. (शां० श्रौ० सू० ८.३.२ में ऋ० ४.५४.१ त्रिष्टुभ् रूप में उदाहृत पर अनुक्रमणी में यह मन्त्र जगती छन्द में वर्णित है)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऐन्द्राग्नान्युक्थ्योक्थानि भवन्ति तेषामुक्तं ब्राह्मणमथैतान्यैन्द्राणि जागतान्यहरहः शंसन्ति पशवो वै जगती जागताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै तान्यच्युतानि स्युरिति हैक आहुः सवनधरणानीति वदन्तोऽन्यान्यन्यानीति त्वेव स्थितमन्यदन्यद्ध्यहरुपयन्त्यथ वारुणं बार्हस्पत्यं वैष्णवमिति शंसन्ति जगती वा एतेषां छन्दस्त्रिष्टुबिन्द्रस्य तद्यच्छन्दसी विपरीते द्विदेवत्यतांया ऐन्द्रावरुणमैन्द्राबार्हस्पत्यमैन्द्रावैष्णवमिति शंसति ग्रहानेवैतैरनुशंसन्त्येवं हि ग्रहा गृहीता भवन्ति ॥ २ ॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यमिति मैत्रावरुणस्तस्योक्तं ब्राह्मणं वासिष्ठोऽहरहः पर्यासो भवति वसिष्ठो हैतन्मैत्रावरुणीयायै तृतीयसवनं ददर्श तस्माद्वासिष्ठोऽहरहः पर्यासो भवति क अप्सु मैत्रावरुणाय प्रणयन्ति तृतीयेऽहंस्तेनो स ब्राह्मणाच्छंसिनो वशमेत्यथ चतुर्थेऽहन्स्वे स्वे छन्दसि प्रणयन्ति स्वे स्व एव तच्छन्दसि प्रतितिष्ठन्तो यन्ति गायत्रीषु मैत्रावरुणाय प्रणयन्त्युष्णिक्षु ब्राह्मणाच्छंसिनेऽनुष्टुप्स्वच्छावाकायोत्तरोत्तरितायै तथैषां चतुर्भिश्चतुर्भिरक्षरैश्छन्दांस्यभ्युद्यन्ति पंक्तिषु

३०.२ उक्थ्य के सूक्त इन्द्र तथा अग्नि को निर्दिष्ट हैं। इनका ब्राह्मण कहा जा चुका है। जगती छन्द में इन्द्र के इन मंत्रों का वह प्रतिदिन पाठ करता है। जगती पशु है। पशु जगती से संबद्ध हैं। इस प्रकार वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। कुछ लोग यह कहते हुये कि 'ये सवन के धारक (सहायक) हैं' 'अतः अपरिवर्तित रहने चाहिये' ऐसा कहते हैं। पर नियम यह है कि 'वे भिन्न भिन्न हों' एक दिन अन्य तथा अन्य दिन दूसरे का प्रयोग हो। वे वरुण, बृहस्पति तथा विष्णु से संबद्ध मंत्रों का पाठ करते हैं। इनका छन्द जगती है और इन्द्र का छन्द त्रिष्टुभ् है। जो छन्द प्रत्यावृत्त हैं वह दो देवताओं (की प्राप्ति) के लिये है। वे इन्द्र-वरुण, इन्द्र-बृहस्पति तथा इन्द्र-विष्णु के लिये मंत्रों का पाठ करते हैं (द्र० ऋ० ७.८२; १०.४३; ६.६९.१-३)। इस प्रकार इनसे उन ग्रहों को संयुक्त करते हैं। क्योंकि इसी प्रकार ये ग्रह गृहीत होते हैं।

३०.३ मैत्रावरुण 'चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यम्' इत्यादि (ऋ० ३.५१.१-३ : प्रजाओं के धारक, उदार एवं प्रशंसनीय) कहता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। वसिष्ठ-कृत (ऋ० ७.८४.१-३) प्रतिदिन समाप्ति है। वसिष्ठ ने तृतीय सवन को मैत्रावरुण के कार्य के लिये देखा। इसलिये प्रतिदिन समाप्ति वसिष्ठ कृत है। तृतीय दिन वे ककुभ् मंत्रों (ऋ० ८.१०३.८,९; १९.३०,३१; द्र० शां० श्रौ० सू० १२.१०.७) पर मैत्रावरुण को आगे करते हैं। इससे वह ब्राह्मणाच्छंसी के वश में आता है। चतुर्थ दिन वह प्रत्येक को अपने-अपने मंत्र में आगे करता है। इस प्रकार प्रत्येक अपने छन्द में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। क्रमिक वृद्धि की प्राप्ति के लिये वे गायत्री छन्दों में मैत्रावरुण को, उष्णिक् में ब्राह्मणाच्छंसी को और अनुष्टुभ् में अच्छावाक को आगे करते हैं। इसलिये इनमें प्रत्येक का छन्द चार अक्षरों से बढ़ता है। पङ्क्ति छन्दों में वे मैत्रावरुण को पाँचवें

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मैत्रावरुणाय प्रणयन्ति पञ्चमेऽहन्पाङ्क्तं हि पञ्चममहर्द्विपदासु षष्ठेऽहन्प्रयणयन्ति द्वे पदं हि षष्ठमहरथो गूर्दं भद्रमुद्वंशपुत्रमिति सामानि कुर्वन्त्यथो द्विपदाः सहचराणि वै शिल्पानि भवन्ति तस्मादत्रशिल्पानि शस्यन्ते नेच्छिल्पेभ्यो गामेति ॥३॥

नाभानेदिष्ठेनात्र होता रेतः सिञ्चति तन्मैत्रावरुणाय प्रयच्छति तत्स वालखिल्याभिर्विकरोत्यथैता वालखिल्या विहृताः शंसन्ति पच्छः प्रथमे सूक्ते विहरति पर्वश एवैनं तत्संभरत्यर्धर्चशो द्वितीये द्वे वै पुरुषः कपाले ते एव तत्संदधात्यृचमृचं तृतीये कृत्स्नमेवैनं तत्संभरतिविपर्यस्येन्नाराशंसे तस्माद्विपर्यस्ता गर्भा जायन्ते ॥४॥

तार्क्ष्ये दूरोहणं रोहति वायुर्वै तार्क्ष्यः प्राणो वै वायुः प्राण एवास्मिस्तद्दधाति तं ब्राह्मणाच्छंसिने प्रयच्छति तं स सुकीर्तिना योनिना प्रति गृह्णाति जातमथैतं वृषाकपिं पक्तिशंसं न्यूङ्खं शंसत्यन्नं वै न्यूङ्खो जात एवास्मिस्तदन्नाद्ये प्रतितिष्ठत्यथैतत्कुन्तापं यथा छन्दसं शंसति सर्वेषामेव कामानामाप्त्यै नाराशंसी रैभीः कारव्या

दिन आगे करते हैं क्योंकि पाँचवा दिन पङ्क्ति से सम्बद्ध है। छठें दिन वे दो पदों के मंत्रों से आगे करते हैं क्योंकि छठां दिन दो पदों के मंत्रों से संबद्ध है। और वे गूर्द, भद्र, उद्वंशपुत्र सामों को संपन्न करते हैं। और शिल्प दो पदों के मंत्रों के सहचारी हैं। इसलिये यहाँ यह सोचकर कि 'हम शिल्पों से पृथक् न हों', शिल्पों का पाठ होता है।

३०.४ होता नाभानेदिष्ठ (ऋ० १०.६१ द्र० शां० श्रौ० सू० १२.११.५-६) से रेतः सिंचन करता है। इसे वह मैत्रावरुण को देता है। इसे वह बालखिल्यों से विकीर्ण (विकसित) करता है। इन बालखिल्यों को वह विभक्त रूप में पढ़ता है। प्रथम दो सूक्तों को वह पदों से विभक्त करता है। इस प्रकार पर्वों (जोड़ों) से वह उसे एकत्रित करता है। द्वितीय दो को वह अर्धर्च से विभक्त करता है। पुरुष दो भागों का है। इस प्रकार वह उन्हें संयुक्त करता है। तीसरे तीनों सूक्तों को एक-एक ऋचा से पृथक् करता है। इस प्रकार वह उसे संपूर्ण रूप से संग्रहीत करता है। नाराशंस (ऋ० १०.१२) में विपर्यस्त करे। इसलिये गर्भ विपर्यस्त उत्पन्न होते हैं।

३०.५ तार्क्ष्य (ऋ० १०.१७८) में वह दुरोहण (दुष्कर आरोहण) आरूढ़ होता है। तार्क्ष्य वायु है। वायु प्राण है इस प्रकार वह अपने में प्राण को रखता है। इसे वह ब्राह्मणाच्छंसी को दे देता है। इसे वह सुकीर्ति(सूक्त ऋ. १०.१३१; द्र० शां० श्रौ० सू० १२.१३.१) की योनि में ग्रहण करता है। उत्पन्न हुये इसके लिये वह वृषाकपि सूक्त (ऋ० १०.८६) को पंक्ति रूप में 'ओ' के दुहरे उच्चारण से पढ़ता है। ओ की आवृत्ति (न्यूङ्ख) अन्न है। इस प्रकार उत्पन्न होकर वह अन्नाद्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तदनन्तर वह, समस्त अभीष्ट की प्राप्ति के लिये कुन्ताप सूक्तों (अथर्व० २०.१२७-१३६) का यथाछन्द (छन्दानुसार) पाठ करे—'नाराशंसी (अथ० २०.१२७.१-३),

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इन्द्रगाथा भूतेछन्द:पारिक्षितीरेतशः प्रलापमित्येतशो ह वै मुनिर्यज्ञस्यायुरदर्शत्स ह पुत्रानुवाच पुत्रका यज्ञस्यायुरदर्शंस्तदभिलपिष्यामि मा मा दृप्तं मंध्वमिति ते ह तथेत्यूचुस्तद्धाभिललाप तस्य ह ज्येष्ठः पुत्रोऽभिसृप्य मुखमभिजग्राहादृपद्वै नः पितेति तं होवाचापनश्य धिक्त्वा जाल्मास्तु पापिष्ठां ते प्रजां करोमि यद्वै मे जाल्म मुखं नाभ्यग्रहीष्यः शतायुषं गामकरिष्यंत्सहस्रायुषं पुरुषमिति तस्मादैतशायनाआजानेयाः सन्तो भृगूणां पापिष्ठाः पित्रा हि शप्ताः स्वया देवतया स्वेन प्रजापतिना ॥ ५ ॥

आदित्याङ्गिरसीरुपसंशंसत्यादित्याश्च ह वा अङ्गिरसश्चास्पर्धन्त वयं पूर्वे स्वर्गं लोकमेष्याम इत्यादित्या वयमित्यङ्गिरसस्तेऽङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिग्युः श्वः सुत्या नो याजयत न इति तेषां हाग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव होता स बृहस्पतिर्ब्रह्माऽयास्य उद्गाता घोर आङ्गिरसोऽध्वर्यु-रिति तान्ह प्रत्याचचक्षिरे तमेताभिः शिशिक्षुस्तदेता अभिवदन्ति ते अश्वं श्वेतं दक्षिणा निन्युरेतमेव य एष तपति तत उ ह आदित्याः स्वरीयुः स्वरेति य एवं वेद ॥ ६ ॥

रैभी (अथ० २०.१२७.४-६), कारव्य (२०.१२७.११-१४), इन्द्रगाथा (अथ० २०.१२८.१२-१६), भूतेछन्दस् (अथ० २०.१३५.११-१३), परीक्षित् मंत्र (अथ० २०.१२७.७-१०) और एतश का प्रलाप (अथ० २०.१२९)। एतश मुनि ने यज्ञ की आयु को देखा। उन्होंने अपने पुत्रों से कहा—हे पुत्रो ! मैंने यज्ञ की आयु को देखा है। उसका मैं अभिलाप (प्रलाप) करूँगा। मुझे दृप्त (उन्मत्त) मत समझना।' उन्होंने (पुत्रोंने) कहा—'ठीक है।' तदनन्तर उन्होंने अभिलाप किया। उनके जेठे पुत्र ने आगे आकर उनका मुख यह कह कर पकड़ लिया कि 'हमारे पिता दृप्त हो गये हैं।' उससे उन्होंने कहा—हट जाओ। तुम्हें धिक्कार है। तुम लोग नीच हो। तुम्हारी सन्तानों को मैं पापिष्ठ करता हूँ। हे मूर्ख ! यदि तुम मेरे मुख को बंद नहीं किये होते मैं तो गायों को सौ वर्ष की आयु का और पुरुषों की सहस्र वर्षों की आयु का बना देता।' इसलिये एतश के वंशज आजानेय भृगुओं में सबसे नीच हैं क्योंकि वे अपने देवता और प्रजापति पिता के द्वारा शप्त हैं।

३०.६ तदनन्तर वह आदित्य के और आङ्गिरसों के मंत्रों का (अथ० २०.१३५.६ इत्यादि) पाठ करता है। आदित्यों और आङ्गिरसों ने स्पर्धा की। 'हम पहले स्वर्ग लोक जायेंगे' आदित्यों ने कहा। आङ्गिरसों ने कहा—'हम'। आङ्गिरसों ने आदित्यों से कहा—'कल हमारा सुत्या दिन है। आप हमें यजन करने दें।' अग्नि उनके दूत थे। आदित्यों ने कहा—'हमारा सुत्यादिन आज है। और आप यहाँ हमारे लिये होता, बृहस्पति ब्रह्मा, अयास्य उद्गाता तथा घोर आङ्गिरस अध्वर्यु हैं।' उनको उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इन मंत्रों से उन्होंने उन्हें प्रसन्न करना चाहा। इस प्रकार इन मंत्रोंका वे पाठ करते हैं। उन्होंने एक श्वेत अश्व को दक्षिणा रूप में लाया जो यहाँ तप रहे हैं। इसलिये आदित्य स्वर्ग लोक को चले गये। इस प्रकार वह स्वर्ग लोक को जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दिशां क्लृप्तीः शंसति दिशो हास्मै कल्पन्ते जनकल्पाः शंसति जन हास्मै कल्पन्ते प्रवह्लिकाः प्रतीराधानतीवादामहानस्याः सर्वा वाचो वदति तस्मात्पुरुषः सर्वा वाचो वदत्येकैकामितरे पशवस्ता वा अष्टौ भवन्त्येताभिर्वै देवाः सर्वा अष्टीराश्नुवत तथो एवैतद्यजमाना एताभिरेव सर्वा अष्टीरश्नुवते कपृन्नरः कपृथमुद्दधातनं यद्ध प्राचीरजगन्तेति द्वे तथा त आनाक्षिप्यो भवन्ति ता दश संपद्यन्ते दश दशिनी विराट्छ्रीर्विराळन्नाद्यं श्रियो विराजोऽन्नाद्यस्योपाप्त्यै ॥ ७ ॥

दाधिक्रीं शंसति वाग्वै दाधिक्री वाचमेवास्मिंस्तद्दधाति पावमानीः शंसति पवित्रं वै पावमान्यः पुनात्येवैनं तत्तमच्छावाकाय प्रयच्छति तं स एवयामरुता चारयति जातं न्यूङ्खयति न्यूङ्खमानक इव वै प्रथमं चिचरिषश्चरति तदेनम-मृताच्छन्दसोऽमृतत्वाय प्रजनयति तेऽमृतत्वमाप्नुवन्ति ये षष्ठमहरुपयन्ति स्तोत्रि-यानुरूपौ शस्त्वा बालखिल्याः शंसत्यात्मा वै स्तोत्रियानुरूपौ प्राणा वालखिल्या अनन्तर्हिता उ हेमे प्राणास्तदाहुः कस्माद्वालखिल्या इति यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं

३०.७ वह दिशाओं के क्रम का शंसन करता है (अथ० २०.१२८.१-५)। दिशायें उसके लिये क्रम में है। वह जन-कल्पों (जन-क्रमों) का पाठ करता है (अथ० २०.१२८.६-११)। मनुष्य उसके लिये क्रम में हैं। वह पहेलियों (अथ० २०.१३३. १-४), प्रतीराधों (अथ० २०.१३५.१-३) अतिवाद (अथ० २०.१३५.४), आहनस्याओं (अथ० २०.१३६) सभी वाणियों का शंसन करता है। इसलिये मनुष्य सभी प्रकार की वाणियों को बोलता है पर अन्य पशु केवल एक ही वाणी बोलते हैं। वे आठ हैं। उनसे देवताओं ने सभी अष्टियों (प्राप्तियों) को प्राप्त किया। इसलिये यजमान भी उनसे सभी कामनाओं को प्राप्त करते हैं। 'कपृन्नरः कपृथमुद्दधातनं (ऋ० १०. १०१.१२ : हे मनुष्यों कपृथ् कपृथ् धारण करो) तथा' 'यद्ध प्राचीरजगन्त (ऋ० १०. १५५.४ : किस समय आप लोग आगे आये) ये दो मंत्र हैं। इस प्रकार वे परिपूर्ण होती हैं। ये दश बनते हैं। विराज् दश के समूह का है। विराज् श्री तथा अन्नाद्य है। इस प्रकार वे श्री तथा अन्नाद्य के रूप में विराज् की प्राप्ति के लिये हैं।

३०.८ वह दधिक्रा (ऋ० ४.३९.६) मंत्र का पाठ करता है। दधिक्रा मंत्र वाक् है। इस प्रकार वह अपने में वाक् को रखता है। वह पवमान सोम के मंत्रों (ऋ० ९.१०१.४-६) का पाठ करता है। पवमान सोम के मंत्र पवित्रकारी है। इस प्रकार वह अपने को पवित्र करता है। उसे अच्छावाक को देता है। उसे उत्पन्न होने पर वह एवया मारुत सूक्त (ऋ० ५.८७) के साथ संचारित करता है। वह ओकार का आवृत्त उच्चारण करता है। प्रथम चलने की इच्छा करने पर कोई लड़खड़ाते चलता है। इस प्रकार अमृत छन्द से अमृतत्व के लिये प्रजनित करता है। जो षष्ठ दिन के कृत्य को करते हैं वे अमृतत्व को प्राप्त करते हैं। स्तोत्रिय और अनुरूप का पाठ कर वे वालखिल्यों का पाठ करते हैं। स्तोत्रिय और अनुरूप आत्मा (शरीर) हैं, बालखिल्य प्राण हैं। ये प्राण आत्मा से पृथक् (तिरोहित) नहीं हैं। वे पूछते हैं—'वे बालखिल्य क्यों पढ़े जाते हैं ?'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भवति खिलमिति वै तदाचक्षते वालमात्रा उ हेमे प्राणा असंभिन्नास्तद्यदसंभिन्नास्तस्माद्वालखिल्याः ॥ ८ ॥

तार्क्ष्ये दूरोहणं रोहतीति तदुक्तं गायत्रीषु ब्राह्मणाच्छंसिने प्रणयन्ति द्वितीयेऽहंस्तेनो स मैत्रावरुणस्य वशमेति प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रय इति षळृचं द्विस्तावद्यावन्मैत्रावरुणस्य कार्ष्णोऽहरहः पर्यासो भवति कृष्णो हैतदाङ्गिरसो ब्राह्मणाच्छंसीयायै तृतीयसवनं ददर्श तस्मात्कार्ष्णोऽहरहः पर्यासो भवत्यनुष्टुप्स्वच्छावाकाय प्रणयन्ति तृतीयेऽहंस्तेनो स ब्राह्मणाच्छंसिनो वशमेत्यृतुर्जनित्रीयं त्रयोदशर्चं द्विस्तावद्यावद्ब्राह्मणाच्छंसिन एकाचोपभारद्वाजोऽहरहः पर्यासो भवति भरद्वाजो हैतदच्छावकीयायै तृतीयसवनं ददर्श तस्माद्भारद्वाजोऽहरहः पर्यासो भवति वैष्णवे विपर्यस्यत्यच्छावाकः पर्यासावितरौ द्विपर्यासौ मैत्रावरुणस्य च ब्राह्मणाच्छंसी चैकपर्यासोऽच्छावाकस्तद्यदच्युतपर्यासोऽच्छावाकः प्रतिष्ठा वा अच्छावाकः प्रतिष्ठित्या एव ॥ ९ ॥

षट्त्रिंशतं मैत्रावरुणश्चतुर्विंशे शंसति चत्वारिंशतं ब्राह्मणाच्छंसी चतुश्चत्वारिंशतमच्छावाकस्तद्द्विशतिशतं विंशतिशतं वा ऋतोरहानि तदृतुमाप्नोत्यृतुना

जो दो उर्वरक (क्षेत्रों) में असंबद्ध है उसे 'खिल' कहते हैं। ये प्राण बाल (केश) मात्र है और असंभिन्न (अपृथक् या अहल्य ?) हैं। इसलिये ये वालखिल्य (कहे जाते) हैं।

३०.९ यह कहा जा चुका है (पहले शा०ब्रा० ३०.५ में) कि तार्क्ष्य में वह दुरोहण पर आरूढ़ होता है। दूसरे दिन गायत्री छन्द पर वे ब्राह्मणाच्छंसी को आगे करते हैं। इससे वह मैत्रावरुण के वश में आता है। 'प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रयः इत्यादि' (ऋ. १.५७.१ : बृहत् महान्, बृहद्रत्न से उत्पन्न के लिये) यह छः मंत्रों का सूक्त है और मैत्रावरुण से दूना है। प्रतिदिन समाप्ति कृष्ण कृत है (ऋ० १०.४२.१-३ और ४३.१-३)। आङ्गिरस कृष्ण ने ब्राह्मणाच्छंसी के पद के लिये तृतीय सवन का साक्षात्कार किया। इसलिये प्रतिदिन समाप्ति कृष्ण कृत है। अनुष्टुप् पर तृतीय दिन के अच्छावाक को आगे करते हैं। इससे वह ब्राह्मणाच्छंसी के वश में आता है। ऋतुर्जनित्रीय सूक्त (ऋ० २.१३) तेरह ऋचाओं का है। यह ब्राह्मणाच्छंसी से दूना तथा एक अधिक है। प्रतिदिन समाप्ति भरद्वाज कृत (ऋ० ६.६९.१-३) है। भरद्वाज ने अच्छावाक के पद के लिये इस तृतीय सवन को देखा। इसलिये प्रतिदिन भरद्वाज कृत पर्यास (समाप्ति) है। अच्छावाक दो विष्णु सूक्तों (ऋ० ७.१०० तथा १.१५४.१-६) को विपर्यस्त करता है। अन्य दो पर्यास हैं। मैत्रावरुण तथा ब्राह्मणाच्छंसी के दो पर्यास हैं। अच्छावाक का एक पर्यास है। क्योंकि अच्छावाक का अपरिवर्तनीय एक पर्यास है। (अतः) अच्छावाक प्रतिष्ठा है। इस प्रकार निश्चय ही यह प्रतिष्ठा के लिये है।

३०.१० चतुर्विंश में मैत्रावरुण छतीस मंत्रों का, ब्राह्मणाच्छंसी चालीस का और अच्छावाक चौवालिस मंत्रों का पाठ करता है (द्र० शां० श्रौ० सू० ११.२७.१ और इस पर आनर्तीय की टीका)। ये एक सौ बीस हैं। ऋतु में एक सौ बीस दिन हैं। इस

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संवत्सरं ये च संवत्सरे कामाः पञ्च पञ्च सूक्तानि मैत्रावरुणः शंसति सर्वेषु च्छन्दोमेषु पशवो वै छन्दोमाः पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै चत्वारि सूक्तानि ब्राह्मणाच्छंसी शंसति प्रथमे च्छन्दोमे पशवो वै च्छन्दोमाश्चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यै पञ्चपञ्चोत्तरयोः पशवो वै छन्दोमाः पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै पञ्चसूक्तान्यच्छावाकः शंसति प्रथमे छन्दोमे पशवो वै च्छन्दोमाः पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्यै षट्षळुत्तरयोः षड्वा ऋतवः संवत्सरः संवत्सरस्यैवाऽऽप्त्यै चतुराहावानि शस्त्राणि पशवो वा उक्थानि चतुष्टया वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यै षष्ठ एवाहन्मैत्रावरुणस्य पञ्चाहावं भवति पशवो वा उक्थानि पाङ्क्ताः पशवः पशूनामेवाऽऽप्त्या ऐकाहिका उक्थयाज्याः प्रतिष्ठा वा एकाहः प्रतिष्ठित्या एवानुवषट्कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥१०

पञ्च च्छन्दांसि रात्रौ शंसन्त्यनुष्टुभं गायत्रीमुष्णिहं त्रिष्टुभं जगतीमित्येतानि वै रात्रिच्छन्दांसि पञ्चाहावा रात्रिर्वाजपेयस्य चातिरिक्तोक्थमुक्थस्यातिग्रहो रात्रिश्छन्दशश्छन्दस एव तदाहूयन्त इति ह स्माऽऽह कौषीतकिरजामिताया अथ यत्तिरो अह्न्यवतीं त्रिष्टुभमाश्विनोक्थग्रहस्य पुरोनुवाक्यामन्वाह तिरोअह्न्यवा-

---

प्रकार वह ऋतु को प्राप्त करता है। ऋतु से वर्ष को और वर्ष में निहित कामनाओं को प्राप्त करता है। सभी छन्दोम दिनों में मैत्रावरुण पांच-पांच सूक्तों का पाठ करता है। छन्दोम पशु हैं। पशु पांच से सम्बद्ध (पाङ्क्त) हैं। इस प्रकार वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। प्रथम छन्दोम में ब्राह्मणाच्छंसी चार सूक्तों का पाठ करता है। छन्दोम पशु हैं। पशु चतुर्विध तथा चतुष्पाद हैं। इस प्रकार वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। प्रथम छन्दोम में आच्छावाक पांच सूक्तों का पाठ करता है। छन्दोम पशु हैं। पशु पञ्चविध हैं। वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। द्वितीय तथा तृतीय में वे छः का पाठ करते हैं। वर्ष में छः ऋतुयें हैं। इस प्रकार वे संवत्सर की प्राप्ति के लिये है। शस्त्रों में चार आहाव हैं। उक्थ पशु हैं। पशु चतुर्विध तथा चतुष्पाद हैं। इस प्रकार वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। छठें दिन मैत्रावरुण के पांच आहाव हैं। उक्थ पशु हैं। पशु पाङ्क्त है। वे पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं। उक्थों के याज्या मंत्र एकाह (क्रतु) के हैं। एक दिन का कृत्य (एकाह) प्रतिष्ठा है। वे प्रतिष्ठा के लिये हैं। वे आहुतियों की शान्ति और आहुतियों की प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट्कार करते हैं।

३०.११ रात्रि में वे पांच छन्दों का पाठ करते हैं—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिह्, त्रिष्टुभ् और जगती। ये रात्रि के छन्द हैं। रात्रि के पांच आहाव हैं। तथा वाजपेय अतिरिक्त उक्थ है। 'रात्रि सूक्त (उक्थ) से बाहर है (अतिग्रह)। इसलिये वे प्रत्येक छन्द से आह्वान करते हैं।' ऐसा कौषीतकि का कथन है। यह अजामिता (एकता को हटाने) के लिये है जो अश्विन-उक्थ के ग्रह (चमस) के लिये याज्या मंत्र के रूप में तिरो अह्न्यवती (रात्रि भर) मंत्र का पाठ करता है। वह इसलिये कि प्रैष 'तिरो अह्न्य'

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न्प्रैषस्तिरोअह्न्या हि सोमा भवन्त्यथो बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधाति चतुराहावान्याप्तोर्यामस्यातिरिक्तोक्थानि भवन्ति पशवो वा उक्थानि चतुष्ट्या वै पशवोऽथो चतुष्पादाः पशूनामेवाऽऽप्त्यै क्षैत्रपत्याः परिधानीयाः कुर्वत इयं वै क्षेत्रं पृथिव्यस्यामदीनायामन्तः प्रतिष्ठास्याम इत्यस्यामेव तददीनायामन्ततः प्रतितिष्ठत्यथ यत्तिरोअह्न्यवत्यस्त्रिष्टुभो याज्या भवन्ति तिरोअह्न्या हि सोमा भवन्त्यथो बलं वै वीर्यं त्रिष्टुब्बलमेव तद्वीर्यं यजमाने दधत्यनुवषट्कुर्वन्त्याहुतीनामेव शान्त्या आहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथ हारियोजनेन चरन्ति तस्योक्तं ब्राह्मणं त्रिष्टुभं हारियोजनस्य पुरोनुवाक्यामन्वाह तस्या उक्तं ब्राह्मणमथ यदतिप्रैषस्य पुरोनुवाक्यामन्वाहावीर्यो वा उ स प्रैषो योऽपुरोनुवाक्योऽथो द्विदेवत्येषु वै पुरोनुवाक्या भवन्ति सर्वेषु च प्रस्थितेषु तस्मादस्य पुरोनुवाक्यामन्वाहाथ यदतिप्रैषमाह परमेवैतदहरभिवदति परमेवैतदहरभ्यारभ्य वसन्तीति ह स्माऽऽह कौषीतकिः परमेवैतदहरभ्यारभ्य वसन्तीति ह स्माऽऽह कौषीतकिः ॥ ११ ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इति शाङ्खायनब्राह्मणं समाप्तम् ।

(रात्रि भर) शब्द से युक्त है क्योंकि सोम 'तिरो अह्न्या' हैं। और त्रिष्टुप् बल तथा वीर्य है। इस प्रकार वह यजमान में बल और वीर्य को रखता है। आप्तोर्याम के अतिरिक्त उक्थों में चार आहाव हैं। उक्थ पशु हैं। पशु चतुर्विध और चतुष्पाद हैं। यह पशुओं की प्राप्ति के लिये है। क्षेत्रपति के लिये मंत्रों को वह परिधानीय के लिये प्रयुक्त करता है। (वे सोचते हैं कि) यह पृथ्वी क्षेत्र है। 'इस अदीन (उदात्त) पृथ्वी पर हम अन्त में प्रतिष्ठा प्राप्त करें।' इस प्रकार अन्त में इस अदीन (पृथ्वी) पर वे प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। जो याज्या मंत्र तिरो अह्न्य' शब्दयुक्त त्रिष्टुप् हैं वह इसलिये कि सोम 'तिरो अह्न्या (रात्रि पर्यन्त) है। त्रिष्टुप् बल और वीर्य है। इससे यजमान में बल और वीर्य का आधान करता हैं। वह आहुतियों की शान्ति और प्रतिष्ठा के लिये द्वितीय वषट्कार करता है। तदनन्तर वे अश्वयोक्ता के लिये ग्रह से चलते हैं। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। अश्वयोक्ता के ग्रह के लिये वह एक त्रिष्टुप् मंत्र को पुरोनुवाक्या के रूप में प्रयुक्त करता है (ऋ० १.१७७.४)। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है। वह जो अतिप्रैष के लिये एक पुरोनुवाक्या मंत्र का प्रयोग करता है (ऋ० ३.५३.५ या ४) वह इस लिये जो कि प्रैष विना पुरोनुवाक्या के है वह वीर्यहीन है। और द्विदैवत्य तथा सभी प्रस्थितों के ग्रहों के लिये पुरोनुवाक्या मंत्र है। इसलिये वह इसके लिये (भी) पुरोनुवाक्या मंत्र का पाठ करता है। कौषीतकि का कथन है कि जो वह एक अतिप्रैष का पाठ करता है वह इस प्रकार दूसरे दिन का उल्लेख करता है। इस प्रकार वे दूसरे दिन को वश में कर बसते हैं।

शाङ्खायन ब्राह्मण मे तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

शाङ्खायन ब्राह्मण समाप्त।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परिशिष्टम्–१

नामाद्यनुक्रमणिका

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

—: ० :—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परिशिष्टम्—२

शाङ्खायनब्राह्मणागत प्रतीकमन्त्राणां सूची

अगन्म महा नमसा यविष्ठम्	२६.१४	ऋ० ७.१२.१
अग्न आ याहि वीतये	१.४	ऋ० ६.१६.१०
अग्न आयूंषि पवसे	१.४	ऋ० ९ ६६.१९
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे	१४.२	ऋ० ३.२५.४
अग्न ओजिष्ठमा भर	२१.३	ऋ० ५.१०.१
	२४.५	ऋ० ५.१०.१
अग्ना यो मर्त्यो दुवः	१.४	ऋ० ६.१४.१
अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषाः	२६.११	ऋ० ७.३.१
अग्निं स्तोमेन बोधय	१.४	ऋ० ५.१४.१
अग्निं तं मन्ये यो वसुः	२३.१	ऋ० ५.६.१
अग्निं दूतं वृणीमहे	१.४	ऋ० १.१२.१
	१२.२	ऋ० १.१२.१
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योः	२२.७	ऋ० ७.१.१
	२५.११	ऋ० ७.१.१
अग्निमग्न आ वह	३.३	तै० सं० २.५.९.४
अग्निनाग्निः समिध्यते	१.४	ऋ० १.१२.६
	८.१	ऋ० १.१२.६
	१२.७	तै० सं० २.५.९.४
अग्निमग्न आ वह वनस्पतिमा वहेन्द्रं वसुमन्तमा वह	१२.७	शा० श्रौ० सू० ६.९.१३
अग्निमा वह सोममा वह विष्णुमा वह	८.८	शा० श्रौ० सू० ५.११.४
अग्निमन्ये पितरमग्निमापिम्	२५.१०	ऋ० १०.७.३
अग्निरिदं हविरजुषत	३.८	तै० सं० २.६.९.६
अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा	२१.२	ऋ० १०.६५.१
	२४.९	ऋ० १०.६५.१
अग्निर्जातो अथर्वणा	२२.६	ऋ० १०.२१.५
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः	२.८	साम० १.११८१;
	१४.१	वाज० सं० ३.९

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अग्निर्नेता भग इव क्षितीनाम्	१५.२	ऋ० ३.२०.४
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्	१.४	ऋ० ६.१६.३४
अग्निर्ह वै दैवो होता मानुषाद्धोतुः	२६.६	शां० श्रौ०सू० १.१ .१७
अग्निर्होता गृहपतिः स राजा	२३.३	ऋ० ६.१५.१३
अग्निर्होता नो अध्वरे	२८.२	ऋ० ४.१५.१
अग्निर्होता पुरोहितः	२६.१७	ऋ० ३.११.१
अग्नेः स्तोमं मनामहे	१.४	ऋ० ५.१३.२
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचः	९.५	ऋ० १.१४४.७
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः	२७.२	ऋ० ४.१०.१
अग्ने पत्नीरिहा वह	२८.३	ऋ० १.२२.९
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः	१६.९	ऋ० ५ ६०.८
अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारत	३.२	तै० सं० २.५.९.१
अग्ने मृळ महाँ असि	२६.१३	ऋ० ४.९.१
अग्नेविश्वेभिः स्वनीक देवैः	९.२	ऋ० ६.१५.१६
अग्नेष्ट्रास्येन प्राश्नामि	६.१४	वाज० सं० २.११
अग्न्युक्थमनुजप	१९.४	शा० श्रौ० सू० ९.२५.१६
अच्छावाक वदस्व यत् ते वाद्यम्	२८.५	ऐ० ब्रा० ६.१४.८
अच्छा वो अग्निमवसे	२८.५	ऋ० ५.२५.१
अजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम्	२१.२	ऋ० ४.५३.२
अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः	१०.२	ऋ० ३.८.१
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्राः	८.४	ऋ० ५.४३.७
अत्रयस्तमन्वविन्दन् न ह्यन्ये अशक्नुवन्	२४.४	ऋ० ५.४०.९
अथो इदं सवनं केवलं ते	१७.४	ऋ० १०.९६.१३
अद्या नो देव सवितः	१९.९	ऋ० ५.८२.४
	२०.२ } २५.९ }	ऋ० ५.८२.४
अघारयो दिव्या सूर्यं दृशे	२५.३	ऋ० १.५२.८
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचः	८.४;९.३	ऋ० १.८३.३
अध्वर्यवैषीरप३ः	१२.१	शा० श्रौ० सू० ६.७.८
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानाम्	२४.७	ऋ० ६.४४.१३
अध्वर्यो शोंसावो	१४.३	शा० श्रौ० सू० ७.१९.६
अध्वर्यो शोशोंसावो	१४.३	शा० श्रौ० सू० ८.३.५
अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यः	२१.२;२२.५	ऋ० ४.३६.१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अभूरेको रयिपते रयीणाम्	२३.२;	ऋ० ६.३१.१
	२५.८	ऋ० ६.३१.१
अमुष्यै स्वाहामुष्यै स्वाहा	४.१४	शां०गृ०सू० १.९.१८
अम्बयो यन्त्यध्वभिः	१२.२	ऋ० १.२३.१६
अयं जायत मनुषो धरीमणि	२३.६	ऋ० १.१२८.१
अयं देवाय जन्मने	२६.१०	ऋ० १.२०.१
अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाः	८.५	ऋ० १०.१२३.१
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे	२६.११	ऋ० ७.२९.१
अयं ह येन वा इदम्	२३.१	ऋ० ८.७६.४
अया वाजं देवहितं सनेम	११.६	ऋ० ६.१७.१५
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रियः	८.६	ऋ० ९.८३.३
अर्चन्तस्त्वा हवामहे	२६.१०	ऋ० ५.१३.१
अर्वाग् रथं विश्ववारं त उग्र	२४.८	ऋ० ६.३७.१
अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वा	८.४	ऋ० २.३३.१०
अव स्य शूराध्वनो नान्ते	२६.१६	ऋ० ४.१६.२
अवा नो मघवन् वाजसातौ	२३.३	ऋ० ६.१५.१५
अवासयन्नुषसं सूर्येण	२५.२	ऋ० ७.९१.१
अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः	२३.१	ऋ० ८.३६.१
अश्वाँ अग्ने रथीरिव	२२.३	ऋ० ८.७५.१
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम	२६.११	ऋ० ७.७१.१
अश्विना यज्वरीरिषः	१४.५	ऋ० १.३.१
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा	१८.५	ऋ० ३.५८.७
अस्तं यं यन्ति धेनवः	२३.१	ऋ० ५.६.१
अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदाः	९.६	ऋ० ८.४२.१
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमानाः	२६.१४	ऋ० ३.१.७
अस्माअस्मा इदन्धसः	२३.२	ऋ० ६.४२.४
अस्मा इदु प्र तवसे तुराय	२६.१६	ऋ० १.६१.१
अस्मासु नृम्णं धाः	२७.४	शा० श्रौ० सू० १०.१४.६
अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः	२२.४;	ऋ० १०.४८.१
	२६.१६	ऋ० १०.४८.१
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द	२०.४	ऋ० १.३२.१
अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च	२३.८	ऋ० ६.९.१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आ याहि वनसा सह	२६.१०	ऋ० १०.१७२.१
आ याहि शूर हरी इह	१७.१	शा० श्रौ० सू० ९.५.२
आ याह्यर्वाङुप बन्धुरेष्ठा	२०.२	ऋ० ३.४३.१
आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसः	२०.४;	ऋ० ५.५७.१
	२३.३	ऋ० ५.५७.१
आववृत्तीरध नु द्विधाराः	१२.१	ऋ० १०.३०.१०
आ वह देवान् यजमानाय	१२.७	वाज० सं० ५.१२; तै० सं० २.५.९.४
आ वां रथो अश्विनां श्येनपत्वा	१८.४	ऋ० १.११८.१
आ वामुपस्थमद्रुहा	९.३	ऋ० २.४१.२१
आ वायो भूष शुचिपा उप नः	२६.१५	ऋ० ७.९२.१
आ विश्वदेवं सत्पतिम्	२०.३	ऋ० ५.८२.७
आ विश्ववाराश्विना गतं नः	२६.१५	ऋ० ७.७०.१
आविष्कृधि हरये सूर्याय	२५.७	ऋ० १०.९६.११
आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी	२५.७,८;	ऋ० ४.१६.१
	२६.१६	ऋ० ४.१६.१
आ सुते सिञ्चत श्रियं	८.७	ऋ० ८.७२.१३
इळायास्त्वा पदे वयं	९.२	ऋ० ३.२९.४
इत्था हि सोम इन्मदे	२३.१	ऋ० १.८०.१
इदं ते सोम्यं मधु	१३.६	ऋ० ८.६५.८
इदं त्यत् पात्रमिन्द्रपानम्	२४.८	ऋ० ६.४४.१६
इदं वसो सुतमन्धः	१५.२	ऋ० ८.२.१
	२०.२;२४.२; २५.३;२५.११	ऋ० ७.२१
इदमहमर्वावसोः सदसि सीदामि	६.१३	शा० श्रौ० सू० १.६.९
इदमहं मां कल्याण्यै कीर्त्यै स्वर्गाय लोकायामृतत्वाय दक्षिणां नयामि	१५.१	शा० श्रौ० सू० १३.१४.६
इदमित्था रौद्रं गूर्तवचाः	२३.८	ऋ० १०.६१.१
इन्द्र इत् सोमपा एकः	२०.१	ऋ० ८.२.४
इन्द्र इषे ददातु नः	२६.१७	ऋ० ८.९३.३४
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान	२५.१	ऋ० ४.५८.४
इन्द्रं रुद्रवन्तमा वह	१२.७	शा० श्रौ० सू० ६.९.१३
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्	२४.८	ऋ० १.११.१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इमम् षु वो अतिथिमुषर्बुधम्	१.३	ऋ० ६.१५.१
इमां ते धियं प्र भरे महो महीम्	२६.१२	ऋ० १.१०२.१
इमां धियं शिक्षमाणस्य देव	७.१०	ऋ० ८.४२.३
इमां मे अग्ने समिधम्	८.८	ऋ० २.६.१.
इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोः	२०.३;	ऋ० ६.२१.१
	२६.१२	ऋ० ६.२१.२
इमा उ त्वा पुरूवसो	२४.७	ऋ० ८.३.३
इमा नु कं भुवना सीषधाम	२६.१३	ऋ० १०.१५७.१
इषेषयध्वमूर्जोर्जयध्वम्	२८.५	शा० श्रौ० सू० ७.६.३
इहेह वो मनसा बन्धुता नरः	२०.२;	ऋ० ३.६०.१
	२२.१	ऋ० ३.६०.१
ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये	८.६	ऋ० १.११२.१
उक्थमवाचि	१४.३	शा० श्रौ० सू० ७.९.६
उक्थमवाचीन्द्राय	१४.३	शा० श्रौ० सू० ८.१६.३
उक्थशाः	१४.३	तै० सं० ३.२.९.१
उक्षान्नाय वशान्नाय	२८.३	ऋ० ८.४३.११
उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान्	२१.२	ऋ० ७.२०.१
उच्छ्रयस्व वनस्पते	१०.२	ऋ० ३.८.३
उत प्रतिष्ठोतोपवक्त‌रुत नो गाव उपहूताः	१३.८	शा० श्रौ० सू० ७.६.६
उत ब्रुवन्तु जन्तवः	८.१	ऋ० १.७४.३
उत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि	२५.९	ऋ० ५.८१.४
उत स्या नः सरस्वती जुषाणा	२५.२;	ऋ० ७.९५.४
	२५.११	
उतेवनम्ननमुः (उतेमनम्नमुः)	१२.१	तै० सं० ६.४.३.४
उतोपहूतः	७.६	शा० श्रौ० सू० ७.६.६
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते	९.५;	ऋ० १.४०.१
	२०.३	ऋ० १.४०.१
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्या	२९.६	ऋ० ७.२३.१
उदु ष्य देवः सविता दमूनाः	२३.३	ऋ० ६.७१.४
उदु ष्य देवः सविता सवाय	२३.८	ऋ० २.३८.१
उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया	८.७;	ऋ० ६.७१.१
	२०.४;	ऋ० ६.७१.१
	२१.३;	ऋ० ६.७१.१
	२२.५	ऋ० ६.७१.१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपम्	१७.३	ऋ० ८.६९.७
उद् वंशमिव येमिरे	२४.७;	ऋ० १.१०.१
उद् वा चक्षुर्वरुण सुप्रतीकम्	२५.२;	ऋ० ७.६१.१
	२६.८	ऋ० ७.६१.१
उप त्वाग्नै दिवेदिवे	९.५	ऋ० १.१.७
उप नो हरिभिः	२३.७	ऋ० ८.९३.३१
उप नो हरिभिः सुतम्	२३.७	ऋ० ८.९३.३१
उपप्रयन्तो अध्वरम्	११.४;	ऋ० १.७४.१
	२२.१	ऋ० १.७४.१
उपप्रियं पनिप्नतम्	९.६	ऋ० ९.६७.२९
उपवक्ता जनानाम्	८.५	ऋ० ४.९.५
उप वां जिह्वा घृतमाचरण्यत	७.२	शा० श्रौ०सू० २.४.३
उपसद्याय मीळ्हुषे	८.८	ऋ० ७.१५.१
उपहूता देवा अस्य सोमस्य पवमानस्य विचक्षणस्य भक्ष उप मां देवा ह्वयन्तामस्य सोमस्य पवमानस्य विचक्षणस्य भक्षे मनसा त्वा भक्षयामि वाचा त्वा भक्षयामि प्राणेन त्वा भक्षयामि चक्षुषा त्वा भक्षयामि श्रोत्रेण त्वा भक्षयामि	१२.५	शा० श्रौ०सू० ६.८.१४
उभावपापश्च	१०.४	शा० श्रौ०सू० ५.१७.१०
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्	२५.७;	ऋ० ६.४७.८
	२९.४	ऋ० ६.४७.८
उरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्	२१.४	ऋ० ६.१९.१
उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा	२०.२	ऋ० ३.६०.१
उषासानक्ता बृहती सुपेशसा	२४.९	ऋ० १०.३६.१
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये	१०.२	ऋ० १.३६.१३
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेत्	२५.२	ऋ० ४.१३.२;७.७२.४
ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्	२६.१५	ऋ० ७.३९.१
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना	१०.२	ऋ० १.३६.१४
ऋजुनीती नो वरुणः	२६.१०	ऋ० १.९०.१
ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छ	२३.३	ऋ० ४.३४.१
एकमेकं सुशस्तिभिः	२६.१७	ऋ० १.२०.७
एतायामोप गव्यन्त इन्द्रम्	२१.३	ऋ० १.३३.१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

	२४.२; २५.३	ऋ० १०.७३.१
जातं यत् त्वा परि देवा अभूषन्	२२.७	ऋ० ३.५१.८
जात आपृणो भुवनानि रोदसी	२१.२	ऋ० ३.३.१०
	२७.२	ऋ० १०.८३.१
जातवेदो नि धीमहि	९.२	ऋ० ३.२९.४
जातो जायते सुदिनत्वे अह्लाम्	१०.२	ऋ० ३.८.५
जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून्	२८.६	ऋ० ४.४.५
जुषस्व सप्रथस्तमम्	२८.२	ऋ० १.७५.१
जुष्टो वाचो भूयासं जुष्टो वाचस्पतेर्देवि वाक्	१०.६	शा०श्रौ०सू० ६.९.७
जेषथाभीत्वरीं जेषथाभीत्वर्याः	२८.६	शा०श्रौ०सू० ७.६.३
ज्योग् जीवाः प्रति पश्येम सूर्यं	२५.५	ऋ० १०.३७.७
ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्	२५.९	ऋ० १.१४०.१
तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसः	३०.४; २२.२	ऋ० १.१११.१
तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वस	२०.४; २२.२	ऋ० १.१११.१
ततं मे अपस्तदु तायते पुनः	२०.३; २१.३	ऋ० १.११०.१
तत् त इन्द्रियं परमं पराचैः	२६.१६	ऋ० १.१०३.१
तत् सवितुर्वरेण्यम्	२३.३; २६.१०	ऋ० ३.६२.१०
तत् सवितुर्वृणीमहे	१६.३; १९.९;	ऋ० ५.८२.१
	२०.२ } २५.९ }	ऋ० ५.८२.१
तत् सूर्यं द्रविणं धेहि चित्रम्	२५.५	ऋ० १०.३७.१०
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्	१९.९; २५.११	ऋ० १०.१२०.१
तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महत्	१९.९; २१.२,४;	ऋ० ४.५३.१
	२२.२	ऋ० ४.५३.१
तद्रूपा मिनन् तदपा एक ईयते	२५.८	ऋ० २.१३.३
तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ	२५.२	ऋ० ७.३०.२
तनूष्वप्सु सूर्य	२५.६	ऋ० ६.४६.४
तंतमिद् राधसे महे	२०.४	ऋ० ८.६८.७
तं त्वा यज्ञेभिरीमहे	२२.७	ऋ० ८.६८.१०
तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा	२४.९	ऋ० ५.४४.१
तं मर्जयन्त सुक्रतुम्	८.१	ऋ० ८.८४.८
तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्	८.४	ऋ० ३.१८.२
तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा	२६.१२	ऋ० १०.११३.१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्वं हि क्षैतवद् यशः	२०.३; २२.२; २५.३	ऋ० ६.२.१
त्वं ह्यग्ने अग्निना	८.१	ऋ० ८.४३.१४
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः	२१.४	ऋ० २.१.१
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिः	२२.५	ऋ० १.३१.१
त्वमग्ने वसूंरिह	२०.४; २२.३	ऋ० १.४५.१
त्वया यज्ञं वि तन्वते	२६.१०	ऋ० ५.१३.४
त्वां चित्रश्रवस्तम	७.९	ऋ० १.४५.६
त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे	२०.४	ऋ० ५.८.१
त्वामग्ने पुष्करादधि	८.१	ऋ० ६.१६.१३
त्वामभि प्र णोनुमः	२४.८	ऋ० १.११.२
त्वावतः पुरूवसो	१७.१	ऋ० ८.४६.१
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य	२५.८	ऋ० ६.३१.३
दाना मृगो न वारणः	२४.८	ऋ० ८.३३.८
दिवः शशासुः	२६.१४	ऋ० ३.१.२
दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्याम्	२६.१५	ऋ० ७.६४.१
दिवि पृष्टो अरोचत	२६.१७	वाज० सं० ३३.९२
दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य	२५.१०	ऋ० १०.७.३
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः	२१.४	ऋ० ४.५३.२
दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा	२५.५	ऋ० ६.२२.८
दूतं वो विश्ववेदसम्	२६.१३	ऋ० ४.८.१
देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्	२५.२; १६.८	ऋ० ७.६१.१
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति गृह्णामि	६.१४	वाज० सं० २.११
देवानामिदवो महत्	२६.१३	ऋ० ८.८३.१
देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये	२०.३; २४.९; २५.९	ऋ० १०.६६.१
देवो देवी धर्मणा सूर्य शुचिः	२५.९	ऋ० १.१६०.१
दैव्याः शमितार उत च मनुष्या आरभध्वमुप नयत मेध्या दुर आशासाना मेधपतिभ्यां मेधम्	१०.४	शा०श्रौ०सू० ५.१७.१
द्यां स्कभित्वी	२४.९	ऋ० १०.६५.७
द्यावा नः पृथिवी इमम्	९.३	ऋ० २.४१.२०
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मान्	८.६	ऋ० १.११२.२५
द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यः	२५.६; २६.१६	ऋ० ६.२०.१
द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः	२५.२	ऋ० ७.९५.६

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्	२६.१५	ऋ० ७.७०.१
प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये	२२.१	ऋ० १.१४३.१
प्रति यदापो अदृश्रमायती:	१२.१	ऋ० १०.३०.१३
प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः	२६.११	ऋ० ७.६५.१
प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यत्	७.२	अथर्व० ७.२९.१ तै० सं० १.८.२२.१
प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी	२५.७	ऋ० १०.९६.१
प्रत्यस्मै पिपीषते	२३.२; २८.७	ऋ० ६.४२.१
प्रत्येता वामा सूक्तायं सुन्वन् यजमानोऽग्रभीत्	१३.८	शा० श्रौ०सू० ७.६.६
प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनः	२०.२	ऋ० १ ८७.१
प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु	१२.१	ऋ० १०.३०.१
प्र देवं देववीतये	८.१	ऋ० ६.१६.४१
प्र देवं देव्या धिया	९.२	ऋ० १०.१७६.२
प्र देव्येतु सूनृता	२०.४	ऋ० १.४०.३
प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा	२०.२; २२.१	ऋ० १.१५९.१
प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः	२२.९	ऋ० ७.५३.१
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः	१५.२	ऋ० १.४०.५
प्र नो राया परीणसा	२१.३	ऋ० ५.१०.१
प्रबाबधान	२६.१५	ऋ० ७.९४.१
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नः	२८.१३	ऋ० ७.६२.५
प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त	२६.११	ऋ० ७.४२.१
प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य	२५.२	ऋ० ७.३६.१
प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये	३०.९	ऋ० १.५७.१
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचः	२६.१६	ऋ० १.१०१.१
प्र यज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयः	२३.८; २५.९	ऋ० ५.५५.१
प्र यद् वस्त्रिष्टुभमिषं	२६.१०	ऋ० ८.७.१
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः	२२.९	ऋ० ३.२६.४
प्रयाजान् मे अनुयाजांश्च केवलान्	१.२	ऋ० १०.५१.८
प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयः	२१.२	ऋ० १.८५.१
प्र वा इन्द्राय बृहते	२७.२	ऋ० ८.८९.३
प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धः	२४.९	ऋ० १.१२२.१
प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वम्	१२.७; २६.८	ऋ० ७.४.१
प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावने	२१.३	ऋ० ५.५९.१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

———

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.